भक्तिकालीन हिंदी-साहित्य पर मुस्लिम-संस्कृति का प्रभाव

भक्तिकालीन हिंदी-साहित्य पर मुस्लिम-संस्कृति का प्रभाव

(पंजाब विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत शोध-प्रबंध)

लेखक
डॉ० असद अली
एम० ए० पी-एच० डी०

निर्देशक
आचार्य डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी

एस० ई० एस० प्रकाशन दिल्ली-६

प्रथम संस्करण | जुलाई१९७१

मूल्य | रु० ३५.०० पैंतीस रुपए

प्रकाशक | एस० ई० एस० एण्ड कम्पनी
२१५३/२ चाह् इंदारा, फव्वारा, दिल्ली

मुद्रक | हरिहर प्रेस, दिल्ली-६

दिल्ली हिंदी संस्थान ग्रंथ माला—३

भूमिका

मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि आयुष्मान डॉ० सैयद असद अली का यह शोध-प्रबंध प्रकाशित हो रहा है। इसमें इन्होंने हिंदी-साहित्य के भक्ति-काल में मुस्लिम संस्कृति के संपर्क के परिणामों का विवेचन बिल्कुल नवीन दृष्टि से किया है। डॉ० असद हिन्दी और उर्दू-साहित्य के मर्मज्ञ तो हैं ही अरबी और फ़ारसी से भी अच्छी तरह परिचित हैं। हिन्दी के भक्तिकालीन साहित्य को एक विशाल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रखकर देखने और परखने की दृष्टि उन्हें प्राप्त है। इस शोध प्रबंध में उन्होंने बड़े परिश्रम से उन छोटे-बड़े परिवर्तनों और परिवर्धनों की मीमांसा की है जो मुस्लिम संस्कृति के संपर्क में आने के बाद हिंदी-साहित्य में दिखाई देने लगे हैं, पर इस प्रकार साहित्य के अविच्छेद्य और जीवंत अंग बन गए हैं कि साधारणतः केवल हिन्दू-परंपरा से परिचित निपुण आलोचक की दृष्टि की पकड़ में नहीं आते।

डॉ० असद की सूक्ष्म ग्राहिणी दृष्टि ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ऊपर से द्वन्द्व के आलोड़न-विलोड़न के होते हुए भी गहराई में मनुष्य और मनुष्य के बीच प्रशस्त मिलन भूमि तैयार होती रही है। भारतीय संस्कृति नितान्त वर्जन शील नहीं है। उसमें ग्रहण और त्याग की वह अद्भुत शक्ति बराबर बनी रही है जो किसी भी प्राणवान संस्कृति के लक्षण हैं। खेल-कूद, मेले-तमाशे, हाट-बाजार, वस्त्र-भूषा, रहन सहन से लेकर साहित्य, तत्त्व-ज्ञान, कला, शिल्प, संगीत, धर्म साधना तक सर्वत्र उसने महान् मुस्लिम संस्कृति से लिया है और दिया है। हिन्दू और मुस्लिम विचार धाराओं और आचार परंपराओं से यह महिमामयी संस्कृति समृद्ध से समृद्धतर हुई है। मध्यकालीन साहित्य का जो सर्वोत्तम पक्ष है उसमें हिंदू और मुस्लिम आचार-विचारों का मिलित योगदान है।

डॉ० असद के इस शोध से मध्य कालीन भक्ति और साहित्य पर नया प्रकाश पड़ा है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि डॉ० असद के विचारों से प्रत्येक विद्वान् सहमत न हो सके। परन्तु प्रबंध का महत्त्व इस बात से घटता नहीं। वह नये सिरे से सोचने को प्रेरित करता है, बहुत सी रूढ़ धारणाओं पर पुनर्विचार को उत्तेजन देता है और भारतवर्ष की सारग्राहिणी मनीषा को नवीन रूप में देखने की दृष्टि देता है। यह अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

इस शोध प्रबंध के प्रकाशित होने के अवसर पर मैं आयुष्मान डॉ० असद को बधाई देता हूँ और हार्दिक शुभकामना करता हूँ कि वे स्वस्थ और दीर्घायु होकर अधिक साहित्य-सेवा करें।

हजारी प्रसाद द्विवेदी

इतिहास वेत्ता एवं शिक्षा शास्त्री

श्रद्धेय डॉ० तारा चंद

एम० ए०, डी० फ़िल् (ऑक्सन)

(भूतपूर्व वाइस चांसलर इलाहाबाद विश्वविद्यालय, सलाहकार केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय एवं ईरान में भारत के राजदूत)

को

सादर समर्पित

जिनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन
से मैं शोध की दिशा
में प्रवृत्त हुआ ।

प्राक्कथन

भारत प्राचीन काल से ही संस्कृति एवं सभ्यता का केन्द्र रहा है। मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क से इसके स्वरूप में कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन भी हुए हैं। इस सम्पर्क और संबंध ने देश के सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, धार्मिक और सौंदर्यमूलक पहलुओं को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है। यही कारण है कि भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ा। हिंदी साहित्य को भी इस संपर्क ने अनेक रूपों में प्रभावित किया है। हिंदी साहित्य को विभिन्न प्रभावक तत्वों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में भली भाँति समझने के लिए मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव का सूक्ष्म अध्ययन नितांत अपेक्षित है। इस दिशा में अभी तक हिंदी में कोई अनुसंधान कार्य नहीं हुआ जिसकी आवश्यकता बराबर बनी रही। आदरणीय डॉ० ताराचंद और गुरुवर आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी ने इस ओर मेरी रुचि को देखते हुए इस दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित किया। अपने विषय को अधिक स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करने के लिए मैंने मुख्यरूप से भक्तिकाल को आधार बनाया जिससे मुस्लिम संस्कृति के संपर्क का भली भांति विवेचन किया जा सके।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का उद्देश्य आलोच्यकालीन हिंदी-साहित्य के मुस्लिम संस्कृति के साथ दीर्घकालीन सम्पर्क का मूल्यांकन करना है। इस साहित्यिक उद्देश्य-पूर्ति के अतिरिक्त विभिन्न संस्कृतियों में राष्ट्रीय एकता की नींव को दृढ़ होने में भी पर्याप्त सहायता मिल सकती है और परस्पर आदान प्रदान का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। इस शोध प्रबंध में इस संपर्क का विवेचन विशेष रूप से 'विषयवस्तु', 'काव्यरूप' और 'अलंकरण' की दृष्टि से किया गया है। यह प्रबंध पांच अध्यायों में विभाजित है। पहला अध्याय 'मुस्लिम संस्कृति के संदर्भ में आलोच्य काल' है जिसमें संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति और उसकी प्रवृत्ति को संक्षेप में बताते हुए मुस्लिम संस्कृति के साहित्यिक दृष्टिकोण का विवेचन किया गया है। मुहम्मद बिन क़ासिम से लेकर औरंगज़ेब के समय तक राजकीय भाषा फ़ारसी के संपर्क में राज-सम्मानित हिंदी की क्या स्थिति थी उसका विवेचन करते हुए मुसलमान बादशाहों द्वारा हिंदी और हिंदी कवियों

के संरक्षण तथा अन्य बादशाहों के अतिरिक्त औरंगज़ेब की हिंदी प्रियता एवं तद्रचित हिंदी कविता की चर्चा की गई है।

दूसरा और तीसरा अध्याय विषय-वस्तु से संबंधित है। दूसरा अध्याय भक्ति-कालीन कवियों द्वारा निरूपित इस्लाम और तसव्वुफ़ है। इस अध्याय में इस्लाम और तसव्वुफ़ के उन सिद्धांतों का विवेचन किया गया है जिनको भक्तिकालीन हिंदी कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया है। इस्लाम, मोमिन, मुसलमान, क़ुरान, हदीस, अल्लाह, फ़िरिश्ते, पैगंबर, खलीफ़ाओं आदि का प्रतिपादन हिन्दी कवियों ने बड़ी ही उदारता से किया है। साथ ही इस्लाम के सैद्धांतिक पक्ष; मुस्लिम संस्कृति के प्रेरक तत्वों का भी निरूपण किया गया है जिनमें भक्तिकालीन हिदी कवियों द्वारा तौहीद, क़ियामत, हरामोहलाल, जज़ा सजा, जहन्नम, ईमान और मुसावात की सोदाहरण चर्चा विस्तार से की गई है। आलोच्यकालीन कवि इस्लाम धर्म के व्यवहार पक्ष से कहाँ तक परिचित थे, किस रूप में इन्होंने नमाज़, कलिमा, अज़ान, सजदा, दरूद, रोज़ा, हज आदि को अपने काव्य का विषय बनाया, इसका विवेचन भी इसी अध्याय के अंतर्गत है। साथ ही इन कवियों द्वारा निरूपित तसव्वुफ़ के सिद्धांतों की चर्चा भी की गयी है। मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क के परिणाम स्वरूप इन हिदी कवियों ने शरीअत, तरीक़त, हक़ीक़त, मारिफ़त के साथ साथ नफ़्स, ज़िक्र, तर्क (त्याग), तवक्कुल का भी निरूपण किया है।

तृतीय अध्याय में मुस्लिम संस्कृति के संपर्क के परिणाम-स्वरूप निरूपित जीवन के विभिन्न पहलुओं का वर्णन है। राजनीति जीवन के अंतर्गत इन कवियों द्वारा शासक, दरबार, दरबान, ग़ुलाम, वज़ीर, क़ाज़ी, सेना अस्त्र शस्त्र प्रभृति के उल्लेख के साथ-साथ तत्संबंधी अन्य चित्रण भी मिलता है। आर्थिक जीवन के अन्तर्गत इन कवियों द्वारा वर्णित हाट बाजार तथा विभिन्न व्यवसायों का उल्लेख किया गया है। साहित्य शीर्षक के अंतर्गत इन कवियों द्वारा मुस्लिम सम्पर्क से आए साहित्यिक उपकरणों की चर्चा है तथा इन कवियों की अरबी-फ़ारसी जानकारी और फ़ारसी काव्यानुरूप भावाभिव्यक्ति का भी विवेचन किया गया है। कला शीर्षक से संगीतकला एवं उन वाद्ययंत्रों और अरबी-फ़ारसी नामों को भी बताया गया है जिनको हिंदी कवियों ने मुस्लिम संपर्क के द्वारा अपनाया। वास्तुकला में भी इसी प्रकार का उल्लेख है। मुस्लिम संस्कृति के संपर्क से हिंदी कवियों ने इतिहास-निरूपण किस रूप में किया है इसको भी इसी अध्याय में दिखाने का प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय काव्यरूप से संबंधित है। भारतीय काव्यरूपों की चर्चा संक्षेप

में करते हुए मुस्लिम संस्कृति के माध्यम से आए काव्यरूपों पर विस्तार से विचार किया गया है। हिंदी कवियों ने ग़ज़ल, मसनवी तथा इसके अंतर्गत हम्द, नअत, मनक़बत आदि के अतिरिक्त क़सीदा, लुग़ज़, दोसख़ुना, पहेली, कहमुकरी, निस्वत, ज़ूलिसानैन, मुस्तज़ाद, अलिफ़नामा, क़ितआ, रेख़ता, लावनी और भूलना का प्रयोग किया है। कहीं कहीं उन वह्रों (छंदों) का भी उल्लेख कर दिया गया है जिनका हिंदी कवियों ने प्रयोग किया है।

पंचम अध्याय अलंकरण का है। अलंकरण के प्रति गुरुवर आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी का अपना एक मौलिक दृष्टिकोण रहा है। उनके निर्देशानुसार ही इस अध्याय को दो भागों में विभाजित किया गया। भाषागत अलंकरण और सामान्य जीवन संबंधी अलंकरण। भाषागत अलंकरण के अन्तर्गत हिंदी कवियों द्वारा अपनाए गए मुस्लिम संस्कृति से आए नवीन उपमानों का विवेचन किया गया है। मुस्लिम संस्कृति के माध्यम से अनेक अरबी-फ़ारसी मुहावरे एवं लोकोक्तियां भी हिंदी में प्रचलित हुए जिनसे भक्तिकालीन कवियों ने अपने काव्य को अलंकृत किया है। अरबी-फ़ारसी से आए अनेक उपसर्ग और प्रत्ययों का उल्लेख भी इसी अध्याय में किया गया है। अनेक हिंदी कवियों ने अरबी फ़ारसी शब्दों का प्रयोग भी बड़ी उदारता से किया है जिसका विवेचन 'अरबी-फ़ारसी बहुल काव्य' के अंतर्गत रखा गया है।

आलोच्यकालीन हिंदी कवियों द्वारा वर्णित सामान्य-जीवन-संबंधी अलंकरण में मुस्लिम संस्कृति के संपर्क से खान-पान में अनेक व्यंजनों की अभिवृद्धि हुई तथा उसके अंदाज़ में अनेक परिवर्धन हुए हैं जिसका चित्रण भक्तिकालीन कवियों ने भी किया है, वस्त्र-विन्यास और आभूषण में इस संपर्क से आए वस्त्रों और आभूषणों की चर्चा है। पर्वोत्सवों तथा मनोविनोद के साधनों का मुस्लिम संस्कृति-द्वारा जो अलंकरण हुआ है उसका भी इसी अध्याय में विश्लेषण किया गया है।

उपसंहार के अन्तर्गत आलोच्यकालीन हिंदी साहित्य में मुस्लिम संस्कृति के संपर्क के संकलित प्रभाव का आकलन है और उसके द्वारा हिंदी साहित्य की समृद्धि तथा नवीन मान्यताओं पर भी विचार किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध आदरणीय गुरुवर आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी के निर्देशन में प्रणीत हुआ है। श्रद्धेय डा० ताराचंद साहिब के ऋण से मैं उऋण नहीं हो सकता जिन्होंने आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी के संरक्षण में मुझे सौंपकर इनके शिष्यत्व का सुअवसर प्रदान किया। मैं इन दोनों पंडितों का आजीवन आभारी रहूँगा

तथा उन समस्त मित्रों, मार्गदर्शकों, पुस्तकालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों का भी आभारी हूं जिन्होंने मेरा किसी न किसी रूप में मार्गदर्शन किया एवं सहायक सिद्ध हुए।

अपनी जीवन-संगिनी, पथप्रदर्शिका और मित्र माजदा, जो हिंदी जगत में 'माजदा असद' के नाम से जानी जाती हैं, इनकी उदारता ने ही आत्मबल दिया है। मैं इनका शुक्रिया कैसे अदा करूं।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में उपर्युक्त अधिकांश सामग्री और विभिन्न अध्यायों में की गयी स्थापनाएँ मौलिक अध्ययन का परिणाम है। यदि प्रस्तुत शोध प्रबंध में कुछ त्रुटियां रह गई हों तो उसका कारण मनुष्य से त्रुटि होना संभव है।

असद अली

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

मुस्लिम संस्कृति के संदर्भ में आलोच्य काल

संस्कृति

संस्कृति शब्द 'कृ' धातु से बना है।[1] इसमें 'सम्' उपसर्ग है, जिसका अर्थ है परिष्कृत या परिमार्जित करना। इस शब्द से परिष्कार के साथ-साथ शिष्टता और सौजन्य के भावों का भी बोध होता है। 'संस्कृति' शब्द का संबंध संस्कार से है जिसका अर्थ संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना है।

वास्तव में 'संस्कृति' शब्द अंग्रेजी शब्द कल्चर का पर्यायवाची है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से कल्चर और कल्टीवेशन दोनों में समानता है। कल्टीवेशन का अर्थ है कृषि करना। भूमि की प्राकृतिक अवस्था को परिष्कृत करना ही कृषि का उद्देश्य है। भूमि की तरह ही मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों, प्राकृतिक शक्तियों और उसके परिष्कार का द्योतक कल्चर अथवा संस्कृति शब्द है। इस प्रकार कल्चर में वही धातु है जो ऐग्रीकल्चर में, इसका अर्थ भी पैदा करना या सुधारना है। अतः मनुष्य की नैसर्गिक वृत्तियों के परिष्कार का द्योतक 'संस्कृति' शब्द है।

कल्चर की परिभाषा देते हुए प्रसिद्ध नर-विज्ञानी ई० बी० टाइलर ने कहा है—'संस्कृति वह जटिल तत्व है जिसमें ज्ञान, नीति, क़ानून, रीति रिवाजों तथा दूसरी उन योग्यताओं और आदतों का समावेश है जिन्हें मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते प्राप्त करता है।[2] लिंटन नामक विद्वान ने संस्कृति को सामाजिक विरासत कहा है।[3] 'लांवी' के अनुसार संस्कृति समस्त सामाजिक परम्परा है।[4] 'हर्सकोविट्स' ने संस्कृति को मनुष्य का समस्त सीखा हुआ व्यवहार कहा है, अर्थात् वे चीज़ें जो मनुष्य

---

१. कल्याण, हिंदूसंस्कृति अंक, पृ० २४
२. प्रिमिटिव कल्चर—भाग १, पृ० १
३. दे० ए० एल क्रेबर, एंथ्रापॉलोजी, पृ० २५२
४. दे० ए० एल क्रेबर, एंथ्रापॉलोजी, पृ० २५२

के पास हैं, वे चीज़ें जो वे करते हैं और वह जो वह सोचते हैं संस्कृति है।[१] मैलिना-उस्की के अनुसार संस्कृति सामाजिक विरासत है जिसमें परम्परा से पाया हुआ कला-कौशल, वस्तु सामग्री, यांत्रिक क्रियाएं, विचार, आदतें और मूल्य समाविष्ट हैं।[२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृति की व्याप्ति बहुत बड़ी है। वैसे तो संस्कृति संस्कार की क्रिया है और यह अपने अभिधा में ही प्रयुक्त होती है। परन्तु इसके द्वारा बोध केवल इतने का ही नहीं होता। संस्कृति से तात्पर्य समाज और जीवन के सर्वांगीण संस्कार, सुधार और विकास से है। इसकी सीमा में खान-पान वेश भूषा, रहन-सहन, साहित्य, कला, आचार विचार, व्यवहार, राजनीति, दर्शन, नीति-रीति, रुचि, धर्म, अर्थ आदि समाज तथा जीवन से सम्बद्ध सभी तत्व आते हैं और इन सभी के संस्कार सुधार एवं विकास से इसका सम्बन्ध होता है। किसी युग की संस्कृति से तात्पर्य उस युग के सर्वतोमुखी विकास से है।

मुस्लिम-संस्कृति

मुस्लिम-संस्कृति की युक्तियुक्त परिभाषा देना बहुत कठिन है। इस्लाम धर्म के अनुयायियों को मुसलमान कहते हैं[3] किन्तु मुस्लिम-संस्कृति पूर्णतया न इस्लाम के अनुयायियों की बनाई हुई है न अरबों की वरन् यह कहना उचित होगा कि एशिया और अफ्रीका की वे जातियां जिन्होंने इस्लाम के उदय के समय यूरोप से संस्कृति का लोप हो जाने के पश्चात् इस्लाम धर्म ग्रहण कर उसके पुनरुत्थान में योग दिया; मुस्लिम-संस्कृति के अन्तर्गत एक हो गई। संक्षेप में मुस्लिम-संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—मुस्लिम-संस्कृति से तात्पर्य इस्लाम के प्रकाश में समाज और जीवन के सर्वांगीण संस्कार सुधार और विकास से है जिसकी सीमा में रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, साहित्य, कला, दर्शन, राजनीति, आचार व्यवहार, नीति-रीति, रुचि, धर्म, अर्थ आदि व्यक्ति समाज तथा जीवन से सम्बद्ध सभी तत्व आते हैं।

मुस्लिम-संस्कृति की प्रवृत्ति

मुस्लिम-संस्कृति की प्रवृत्ति आदि काल से ही उदारता के साथ समन्वयात्मक रही है और इस्लाम के प्रकाश में देश काल के अनुसार उसके स्वरूप का विकास एवं विस्तार होता रहा। प्रारम्भमें मुस्लिम विजेताओं के पास परम्परागत अरब संस्कृति ही थी इसलिए उन्होंने जहाँ विभिन्न देशों को विजित करके उन पर अधिकार जमा लिया

१. हर्स को विट्स, पृ० ६२५
२. एंसाइक्लोपीडिया आफ़ द सोशल साइंसेज़, पृ० ६२१
३. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ४१७

वहां उनकी उन स्वस्थ सांस्कृतिक परम्पराओं को भी अपना लिया जिनका इस्लाम से सैद्धांतिक विरोध न था।

पंडित नेहरू के शब्दों में हम कह सकते हैं 'जो संस्कृति अरब लोग अपने साथ विभिन्न देशों को ले गये वह निरंतर परिवर्तनशील और विकासवान रही क्योंकि इस पर इस्लामी नवीन विचारों की दृढ़ छाप रही केवल इसलिए इसको पूर्णतया इस्लामी संस्कृति तो कहा नहीं जा सकता।[१] मेरे विचार में इसे मुस्लिम संस्कृति कहना अधिक युक्तियुक्त होगा। आगे पंडित जी कहते हैं कि जब इसका केन्द्र दमिश्क़ था उस समय ही इसने अपने रहन-सहन की सादगी के स्थान पर भव्यता को अपना लिया था। इस काल को अरब-सीरिया-सभ्यता-काल कहा जा सकता है। इस संस्कृति पर बाज़ंतीनी प्रभाव भी पड़ा किन्तु अधिकतर उस समय, जबकि मुस्लिम संस्कृति का केन्द्र बग़दाद बना, उन्होंने जिन प्राचीन ईरानी परम्पराओं के प्रभावों को ग्रहण किया वह आगे उन्नति करके अरब-ईरानी सभ्यता कहलायी जिसका प्रभाव बड़ा व्यापक रहा।[२] इस प्रकार मुस्लिम संस्कृति में अरबों से शक्ति और अनुसंधान की प्रवृत्ति आई तो दूसरी ओर उसने ईरानियों से जीवन की भव्यता, कला और ऐशोइश्रत प्राप्त किया। अतः मुस्लिम-संस्कृति प्रारम्भ से ही प्रगतिशील रही, यदि एक ओर उसने धार्मिक-दार्शनिक सिद्धांतों से किसी देश को प्रभावित किया तो दूसरी ओर उस देश के उत्तम सांस्कृतिक गुणों को ग्रहण भी किया। मुस्लिम-संस्कृति की प्रवृति निषेधात्मक नहीं रही। दृढ़ एकेश्वरवाद, मुसावात (साम्यवाद) और हज के कारण इस्लामी दुनिया के विभिन्न भागों में निकटतम सम्बन्ध स्थापित रहे जिसके द्वारा सुगमता से सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा।

रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'इस्लाम को जन्म लिए हुए सिर्फ अस्सी वर्ष हुए थे कि उतने ही समय में, उसका झण्डा एक ओर तो भारत की सीमा पर पहुंच गया और दूसरी ओर वह अतलांतिक महासागर के किनारे पर जा गड़ा। सात सौ ईस्वी लगते-लगते इस्लाम इराक़, ईरान और मध्य एशिया में फैल गया तथा सन् ७१२ ई० में सिन्ध मुसलमानों के अधिकार में आ गया और उसी साल मुसलमानी राज्य स्पेन में भी हो गया। हिजरी सन के सौ साल होते-होते मुसलमानों के राज्य के समान शक्तिशाली राज्य दुनिया में और नहीं रह गया था।'[३]

इस प्रकार विदित होता है कि मुस्लिम-संस्कृति की प्रवृत्ति प्रारम्भ से दूसरी

---

१. डिसकवरी आफ़ इंडिया, पृ० २०६
२. डिसकवरी आफ़ इंडिया, पृ० २०६
३. संस्कृति के चार अध्याय, पृ० २२४

सस्कृतियों से सम्पर्क स्थापित कर उनके गुणों को अपने में समोने की रही है। इसी कारण उसका इतना व्यापक एवं विराट स्वरूप देखने को मिलता है।

मुस्लिम-संस्कृति का साहित्यिक दृष्टिकोण

साहित्य, ज्ञान विज्ञान एवं कलाओं की दृष्टि से प्राचीन भारतीय वाङ्मय ने संसार के सम्मुख एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया है, जो कम देशों को नसीब हुआ है। ऋग्वेद संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है तथा संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों से विश्व साहित्य लाभान्वित हुआ है। संस्कृत साहित्य से दमिश्क़ और वग़दाद के ख़लीफ़ाओं के युग में अरबों का भी गहरा सम्वन्ध रहा था तथा हिन्दी-साहित्य से मुस्लिम सूफ़ियों, व्यापारियों और शासकों का स्वाभाविक सम्पर्क रहा है। इसलिए शीरानी महोदय ने कहा है कि हिन्दी-साहित्य आदि काल से ही मुस्लिम संपर्क में रहा।[1] भक्ति एवं रीति काल में मुस्लिम-सूफ़ी-असूफ़ी कवियों और शासकों ने एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है तथा अनेक आदान-प्रदान हुए।

हिंदी-साहित्य के साथ मुस्लिम संपर्क का विवेचन करने से पूर्व उचित होगा यदि साहित्य एवं काव्य संबंधी इस्लामी दृष्टिकोण को संक्षेप में देख लिया जाए। इस्लाम धर्म, दर्शन एवं साहित्य का प्रमुख ग्रंथ क़ुरान शरीफ़ है। साथ ही मुहम्मद साहिब के जीवन और हदीसों से भी ज्ञान-विज्ञान एवं साहित्य के अनेक उदाहरण सामने आते हैं। इस्लाम से पूर्व के अरब साहित्य में काव्य कला के अनेक उदाहरण मिलते हैं। क़ुरान यद्यपि अरबी गद्य में है किंतु इस्लाम से पूर्व के काव्य एवं गद्य से, भाव और भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से इतना उत्कृष्ट है कि स्वय क़ुरान में इस्लाम पूर्व समस्त साहित्य कारों को चुनौतीं दी गई है कि 'यदि तुम में क्षमता हो तो (भाव भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से) क़ुरान जैसी तुम एक सूरत भी यदि ला सको तो ले आओ।'[2] गद्य में होते हुए भी भाषा के अलंकरण की दृष्टि से इसमें अनेक सूरतें (जैसे सूरे रहमान (५५) ऐसी हैं कि जो काव्य सौष्ठव एवं लयात्मकता लिये हुए हैं। यही कारण है कि क़ारी (क़ुरान को सस्वर पढ़ने वाले) के पढ़ते समय इस गद्य में भी पद्य की सी लयात्मकता का अनुभव होता है।

काव्य के प्रति मुस्लिम-संस्कृति के दृष्टिकोण के विषय में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि क़ुरान शरीफ़ में एक सूरंत सूरे शुअरा (२६, कवियों के विषय में) शीर्षक से भी दी गई है जिसकी अंतिम आयतों में ऐसे कवियों को पथ-भ्रष्ट वताया गया है जो अनर्गल प्रलाप करें तथा उनकी कविता अनैतिकतापूर्ण हो और ख़ुदा की स्तुति (हम्द) तथा सदाचार संवंधी कविता को अच्छा कहा गया है। मुहम्मद साहिब

१. पंजाब में उर्दू, पृ० २७

२. क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयत २३

तथा उनके असहाब (मित्रगण) की अरबी कविता का भी हदीसों में उल्लेख मिलता है और यहां तक भी विवरण मिलता है कि मुहम्मद साहब ने अच्छी कविता पर पुरस्कार भी दिये हैं।[1] साहित्य एवं ज्ञान प्राप्ति के विषय में दो हदीसें (मुहम्मद साहब के सत्य वचन) उद्धृत हैं। 'इल्म (ज्ञान) प्राप्त करना प्रत्येक मुसलमान पुरुष और स्त्री का कर्तव्य है।[2] उस समय जब कि यातायात के साधन सीमित थे और अरब तथा चीन की दूरी अधिक समझी जाती थी, फिर भी एक हदीस में कहा गया है कि इल्म (ज्ञान) प्राप्त करो चाहे चीन देश में मिले।[3] हज़रत अली (चौथे खलीफ़ा) को भी साहिबे दीवान (ग्रंथकार) बताया जाता है। नैतिकता पूर्ण कविता के द्वारा सूफ़ी कवियों ने भी इस्लाम के प्रसार में बड़ा योगदान किया है जिसमें इमाम अबूहनीफ़ा, इमाम शाफ़ई, इमाम ग़ज़ाली के अतिरिक्त फ़ारसी के मौलाना जलालुद्दीन रूमी, हकीम सनाई, शेख़ सादी आदि भी उल्लेखनीय हैं। मौलाना रूम की विख्यात मसनवी के नैतिकतापूर्ण काव्य को तो पहलवी (फ़ारसी) भाषा में कुरान कहा गया है।[4]

इस विवरण से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि काव्य-कला तथा साहित्य को मुस्लिम-संस्कृति में प्रारंभ से ही प्रोत्साहन दिया गया है। आलोच्यकालीन हिंदी साहित्य के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क के परिणाम स्वरूप हिंदी-साहित्य पर मुस्लिम-साहित्य का अनेक कारणों से अनेक रूपों में प्रभाव पड़ा है। इसका एक कारण यह भी बताया जाता है कि मुस्लिम संपर्क से पूर्व संस्कृत साहित्य एवं संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त करना जन सामान्य और विशेषकर शूद्रों के लिए वर्जित हो गया था।[5] इधर बाद की हिंदी में भी तत्संबंधी कुछ उक्तियां मिलती है—

संस्कृत है कूप जल भाषा बहता नीर।[6]

इस्लाम धर्म के अनुसार तौहीद (एकेश्वरवाद) में ईश्वर को एक मानने के साथ साथ विद्या प्राप्ति के लिए भी सबको समान अधिकार दिया गया है। यही कारण

१. इलमी उजाले, पृ० १०५, १०८, १११

२. तलबुलइल्मे फ़रीज़तुन् अला कुल्ले मुस्लेमिन व मुस्लेमातिन। ग्लिमसेज़ आफ़ हदीस, पृ० ३३

३. उतलुबुल इल्मा वलौ काना फ़िस्सीन। ग्लिमसेज़ आफ़ हदीस, पृ० ३४

४. इमली उजाले, पृ० ११२

५. भारतीय संस्कृति का विकास, पृ० १२, ७, १८, ४२ तथा इन्फ़्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० १५३

६. कबीर, भाषा को अंग साखी १।

है कि मुस्लिम-संस्कृति की यह विशेषता रही है कि जहाँ जहाँ भी इस्लाम का प्रसार हुआ इसने स्थानीय भाषा, भाव एवं साहित्य को इस्लाम के प्रकाश में संवार कर उन्हें अपना लिया जिसके परिणाम स्वरूप अरबी, तुर्की और ज़रतुश्तियों की पहलवी या फ़ारसी भाषा एवं साहित्य को मुस्लिम संस्कृति की प्रमुख भाषा कहा जाने लगा। इसी उदार दृष्टिकोण के आधार पर मुसलमानों ने संस्कृत सीखी (अलबीरूनी, दाराशिकोह और रहीम विशेष उल्लेखनीय हैं) और मुस्लिम शासकों ने संस्कृत का संरक्षण भी किया।[1] हिंदी को भी पूर्णतः अपनाया। तुर्की, फ़ारसी और हिंदी को पास-पास लाने में अमीर ख़ुसरो (१२५५-१३२४ ई०) का व्यक्तित्व एवं साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। इनकी पहेलियाँ मुकरियाँ आदि भी ऐसे ही प्रयत्न हैं—

'फ़ारसी' बोली आईना। तुर्की ढूंढ़ी पाई ना।
हिंदी बोली आरसी आए। खुसरो कहे कोई ना बताए॥ आरसी[2]

सूफ़ी कवि जायसी भी प्रेम के मार्ग में भाषा को प्रतिबंध नहीं मानते—

'तुर्की' 'अरबी' 'हिंदवी' भाषा जेती आहि।
जेहि महं मारग प्रेम का सबै सराहै ताहिं॥
आदि अंत जस गाथा अही। कह चौपाई 'भाषा' कही॥[3]

आगे चलकर तुलसीदास ने भी इसी उदारता का परिचय दिया है और सुंदरदास ने भी फ़ारसी का उल्लेख किया है—

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच।[4]
पढ़ के न बैठो पास अक्षर न बांचि सकै,
बिनही पढ़े ते कैसे आवत है 'फ़ारसी'॥[5]

मुहम्मद बिन क़ासिम से औरंगज़ेब तक (साहित्यिक दृष्टि से)—

उत्तर भारत में मुहम्मद बिन क़ासिम के ७१२ ई० में आगमन से पूर्व भी खलीफ़ा उमर (६३४-६४५ ई०) के ज़माने से ही इन इलाक़ों तक मुस्लिम सेना राजनीतिक

---

१. देखिए—मुस्लिम पैट्रोनेज टु संस्कृत लरनिंग
२. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २०
३. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० ३०१
४. क. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २ (दोहावली ५७२), पृ० १२७
ख. भाषा निबंध-मुदमंजुल-मातनोति। हिंदी पर फ़ारसी प्रभाव, पृ० ३३
ग. भाषा मनित मोरि मति थोरी। हंसिबे जोग हँसे नहिं खोरी॥ हिंदी पर फ़ारसी प्रभाव, पृ० ३३
५. सुंदर विलास, पृ० ८-९

कारणों से आती जाती रही थी।[१] ईरान तथा मकरान के इस्लामी शासन में आने के पश्चात् सिंध पर चढ़ाई की गई, अंततोगत्वा ख़लीफ़ा वलीद के ज़माने में मुहम्मद बिन क़ासिम ने सिंध पर विजय प्राप्त की।[२] मुलतान तथा सिंध के प्रदेशों को इस्लामी शासन के आधीन किया। क़ासिम ने स्थानीय पण्डितों को यथोचित आदर दिया तथा विजित देश के राजकीय कर्मचारियों और कार्यालयों को पूर्ववत् चलने दिया।[3] यद्यपि भाषा की दृष्टि से इस काल में नगण्य आदान प्रदान हुआ है किंतु मुस्लिम सूफ़ी संतों व्यापारियों के यहाँ आने जाने और बस जाने से तथा अन्य कारणों से बाद में सिंध पर भाषा की दृष्टि से इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि सिंधी भाषा की लिपि भी अरबी के समान बन गई।[४] इस अरब विजय को 'सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बताया गया है।'[५] उत्तर भारत में इस विजय से मुस्लिम संपर्क का श्रीगणेश निश्चित ही हुआ है।

महमूद ग़ज़नवी (९९८-१०३० ई०)

राजनीतिक दृष्टि से महमूद ग़ज़नवी ने भारत पर समय-समय पर जो आक्रमण किये[६] यहाँ उसकी राजनीति के संबंध में कुछ अधिक कहना नहीं है किंतु इतना अवश्य है कि उसकी सेना में हिंदू-मुसलमान दोनों ही होते थे। 'तिलक' नामी सेनापति का नाम इतिहास प्रसिद्ध है। महमूद के व्यक्तित्व एवं साहित्य प्रेम के विषय में हिस्ट्री आफ़ मैडिवल इंडिया (सी० बी० विद्या, जिल्द ३) में निष्कर्ष के रूप में गिब्न के हवाले से लिखा है कि महमूद संसार के सर्वोत्तम शासकों में से एक था। वह एक निडर सिपाही, एक कमांडर, न्यायप्रिय, विद्वानों का आदर करने वाला और एक दृढ़ शासक था। किंतु क्रूर-हृदय हरगिज़ नहीं था। ईश्वरीप्रसाद ने भी अपने इतिहास में महमूद

---

१. मुस्लिम सक़ाफ़त, पृ० ७१

२. इन्फ्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० ४४

३. विस्तृत विवरण के लिए देखिये—मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० ८४, ८६

४. पं० अम्बिका प्रसाद बाजपेयी के मतानुसार सिंध पर अरबों का अधिकार होने के कारण सिंध में मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक हो गई और सिंधी भाषा की लिपि अरबी बन गई।

हिंदी पर फ़ारसी प्रभाव, पृ० १६

५. ऐन एडवांस हिस्ट्री आफ़ इंडिया भाग २, पृ० २७५ तथा पंजाब में उर्दू, पृ० ५६-५८

६. इस विषय में विस्तृत एवं अनेक ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित पुस्तक हाफ़िज़ अली बहादुर खां कृत महमूद 'ग़ज़नवी' द्रष्टव्य है।

के अनेक गुणों की सराहना करते हुए उसके विद्या प्रेम की चर्चा की है।[१] वह स्वयं एक पंडित था, कुरान का हाफ़िज़ था तथा एशिया के अनेक भागों के विद्वान् उसके दरबार में मौजूद थे। अबूरैहान मुहम्मद इब्ने अहमद अलबीरूनी जो धर्म, दर्शन, गणित, खगोल, इतिहास तथा संस्कृत का महान् पंडित था, महमूद का दरबारी था। इसके अतिरिक्त इतिहासज्ञ उतबी, दार्शनिक फ़ाराबी तथा कवियों में असदीतूसी, अंसरी, फ़र्रुख़ी और शाहनामाकार फ़िरदौसी विशेष उल्लेखनीय हैं।[२] सुलतान महमूद प्रत्येक वर्ष चार लाख दीनार ज्ञान विज्ञान की उन्नति पर व्यय किया करता था[3] तथा ग़ज़नी विश्वविद्यालय उस काल में विख्यात था। इतिहासकार फ़िरिश्ता ने तो यहां तक लिखा है कि किसी भी बादशाह के दरबार में इतने विद्वान् न थे जितने महमूद के दरबार में।[४] महमूद ग़ज़नवी की हिंदी प्रियता का भी इतिहास में एक अनुपम उदाहरण मिलता है। ४१२ हिजरी में पंजाब को अपने राज्य में मिलाकर अपने प्रिय ग़ुलाम अयाज़ को यहां का प्रधान सूबेदार नियुक्त किया। इसके बाद ४१३ हिजरी में कालिंजर के राजा नंदा पर आक्रमण किया। कालिंजर के राजा नंदा द्वारा महमूद की प्रशंसा में भेजे गए क़सीदे (कवित्त) से प्रसन्न होकर महमूद ग़ज़नवी ने कालिंजर का विजित क़िला तथा अन्य १४ क़िले पुरस्कार स्वरूप नंदा को भेंट किये।[५] इतिहासकारों का कहना है कि काव्यकला में इस प्रकार के प्रोत्साहन एवं प्रशंसा के उदाहरण इतिहास में बहुत ही कम मिलते हैं। ख़्वाजा मसऊद साद सलमान भी इस काल का एक विख्यात फारसी कवि था जिसके हिंदी काव्य का इतिहासों में उल्लेख तो मिलता है किंतु ग्रंथ अभी अप्राप्य हैं।[६] अमीर ख़ुसरो ने भी सलमान के हिंदी दीवान (ग्रंथावली) का उल्लेख किया है।[७] विद्या प्रेमी महमूद ग़ज़नवी ने संस्कृत-भाषा की महत्ता को स्वीकार करते हुए तथा भारत से अपना संबंध प्रकट करने के लिए अपनी मुद्राओं पर संस्कृत शब्दों को भी स्थान दिया था।[८] महमूद के उत्तरा-

१. मेडिवल इंडिया, पृ० ७४ तथा अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० १०
२. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० १०२, १०३
३. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० ४२७
४. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० १०, तारीख़े फ़रिश्ता, जिल्द १, पृ० ६६-६७
५. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० १०० तथा ४२६। पंजाब में उर्दू, पृ० ६३। हिंदी के मुसलमान कवि, पृ० ३०
६. 'व ऊ रा सह दीवान अस्त यके बताज़ी व यके व पारसी व यके व हिंदी'। लुबाबुल अलबाब (मुहम्मद औफ़ी) जिल्द २, पृ० २४६
७. गुर्रतुलकमाल, भूमिका, पृ० ६६। पंजाब में उर्दू, पृ० १४३
८ ईरान एंड इंडिया थ्रू दि ऐजेज़, पृ० १४४

शिकारी ममूद के दरबार में भी अनेक विद्वान् थे।[1]

पंजाब में गजनवी सम्राटों के लगभग पौने दो सौ वर्षों के शासन काल में अच्छा खासा सांस्कृतिक लेन-देन रहा। इस युग के बड़े-बड़े फ़ारसी कवियों ने भी अपनी रचनाओं में कुछ हिंदोस्तानी भाषा शब्दों का उपयोग किया है। सल्मान (१०६६ ई०) की हिंदी रचना का उल्लेख किया ही जा चुका है। इसका अर्थ यह है कि हिंदू और मुसलमानों का यह मेलजोल सांस्कृतिक दृष्टि से व्यर्थ नहीं जा रहा था। यहां तक कहा जा सकता है कि राजपूत राजाओं के कवि नरपति नाल्ह और चंद बरदाई ने भी फ़ारसी अरबी शब्दों का प्रयोग किया है।

शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी (११७४-१२०६)

शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी को राजनीतिक उलझनों के कारण यद्यपि साहित्य-सेवा का अवसर नहीं मिला, किंतु पृथ्वीराज रासो की मावो भाट कथा (१९) से पता चलता है कि यह गुणवंत भाट शहाबुद्दीन के दरबार से पृथ्वीराज के दरबार में यहां के हालात का पता चलाने आया था।[2] रासो में शहाबुद्दीन आदि मुस्लिम चरित्रों का उल्लेख हिंदी में मुस्लिम संपर्क का परिणाम अवश्य कहा जा सकता है।

ग़ुलाम-खानदान (१२०६-१२८७)

ग़ुलाम-खानदान में भी अनेक शासक विद्या-व्यसन के लिए विख्यात हैं। अलतमश बादशाह विद्वानों का बड़ा आदर करता था। इतिहासकार नूरुद्दीन मुहम्मद औफ़ी इसी दरबार में था। अलतमश ने एक बड़ी पाठशाला भी स्थापित की थी जिसको सौ वर्ष बाद फ़ीरोज़ तुग़लक ने पुनः चालू कराया।[3] अलतमश ने अपने पुत्र महमूद और पुत्री रज़िया को भी उच्च शिक्षा दिलाई थी। फ़िरिश्ता लिखता है कि सुलताना रज़िया कारिया कुरान (कुरान को कंठस्थ एवं सस्वर पढ़ने वाली) भी थी तथा विद्वानों की संरक्षिका भी।[4] सुलतान नासिरुद्दीन महमूद बादशाह होते हुए भी विद्यार्थी और साधु-जीवन व्यतीत करता था और अपनी लेखन कला से अर्जित धन से ही अपनी जीविका चलाता था। फ़ारसी-साहित्य का महान् संरक्षक था। सिराज का विख्यात इतिहास तबकातेनासिरी इसी सुलतान के दरबार में लिखा गया। इसी-लिए इसके नाम से मानवन (समर्पित) है।[5] नासिरुद्दीन ने बंगाली भाषा में महाभारत

१. मुस्लिम-सकाफत, पृ० १८६
२. पिरथी राज रासा (उर्दू), पृ० ३१
३. फ़तूहाते फीरोज़ शाही, भाग ३, पृ० ३८३
४. तबकाते नासिरी, पृ० ६३७
५. मुस्लिम-सकाफ़त, पृ० १८९

का अनुवाद भी कराया ।[१] ग़यासुद्दीन बलबन और उसका बड़ा पुत्र मुहम्मद भी साहित्यिक व्यक्ति थे। सुलतान का दरबार देशी-विदेशी विद्वानों से भरपूर था। मुहम्मद अपने महल में अमीर ख़ुसरौ के नेतृत्व में साहित्यिक गोष्ठी करता था तथा उसने असातिज़ा (गुरुजनों) के कलाम (काव्य) से बीस हज़ार शेरों की बयाज़ (ग्रंथा-वली) संपादित की थी। दूसरे पुत्र क़ुर्रह खां बुग़रा की साहित्यिक गोष्ठियों में कलाविद्, संगीतज्ञ, नृत्यकों, अभिनेता और कहानीकारों का जमघट रहता था।[२] इसने अपने दूत दो बार शीराज़ भेजे और फ़ारसी के विख्यात् कवि शेख़सादी से हिंदोस्तान आने की प्रार्थना की। किंतु शेख़सादी ने अपने बुढ़ापे के कारण आने से इंकार किया और कहला दिया कि आप अपने दरबारी अमीर ख़ुसरौ पर ही संतोष करें।[3] बलबन के ही काल में विख्यात सूफ़ी शेख़ शकरगंज, शेख बहाउद्दीन, शेख बदरुद्दीन और क़ुतबुद्दीन बख़तियार काकी आदि महान् सूफ़ी थे जिनकी हिंदी कविता भी मिलती है। बलबन की प्रशंसा में तत्कालीन शिलालेख का उल्लेख मिलता है जिसमें संस्कृत भाषा में रूपकात्मक ढंग से बलबन की शासन संबंधी अनेक प्रशस्तियां खुदी हैं।[४]

ख़िलजी-वंश (१२९० - १३२० ई०)

ख़िलजी-वंश में जलालुद्दीन ख़िलजी साहित्य-प्रिय शासक था। उसके दरबार में अमीर ख़ुसरौ, ताजुद्दीन ऐराक़ी, ख़्वाजा हसन जैसे विद्वान् उल्लेखनीय हैं। इसके साथी अपनी हास्योद्दीपक उक्तियों और प्रत्युत्पन्न-मति केलिए प्रसिद्ध थे। अलाउद्दीन ख़िलजी को यद्यपि राजनीतिक उलझनें अधिक थीं किंतु अपने दरबारी विद्वान् मौलाना कोहरामी और क़ाज़ी मुग़ीसुद्दीन का बड़ा आदर करता था। फ़रिशता ने लिखा है कि इस काल में असंख्य महल, मस्जिदें, पाठशालाएं, हम्माम, मक़बरे एवं क़िले बड़ी द्रुत-गति से बने हैं। इतिहासकार बरनी के अनुसार इस सुलतान के ज़माने में काव्यशास्त्र तथा फ़िक़्हा (इस्लामी धर्मशास्त्र) के इतने बड़े विद्वान थे जो बुख़ारा, समरक़ंद, बग़दाद, क़ाहिरा, दमिश्क़, इसफ़हान और तबरेज़ (मुस्लिम विद्या केन्द्र) से भी अधिक उच्चकोटि के विद्वान थे।[५] विख्यात सूफ़ी हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (जिनकी हिंदी रचना भी मिलती है)[६] इसी जमाने में हुए हैं। अमीर ख़ुसरौ, निज़ामुद्दीन के मुरीद (भक्ति

---

१. पंजाब में उर्दू, पृ० १४५
२. तारीखे फ़िरिश्ता, भाग १, पृ० २५२-२५८
३. तारीखे फीरोज़शाही, भाग ३, पृ० ११०
४. तमद्दुनी जलवे, पृ० ६०
५. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० १९१
६. पंजाब में उर्दू, पृ० १४४

संबंधी शिष्य) हुए। खुसरो अलाउद्दीन के दरबार का महान संगीतज्ञ था।[1] बहुत बाद में पद्मावत जैसे अमर प्रेम-काव्य में अलाउद्दीन और रत्नसेन कथा के कारण भी अलाउद्दीन का चरित्र जायसी का प्रेरणा स्रोत बना अन्यथा महाकाव्य एकांगी रह जाता।

तुग़लक़-वंश (१३२०-१४१४ ई०)-

मुहम्मद तुगलक़ अपने से पूर्व के शासकों से बढ़कर विद्वान् था। वह एक सफल कवि एवं कुशल लेखक भी था। इसके अतिरिक्त चिकित्सा शास्त्र, दर्शन, खगोल तथा गणित और यूनानी दर्शन का पंडित था।[2] फीरोज़ तुगलक का दरबार भी विद्वानों से भरपूर था। इसकी स्वरचित आत्मकथा फ़तूहाते फ़ीरोजशाही विख्यात है। इसने तीन महल बनवाए थे। अंगूर महल, लकड़ी का महल और साधारण जनता के लिए महल। अंगूर महल में विद्वानों और कलाकारों का समादर करता था। यह हिंदू स्मारकों का भी आदर करता था और हिंदी कवियों का भी। रत्न-शेखर नामी कवि फ़ीरोज़ को बहुत प्रिय था।[3] हिंदी के सूफी कवि मुल्ला दाऊद ने अपना प्रेमाख्यान काव्य चँदायन इसी काल में लिखा जिसमें फीरोज के दिल्ली सुलतान होने का वर्णन है—

बरस सात सै होइ इक्यासी। तहिया यह कवि सरसउ भासी॥
साह फिरोज दिल्ली सुलतानू। जोना साहि वजीर बखानू॥[4]

लोधी वंश का सुल्तान सिकंदर स्वयं कवि था और ज्ञान प्रसारार्थ उसने कई विद्यालय खोले थे। आगरे को राजधानी बनाया। इसके दौर में हिंदुओं ने भी आमतौर पर फारसी के साथ-साथ मुस्लिम-संस्कृति की जानकारी प्राप्त कर ली थी। चिकित्सा-शास्त्र पर इसके काल में एक प्रामाणिक ग्रंथ तिब्बे-सिकंदरी का संपादन हुआ।[5] हिंदी प्रियता के विषय में कहा जा सकता है कि लोधी वंश के फ़रमान फारसी के साथ-साथ नागरी अक्षरों में भी जारी किये जाते थे।[6] इसी के राजत्व काल में महात्मा कबीर हुए जिनकी सादगी, निश्छलता तथा ओज से प्रभावित होकर पंडितों और मौलवियों के आक्षेप से बचा निकालने के लिए इसने कबीर को कुछ दिनों के लिए बनारस से निकाल दिया ऐसा मत डॉ० ताराचन्द का है। इन्होंने विस्तृत युक्ति-युक्त विवरण भी

---

१. मुगल तहजीब, पृ० ७८
२. मुस्लिम-सकाफत, पृ० १९३
३. तमद्दुनी जलवे, पृ० ६१
४. चंदायन, पृ० ८२, ८४
५. मुस्लिम-सकाफ़त, पृ० १९८
६. ओरियंटल कालेज मैगज़ीन, लाहौर (उर्दू), मई सन् १९३३ ई०, पृ० ११६

दिया है जिससे पता चलता है कि सिकंदर लोधी ने इनपर अत्याचार नहीं किया अपितु तत्कालीन धर्म के ठेकेदारों ने कबीर को अधिक कष्ट दिये हैं।[१]

अन्य मुस्लिम राज्य—

ज्ञान-विज्ञान का संरक्षण एवं प्रसार देहली-दरबार तक ही सीमित नहीं रहा अपितु हिंदोस्तान भर में जहाँ कहीं मुसलमानों के छोटे-छोटे राज्य स्थापित हुए उन्होंने विद्या-प्रेम को निरंतर जीवित रखा। इसीलिए दिल्ली-दरबार के अतिरिक्त अन्य अनेक स्वतंत्र राज्यों ने भी साहित्य एवं कला के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

बहमनी वंश के अनेक शासक स्वयं भी विद्वान् थे और विद्वानों का संरक्षण भी करते थे। सुलतान हसन गांगू बहमनी फ़ारसी जानता था। उसका पुत्र महमूद शाह बहमनी अरबी फ़ारसी का अच्छा ज्ञाता एवं कवि था। सुलतान फ़ीरोज़ शाह बहमनी बहुभाषी था। इबरानी भाषा में तौरैत पढ़ सकता था। फ़िरिश्ते ने लिखा है कि उसके हरम में अनेक जातियों की महिलाएं थीं जिनमें अरब, सरकेशिया, जार्जियन, तुर्की, योरोपीय, चीनी, अफ़गानी, बंगाली, गुजराती, तिलंगी, महाराष्ट्र और राजपूताने की उल्लेखनीय हैं जिनसे वह उन्हीं की भाषाओं में बातचीत करता था।[२] वह अपने इस ज्ञान का प्रयोग विदेशियों के साथ वातचीत करने में भी करता था। फ़ीरोज़शाह प्रति वर्ष देश-विदेश के विद्वानों को बुलाने के लिए अपने जहाज़ भेजता था।[३] इस प्रकार गुलबर्गा, बीदर, इलचपुर, दौलत आबाद, चोल आदि दक्षिण (दक्कन) के अनेक प्रदेशों में ज्ञान की चर्चा हो गई।

बीजापुर के आदिलशाही वंश का संस्थापक स्वयं विद्वान था। उसके उत्तराधिकारी आदिल शाह ने कवियों, विद्वानों एवं लेखकों को अपने दरबार में आश्रय दे रखा था। इब्राहीम आदिल शाह के ज़माने की विशेषता यह थी कि उसने राजकीय हिसाब को फ़ारसी में रखने की बजाय हिंदी में रखने की आज्ञा दी थी और इस कार्य के लिये अनेक ब्राह्मण नियुक्त किये गए। यूसुफ़ आदिल शाह के शासन काल में माल विभाग में अनेक हिंदू अधिकारी नियुक्त किये गए थे।[४]

इसके अतिरिक्त अहमदनगर, गोलकुंडा, मालवा, खानदेश, जौनपुर की छोटी छोटी मुस्लिम रियासतों में भी फ़िरिश्ता के हवाले से 'सालिक' ने ज्ञानचर्चा का उल्लेख

१. इन्फ़्लूएंस आफ़ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, पृ० १४८, १४९
२. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २००
३. प्रोमोशन आव् लर्निंग इन इंडिया ड्यूरिंग मुहम्मडेन रूल, पृ० ८४
४. मुस्लिम सक़ाफ़त, पृ० २०३

किया है ।[1]

कश्मीरी शासक सुलतान जैनुल आबिदीन 'बुद्दशाह' भी बहुभाषी था। यह तिब्बती भाषा का पंडित था । इसने महाभारत और राजतरंगिनी तथा फ़ारसी अरबी की अन्य पुस्तकों का अनुवाद कश्मीरी में कराया ।[2] हिंदू मुस्लिम मेल-जोल तथा भावनात्मक एकता के लिए इस शासक को सदैव ही याद रखा जाएगा जिसके शासन-काल में दोनों प्रकार के ज्ञान विज्ञान का एक गंगा जमनी संगम था ।

बंगाल राज्य के शासकों ने बंगला भाषा के संरक्षण तथा उन्नति पर बहुत बल दिया । सर्व प्रथम नासिरशाह ने महाभारत का संस्कृत से बंगला अनुवाद कराया । बंगला के विख्यात कवि मैथिल कोकिल विद्यापति ने अपनी एक रचना में इसकी बड़ी प्रशंसा की है ।[3] इस कवि ने सुलतान ग़यासुद्दीन द्वितीय का भी कीर्तिगान किया है । हुसैन शाह भी बंगला भाषा का संरक्षक था जिसने मालाधर बसु को भागवत पुराण का बंगला में अनुवाद करने के लिए नियुक्त किया । अलाउद्दीन हुसैन शाह वालिए बंगाल के जमाने में प्रेमाख्यान मृगावती की रचना हुई जिसमें क़ुतबन ने हुसैन शाह की प्रशंसा की है ।

शाह हुसैन आहे बड़ राजा । छत्र सिंहासन उनको छाजा ॥
पंडित औ बुद्धवंत सियाना । पढ़े पुरान अरथ सब जाना ॥[4]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मुहम्मद बिन क़ासिम से लेकर मुग़ल सम्राटों से पूर्व के सिंध, लाहौर, दिल्ली और आगरा तथा अन्य स्वतंत्र मुस्लिम राज्य दरबारों में अरबी, फ़ारसी के साथ-साथ संस्कृत, बंगला और अन्य प्रादेशिक भाषाओं के अतिरिक्त हिंदी भाषा एवं साहित्य तथा अन्य ज्ञान विज्ञान को अनेक रूपों में निरंतर प्रोत्साहित किया जाता रहा है जो मुस्लिम संस्कृति की आदिकाल से ही स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है ।

मुग़ल-शासन—

हिन्दोस्तान में मुग़ल-शासन की स्थापना से पूर्व के इतिहास तथा उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक ओर हिंदू-मुसलमान शासकों ने आपस में लड़-झगड़ कर और कभी-कभी इन दोनों ने मिलकर बाह्य आक्रमणों का डट कर मुक़ाबला करके, एक दूसरे के मिज़ाजों (स्वभावों) को समझने के पश्चात्

१. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २०३-२०५
२. पंजाब में उर्दू, पृ० १४५ तथा मुग़ल तहज़ीब, पृ० ७७
३. एन एडवांस हिस्ट्री आफ़ इंडिया, पृ० ४०८
४. पंजाब में उर्दू, पृ० १४५, १८४, १८७

आपस में मिल-जुल कर रहना सीख लिया था, दूसरी ओर मुस्लिम-साहित्य-प्रिय स्वभाव ने संस्कृत से अरबी-फ़ारसी में भारतीय ज्ञान-विज्ञान को अनूदित करके प्राचीन भारतीय साहित्य एवं ज्ञान की महत्ता को भली-भाँति पहचान ही नहीं लिया था अपितु प्रादेशिक भाषाओं, बंगला, कश्मीरी और हिंदी की अन्य प्रादेशिक बोलियों में सूफ़ियों ने रचनाएं भी की थीं। इसीलिए हम देखते हैं कि मुग़ल दौर में शासकों ने, न केवल संस्कृत और हिंदी का संरक्षण ही किया अपितु इनकी हिंदी रचनाएं भी मिलती हैं तथा इनकी कीर्तिगान संबंधी हिंदी कवियों की भी अनेक ऐसी रचनाएं मिलती हैं जिससे तत्कालीन मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क का परिणाम स्पष्ट हो जाता है। इतना ही नहीं मुस्लिम-संपर्क में आने से मनोहर और चन्द्रभान ब्राह्मण जैसे प्रतिभाशाली हिंदू कवियों की फ़ारसी भाषा में उत्तम रचनाएँ भी मिलती हैं जिसकी आगे संक्षेप में चर्चा की जाती है। इससे पूर्व कि मुग़ल-शासन के साहित्यिक संरक्षण के विषय में कुछ कहा जाए, अकबरी दरबार के कवि नरहरि का एक पद प्रस्तुत है जिसमें इसने बाबर हुमायूँ, अकबर और रहीम, इन चारों की प्रशंसा की है—

'बाबर' 'हुमायूं' गाजी सिफ़त करत दोउ मन वच करम अटल स्वामी तकबर।
एकन उथापि एकै थापत जगत हित अनख जख रिपु फिरे चहुं चकबर।
गुनी निरगुनी हिंदू तुरुक सकल सेवै रत्नपति नरहरि अब एक टकबर।
परम प्रवीन 'खानखाना' से वजीर जाके न्याय ही बसत विलसत 'शाह अकबर'।[1]

प्रस्तुत पद्य में अन्य बातों के अतिरिक्त शब्द 'ग़ाज़ीसिफ़त' का प्रयोग नरहरि की मुस्लिम संस्कृति के ज्ञान विशेष की ओर संकेत करता है।

मुग़ल-वंश का संस्थापक बराबर अरबी, फ़ारसी, तुर्की का प्रकाण्ड पंडित तथा समालोचक था। अनेक विद्वानों से उसका संपर्क प्रारंभ से ही रहा था। अपने 'बाबर-नामे' के संस्मरणात्मक लेखों में उसने अपनी साहित्यिक गोष्ठियों की भी चर्चा की है फ़ारसी और तुर्की में अच्छी कविता भी करता था। छंद शास्त्र पर इसने 'मुफ़स्सल' नामी पुस्तक भी लिखी।[2] तथा फ़लकियात (अंतरिक्ष विज्ञान) में भी रुचि रखता था। हिंदी के अनेक कवियों के निम्न पदों में बाबर का उल्लेख है जिससे इन कवियों के इतिहास संबंधी ज्ञान का पता चलता है।

बाबर के दरबार में हिंदी-कवियों की उपस्थिति का उल्लेख मिलता है। उसके द्वारा इब्राहीम लोदी के मारे जाने पर किसी अज्ञात हिंदी कवि ने लिखा है—

नौ सै ऊपर था बत्तीसा, पानीपत में भारत दीसा।

---

१. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ६६-६७ तथा ३२१
२. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २१०

अठई रज्जब सुक्करबारा, बाबर जीता बराहीम हारा ॥[१]
आखिरी कलाम में कवि ने बाबर की प्रशंसा की है—
बाबर साह छत्रपति राजा । राज-पाट उन कहं विधि साजा ॥
मुलुक सुलेमां कर ओहि दीन्हा । अदल दुनी उमर जस कीन्हा ॥
अली केर जस कीन्हेसि खांडा । लीन्हेसि जगत समुद भरि डांडा ॥
'बल हमजा' कर जैस संभारा । जो बारियार उठा तेहि मारा ॥[२]

जायसी ने यहां पर मुल्क सुलेमां, खलीफ़ा उमर के समान न्यायी, हमज़ा के समान बली तथा खलीफ़ा अली के समान खड्ग-वीर, मुस्लिम संस्कृति की उपमाओं एवं अंतर्कथाओं के द्वारा हिंदी-साहित्य में नवीन स्थापनाएं की हैं। नरहरि ने बाबर के विषय में फ़ारसी बहुल शब्दावली युक्त कीर्तिगान करते हुए कहा है कि दुनिया में मैंने अन्य कोई बादशाह बाबर के बराबर नहीं देखा—

नेकबख़्त दिल पाक सखी जवां मर्द शेर नर ।
अव्वल अली खुदाई दिया बिसियार मुलक जर ॥
खालिक बहुबेग हुकुम आलिया जो आलिब ।
दौलत बख्त बुलन्द जंग दुश्मन पर ग़ालिब ॥
अवसाफ तुरा गोयद सकल कवि नरहरि गुफ़तम चुनी ।
'बाबर बरोबर बादशाह दिगर न दीदम दर दुनी' ॥[3]

हुमायूँ—

इतिहासकार फ़िरिश्ता के अनुसार हुमायूँ खगोल विद्या एवं भूगोल में विशेष रुचि रखता था। अबुलफ़ज्ल कृत अकबरनामे में भी इसकी विद्वता की चर्चा की गई है।[४] यद्यपि हुमायूँ को जम कर शासन करने का अधिक अवसर नहीं मिला फिर भी इसका युग हिंदी सेवा से खाली नहीं। इसके दरबारी फ़ारसी कवियों में शेख़ अब्दुल वाहिद बिलग्रामी और शेख़ गदाई विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कहा जाता है कि इन्होंने गीतों की रचना की है।[५] शुद्ध हिंदी कवियों का भी इस सम्राट ने स्वागत किया था। छेम की हिंदी रचनाओं में केवल हुमायूँ का ही उल्लेख है अपितु खलीफ़ा

१. मुग़ल बादशाहों की हिंदी, पृ० २
२. जायसी-ग्रंथावली (आखरीकलाम), पृ० ३४१, ३४२
३. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ३३३
४. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २१२
५. मुग़ल-बादशाहों की हिंदी कविता, पृ० ६

चतुर्थ हजरत अली की शान में छेम-कृत मनक़बत मिलती है।[1] हुमायूँ के दरबारी कवि नरहरि मुख्यरूप से उल्लेखनीय हैं।[2] मालूम होता है कि इनकी ओर बादशाह की विशेष दृष्टि थी। नरहरि की रचनाओं में हुमायूँ की बहादुरी और उसकी विषम परिस्थितियों का भी पता चलता हैं और ऐसा जान पड़ता है कि उसने आँखों देखी घटनाओं का वर्णन किया हो—

में अपुबल गजि बिराहि भुइत सांगादल दिघ अगाऊँ।
बहुरि गंजि गुजरात बहादुर इति काबिल उत गोर लोयऊ।
नरहरि जुरत पठान दल जहाँ लगु जो निज सोर ए कहाऊं।
इमि घाऊं जिमि सिंघन गनि पर अस जंपत मन मांझ हुमाऊं॥[3]

निम्न पद में नरहरि ने हुमायूं की वीरता का वर्णन किया है—

पूरब हद्द पछिम पहाड़ दोउ षन किए विधि जानि अगाउं।
इत सुमेरू उत चढ़त लंक हय मारि तंग नरपति सब नाउं।
हिंद ते षेदि पठान षगा वर दल दल मलि दरियाय बहाऊं।
गज्जिहि बहुरि जिति दिल्लीपति इमिहिं डोल रज्यो साहि हिमाऊं॥[4]

मुग़ल दरबारों में फ़ारसी का अत्यधिक प्रभाव था इसलिए इसमें संबंधित हिंदी कवियों ने भी फ़ारसी संपर्क से पूरा पूरा लाभ उठाया है। उनमें मनोहर कवि विशेष उल्लेखनीय हैं। 'अकबरी दरबार के हिंदी कवि' ग्रंथ के परिशिष्ट भाग में अनेक ऐसे उदाहरण सामने आते हैं जिनसे पता चलता है कि मुग़ल दौर में मुस्लिम-संस्कृति का बड़ा प्रभाव पड़ा है।

शेरशाह—

शेरशाह एक साहित्य-मर्मज्ञ और सहृदय शासक था। प्रारंभ से ही सादी, निज़ामी की फ़ारसी रचनाएँ, गुलिस्ताँ, बोस्ताँ तथा सिकंदर नामा और दर्शन का अध्ययन किया था। अरबी में भी पारंगत था।[5] मुस्लिम-संस्कृति की इसी साहित्यिक-प्रवृत्ति ने इसे हिंदी की ओर आकृष्ट किया। चंद्रबली पांडे ने अब्दुलग़नी के हवाले से लिखा

१. प्रस्तुत प्रबंध का काव्य रूप (मनक़बत) भाग। शिवसिंह सरोज, पृ० १०२
२. कवि लिखि बंशी सुकवि भये नरहरि सुभाग्य घर।
शाह हुमाऊँ निकट रहे सुदरसु सुनीति घर॥ अरवनी-चरित्र, लालजी, पृ० ३
३. अकबर दरबार के हिंदी कवि, पृ० ३१६
४. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ३२०
५. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २१२

है कि शेरशाह 'फ़रीद' तख़ल्लुस से फ़ारसी की भाँति हिंदी में भी कविता करता था[1], अपनी मुद्राओं पर नागरी को स्थान देता था, अपने फ़रमान फ़ारसी के साथ साथ नागरी अक्षरों में भी जारी कराया करता था। जायसी ने पद्मावत में शेरशाह की शाहे-वक़्त के रूप में प्रशंसा की है। यह शेरशाह की हिंदी प्रियता तथा संरक्षण का द्योतक है—

सेर साहि देहली सुलतानू। चारिउ खंड तपै जस भानू॥

+ + +

तहं लगि राज खड़ग करि लीन्हा। इसकंद जुलकरन जो कीन्हा॥
हाथ सुलेमाँ केरि अंगूठी। जग कहँ दान दीन्ह भरि मूठी॥
दीन्ह असीस मुहम्मद, करहु जुगहि जुग राज।
बादशाह तुम जगत के जग तुम्हार मुहताज॥[2]

यहाँ जायसी ने शेरशाह की प्रशंसा करते हुए इसकंदर जुलक़रनैन, सुलेमान की अंगूठी तथा आगे दूसरे छंद में आदिल नौशेरवाँ, न्यायी उमर आदि मुस्लिम संस्कृति की अंतर्कथाओं को भी स्पष्ट किया है। हिंदू धर्म के प्रति शेरशाह ने धार्मिक-सहिष्णुता का परिचय दिया। हिंदी साहित्य का भी संरक्षण किया। नरहरि इसके दरबार में भी रहा और इसकी प्रशंसा भी की—

सेर साहि भुज जोरि पग्ग धर में गलघटा मारि मुह मोरी।
नरहरि सुकवि जोगिनि गुन गावत नाचत भूत सार मन हौरी।
फ़ल्यौ फर्यो अकास नषत तह इदु किसान करै मति चोरी।
एक आंत छै गीध उड़े ले झपत मन्हु पर...॥[3]

इतना ही नहीं कवि को शेरशाह की सहृदयता के फलस्वरूप ही उससे अलग होने पर जो गहरा दुख हुआ है वह भी इसने व्यक्त किया है।[4] शेरशाह के सद्गुणों की विशिष्टता, उदार नीति एवं सहृदयता से नरहरि को अपनी ओर आकृष्ट किया था, इसका भी कवि ने वर्णन किया है।[5]

शेरशाह का पुत्र सलीम शाह (असलेम शाह, इस्लाम शाह) भी विद्या प्रेमी था। शेख़ अबुलहसन कंबोह और मख़दूमुलमुल्क शेख़ अबदुल्लाह मुलतानपुरी से बहुत

---

१. मुगल बादशाहों की हिंदी, पृ० ८
२. एन एडवांस हिस्ट्री आफ़ इंडिया, पृ० ४४२
३. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ३२७
४. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (नरहरि), पृ० ३२६, छंद ६२, ६३
५. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (नरहरि), पृ० ३२४, छंद ३२

संपर्क रखता था। इसके काल के विख्यात पंडित शैख़ अलाई थे।[1] चंद्रबली पांडे ने संगीत राग कल्पद्रुम के हवाले से असलेम शाह की हिंदी प्रियता तथा इसकी हिंदी रचनाओं की भी चर्चा की है।[2] हिंदी कवि नरहरि का इसने भी संरक्षण किया। कवि ने इसकी आयु-वृद्धि और राज्य-स्थिरता की कामना की है—

प्रथम जंपि जगदीश कहं करउं कवित्त रचि नेमु।
जस निर्मल थिर चिर जिवे छत्रपति साहि सलेमु ।।[3]

अतः पूर्व विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अकबर से पहले मुस्लिम दरबारों में अनेक शासकों ने अरबी फ़ारसी विद्वानों के साथ-साथ हिंदी कवियों को भी अपना कर साहित्यिक रुचि का उदारता से परिचय दिया है जिसने हिंदी भाषा का स्वरूप निश्चित करने में योग दिया है।

अकबर

इतिहास साक्षी है कि अकबर का शासन-काल साहित्य, संगीत, कला तथा अन्य ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से बड़ा ही उन्नत था। स्वयं अकबर, पूर्व के विद्वान शासकों से साहित्यिक अभिरुचि तथा विद्या-व्यसन में इतना बढ़ा हुआ था कि कहा जा सकता है कि उसमें महमूद ग़ज़नवी का जोश, उदारता और दानशीलता, सुलतान नसीरुद्दीन का त्याग, मुहम्मद तुग़लक़ की साहित्यिकता, सुलतान फ़ीरोज़ की विद्वत्ता, हुसैनशाह की राजाश्रयता और ज़ैनुलआबिदीन की समन्वयात्मकता तथा सहिष्णुता का एकीकरण हो गया था।

कतिपय ऐतिहासिक ग्रंथों से यह भ्रांत धारणा फैल गई है कि अकबर निरक्षर था। इसका प्रारंभ तुज़ुके जहांगीरी से हुआ है किंतु जहांगीर कृत वाक़िआते जहांगीरी से ही इसका खण्डन भी होता है। 'सालिक' ने तारीख़े-फ़िरिश्ता और अबुलफ़ज़्ल के हवालों से यह सिद्ध किया है कि अकबर ने बचपन से ही शिक्षा ग्रहण की थी।[4] अकबर का दरबार साहित्य, संगीत कला, ज्ञान-विज्ञान के लिए विख्यात ही है। अरबी फ़ारसी के विद्वानों में मुल्ला अबदुल क़ादिर बदायूनी, अबुलफ़ज़्ल, फ़ैज़ी, रहीम, उरफ़ी, नज़ीरी और ज़हूरी थे। मलिकुश्शुरा (कविराय) फ़ैज़ी कृत कुल्लियाते-फ़ैज़ी तथा नलदमन है। हिंदी संस्कृत के भी अनेक विद्वान् इसके दरबार में थे। मुल्ला अबदुल क़ादिर, नक़ीब खां तथा एक नव मुस्लिम ब्राह्मण को आदेश दिया गया कि महाभारत

---

१. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २१४
२. मुग़ल बादशाहों की हिंदी, पृ० ६, १०
३. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ३०६
४. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २१४-२१५

का फ़ारसी में अनुवाद करें। इसके कुछ भाग मुल्ला शेरी और नक़ीब खां ने तथा कुछ भाग सुलतान हाजी थानेसरी ने पूरे किये।[1] फ़ैज़ी ने इस अनुवाद के दो भागों को पद्यबद्ध किया। मुल्ला अवदुलक़ादिर वदायूनी ने रामायण का फ़ारसी में अनुवाद किया तथा अथर्ववेद का अनुवाद हाजी इब्राहीम सरहिंदी ने और लीलावती का फ़ैज़ी ने अनुवाद किया। संगीतकला के महारथी मियाँ तानसैन और वावा हरिदास हैं। हिंदी कवियों में अब्दुर्रहीम ख़ानख़ानाँ, टोडरमल, वीरवल, मनोहर, गंग, नरहरि, करनेश के साथ-साथ फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़्ल उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार अरवी फ़ारसी के कवियों का हिंदी-संस्कृत के कवियों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही थी। मनोहर फ़ारसी का भी अच्छा कवि था। अकवर के ज़माने तक आते-आते भारतीय जनता फ़ारसी से इतनी परिचित हो गई होगी कि व्यवहार की दृष्टि से अकबर के अर्थ-मंत्री राजा टोडरमल ने आवश्यकता अनुभव करके हिंदी के स्थान पर फ़ारसी को राज्य-भापा घोषित किया। अकबरी दरवार के कवियों के अतिरिक्त इसी काल में सूरदास, तुलसीदास और सुंदरदास हुए हैं। कहा जाता है कि रहीम ने तुलसीदास को भी संरक्षण दिया तथा रामचरितमानस की रचना मुस्लिम संरक्षण में हुई।[2] इससे अधिक अकबर के शासन काल का श्रेय और क्या हो सकता है।

शीरानी ने लिखा है कि शेर-दोस्ती (कविता-प्रियता) और अदव परस्ती (साहित्य-संरक्षण) मुसलमानों की क़ौमी ख़ुसूसियत है।[3] जिसके लिए अकवरी दरवार विशेप रूप से मशहूर है। कहा जाता है कि अकवर वादशाह ने एक बार कवि करनेश वंदीजन की कविता से प्रसन्न होकर अपने कोपाध्यक्ष से इन्हें उचित पुरस्कार देने को कहा। खज़ांची ने कुछ टाल-मटोल में समय विता दिया। एक दिन कवि को क्रोध आया और उसने निम्न पद में उसे फटकारा। इसमें कवि की मुस्लिम संस्कृति की जानकारी भी कम नहीं है—

> खात है हराम दाम करत हराम काम घट घट तिनही के अपयश छावेंगे।
> दौजखहूं जैहैं तब काटि खैहैं खोपरी को गूदो काग टोंटनि उड़ावेंगे॥
> कहे करनेश अब घूस खात लाज नहीं रोजा औ निमाज अंत काम नहीं आवेंगे।

---

१. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २१६

२. (रहीम) दिस लिबरल-माइंडेड मुस्लिम नौबिल मैन आलसो पैट्रानाइज्ड गोस्वामी तुलसीदास जी, दी आथर आफ़ दी फ़ेमस रामचरितमानस''' एंड इट इज़ सरप्राइज़िंग, दो ग्रैटिफ़ाइंग टु फ़ाइंड दैट इट वाज़ रिटिन अंडर मुस्लिम पैट्रोनेज। ईरान एंड इंडिया थ्रू दी एजेज़, पृ० १७०

३. पंजाब में उर्दू, पृ० १४२

कविन के मामले में करै जौन खामी तौन निमकहरामी मरे कफन न पावेंगे ।।[१]
इसके अतिरिक्त अकबर द्वारा कवि दुरसा जी को पुरस्कार स्वरूप लाख पसाव प्रदान करने[२] और चतुर्भुजदास ब्राह्मण को एक हज़ार रुपये मासिक प्रदान करने का उल्लेख भी मिलता है।[३] सूरदास मदनमोहन या सूरध्वज को भी अकबर ने निम्न दोहे से प्रसन्न होकर तेरह लाख रुपयों की माफ़ी दी थी—

मक तम अंधियारो करै शून्य दई पुनि ताहि।
दसतम ते रक्षा करी दिन मानि अकबर शाहि ।।[४]

नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना अकबरी युग का प्रसिद्ध सेनापति, दानशील साहित्यकार एवं प्रसिद्ध कवि था। कहा जाता है कि खानखानाँ ने गंग को निम्नलिखित छप्पय पर प्रसन्न होकर छत्तीस लाख रुपये पारितोषिक के रूप में प्रदान किये थे।[५]

चकित भंवर रहि गये, गमन नहिं करत कमल बन।
अहि फनि मनि नहिं लेत, तेज नहि बहत पवन घन ।।
हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिले अति ।
बहु सुन्दरि पदिमनि पुरुष न चहैं न करैं रति ।।
खल-मलित सेस कवि गंग मन अमित तेज रविरथ खस्यो ।
खानानखान बैरम सुवन जबहि क्रोध करि तंग कस्यो ।।[६]

आसकरन नामक चारण ने जिसका तखल्लुस जाड़ा था, खानखानाँ की प्रशंसा निम्नलिखित दोहों में की थी। कहा जाता है कि रहीम ने प्रसन्न होकर कवि को प्रत्येक दोहे पर एक-एक लाख रुपया देना चाहा किंतु कवि ने इसके बदले महाराणा प्रताप के भाई जगमल को रहीम की सहायता से परगना जहाज़पुर दिलवा दिया था।

खानखानाँ नवाब हो, मोहि अचम्भो एह।
मयो किमि गिरि मेरु मन साठ तिहस्सी देह ।।
खानखानाँ नवाब दे, खांडे आग खिवंत।
जल वाला नर प्राजले, तृणवाला जीवंत ।।

---

१. मिश्रबंधु विनोद, प्रथम भाग, पृ० ३२४
२-३. अकबरी दरबारी के हिंदी कवि, पृ० ३३, ३८
४. विस्तृत विवरण के लिए देखिये—भक्तमाल, पृ० ७५३, ७५४ तथा अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, भाग १, पृ० ११०, १११
५. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ११६
६. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ११६

खानखाना नवाव री, आदमगीरी धन्न ।
मह ठकुराई मेरु गिरि, मन न राई भन्न ॥
खानखाना नवाब रा, अड़िया भुज ब्रह्मंड ।
पूठे तो है चंडिपुर, धार तले नव खंड ॥[1]

रहीम की दानशीलता फ़ारसी कवियों की अपेक्षा हिंदी कवियों पर कहीं अधिक रही । अनेक फ़ारसी इतिहास इस बात के साक्षी हैं ।[2] हिंदी कविता के लिए पुरस्कार प्रदान किये जाने के इसी प्रकार के उल्लेख तुज़के जहांगीरी में सं० १६६५ में वैशाख वदी ११ और ३० की तिथियों में लिखे गये वृत्तांत तथा अनेक स्थानों पर भी मिलते हैं ।

आरंभ से ही इस प्रकार की प्रोत्साहन-प्रवृत्ति ने साहित्य एवं कला को पल्लवित पुष्पित होने में बड़ा योगदान दिया है । शीरानी ने भी लिखा है 'यह मुसलमान ही थे जिन्होंने ब्रादराने वतन (हिंदोस्तानी भाइयों) से पहले हिंदी भाषाओं के सांस्कृतिक उत्थान की ओर ध्यान दिया, उत्तर पश्चिमी भाषाओं अर्थात् पश्तो, सिंधी, कश्मीरी और पंजाबी का अधिकांश साहित्य मुसलमानों के प्रयत्नों का कृतज्ञ है । ब्रज, क़न्नौजी और अवधी की उन्नति में भी मुसलमानों का योगदान महत्वपूर्ण है ।[3] मुसलमान शासकों, सूफ़ियों एवं साहित्यकारों का अरबी फ़ारसी, हिंदी-साहित्य के संरक्षण एवं प्रसार का वृत्तांत संक्षेप में आगे दिया जाता है जो मुस्लिम-संपर्क का सुखद परिणाम है ।

जहाँगीर—[5]

जहांगीर स्वयं फ़ारसी के अतिरिक्त तुर्की का ज्ञाता था । इसने अनेक पाठशालाओं का जीर्णोद्धार किया । अपनी तुज़के जहाँगीरी में स्वयं पूर्व के शासकों के विद्या प्रेम की चर्चा की है ।[4] इसके दरबार में भी अनेक विद्वान् थे । ईरान व खुरासान के बड़े बड़े कवि इसके दरबार में आए जिनमें मलिकुश्शुअरा (कविराय) तालिब आमली, मुल्ला नज़ीरी नीशापुरी, जमालुद्दीन उरफ़ी शीराज़ी, बाबा तालिब इसफ़हानी, मुल्ला हयाती गीलानी, मुल्ला मुहम्मद सूफ़ी माज़ंद्रानी, मीर मासूम काशी उल्लेखनीय हैं ।

---

१. अकबारी दरबार के हिंदी कवि, पृ० १४२
२. मआसिरे-रहीमी, भाग २, पृ० ५६२
३. पंजाब में उर्दू, पृ० २७, १३६, १४०
४. मुस्लिम सक़ाफ़त, पृ० २२२
५. इक़बालनामाए जहांगीरी, पृ० ३०८

इसके दरबार में हिंदी-कवियों का भी आदर था और स्वयं भी इसकी हिंदी-रचनाएं मिलती हैं ।[1] जहांगीर पहुँचे हुए साधु-संतों को भी बड़ी श्रद्धा से देखता था। उज्जैन के विख्यात गोसाईं जदरूप से तो कई बार पैदल चलकर एकांत में जाकर उनकी गुफा में मिलता था । तुज़्के-जहांगीरी में इस संत से भेंट तथा इसके ज्ञान की चर्चा की है ।[2] सूफ़ी काव्य परंपरा की रचना चित्रावली से पता चलता है कि यह १०२२ हिजरी सन् (१६१३ ई०) में ग़ाजीपुर निवासी सूफ़ी कवि उसमान ने लिखी तथा जहांगीर के काल की यह रचना है ।[3] शैख़ नबी ने अपनी कृति ज्ञानदीप में जहांगीर की शाहेवक़्त के रूप में बड़ी प्रशंसा की है । यह रचना १०२६ हिजरी (सन् १६१९ ई०, संवत् १६७६) की है—

एक हजार सन् रहे छवीसा । राज सुलही गनहु बरीसा ।।
संमत सरोह सै छिहंतरा । उक्ति गरंत कीन्ह अनुसरा ।।[4]

× × ×

साहि सलीम छत्रपति छोनी । दल के मार कंवल दल दोनी ।।
चलत दलत पताल को राजा । सहसोफन फनपति भजि लाजा ।।
मुराद दीन दिनपति, जहांगीर नित नेम......।
कुलदीप दुति सकल की, साहेब साहि सलेम...।।[5]

मुल्ला मसीह पानीपति हिंदी का विख्यात कवि था तथा संस्कृत व्याकरण का भी पंडित था । रामायण का फ़ारसी पद्य में अनुवाद किया जो रामायण-मसीही के नाम से मशहूर है, नवल किशोर प्रेस से छपी है । जहांगीर के ही काल में ज़मीर कवि ने हिंदी में भी रचना की, ग़व्वासी भी इसी दौर का हिंदी कवि था जिसने तूतीनामा का फ़ारसी से हिंदी-पद्य में अनुवाद किया । इसके अतिरिक्त मुल्ला नूरी, शेख मुहम्मद बिन शेख मारूफ़ दोनों हिंदी के अच्छे कवि थे जिनका उल्लेख आज़ाद बिलग्रामी ने किया है ।[6] इन मुस्लिम कवियों के अतिरिक्त जहांगीर के दरबार से अनेक असूफ़ी

१. मुग़ल बादशाहों की हिंदी, पृ० २३
२. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० ४८२ तथा मुग़ल बादशाहों की हिंदी, पृ० २३
३. सन सहस्र बाइस जब जहैं । तब हम बचन चारि एक कहे ।
कहत करेज लोहू मा पानी । सोई जान पीर जिन्ह जानी ।
कहीं न जग पतियाउ कोउ, सुनि अचरज संसार ।
होहिं छहों रितु एक हीं, जहांगीर दरबार ।।
चित्रावली, छंद २३
४-५. ज्ञानदीप, छंद—१७, १४
६. इलमी उजाले, पृ० १६

कवि संबद्ध थे जिनमें केशव मिश्र, पुहकर तथा कोकसार (१०३० हि०) के रचयिता ताहिर भी उल्लेखनीय हैं ।[1] केशवदास कृत जहांगीर जस-चंद्रिका के नाम से ही स्पष्ट है कि यह जहांगीर की शान में लिखा गया क़सीदा होगा । इसमें केशव ने रहीम की भी प्रशंसा की है ।[2] पंडितराज जगन्नाथ ने जहाँ अपनी रचना में शासक को दिल्ली-श्वर : व जगदीश्वर : कहा है वहाँ जहांगीर और शाहजहाँ की भी प्रशंसा है ।[3] कहा जाता है कि बहुत काल तक अकबर निःसन्तान रहा था । इस कारण वह प्रायः चिंतित भी रहता था । सूफ़ियों से विशेष प्रभावित रहने के कारण वह पुत्रेच्छा हेतु सूफ़ी संत शेख़ चिश्ती की दरगाह पर सन् १५७० में अजमेर गया था ।[4] नरहरि ने भी निम्न पद में शेख मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी से अकबर के लिए प्रार्थना की है । देखिये मुस्लिम संतों तथा संस्कृति का कितना प्रभाव है—

पोंज मोनदी पीर सुनहु बिनती करे नरहरि,
नरहरि बिनती क्या करे हिंदु तुरक समेत
पाय पयादे जगतु गुर जानत हो केहि हेत
जानत हो केहि हेत चेनि उत्तम जस लिज्जै
उचित पुत्र फलु वेगि साहि अकबर कहं दिज्जै
चिरजीव पितु साहित पुहुमि रापै कर नरहरि
पांज मोनदी पीर सुनहु बिनती करै नरहरि ॥६॥[5]

नरहरि की दुआ शेख़ की मारफ़त खुदा ने ऐसी सुनी कि जहांगीर पैदा हुआ और उसकी न्यायप्रियता ने उसे ऐसा मशहूर कर दिया कि अदले जहाँगीरी मशहूर हो गया । समकालीन कवि मथुरादास ने लिखा है —

तिनके पीछे भा जहंगीरा ।
करता 'अदल' हरै सब पीरा ॥[6]

इस प्रकार जहांगीर की हिंदी-कविता, उसकी हिंदी प्रियता और हिंदी-संरक्षण के अनेक उदाहरण तुज़के जहाँगीरी में मिलते हैं ।[7] उसका भाई दानियाल भी हिंदी

१. पंजाब में उर्दू, पृ० १४६
२. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० १८२
३. तसव्वुर्ती जलवे, पृ० ६३
४. कैम्ब्रीज हिस्ट्री आफ् इंडिया, भाग ४, पृ० १०१
५. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ३२०
६. संत साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० ८४, मलूक परिचय भी, पृ० २६
७. मुग़ल बादशाहों की हिंदी, पृ० २३-२५

संगीत का अनुरागी था और हिंदी में ढंग की कविता कर लेता था।[१]

शाहजहाँ

जहाँगीर का पुत्र खुर्रम जो शाहजहाँ के नाम से विख्यात है, बहुमुखी प्रतिभा संपन्न शासक था। इसने न केवल ताजमहल, लालकिला, जामामस्जिद जैसे भव्य भवन ही बनवाए अपितु अपने से पूर्व के शासकों एवं उमरा की बनवाई हुई समस्त पाठशालाओं का जीर्णोद्धार कराया।[२] तथा महान् पंडितों को अध्यापनार्थ नियुक्त किया। हिंदी साहित्य का वातावरण इसे बाल्यकाल से ही मिला। शाहजहाँ की हिंदी रचनाओं के विषय में तो निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता पर उसके हिंदी पत्रों का उल्लेख स्वयं जहाँगीर ने किया है।[3] इसके दरबार में संस्कृत और हिंदी के अनेक कवि थे। जहाँ उसने लाल खां कलावंत की प्रतिभा से प्रभावित होकर उसे 'गुणसमुद्र' अथवा '*गुनसागर' की उपाधि प्रदान की* वहाँ पर शाहजहाँ ने *जगन्नाथ* को 'पंडितराज' और सुन्दर कवि को 'कविराय' की पदवी प्रदान की थी। पंडितराज जगन्नाथ ने एक कविता में 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' तक कहा है।[४] शाहजहाँ की मलका मुमताजमहल वंशीधर मिश्र की कविता को पसंद करती थी।[५] शाहजहाँ के दरबारी हरिनारायण मिश्र ने अपनी संस्कृत रचना में शाहजहाँ की प्रशंसा की है। इसके अतिरिक्त मुनीश्वर कवि ने ज्योतिष पर संस्कृत में पुस्तक रची है जो शाहजहाँ के नाम पर ही मानवन (समर्पित) की है। इसी प्रकार भगवति स्वामिन ने पिंगल शास्त्र की पुस्तक तथा वेदांग राजा ने भी अपनी रचना को शाहजहाँ के नाम पर ही समर्पित किया है।[६] इस प्रकार शाहजहाँ की प्रशंसा में हिंदी संस्कृत रचनाएँ भी मिलती हैं और शाहजहाँ द्वारा कवियों के संरक्षण एवं पुरस्कार की भी चर्चा इतिहासों में मिलती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

> शाहजहाँ तिनके सुत राजा। तिन फिर बहुत गरीब नेवाजा ॥[७]
> शाहजहाँ सुलतान चकत्ता। भानु समान राज एक छत्ता ॥[८]

---

१. ओरियंटल कालिज मेगज़ीन, लाहौर, अगस्त सन् १९३१, पृ० १२
२. मुस्लिम सक़ाफ़त, पृ० २२३
३. मुग़ल बादशाहों की हिंदी, पृ० ३३
४. मुग़ल-बादशाहों की हिंदी, पृ०३०
५. तमद्दुनी जलवे, पृ० ६३
६. तमद्दुनी जलवे, पृ० ६४-६५
७. मलूक-परिचयी, पृ० १६
८. काव्यरूपों के मूल स्रोत, पृ० १२२, (सूरदास कवि विरचित, नलदमन, पृ० ६)

कवि गंग ने शाहजहाँ की प्रशंसा में निम्न पद लिखा है—

नाउ लिए घर ते निकस्यो कवि गंग कहै 'साहजान' तिहारो।
आइके देख्या है कल्पतरू अरु काम दुधा मनि चिंतति भारो।
आज हमारी भई पुरि पूरन आस सबै कबहूं नहिं वारो।
लोभ गयो सिगरो चित ते अब ये गयो दारिद छेदन वारो॥[1]

सुन्दर कविराय का कथन भी द्रष्टव्य है—

नगर आगरा बसत है, जमुना तट सुभ थान।
तहाँ बादशाही करै, बैठो 'साहजहान'।
साह बड़ो, कवि मुख तनिक क्यों गुन बरने जाहिं।
ज्यों तारे सब गगन के, मूठी में न समाहिं।
इक छिन के गुन साह के, बरनत सब संसार।
जीभ थके बीतैं बरख, तऊ न पावै पार॥
तीन पहर लौं रवि चलै, जाके देसन माँहि।
जीत लई जगती इती साहजहाँ नर नाह॥
कुल समुद्र खाई कियो, कोट तीर को ठाँव।
आठों दिसि यों बस करी, ज्यों कीजै इक गाँव॥
'साहजहाँ' तेहि गुनिन कौं, दीन्हे अगिनत दान।
तिन मैं सुन्दर सुकवि को, बहुत कियो सनमान॥
नग भूखन 'मनसबे दिये, हय हाथी सिरपाय।
प्रथम दियो कविराय पद, बहुरि महाकविराय॥
विप्र ग्वारियर नगर को, बासी है कविराज।
जासो साह मया करी, बड़ो गरीब नेवाज॥[2]

प्रस्तुत रचना शाहजहाँ की शान में क़सीदा है जिसमें बादशाह का परिचय, अपनी दीनता, बादशाह से बखशिश की आशा, कवि को ख़िताब मिलना तथा कवि का अपना निवास स्थान बताना और बादशाह को ग़रीबनवाज़ बताना, इसमें मुस्लिम संस्कृति का संपर्क, काव्यरूप, भाव, भाषा एवं इतिहास सम्बन्धी उल्लेख आदि दृष्टियों से स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पंडितराज जगन्नाथ कृत बारह नग़्मों (रागों) से प्रसन्न होकर शाहजहाँ ने इस कवि को चाँदी से तुलवाने का आदेश दिया था, वह तोल चार हजार पाँच सौ रुपये के बराबर था। इतना रुपया कवि को इनाम में दिया गया।[3]

---

१. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ४३८
२-३. मुग़ल बादशाहों की हिंदी, पृ० ३२, ३४

औरंगज़ेब

औरंगज़ेब के राजनीतिक दृष्टिकोण के विषय में भले ही दो मत प्रकट किये जा सकते हों किंतु हिंदी कवि सथुरा दास के कथनों से तो ऐसा ध्वनित होता है कि शाहजहाँ की मृत्यु के पश्चात् जो राजनीतिक उथल-पुथल हो गई थी उसके बाद एकमात्र औरंगज़ेब ने ही गद्दी पर बैठकर क़ुरान के सुपंथ के अनुसार विवेकपूर्ण राज किया :

> शाहजहाँ पातशाह जब मुआ, दंड देस में चहु दिस हुआ।
> औरंगज़ेब ताहि सुत एका, बैठ राज तिन कियो विवेका॥
> शाहजहाँ सुत औरंगजेबा, चले सुपंथ कुरान कथा॥[1]

उसकी हिंदी प्रियता एवं हिंदी-साहित्य के संरक्षण के विषय में यही सर्वमान्य है कि उसने हिंदी को बहुत अधिक संरक्षण प्रदान किया। औरंगज़ेब उलमा (पंडितों) का आदर करता था। उदाहरणार्थ अपने गुरु मुल्ला जीवन का ऐसा ही आदर करता था जिस प्रकार पुत्र अपने पिता का आदर करता है। अपने महल में सप्ताह में तीन दिन साहित्य-गोष्ठियाँ कराता था। विद्वानों में शेख निज़ाम बुरहानपुरी को विशेष आदर प्राप्त था[2]

औरंगज़ेब व्यक्तिगत जीवन में बड़ा ही आबिद व मुत्तक़ी (तपस्वी एवं संयमी) तथा विद्याव्यसनी था। उसने अनेक पाठशालाओं की स्थापना की। इसका सत्यापन, सफ़रनामा बरनियर तथा तारीखे फ़र्रुखबख्श से भी होता है।[3] यह विद्यार्थियों को वजीफ़ा भी देता था। औरंगज़ेब ने जिन बड़े बड़े विद्वानों से शिक्षा प्राप्त की उनमें मौलाना अबदुललतीफ़ सुलतानपुरी, मौलाना हाशिम गीलानी, अलामी सादुल्लाह (शाहजहां का वज़ीर) मौलाना मुहीउद्दीन उर्फ़ 'मुल्ला मोहनविहारी' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सम्राट औरंगज़ेब अरबी, फ़ारसी, तुर्की (चुग़ताई) और हिन्दोस्तानी (हिंदी) बड़ी अच्छी जानता था।[4] अपने हाथ से क़ुरान की खुशख़त (सुलेख) नक़लें किया करता था और मक्का-मदीना भेजता था।[5] यह हाफ़िज क़ुरान भी था। साहित्य-संरक्षण के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि कभी कभी इसने एक एक चतुष्पदी (रुबाई) पर सात हज़ार रुपया तक पुरस्कार दिया है।[6] औरंगज़ेब की

---

१. परिचयी, सथुरादास, पृ० १६, १७
२. तमद्दुनी जलवे, पृ० ७५
३. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २२५
४. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २२६
५. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २२७
६. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २२७

हिन्दी-कविता तथा हिंदी-साहित्य-संरक्षण के विषय में आचार्य चतुरसेन के शब्द महत्वपूर्ण हैं—'पर हिंदी का वह प्रेमी था। उसने हिंदी काव्य रचना भी की तथा हिंदी कवियों का सत्कार भी किया। वृंद कवि को औरंगज़ेब दस रुपया रोज़ देता था। औरंगज़ेब की एक हिंदी रचना पढ़िए। यह कविता उसने अपनी चहेती उदयपुरी बेगम की प्रशस्ति में रची थी।

तुव गुण रवि उदै कीनो याही ते कहत तुमको बाई उदैपुरी,
अनगिन गुण गायन के अलाप बिस्तार-सुर जोत दीपक।
जो तो लों विद्या है दुरी—
जब जब गावत तब तब रस समुद्र लहरें उपजावत।
ऐसी सरस्वती कौन को 'पुरी'
जात नमन जान शाह औरंगज़ेब—रीझ रहे,
याही तें कहत तुमको विद्यारूप चातुरी ॥[1]

संगीतराग-कल्पद्रुम में औरंगज़ेब की रचनाओं तथा साहित्य-संरक्षण की चर्चा की गई है। औरंगज़ेब ने अबदुलजलील नामी हिंदी कवि को भी अपने दरबार में उच्च पद पर आसीन कर रखा था। चंद्रबली पांडेय ने लिखा है कि औरंगज़ेब भी हिंदी का हितू था। मुग़ल राजकुमारों को हिंदी की भी शिक्षा दी जाती थी।[2] 'औरंगज़ेब ने कभी हिंदी भाषा का विरोध नहीं किया बल्कि उसने उसे और भी प्रोत्साहित किया।' इस विषय में अल्लामा शिबली नोमानी का मत भी महत्वपूर्ण है। 'ब्रजभाषा की जिस क़दर इसके (औरंगज़ेब के) जमाने में तरक्क़ी हुई, मुसलमानों ने जिस क़दर इसके ज़माने में हिंदी-किताबों के तरजुमे किये, और खुद जिस क़दर ब्रज-भाषा में नज़्म व नस्र (पद्य एवं गद्य) लिखी, किसी ज़माने में इस क़दर हिंदी की तरफ इल्तेफ़ात (कृपादृष्टि) नहीं ज़ाहिर किया गया था।[3] ज़मीर ईरान का एक विख्यात कवि था। औरंगज़ेब के जमाने में ईरान से आया था। वह भी हिंदी में उत्तम कविता करने लगा था। हिंदी में उसका तख़ल्लुस (उपनाम) 'पथी' था। संगीतकला की हिंदी-पुस्तक मारजातक का अनुवाद इसने ही फ़ारसी भाषा में किया।[4] संगीत राग कल्पद्रुम के सुधी सम्पादक श्री नगेंद्रनाथ वसु का कथन है 'जिस औरंगज़ेब को कितने ही लोग दारुण देवद्वेषी और हिन्दू विद्वेषी समझते हैं, उनके (औरंगज़ेब के) रचित

---

१. ब्रज-साहित्य पर मुग़ल-प्रभाव, पृ० २३
२. मुग़ल बादशाहों की हिंदी, पृ० ३८
३. मक़ालाते शिबली, जिल्द दोयम, पृ० ९३
४. मक़ालते शिबली, जिल्द दोयम, पृ० ९५

पद पढ़ने से इस विषय में घोरतर संदेह होता है कि वास्तव में वह हिंदू विद्वेषी थे '[१]
औरंगज़ेब की हिंदी-प्रियता एवं संरक्षण के दो उदाहरण और प्रस्तुत हैं। इसके ज़माने में ही मिर्ज़ा खां इब्ने फ़खरुद्दीन मुहम्मद ने 'क़वाइदे कुल्लियाते-भाखा'[२] लिखकर फ़ारसी जानने वालों के लिए हिंदी का व्याकरण सरल कर दिया। यद्यपि औरंगज़ेब ने अपनी खुश्क मिजाजी के कारण फ़ारसी कवियों को दी जाने वाली उपाधि मलिकुश्शुअरा को समाप्त कर दिया था किंतु हिंदी-कवियों के संरक्षणार्थ 'कविराय' की उपाधि से विभूषित करता रहा।[3]

जिस प्रकार अन्य मुस्लिम शासकों के साहित्य-संरक्षण की प्रवृत्ति से प्रभावित होकर अनेक कवियों के दिलों से क़सीदे फूट निकले उसी प्रकार औरंगज़ेब की शान में भी हिंदी-कवियों ने प्रशंसा की है। औरंगज़ेब की वीरता का वर्णन कवि कालिदास (त्रिवेदी) ने इस प्रकार किया है—

> गढ़न गढ़ी से गढ़ि महल मढ़ी से मढ़ि
> बीजापुर ओप्यो दल मलि उजराई मैं।
> 'कालिदास' कोप्यो वीर औलिया आलमगीर,
> तीर तरवारि गह्यो पुहमी पराई मैं॥
> बूंद तें निकसि महि मंडल घमंड मची,
> लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई मैं॥
> गाड़ि कै सुझंडा आड़ कीन्ही पादसाह ताते
> डकरी चामुंडा गोलकुंडा की लड़ाई मैं॥[४]

चंद्रवली पांडे का कथन है कि कालिदास की भांति कृष्णा, सामंत आदि अनेक दरबारी हिंदी कवियों ने औलिया आलमगीर का गुणगान किया है······औरंगज़ेब हिंदी में कविता करता था और हिंदी को आदर की दृष्टि से देखता ही नहीं प्रत्युत उसका प्रचार भी भरपूर करता था।[५]

औरंगज़ेब का भाई दाराशिकोह संस्कृत एवं हिंदी ज्ञान तथा संरक्षण के लिए बहुत मशहूर है; संस्कृत भाषा एवं भारतीय धर्म-दर्शन-योग और तसव्वुफ़ में विशेष रुचि रखता था। वह फ़ारसी अरबी भी खूब जानता था। यह अनेक ब्राह्मणों, योगियों

१. संगीत राग कल्पद्रुम, दूसरा खंड, परिचय, पृ० ६
२. ए ग्रामर आफ़ दी ब्रज भाखा, वाई मिर्ज़ा खां, विश्वभारती बुक शाप, २१० कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता
३. हिंदी और मुसलमान, पृ० ७७.
४. शिवसिंह सरोज, पृ० २८
५. मुग़ल बादशाहों की हिंदी, पृ० ४५

और संयासियों के संपर्क में उतना ही आता था जितना सूफ़ियों के। यह काश्मीर में सूफ़ी मुल्लाशाह का मुरीद भी हुआ था। इसने वेदों का फ़ारसी में अनुवाद कराया, स्वयं भी अनेक पुस्तकें लिखीं तथा अनुवाद किया। उपनिषदों का अनुवाद सिर्रुल-असरार या (सिर्रेअकबर) के नाम से किया। भगवद्गीता, योगवाशिष्ठ और रामायण का अनुवाद भी स्वयं किया। भारतीय दर्शन एवं तसव्वुफ़ का तुलनात्मक अध्ययन करके एक पुस्तक लिखी जिसका नाम मजमउलबहरैन (सागरों का समुच्चय या संगम) रखा।[1]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि मुहम्मद बिन क़ासिम से लेकर औरंगज़ेब तक साहित्य, कला एवं ज्ञान-विज्ञान तथा हिंदी-संस्कृत के संरक्षण के जितने भी उदाहरण मिलते हैं वह मुस्लिम-संस्कृति की आदि विशेपता है जो मुस्लिम क़ौम की स्वाभाविक प्रवृत्ति बन गई थी। इसीलिए राजभाषा फ़ारसी के साथ-साथ राज्य से सम्मानित होने के कारण हिंदी-भाषा एवं साहित्य को जनभाषा के रूप में प्रसारित होने में इन दरबारों और सूफ़ियों का बड़ा हाथ रहा है। यही कारण है कि हिंदी, फ़ारसी तथा मुस्लिम संस्कृति से सहजरूप से प्रभावित हुई है।

---

१. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० २२४

द्वितीय अध्याय

विषय-वस्तु (खण्ड क)

इस्लाम और तसव्वुफ़ (धर्म तथा दर्शन)—

भारतवर्ष के कण कण में कुछ ऐसा आकर्षण है कि संसार भर की जातियाँ, धर्म एवं वस्तुएँ अनादिकाल से इसकी ओर चुम्बकीय शक्ति की भांति खिंची चली आती रही हैं। इसीलिए भारत आदि काल से मानवता का क्रीड़ा स्थल बना रहा। यही कारण है कि भारतीय-संस्कृति एक ऐसी सुरसरिता के सदृश है जिससे देश विदेश की अनेक संस्कृतियाँ मिलकर पावन और तद्‌रूप हो गई हैं। किंतु कुछ संस्कृतियाँ ऐसी प्रबल भी रही हैं जिनके चिह्न स्पष्ट उभरे हुए दिखाई देते हैं।

इस बात को दृष्टि में रखते हुए कतिपय विद्वानों का यह मत है कि भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि उसमें सदैव से ही समुद्र की भांति सोखने का असीम शक्ति रही है, जिसका मूल कारण सहनशीलता, समन्वयात्मकता, उदारता, लचीलापन तथा पाचनशक्ति आदि गुण हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय-संस्कृति एक ज्ञान-पिपासु संस्कृति है और यही कारण है कि संसार की प्राचीनतम संस्कृति होते हुए भी एक नवीनतम संस्कृति है।

समाज शास्त्र का यह एक सामान्य सिद्धांत है कि जब-जब दो महान् संस्कृतियों का घनिष्ठ संपर्क होता है तब तब उसके परिणामस्वरूप आदान-प्रदान की प्रक्रिया भी महान् रूप से हुआ करती है।

धर्म और दर्शन ऐसे तथ्यात्मक विषय हैं जिनका साहित्य में क्रम बद्ध रूप में शास्त्रीय एवं विस्तृत विवरण प्राप्त होना अधिक संभव नहीं होता, फिर भी मध्य-कालीन हिंदी-साहित्य क्योंकि धर्म प्रधान है, तथा भारत का इस्लाम से सूफ़ियों, शासकों तथा मुस्लिम देशों के व्यापारियों, पर्यटकों आदि के द्वारा दीर्घकालीन घनिष्ठ संपर्क रहा है, इसलिए हिंदी-साहित्य में भारतीय धर्म-दर्शन के साथ-साथ इस्लाम धर्म एवं तसव्वुफ़ का भी अच्छा खासा परिचय प्राप्त हो जाता है। इस विवरण को ऐसे सरल क्रम से वर्णन किया जाएगा जिससे हिंदी जगत् को हिंदी-कवियों द्वारा वर्णित

इस्लाम को समझने समझाने में आसानी हो।

इस्लाम—

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है शांति में प्रवेश करना।[1] यह शब्द सुलह, कुशलता, विनम्रता, आज्ञा-पालन, आत्मसमर्पण, स्वेच्छापूर्वक आधीनता (खुदा की) स्वीकार कर लेने के अर्थों में भी आता है। अतः मुसलमान वह व्यक्ति हुआ जो खुदा और मनुष्य के साथ पूर्ण शांति का संबंध रखता हो। इस्लाम शब्द का लाक्षणिक अर्थ होगा—वह धर्म जिसके द्वारा मनुष्य खुदा (परमात्मा) की शरण लेता है तथा अन्य मनुष्यों के प्रति अहिंसा एवं प्रेम का व्यवहार करता है। धार्मिक दृष्टि से क़ुरान और हदीस (मुहम्मद साहब के सत्य वचन) द्वारा निर्दिष्ट आचरण पर विश्वास रखना ही इस्लाम है।[2]

इस्लाम का अर्थ रज़ाए इलाही के सुपुर्द कर देना भी है अर्थात् समर्पण भी इसका अर्थ है और मुसलमान वास्तव में प्रपन्न ही है।[3] इस्लाम यह दावा नहीं करता कि वह सर्वथा सब ही चीजें कहीं से नई लेकर आया है, वह तो खुदा के भेजे हुए अनेक प्राचीन धर्मों का एक नवीनतम संस्करण है।[4] अन्य धर्मों और इस्लाम में अंतर इतना ही है कि अन्य धर्म तो सत्य, अहिंसा, सदाचार जैसे सामान्य सिद्धांतों को लेकर आए हैं तथा इस्लाम मानव जीवन संचालन की एक पूर्ण व्यवस्था लेकर आया है तथा इसमें हुक़ूक़ुल्लाह (खुदा के प्रति कर्तव्यों) और हुक़ूक़ुलइबाद (मानवता के प्रति कर्तव्यों) के (स्पष्ट रूप से विस्तृत विवरण के साथ) सिद्धांतों की स्थापना की गई है अर्थात् इस्लाम एक ऐसा प्रवृत्तिमूलक धर्म है जिसमें आध्यात्मिक-जीवन-सुधार के साथ-साथ सांसारिक जीवन में संतुलित सुरुचिपूर्ण आचरण पर भी बल दिया गया है। इस्लाम न तो यह कहता है कि निवृत्ति-मार्ग को अपना कर एकांत में बैठ कर कंद मूल खा कर फ़रिश्ता (देवता) बनने का प्रयत्न करो और न इस्लाम यह ही बताता है कि संसार के भोग विलास में पड़कर पशु, दानव, दैत्य बनो अपितु इस्लाम ऐहिक एवं आध्यात्मिक दोनों जीवनों के बीच संतुलन पर बल देता है।

हिंदी-साहित्य में भारतीय धर्म दर्शन के साथ इस्लाम की भी पूरी पूरी छाप दृष्टिगोचर होती है। इसका कारण हिंदी की व्यापकता, लोक-कवियों का समन्वयात्मक दृष्टिकोण तथा मुस्लिम सूफ़ियों का संपर्क और शासकों का विद्याप्रेम ही है।

१-२. शार्टर इंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० १७६-१७८

३. इन्फ्लुएंस आफ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० ११४

४. इस्लाम ए स्टडी, पृ० ३

दादू दयाल ने इस्लाम की ओर स्पष्ट संकेत किया है और नरहरि इससे परिचित हैं—

अल्लह आसिकाँ ईमान।
भिस्त दोजख दीन दुनिया, चिकारे रहमान।
मीर मीरी पीर पीरी, फिरिस्ताँ फुरमान।
आब आतिस असर कुर्सी, दीदनी दीवान।
हर दो आलम खलक खाना, मोमिना 'इस्लाम'[१]
भय भुली भुवपत्ति सांत 'इसलाम' संघ कह।[२]

मोमिन

यह अरबी-भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है ईमान लाने वाला तथा अल्लाह ने क़ुरान में जो विधि निषेध बताए हैं, उन पर चलने वाला। क़ुरान में अनेक स्थलों पर मोमिन की परिभाषा बताई गई है।[३] मांस-भक्षण करने वाला ही मोमिन नहीं है,[४] अपितु मननशीलता, मोम सा दिल रखना, हराम न खाना, मन को बुरी ओर जाने से मारना आदि विशेषताओं के बल पर ही मोमिन इस्लाम का अनुयायी बनकर बहिश्त (स्वर्ग) तक पहुँच सकता है—

सो 'मोमिन' मन में करि जाणि। सात्ते सबूरी बैसै आणि

× + ×

सो 'मोमिन' मोम दिल होइ। साईं को पहिचानै सोई।[५]
जोर न करै हराम न खाई। सो 'मोमिन' भिस्त में जाई।[६]

मुसलमान

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है इस्लाम धर्म का अनुयायी।[७] क़ुरान में स्थान-स्थान पर मुसलमान के अनेक लक्षण दिये गये हैं। जैसे—जो हमारी आयतों पर ईमान लाए वही मुसलमान है[८] सुन्नत पर चलना, मान रखने वाला

१. दादू-बानी, भाग २, पृ० १६६
२. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ३२८
३. कुरान, सूरेनूर (२४) आयत ८, सूरे हिज्रात (४९) आयत १४
४. मांस खांइ 'मोमिन' भये, बड़े मियां का ज्ञान। दादूबानी, भाग १, पृ० १२५
५. दादू-बानी, भाग १, पृ० १२९
६. क. दादू-बानी, भाग १, पृ० १२९
ख. यहु मन मारै 'मोमिनां', यहु मन मारै मीर। दादू-बानी, भाग १, पृ० १०६
ग. हर दो आलम खलक खाना, मोमिनां इसलाम। दादू-बानी, भाग २, पृ० १६६
७. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० ४१७
८. कुरान, सूरे नमल (२७) आयत २८

होना, मलिन मन को साफ़ करना आदि मुसलमानों में अनेक गुण होने परमावश्यक हैं। क़ुरान द्वारा बताए हुए गुणों को ध्यान में रखते हुए नानक जी ने कहा है कि मुसलमान बनना कोई सरल काम नहीं। प्रस्तुत शब्द में मुसलमान की विशेषताएँ भी बताई गई हैं—

'मुसलमान' कहावण मुसकलु, जा होइ ता 'मुसलमाणु' कहावै।
अवलि अउलि दीनु करि मिठा, मसकलमाना मालु मुसावै॥
होइ 'मुसलिम' दीन मुहाणै, मरण जीवण का भरम चुकावै।
रब की रजाइ मने सिर उपरि, करता मने आपु गवावै॥
तउ नानक सरब जीआ मिहरंमति, होइ त 'मुसलमाण' कहावै॥[1]

नानक जी ने इस पद में कहा है कि यद्यपि मुसलमान कहलाना कठिन है किंतु जहाँ तक हो सके मुसलमान कहाओ क्योंकि मुसलमान सबसे पहले औलिया अल्लाह के दीन को मीठा जानता है, अपने मेहनत के धन को खुदा के रास्ते में लुटा देता है आदि आदि।

इसके अतिरिक्त एक शब्द में नानक कहते हैं कि मस्जिद इन्सान को महर (दया) का पाठ देती है और मुसल्ला (नमाज़ पढ़ने का वस्त्र या चटाई) सत्य की प्रेरणा देता है। हलाल और हराम का पता क़ुरान मजीद से चलता है। नबी (मुहम्मद) की सुन्नत पर अमल करने से मनुष्य में शरम और शील पैदा होता है और रोज़ा (व्रत) मनुष्य को सब्र (संतोप) का पाठ देता है। इन बातों का ध्यान करने से मुसलमान होता है—

मिहर मसीत सिदकु मुसल्ला, हकु हलालु क़ुराण।
सरम सुंनति सीलु रोजा, होहु 'मुसलमाण'॥
करणी कावा सचु पीरु, कलमा करम निवाज।
तसबी सा तिसु भावसी, नानक राखै लाज॥
हकु पराइआ नानका उसु सूअर उस गाइ।
\+ \+ \+
पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाउ।
पहिला सचु हलाल दुइ तीजा खैर खुदाइ॥
चउथी नीअति रासि मनु पंजी सिफति सनाइ।
करणी कलमा आखि कै ता 'मुसलमाण' सदाइ।
नानक जेते कूड़िआर कूड़ै कूड़ी पाई॥[2]

---

१. नानक-वाणी, पृ० १८१

२. नानक-वाणी, पृ० १७९, रागु माझ, महला १, घरु १, सलोक १०१२

इनके अतिरिक्त मलूकदास,[1] कबीर,[2] दादूदयाल आदि मुसलमान तथा उसकी परिभाषा और उसके यथेष्ट गुणों से परिचित मालूम होते हैं।

मुसलमान जो राखै मान। साईं का मानै फुरमान ॥
सारों कौं सुखदाई होइ। 'मुसलमान' कर जाणै सोइ ॥
(दादू) 'मुसलमान' मिहर गहि रहै। सब को सुख, किस ही नाहिं दहै ॥[3]

ऐसा मालूम होता है कि दादूदयाल को इस्लाम का ज्ञान कुछ कम न था। उन्होंने समन्वयात्मक उदार दृष्टि के कारण हिंदू मुसलमानों को भाई-भाई और भारत माता को दो आँखें बताया है।

सब हम देख्या सोधि करि, दूजा नाहीं आन।
सब घर एकै आतमा, क्या हिंदू 'मुसलमान' ॥
(दादू) दोनौं भाई हाथ पग, दोनौं भाई कान।
दोनौं भाई नैन हैं, हिंदू 'मुसलमान' ॥[4]

क़ुरान और हदीस

'क़ुरान' इस्लाम-धर्म एवं दार्शनिक विचार धाराओं का वह प्रमुख ग्रंथ है जो मुहम्मद साहब पर नाज़िल (अवतीर्ण) हुआ। इस आसमानी किताब से प्रत्येक मनुष्य का पथ प्रदर्शन होता है। जिसमें तीस पारे (खंड) एक सौ चौदह सूरतें (भाग) छः हज़ार छः सौ चालीस आयतें (क़ुरानी वाक्य एवं चिह्न) और पांच सौ चालीस रुकूअ

१. सब कोउ साहेब वन्दते, हिंदू 'मुसलमान'। मलूक-बानी, पृ० ३७
२. 'मुसलमांन' कहै एक खुदाई, कबीरा को स्वामी घटि घटि रह्यो समाइ।
कबीर-ग्रंथावली, पृ० १५०
३ क. दादू-बानी, भाग १, पृ० १२८-२६
ख. दादू करिले बन्दगी, राखणहार खुदाइ।
इस कलि केते ह्वै गये, हिंदू 'मुसलमान'। दादू-बानी, भाग १, पृ० १२६
ग. (दादू) हिंदू लोग देहुरे, 'मुसलमान' मसीति। दादूबानी भाग १।१६५
घ. दान सबुंद सोइ दिलि धोवै। 'मुसलमाणु' सोइ मलु खो वै ॥
नानकवाणी, पृ० ४१४
ङ. मसीत संवारी माणसों, तिस कौं करै सलाम।
ऐन आप पैदा किया, सौ ढाहै 'मुसलमान' ॥ दादूबानी भाग १, पृ० २२४
४. क. दादूवानी भाग १, पृ० २२३
ख. ना हम हिंदू होहिंगे, ना हम 'मुसलमान'।
पट दरसन में हम नहीं, हम राते रहिमान। दादूवानी, भाग १, पृ० १६४

हैं। क़ुरान में स्थान-स्थान पर यह सत्यापन मौजूद है कि इसका रचयिता ख़ुदा स्वयं ही है। ख़ुदा कहता है 'और यह किताब है जो हमने तेरी (मुहम्मद) ओर नाज़िल की ताकि तू लोगों को अँधेरे से निकाल कर रोशनी में लाए'[1] 'और यूं तुझ पर हमने अरबी में क़ुरान उतारा'[2] 'हमने तुझ पर यह सच्ची किताव नाज़िल की'[3] क़ुरान में स्थान-स्थान पर अन्य उन आसमानी पुस्तकों का भी उल्लेख है[4] जैसे तौरेत, ज़ूबूर इंजील आदि। नानक ने इस ओर संकेत किया है—

सहस अठारह कहनि 'कतेवा' असुलू इकु धातु।[5]

गुरुग्रंथ साहब में नानकजी ने क़ुरान शरीफ़ का भी उल्लेख किया है। उसकी महत्ता बताते हुए वे कहते हैं कि 'कलयुग' के इस ज़माने में क़ुरान ही एक मात्र प्रामाणिक ग्रन्थ है—

कलि परवाण कतेव 'कुराणे' पोथी पंडित रहे पुराण ॥
नानक नाउ भइआ रहमाण। करि करता तू एको जाणु ॥[6]

जायसी ने क़ुरान के ख़ुदा द्वारा भेजे हुए होने तथा उसको पढ़कर संमार्ग पर लग जाने का उल्लेख स्तुति खंड में चारों ख़लीफ़ाओं के संदर्भ में किया है और शब्द पुरान प्रयोग किया है—

जो 'पुरान' विधि पठवा सोई पढ़त गरंथ।
और जो भूले आवत सो सुनि लागे पंथ ॥[7]

अन्य सूफ़ी अनूफ़ी कवियों तथा दादू[8], कबीर,[9] रैदास[10] आदि कवियों ने भी

---

१. क़ुरान, सूरे इब्राहीम (१४) आयत् १। सूरे बक़र (२) आयत १८५
२. क़ुरान, सूरे ताहा (२०) आयत ११२
३. क. सूरे निसा (४) आयत १०४
ख. विस्तार के लिए देखिये—शरटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० २७३-२८६
४. क़ुरान, सूरे आले इमरान, आयत २
५. नानक वाणी, पृ० ८६
६. क. नानकवाणीं, पृ० ५०१
ख. पंजि वखत निवाज गुजारहि पडहि कतेव 'क़ुराण'।
नानक आखै गोर सदेई रहिओ पीण खाण ॥ नानकवाणी, पृ० १२७
७. जायसी-ग्रंथावली (पद्मावत), पृ० ५
८. क. केते पीर केते पैगंबर, केते पढ़े 'कुराना'। दादूवानी भाग २, पृ० ९८
ख. 'क़ुरान' कतेब इलंम सब, पढ़ि करि पूरा होइ। दादूवानी, भाग १, पृ० २३
९. 'क़ुरांना' कतेब अस पढ़ि-पढ़ि, फिकरि या नहीं जाई। कबीर-ग्रंथावली पृ० १३०
१०. वेद कतेब 'क़ुरान' पुरानन, सहज एक नहिं देखा। रैदास की वानी, पृ० ४

इसका उल्लेख किया है।

हदीस

यह अरबी भाषा का शब्द है। पैग़म्बर मुहम्मद की फ़रमाई हुई बातों (सत्य वचन) को हदीस कहते हैं। धार्मिक एवं नैतिक आचरणों के विषय में मुहम्मद साहब ने समय-समय पर अपनी उम्मत से जो सत्यवचन कहे हैं उनका संपादन बड़ी छानबीन के बाद 'मुस्लिम', बुखारी, मिश्कात आदि 'सही सित्ता' खंडों में किया गया है। इस्लाम में क़ुरान के बाद हदीस की बड़ी महत्ता है।[1] मुहम्मद साहब के सत्यवचनों पर अमल करना सुन्नत कहलाता है। हिंदी के सूफ़ी कवियों के काव्य में तो अहादीस (हदीस का बहुवचन) की झलक यत्र तत्र स्पष्ट रूप से मिलती है जो आश्चर्य की बात इसलिए नहीं है कि प्रायः यह सूफ़ी क़ुरान हदीस को भली भांति समझते और जानते थे। कहीं-कहीं तो अनुवाद मात्र भी मिलता है। एक हदीस है—'अव्वलु मा ख़लक़ल्लाहु नूरी व अना मिन नूरिल्लाहि वकुल्लु शैअन् मिन नूरी' अर्थात् पहले अल्लाह ने नूर उसी का संवारा और फिर उसके प्रेम से सारी सृष्टि पैदा की। जायसी भी कहते हैं—

प्रथम जोति विधि ताकर साजी। औ तेहि प्रीति सिहिटि उपराजी।[2]

सूफ़ियों के अतिरिक्त अन्य कवियों में भी अहादीस की ओर संकेत मिलते हैं। एक हदीस की ओर मलूकदास ने भी स्पष्ट संकेत किया है—

जो प्यासे को देवै पानी। बड़ी बंदगी 'मोहमद' मानी'॥
जो भूखे को अन्न खवावै। सो सिताब साहब को पावै॥[3]
तन मन सौंज संवारि सब, राखै बिसवा बीस।
सो साहिब सुमिरै नहीं, दादू भानि 'हदीस'॥[4]

अल्लाह

अल्लाह अरबी भाषा का शब्द है। मुसलमानों के मतानुसार सर्वोच्च शक्ति,[5] ख़ुदा, ईश्वर, परमात्मा; क़ूरान के अनुसार अल्लाह सर्वशक्ति सम्पन्न है और समस्त सृष्टि का रचयिता है।[6] हिन्दी-साहित्य में अनेक स्थानों पर अल्लाह तथा उसकी

१. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० ११६-१२०
२. जायसी-ग्रन्थावली (पद्मावत), पृ० ४
३. मलूकदास की बानी, पृ० २२
४. दादूबानी, भाग १, पृ० १७६
५. शारटर-एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ३३
६. शारटर एंसाक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० ३३-३४

47833

सिफ़ात (गुणों) का उल्लेख मिलता है। जैसे—अल्लाह् का नाम सच्चा है, अलख है, निरंजन है, अगम है, पाक है :

(दादू) 'अलिफ' एक 'अल्लाह' का, जो पढ़ि करि जाणै कोइ।
'कुरान' कतेब इलम सब, पढ़ि करि पूरा होई ॥[1]
एकै नांव 'अल्लाह्' का, पढ़ि हाफिज हूवा।[2]
'अलह' अलख निरंजन देव।[3]
बाबा 'अलहु' अगम अपारु ॥
पाकी नाई पाक थाइ सचा 'परवदिगारु' ॥[4]
सांचा नाम 'अलाह' का, सोई सति करि जाणि।[5]

अल्लाह् अमर है और उसका स्थान अर्श (नवां आसमान) है—

दादू कहां महम्मद मीर था। सब नबियों सिरताज।
सो भी मरि माटी हुआ। 'अमर अलह का राज'।[6]
मुल्ला तहां पुकारिये, जहं 'अरस' 'इलाही' आप।[7]

फ़ारसी शब्द खुदा भी अल्लाह् के लिए ही प्रयुक्त होता है। मलूकदास के अनुसार खुदा की जात भूलने पर मनुष्य सिर धुनकर रोता है।[8] नानक कहते हैं कि खुदा का नाम अच्छे मुख और अच्छे दिल से लो[9] और दादू खुदा की बंदगी पर बल

---

१. दादू-बानी, भाग १ पृ० २३
२. दादू-बानी, भाग १, पृ० २३
३. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १४९
४. नानक-वाणी, पृ० १३१
५. (क) दादू-बानी, पृ० १२९
(ख) 'अल्लह' अलख न जाई लखिया गुर गुड़ दीना मीठा।
कबीर-ग्रंथावली, पृ० २०३
(ग) 'अलह पाक तू' नापाक क्यूं, अब दूसर नांही कोइ।
कबीर-ग्रंथावली, पृ० १३१
(घ) चंद सूर सिजदा करें, नांव 'अलह' का लेई।
दादू जिमीं असमान सब, उन पांवों सिर देई ॥ दादू-बानी, भाग १ पृ० १५२
६. दादू-बानी, भाग १, पृ० २१०
७. दादू-बानी, भाग १, पृ० १३०
८. भूलै जात 'खोदाय' को, सिर धुन धुन रोवै ॥
रैदास की बानी, पृ० १६
९. नानक नाउ 'खुदाइ' का दिलि हछै मुखि लेहु।
नानक-वाणी, पृ० १७८

देते हैं।[1] हिंदी-साहित्य में अल्लाह या खुदा के नामोल्लेख एवं सामान्य गुणों के अतिरिक्त विशिष्ट गुणों का भी उन नामों से वर्णन किया गया है।

सिफ़ाते इलाही—(अल्लाह के गुण)

ज़ाते इलाही और सिफ़ाते इलाही का मसला (सिद्धांत या समस्या) दर्शन से सम्बद्ध है। यहाँ तो केवल एक उद्धरण देकर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जाएगा। 'अल्लाह की ज़ात (सत्ता) और उसका वजूद (अस्तित्व) एक नहीं, बल्कि उसका वजूद उसकी ज़ात पर ज़ाइद (अलहदा) है अर्थात् अल्लाहताला अपनी सिफ़ाते ज़ाइदा का मुहताज नहीं है। इसलिए अल्लाह अपनी ज़ात से मौजूद है, वजूद से मौजूद नहीं है, इसी प्रकार अपनी ज़ात से ज़िंदा है हयात (जीवन) से ज़िंदा नहीं है। अपनी ज़ात से आलिम है इल्म से आलिम नहीं।"[2] क़ुरान शरीफ़ में अल्लाह के गुणों सिफ़ात) का स्थान स्थान पर उल्लेख मिलता है। हिंदी साहित्य में भी सूफ़ी कवियों के स्तुति खंड में तथा अन्य अनेक स्थानों पर अल्लाह की ज़ात एवं सिफ़ात के जो वर्णन मिलते हैं वे अधिकांश रूप में क़ुरान में बताई हुई सिफ़ात से बहुत साम्य रखते हैं।

'जाती' नूर अलाह का, 'सिफाती अरवाह।
'सिफाती' सिजदा करै 'जाती' बेपरवाह।[3]
साची तेरी 'सिफति' सची सालाह।
सची तेरी कुदरति सचे पातिसाह ॥[4]

अंतु न सिफति कहणि न अंतु। अंतु न करणै देखि न अंतु ॥[5]
तुझ ते बाहरि कछु न होई। तू करि करि देखहि जाणहि सोइ।
किआ कहीऐ किछु कही न जाइ। जोकिछु अहै सभ तेरी रजाई ॥
जो किछु करण सु तेरे पासि। किस आगै कीचै अरदासि ॥

---

१. (क) दादू करि ले बन्दगी राखणहार खुदाई। दादू बानी भाग १, पृ० १२६
(ख) विरहा दरसन दरद सौं, हम को देहु 'खुदाय'। दादूबानी भाग १, पृ० ३१
(ग) तीन लोक गुण पंच सूं, सब ही माहि 'खुदाय' दादूबानी भाग १, पृ० १५

२. (क) नक़्दे इक़बाल, पृ० १६७
(क) जीउ नाहि, पै जियै गुसाई, कर नाहीं पै करै सबाई।
जीभ नाहि, पै सब किछु बोला, तन नाहि पै सब ठाहर डोला ॥
है नाहीं कोइ ताकर रूप, ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा ॥
(पद्मावत) जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३

३. दादू-वानी, भाग १, पृ० १८२
४. नानक-वाणी, पृ० ३२५
५. नानक-वाणी, पृ० ६०

आखण सुनण तेरी बाणी । तू आपे जाणहि सरब विडाणी ।।
करे कराए जाणै आदि । नानक देखै थापि अथापि ।।[१]

क़ुरान में एक स्थान पर कहा गया है कि 'तू कह कि यदि मेरे रब की बातों को लिखने के लिए समुद्र स्याही बन जाए तो भी उसके गुणों को पूर्णतः नहीं लिखा जा सकता ।[२] जायसी ने ख़ुदा की सिफ़ात के विषय में भी ऐसा ही कहा है—

अति अपार करता कर करना । बरनि न कोई पावे बरना ।।
सात सरग जौ कागद करई । धरती समुद दुहूं मसि भरई ।।
जावत जग साखा बनठाखा । जावत केस रोष पखि पाखा ।।
सब लिखनी कै लिखु संसारा । लिखि न जाइ गति-समुद अपारा ।।[३]

क़ुरान में सूरे लुक़मान में कहा गया है 'और ज़मीन में जितने वृक्ष हैं, यदि लेखनी बन जाएं और समुद्र की स्याही (मसि) हो, उसके बाद सात समुद्र और उसकी सहायता करें तो अल्लाह के बखान का अन्त नहीं हो सकता ।[४] आख़िरी कलाम में भी ऐसा ही वर्णन किया गया है—

ताकै अस्तुति कीहिं न जाई । कौने जीभ मैं करौं बड़ाई ।।
जगत पताल जो सैंते कोई । लेखनी बिरख, समुद मसि होई ।।
लागै लिखै सिष्टि मिलि जाई । समुद घटै, पै लिखि न सिराई ।।[५]

इसके अतिरिक्त क़ुरान में अल्लाह की सिफ़ात के विषय में स्थान-स्थान पर बताया गया है कि अल्लाह परवरदिगार (पालनेवाला) सुब्हान (पाक) ख़ालिक़ (पैदा करने वाला) रहमान (परम कृपालु) करीम (करम करने वाला), रहीम (रहम करने वाला), क़ादिर (क़ुदरत वाला, समर्थ) रज़्ज़ाक़ (रोज़ी देने वाला), सुलतान (शासक), माबूद (पूजनीय), ग़नी (बेपरवाह, संपूर्ण, संतुष्ट) है । हिन्दी में भी इन्हीं नामों या सिफ़ात को अनेक स्थलों पर कवियों ने प्रयोग किया है ।

सच सिरदां सचा जाणी ऐ सचड़ा 'परवर्दगारो'[६]

१, नानक-वाणी, पृ० ६६१
२. कुरान, सूरे कहफ़ (१८), आयत १०७।१०८
३. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० ४
४. कुरान, सूरे लुकमान (३१), आयत २६
५. आख़िरीकलाम, पृ० ३४१
६. (क) नानक-वाणी, पृ० ३७८
   (ख) जगत पताल जो सैंते कोई । लखनी बिरिख, समुद मसि होई । जा० ग्रं० आख़िरी कलाम पृ० ३४१
   (ग) तीन लोक जाके 'औसाफ' जन का 'गुनह' करै सब माफ । मलूकवाणी, पृ० ३

मनवां मुल्ला बोलिये, सुरता है 'सुबहान'।[1]

खालिक़ खुदा की रचना को कोई जानता है ऐसा दादू ने कहा है और रैदास अपने आपको खालिक का बंदा बताता है—

'खालिक' सिकसता मैं तेरा।[2]

नानक के अनुसार इस कलियुग में लोग 'नाम जपने की अपेक्षा' रहमान का जप करते हैं और कलियुग में सर्व प्रमाणित पुस्तक कुरान है। रहमान की क़ुदरत बड़ी है और रहमान में ही रत रहने वाले सियाने हैं। ऐसा ही मत दादू का भी है।

कलि परवाणु कतेब क़ुराण। पोथी पंडित रहे पुराण।
नानक नाउ भइअ 'रहमाण'। करि करता तू एको जाण॥[3]
दादू कुदरति बहु हैराना। कहैं यें राखि रहे 'रहिमाना'[4]
(दादू) ना हम हिंदू होहिंगे, ना हम मूसलमान।
षट दरसन में हम नहीं, हम राते 'रहिमान'।[5]

---

१. (क) दादू-वानी, भाग १, पृ० १३०
   (ख) देखो सो 'सुबहान', ये इसक हमारा जीव है। दादूवानी, भाग १, पृ० २६
   (ग) 'अल्लाह पाक पाक' है एक करो जे दूसर होइ।
   कबीर कर्म करीम का उहु करे जानै सोइ॥ कबीर-ग्रंथावली, पृ० २४७
२. (क) रैदास की बानी, पृ० २६
   (ख) स्याही सपेदी तुरंगी नाना रंग विसाल वे
   नापैद हैं पैदा किया पैमाल करत न बाल बे। रैदास—बानी, पृ० १८
   (ग) (दादू) 'खालिक' खेले खेल करि बूझै बिरला कोइ। दादू बानी भाग १, पृ० १८७
   (घ) (दादू) जिन मुझ कूं पैदा किया, मेरा साहिब सोइ। दादूवानी भाग १, पृ० १८०
३. नानक-वाणी, पृ० ५०१
४. (क) दादू-वानी, भाग २, पृ० २१
   (ख) सोई स्याने सब मले, जे राते रहिमान। दादू-वानी, भाग १, पृ० १४२
   (ग) (दादू) मैं ही मेरा अरस में, मैं ही मेरा थान
   मैं ही मेरी ठौर मैं, आप कहै 'रहमान'। दादू-वानी, भाग २, पृ० २४
   (घ) काया कतेब बोलिये, लिखि राखूं 'रहिमान'। दादू-वानी, भाग १, पृ० १३०
५. (क) दादू-वानी, भाग १, पृ० १६४
   (ख) राम मेरे प्रान रहमान मेरे दीन इमान। मलूक-वानी, पृ० २८

रहमान के साथ-साथ खुदा रहीम (कृपालु) भी है और करीम भी। मलूकदास उससे रहम की याचना तथा कुरहम से बचने को कहते हैं तथा तानसेन भी रहीम का रहम चाहते हैं—

रहम की नजर कर कुरहम दिल से दूर कर।[1]

जागहु जियरा काहे सोवै। सेइ 'करीमा' तौ सुख होवै।

दादू कहै सीख सुणि मेरी। कहहु करीम संभालि सवेरी।[2]

समन्वयवादी रैदास कहते हैं कि जब तक कुस्न (कृष्ण), करीम, वेद किताब, कुरान को एक दृष्टि से नहीं देखा तब तक क्या किया—

कुस्न 'करीम' राम हरि राघव, जब लग एक न पेखा।

वेद कतेब कुरान पुरानन, सहज एक नहिं देखा॥[3]

अल्लाह की सिफ़ात में से क़ादिर (क़ुदरत वाला, समर्थ) भी एक है। 'क़ादिर कुदरति लखी न जाए'। आदि नामों के साथ-साथ नानक के मतानुसार खुदावंद कार संसार का बादशाह है। अलिफनामे के आधार पर एक ककहरे में वह उसका वर्णन करते हैं। रैदास भी क़ादिर की प्रशंसा करते हैं—

खखै खुंदकारु साहु आलमु करि खरीरि जिनि खरचु दीआ।[4]

तू क़ादिर दरियाव जिहावन मैं हिरसिया हुसियार।[5]

अल्लाह की सिफ़ात में से 'होवल अव्वलोवल आख़िर' भी है अर्थात् वही

---

१. (क) मलूक-बानी, पृ० २८

(ख) तानसेन के प्रभु 'रहीम' करम कीजे पाप न रहत सरीर।

अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ३९५

२. (क) दादू-बानी, भाग २, पृ० १३३

(ख) तन मन काम 'करीम' के, आवै तौ नीका।

दादू-बानी, भाग १, पृ० १९९

३. (क) रैदास जी की बानी, पृ० ४

(ख) हृदय 'करीम' संभारि सबेरा।

रैदास की बानी, पृ० २८

४. नानक-वाणी, पृ० ३१०

५. (क) रैदास की बानी, पृ० १६

(ख) 'क़ादिर' करीम काजी माया मत खोइ है। मलूक-बानी, पृ० २८

(ग) सांइ सूं सब होत है, बंदै थै कछु नांहि।

राई थै परबत करै, परबत राई मांहि॥

कबीर-ग्रंथावली, पृ० ४९

आदि और वही अंत[1] है तथा वह माबूद इबादत योग्य[2] है और ग़नी[3] भी।

'औवल आख़िर इलाह', आदम फारिस्ता बंदा।[4]

दादू दयाल ने निम्न छंद में अल्लाह की उन अनेक सिफ़ात का वर्णन किया है जो क़ुरान में दी हुई है—

मालिक मिहरबान 'करीम'।
गुनहगार हर रोज़ हरदम, पनह राखि 'रहीम'॥
'अव्वल आखिर' बन्दा गुनही, अमल बद बिसियार।
ग़रक़ दुनिया 'सतार' साहिब, दरदबंद पुकार॥
फ़रामोश नेकी बदी, करदम बुराइ बद फ़ेल।
'बख़शिंदा' तूं अज़ाब आखिर, हुक्म हाज़िर सैल॥
नाम नेक रहीम 'राज़िक़' पाक 'परवरदिगार'।
गुनह फ़िल करि देहु दादू तलब दर दीदार॥[5]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट रूप से ऐसा मालूम होता है कि आलोच्य काल के हिंदी कवि इस्लाम, मोमिन, क़ुरान, हदीस, अल्लाह, उसकी ज़ात एवं सिफ़ात की अच्छी ख़ासी जानकारी रखते थे जो उन्हें सूफ़ियों और मुस्लिम शासकों तथा मुस्लिम समाज के सम्पर्क के परिणाम स्वरूप प्राप्त हुई थीं।

तख़्लीक़े इंसान व काएनात (जीव एवं सृष्टि की रचना)

भारतीय हिंदू धार्मिक दृष्टकोण के अनुसार सामान्यतः जीव की उत्पत्ति ईश्वर से मानी गई है। इसीलिए सगुणकाव्यधारा के कवियों ने जीव और ब्रह्म का संबंध पिता-पुत्र, पति-पत्नी, अंश-अंशी आदि के रूप में अधिक माना है किंतु इस्लाम में ऐसा कहना शिर्क (अक्षम्य—जघंय अपराध—जिसमें ख़ुदा का कोई साझी माना जाए—) माना जाता है।[6] जो कुफ़्र के समान है।[7] इंसान की पैदाइश के विषय में

---

१. रैदास की बानी, पृ० २९
२. अल्लाह की कर बंदगी जिह सिमरत दुख जाई। कबीर-ग्रंथावली, पृ० १८९
३. (क) जहां गनी आप बसै माबूद। रैदास की बानी, पृ० १६
   (ख) बेमुहताज बेअंत अपारा। सचि पतीजै करणै हारा। नानकवाणी, पृ० ७१२
४. रैदास की बानी, पृ० २९
५. दादू-बानी, भाग १, पृ० १३२
६. कुरान, सूरे निसा (४) आयत ४७। सूरे मायदा (५) आयत ७१, ७२। सूरे अंबिया (२१) आयत २९
७. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ५४२-५४४

कुरान में स्थान-स्थान पर विस्तार से बताया गया है।[1] हिंदी में अनेक कवियों ने मनुष्य की पैदाइश के विषय में जो वर्णन किए हैं वे कुरान की इन आयतों का अनुवाद लगता है। कुरान कहता है 'कुछ शक नहीं कि जमाने में इंसान पर ऐसा समय था कि वह कुछ नहीं था—हमने इंसान को मिली-जुली बूंद से पैदा किया।'[2]

नादैंद तैं पैदा किया पैंमाल करत न बार वे।[3]

कुरान में कहा गया है कि हमने इंसान को खाक से पैदा किया[4] आदम को मिट्टी से पैदा किया[5], चिकनी मिट्टी से पैदा किया[6], जिसने पैदा किया पानी से आदमी[7] अपने हुक्म से।

हुकमी होवनि जीअ।[8]

नाम हमारा खाक है, हम खाकी बंदे।
खाकहि तें पैदा किये, अतिगाफिल गंदे॥
हरदम तिस को याद कर, जिन वजूद संवारा।
सबै खाक दर खाक है, कुछ समझ गँवारा॥[9]

जिन तुझे खाक से अजब पैदा किया, तू उसे क्यू फरामोश होता।[10]

पानी की बूंद थे जिनि प्यंड साज्या, तासंगि अधिक करई।[11]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य की रचना का खुदा से अंश-अंशी का संबंध न होकर उसके आदेश से पैदा किया गया है। इस्लाम का अल्लाह मरता नहीं, वह किसी से प्रसन्न होकर उसमें हलूल (नाना रूपों में स्वयं घुस बैठना) नहीं करता। इंसान उसके आदेश से पैदा होता है और नश्वर है और मर जाता है। कुरान में कहा

---

१. वैज्ञानिक एवं धार्मिक दृष्टि पर आधारित विस्तृत विवरण के लिए देखिये-पुस्तक कुरानमजीद और तर्लीके इन्सान तथा शारटर ऐसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० १३, १४ (आदम)

२. कुरान, सूरत सूरएदहर (७६), आयत १-२

३. रैदास की बानी, पृ० १८

४-७. कुरानमजीद और तर्लीके इंसान, पृ० ६, २३, २४, ३१

८. नानक-वाणी, पृ० ५७

९. मलूकदास की बानी, पृ० १५ तथा कुरान सूरे मोमिनून (४०) आयत ६६

१०. क. सुन्दर-विलास, पृ० १०

ख. माटी के हम पूतरे मानस राख्यो नाउ। कबीर ग्रंथावली, पृ० १६५

ग. माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै। कबीर ग्रंथावली, पृ० २०३

११. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १४३। कुरान सूरे सिजदः (३२) आयत ८, सूरे तारिक (८६) आयत ५-६ के अनुसार।

है कि हर चीज़ मौत का मजा चखती है।[1] कबीर और दादू के यहां इसके अनेक उदाहरण हैं जो इन्हें मुस्लिम सूफ़ियों तथा मुस्लिम समाज के संपर्क से प्राप्त हुए मालूम होते हैं—

जामै मरै सो जीव है, रमिता राम न होइ।
जामण मरण थैं रहित है, मेरा साहिब सोई ॥[2]
राव रंक सब मरहिंगे, जीवै नाही कोई।
सोई कहिये जीवता, जो मरजीवा होई।[3]

काएनात (सृष्टि)

सृष्टि की रचना के संबंध में हिंदू-दर्शन की दृष्टि से आमतौर पर कनक-कुंडला न्याय, अग्नि-स्फुलिंग-न्याय आदि के अनुसार सृष्टि को ब्रह्मांश स्वरूप ही चित्रित किया गया है। इस्लाम से पूर्व सामी जातियों में सृष्टि संबंधी विचार लगभग एक जैसे मिलते जुलते हैं। यहूदियों के प्राचीन पैग़ंबर मूसा की सृष्टि-रचना-संबंधी कथा को ईसाइयों ने भी माना है और क़ुरान में भी उनके संकेतों के साथ-साथ यह कहा गया है कि 'आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है सब उसी का है, वह उसका बनाने वाला है। जब किसी काम का हुक्म देता है तो कहता है 'कुन (हो जा) पस वह हो जाता है अर्थात् कुन फ़यकून मात्र से रचना हो जाती है।' अल्लाह वह है जिसने वेसतून (निराधार) आसमान ऊँचे किये जिन्हें तुम देखते हो और वह अर्श पर है।" और सूरज और चांद को एक निश्चित समय तक मुसख़्ख़र (वशीभूत) किया।"[4] और वही है जिसने पृथ्वी का विस्तार किया, और पहाड़ों और नहरों को रखा और प्रत्येक मेवे में दोहरे जोड़े को। रात को दिन में ढांपा, खेत और बाग़ों को बनाया।"[5]

---

१. कुल्लो नफ़सिन ज़ाए क़तुल मौत, कुरान, सूरे आले इम्रान (३) आयत १८४
२. क. दादू-बानी, भाग १, पृ० १८१
ख. साहिब राखै तौ रहै, काया माहैं जीव।
हुकमी बंदा उठि चलै, जबहिं बुलावै पीव।
दादू-बानी, भाग १, पृ० १८५
३. क. दादू-बानी, भाग १, पृ० १९२
ख. पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जात
देखत ही छिप जायगी, ज्यों तारा परभात ॥
कबीर, स० बा० सं भाग १, पृ० ६१५
ग. माणस जल का बुदबुदा, पानी का पोटा। दादू-वानी, भाग १, पृ० २१०
४. क़ुरान सूरे बक़र (२), आयत ११५-११६
५. क़ुरान सूरे रअद (१३), आयत २-४

अल्लाह जो चाहे पैदा करे वह प्रत्येक वस्तु पर क़ादिर (अधिकारी) है।[1] क़ुरान में सृष्टि रचना सम्बंधी स्थान स्थान पर उल्लेख मिलता है तथा कुन फ़यकून इस सबका राज है।[2] हिंदी साहित्य में सृष्टि की रचना संबंधी विचार एक ओर तो हिंदू मतानुसार हैं और साथ ही इस्लाम के अनुसार भी मिलते हैं। सूफ़ियों ने समन्वयात्मक रूप में दोनों ढंग से वर्णन किया है। किंतु 'भूतों' की उत्पत्ति के विषय में पद्मावत में जो निम्नलिखित क्रम मिलता है वह तैत्तिरीय उपनिषद् में वर्णित क्रम से मेल नहीं खाता।[3]

पवन होइ भा पानी, पानी होइ भइ आगि।
आगि होइ भइ माटी, गोरख धंधे लागि॥[4]

जायसी और शेखनवी द्वारा वर्णित सृष्टि संबंधी विचार इस्लाम के निकट हैं। शेख़ नवी ने भी संकेत रूप में कुन फ़यकून द्वारा ही रचना मानी है—

है जेहि नाद जगत यह करो।[5]

क़ुरान कहता है कि ख़ुदा एक था और एक रहेगा।[6] समस्त महाशून्य में उसी की एक सत्ता थी कोई दूसरा न था। उसने आदि पुरुष के हितार्थ अठारह सहस्र जीव योनियों की सृष्टि की। भारतीय दर्शन तथा हिंदुओं के मतानुसार चौरासी लाख योनियां मानी गई हैं।

आदिहु ते जो आदि गुसाईं। जेइ सब खेल रचा दुनियाईं॥
जस खेलेसि तस जाइ न कहा। चौदह भुवन पूरि सब रहा॥
एक अकेल, न दूसर जाती। उपजे सहस अठारह भांती।
वह सब किछु, करता किछु नाहीं। जैसे चलै मेघ परछाहीं॥
परगट गुपुत विचारि सो बूझा। सो तजि दूसर और न सूझा।[7]

कुन फ़यकून अर्थात हुकम या आदेश मात्र से सृष्टि की रचना के संबंध में कुरान में जो स्थान स्थान पर वर्णन मिलता है उसके अनुसार दादू और नानक के कथन द्रष्टव्य हैं जिनमें ख़ुदा के हुकम और क़ुदरत से सृष्टि की रचना हुई है—

१. कुरान, सूरे नूर (२४), आयत ४४-४५
२. कुरान सूरे यासीन (३६), आयत ८०-८२
३. जायसी-ग्रंथावली, पृ० १४६
४. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० १८०
५. अनुराग-बांसुरी, पृ० ४६
६. होवल अव्वलोवल आख़िरो वज़्ज़ारिको वल्बातिन।
७. जायसी ग्रंथावली (अख़रावट), पृ० ३०३

एक सबद कुछ किया, ऐसा समरथ सोई :[1]
हुकमे आवै हुकमें जाइ। आगै पाछै हुकमि ।[2]
पल मंह तीरथ कीन सब, भोग भुगत सब दीन ।
अस दाता करतार की, नकस भलो लौ लीन ।[3]

अर्श

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है सब आसमानों से ऊपर का अल्लाह का सिंहासन[४], नवां आसमान। क़ुरान में अर्श सम्बन्धी अनेक आयतें दी हुई हैं। 'वे फ़रिश्ते जो अर्श के चारों ओर खड़े हैं, अपने रब की प्रशंसा करते हैं, उसकी पाकी का बखान करते हैं, उस पर ईमान लातें और गुनाह बख्शवाते हैं।'[५] उसने ऊंचे आसमानों को पैदा किया वह रहमान है अर्श पर क़ायम है जो कुछ आसमानों और जो गीली मिट्टी के नीचे है सब उसका है।[६] हिंदी में अर्श, फ़र्श, आसमान, ज़मीन

१. क. दादूवानी, भाग १, पृ० १८८
ख. (दादू) कर्ता करै त निमष में, जल माहैं थल थाप।
थल माहैं जलहर करै, ऐसा समरथ आप। दादू-वानी भाग १, पृ० १८४
ग. दादू कर्त्ता करै त निमष में, ठाली भरै भंडार।
भरिया गहि ठाली करै, ऐसा सिरजनहार।। दादू-बानी, भागा १, पृ० १८४
२. (क) नानक-वाणी, (गउड़ी सबद २), पृ० ५७
(ख) हुकमी होवनि जीअ। नानक-वाणी (जपुजी, पउड़ी २), पृ० ५७
(ग) हुकमी होवनि आकर हुकमु न कहिआ जाई।
हुकमि होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई ।।
इनका हुकमी वखसीस इकि हुकमी सदा भवाई आह ।। नानक-वाणी, पृ० ८०
(घ) कुदरति दिसै कुदरति सुणीए कुदरति भउ सुख सारु।
कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब आकारु ।।
कुदरति पउण, पाणी वैसंतरु कुदरति धरती खाकु। नानक-वाणी, पृ० ३२६
सभ तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकी नाई पाकु।
नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु ।। नानक-वाणी, पृ० ३२६
३. हंस जवाहर, पृ० ३
४. क़ुरान, सूरे आराफ़ (७), आयत ५३
५. क़ुरान, सूरे मोमिनून (४०), आयत ६
६. क़ुरान, सूरे ताहा (२०), आयत ४-५

सम्बन्धी विचार मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क का परिणाम मालूम होते हैं।

> आपै आप 'अरस' के ऊपर, जहां रहै रहमान।[1]
> दादू 'अरस' खुदाय का, अजरावर का थाना।
> (दादू) आपा मेटैं एक रस, मन इस्थिर लैलीन।
> 'अरस' परस आनंद करै, सदा सुखी सो दीन॥[2]
> चंद सूर सिजदा करैं, नांव अलह का लेइं।
> दादू जिमी असमान सब, उन पांवों सिर देहं॥[3]

दुनिया फ़ानी—(क्षणभंगुरता)

यों तो संसार भर के धर्मों में संसार और जीव को क्षण भंगुर कहा गया है किंतु जो धर्म मनुष्य या प्रकृति को उसी परमात्मा का अंश मानते हैं और पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं उन मतों और इस्लाम में एक अंतर यही है कि इस्लाम पुनर्जन्म को न मानकर मृतक को क़यामत तक प्रतीक्षा करने को कहता है। क़ुरान में कहा गया है कि 'और जो कोई ज़मीन पर है वह फ़ानी (क्षण भंगुर) है और तेरे रब की जात बाक़ी रहेगी'[4] 'जान रखो कि दुनिया की जिंदगी इससे अधिक कुछ नहीं कि खेल तमाशा है और संसार की ओर दौड़ना, घमंड करना, किसान की खेती के समान है जो हरी होती है और मुरझा जाती है।'[5] मलूकदास भी दुनिया को नाचीज़ बताते हैं।[6] और कबीर भी खलक को चबैना।[7]

---

१. (क) दादू-बानी, भाग १, पृ० ६३, भाग १, पृ० २२४
   (ख) मुल्ला तहां पुकारिये, जहं अरस इलाही आप। दादू-बानी, भाग १, पृ० १३०
   (ग) बहुरि अरस तें आइकै, तब अंबर लीजी। सूरसागर, ३०३८

२. दादू-बानी, भाग १, पृ० १६५

३. (क) दादू-बानी, भाग १, पृ० १५२
   (ख) (दादू) ये सब किसके पंथ में, धरती अरु 'असमान'।
   दादू-बानी, भाग १, पृ० १३६
   (ग) 'अरस' 'जिमी' औजूद में तहां तपैं अफताब।
   दादू-बानी, भाग १, पृ० १३६

४. क़ुरान, सूरे रहमान (५५), आयत २५-२७

५. क़ुरान, सूरे हदीद (५७), आयत १६

६. इस दुनिया नाचीज के तालिब है कुत्ते।
   लज्जत में मोहित हुए, दुख सहे बहुत्ते॥ मलूक-बानी, पृ० १६

७. (क) झूठे सुख कौं सुख कहै, मानत है मन मोद।
   'खलक चबीणां काल का', कुछ मुख में कुछ गोद। कबीर-ग्रंथावली, पृ० ५६

संसार की क्षणभंगुरता के विषय में क़ुरान कहता है 'प्रत्येक प्राणी मौत को चखने वाला है'[१] यह दुनिया केवल तमाशा है और आखिरत (मृत्यु के बाद) का घर ही वास्तविक जीवन है यदि वे समझें'[२] 'और सांसारिक जीवन की बात तू उनको सुना (ऐ मुहम्मद) वह पानी के समान है जो हमने आसमान से उतारा फिर उसमें वनस्पति पैदा की फिर वह नष्ट हो गई। अल्लाह हर चीज पर क़ादिर है।[३] क्षण-भंगुरता के विषय में ऊपर दिये गये क़ुरान के उद्धरण और निम्न पदों में भाव एवं भाषा की दृष्टि से मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क का परिणाम मालूम होता है। रैदास के अनुसार भी दुनिया नाचीज़ (फ़ानी) है और मलूकदास भी तन, मन, धन सबको क्षण भंगुर बताते हैं।

> यह दुनिया नाचीज के जो आसिक होवै
> भूलै जात खुदाय को, सिर धुन धुन रोवै।[४]
> तन मन धन नहि आपना, नहिं सुत औ नारी।
> बिछुरत बार न लागई, जिय देखु विचारी॥[५]
> इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी।[६]

स्थूल जीवन को जिस प्रकार क़ुरान ने पानी के समान बताया है, कबीर भी शरीर को बुलबुला बनाते हैं—

> यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाही बार॥
>
> × × ×
>
> पाणी केरा बुदबुदा इसी हमारी जाति।
> एक दिनां छिप जाहिगे, तारे ज्यूं परभाति।[७]

(ख) कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस
ना जाणै कहां मारिसी, कै घर कै परदेस। कबीर-ग्रंथावली, पृ० ५७

१. क़ुरान, सूरे अंबिया (२१), आयत ३४ तथा सूरे आलेइमरान (३) आयत १८४
२. क़ुरान, सूरे अनकबूत (२९), आयत ६४
३. क़ुरान, सूरे कहफ़ (१८), आतत ४५
४. रैदास की बानी, पृ० १६
५. (क) मलूक-बानी, पृ० ३१
(ख) बरजन हार न कोई, सबै चाहि जिउ दीन्ह॥ जायसी-ग्रंथावली (पद्मावत), पृ० ३
६. (क) मीरां, पृ० ७१
(ख) हम आदमी हां इक दमी मुहलति मुहत, न जाण। नानक-वाणी, पृ० ४०९
७. कबीर-ग्रंथावली, पृ० ५७

मलाइक (फ़रिश्ते) और जिन्न

जिन्न एक प्राणी है जिसकी उत्पत्ति अग्नि से मानी गयी है। ये मनुष्य की भांति शरीरधारी नहीं होते, नज़र भी नहीं आते। ये मनुष्यों और फ़रिश्तों से भिन्न हैं। क़ुरान में एक सूरत अलजिन्न (७२) भी है। क़ुरान में एक स्थान पर कहा गया है कि 'जिन्नों को अग्नि के शोलों से पैदा किया।[1] इसके अतिरिक्त जिन्नों के अनेक कामों (कर्तव्यों) का भी कुरान में उल्लेख है जैसे पैग़म्बरों (सुलैमान और दाऊद) के आधीन नियुक्त।[2] शैतान भी पहले जिन्न ही था किंतु उसने अपनी तीव्र बुद्धि और अल्लाह की बहुत इबादत (घोर तपस्या) करने के कारण ख़ुदा का नैकट्य प्राप्त कर लिया था। उसका अलग वर्णन किया गया है। हिंदी में जिन्न का वर्णन नानक जी ने भी किया है—

कलि अंदरि नानका 'जिनां' दा अउतारू।
पुतु 'जिनूरा' धीअ 'जिनूरी' जोरू 'जिनां' दा सिकदारू।[3]

मलाइका

यह अरबी भाषा का शब्द है और मलक का बहुवचन। जिसका अर्थ फ़रिश्ते (देवतागण) है। मलाइका के विषय में क़ुरान में अनेक स्थानों पर उल्लेख है तथा इनको जो काम सौंपा गया है उसका भी वर्णन मिलता है। जैसे वही (ईस संदेह) लेकर समय-समय पर पैग़ंबरों के पास जिब्राईल का आना[4] तथा अर्श के चारों ओर नियुक्त रहने का आदेश अल्लाह ने दिया है।[5] ये फ़रिश्ते अल्लाह की इबादत करते हैं।[4] कहने का तात्पर्य यह है कि ख़ुदा ने इन्सान से पहले मलाइका और जिन्नात को अपने आदेश से बनाया ताकि वे अल्लाह की आराधना करें और उसका हुकुम मानें।

हिंदी-साहित्य में अनेक स्थानों पर इनका ऐसा उल्लेख मिलता है जिससे ऐसा पता चलता है किये हिंदी कवि मुस्लिम संपर्क के कारण इनका अच्छा खासा ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। मुख्य रूप से चार फ़रिश्ते इज्राईल, इसराफ़ील, जिबराईल और मीकाईल

१. क़ुरान, सूरे रहमान (५५), आयत १४, १५, सूरे हिज्र (१५), आयत २७
२. क़ुरान, सूरे सबा (३४), आयत १२-१३
३. नानक-वाणी, पृ० ३६६
४. क़ुरान, सूरे शोअरा (२६), आयत १९३, १९४ तथा सूरे नहल (१६) आयत १-२ विस्तृत विवरण के लिए देखिये शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ७९
५. क़ुरान, सूरे मोमिनून (४०), आयत ६
६. जायसी-ग्रंथावली (आखिरीकलाम) पृ० ३४६

यहाँ उल्लेखनीय हैं—

काल 'फिरिस्तन' करे जो होई। कोइ न जागै, निसि असि होई।[1]
पहिलेइ रचै 'चारि' उढ़वायक। भए सब अढ़वैयन के नायक॥[2]
'जिवराइल' औ 'मैकाईलू'। 'असराफील' औ 'अजराईलू'॥[3]

जायसी ने अखरावट में और आखिरीकलाम में क़यामत (निर्णय का दिन) के सिलसिले में इनका विस्तार वर्णन किया है।

गुरुग्रंथ साहब में भी मलाएका का कई स्थानों पर उल्लेख किया गया है[4]—

सिदकु सबूरी सादिका, सबरू तोसा मलाइका।
दीदारु पूरे पाइसा, थाइ नाही खाइका॥[5]

अब हम इन फरिश्तों के विषय में इनके ख़ुदा द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों के साथ हिंदी में उनके उदाहरणों को प्रस्तुत करेंगे जो मुस्लिम धर्म एवं संस्कृति के संपर्क का परिणाम हैं।

इज्राईल

चार प्रमुख फ़रिश्तों में से एक हैं यानी मौत का फ़रिश्ता (यमदूत)।[6] यह फ़रिश्ता अल्लाह के हुक्म से प्राणियों की जान खींच लेता है और क़यामत के दिन भी यह सब की रूह क़ब्ज़ करेगा (मारेगा)।

'अजराइल' कँह बेगि बोलावै। जीउ कहाँ लगि सबै लियावै।'[7]
दुनिया मुकामे फानी तक़ीक दिल दानी

---

१. जायसी-ग्रंथावली (अखरावट), पृ० ३०६
२. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३४७
३. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३०३-३३८, ३३९-३६१
४. गुरुग्रंथसाहब वार रामकली, श्लोक महला १, वार गउड़ी महला ६, राग तिलंग, महला ५, राग मारू आदि
५. नानक-वाणी, पृ० १६८
६. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० १९०
७. क. जायसी-ग्रंथावली (आखिरकलाम) (तथा अन्य विवरण भी है), पृ० ३४६
ख. छाड़ै गुस्सा जीवत मरै। तेहिं 'इजराइल' सिजदा करै। मलूक बानी, पृ० २२
ग. ररा करि टोप ममां करि बखतर, ग्यान रतन करि पाडा रै।
ऐसे जो 'अजराइल' मारै, मस्तिकि आवै भागरे। कबीर-ग्रंथावली

मम सर मूए 'इज़राइल' गिरिफ़तः दिल हेच न दानी ।[1]

जिब्राईल

मुक़र्रिबून (ईश-कृपा से निकट) में से एक है । यह फ़रिश्ता अल्लाह की भेजी हुई 'वही' (भेजा हुआ संदेश) लेकर पैग़ंबरों के पास आता रहा है ।[2] इसको रुहुल अमीन भी कहा गया है । क़ुरान में इस फ़रिश्ते का अनेक स्थान पर उल्लेख है ।[3] रुह क़ब्ज़ (प्राण लेने) करने का काम भी इन्हें ही सौंपा गया है । हिंदी में इसका उल्लेख जायसी (आखिरीकला) तथा अन्य कवियों ने भी किया है—

मुहम्मद किस के दीन में, 'जबराइल' किस राह ।[4]
है जमराज कहां 'जबरील' है ।[5]

इसराफ़ील

यह भी एक फ़रिश्ता है जिसका कर्त्तव्य खुदा के हुकुम से क़यामत (निर्णय) के दिन सूर (तुरही) फूंक कर (बजा कर) मरे हुए लोगों को जगाना होगा ।[6] इसकी

१. नानक-वाणी ४२७, रागतिलग महला १ (७२१) तथा अन्य उदाहरणों के लिए देखिए—वार रामकली श्लोक महला १, वार गउड़ी पुरु महला ६ । रागतिलंग महला ५ । राग मारु महला ५ और श्लोक फ़रीद
२. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० ७८
३. क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयत ९८, सूरे-त्वाहा (२०) आयत, ९६, सूरे शोअरा (२६), आयत १९५-१९६
४. क. दादू-बानी, भाग १, पृ० १३६
   ख. 'जिबराइल' पुनि आयसु पावै । सूंवे जगत ठांव सौ पावै ।
   देखिये जायसी-ग्रंथावली आखिरीकलाम पृ० ३४५-३४८
   ग. 'जिब्राईल' पाउब फरमानू आई सिस्टि देखब मैदानू ।
   आखिरीकलाम, पृ० ३४५
   'जिब्राईल' जग आइ पुकारब । नाव मुहम्मद लेत हंकारब ।
   पहिले जिउ जिबरैल क लेई । लौरि जीउ मैकाल देई ।। आखिरीकलाम, पृ० ३४५
५. क. मलूक-बानी, पृ० २७
   ख. आख़िर जमाने को डरता है मेरा दिल ।
   जब 'जबरील' हाथ गुर्ज लिये आवेगा ।
   खाब सी दुनियां दिल को न करै सात पांच ।
   काली पीली आंखें कर फिरिश्ता दिखलावैगा । मलूक-बानी, पृ० २७
६. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० १८४, १९०

आवाज़ सुन कर लोग क़बरों से उठ-उठ कर हिसाब किताब और फ़रियाद (याचना) के लिए खुदा के सामने आएंगे। जायसी के आखिरीक़लाम में क़यामत के वर्णन में इसका उल्लेख अधिक किया है[1]:—

पुनि 'इसराफीलहिं' फरमाए। फूंके सब संसार उड़ाए॥
दै मुख 'सूर' भरै जो सांसा। डोलै धरती, लपत अकासा॥[2]

मीकाईल

प्रमुख चार फ़रिश्तों में से मीकाईल भी एक है जिसका उल्लेख भी क़ुरान में है।[3] यह रोज़ी, खुशहाली और वर्षा का फ़रिश्ता है जो अल्लाह के हुकुम से काम करता है।[4] क़यामत के दिन इनसे अल्लाह जल थल एक करने के लिए पानी बरसाने का काम भी लेगा—

पुनि 'मैकाइल' आयसु पाए। उन बहु भांति मेघ बरसाए॥
'मकाईल' पुनि कहब बुलाई। बरसहु मेघ पिरथिवी जाई॥[6]

अज़ाज़ील (इबलीस, शैतान)

जब तक इस फ़रिश्ते को अपने आप पर घमंड न था तब तक इसका नाम अज़ाज़ील था और इसको मोअल्लेमुलमलकूत (सब फरिश्तों का गुरु) की पदवी खुदा ने दे रखी थी और वास्तव में यह खुदा का सबसे क़ाबिल और सबसे अधिक भक्त था। किंतु सृष्टि रचना के पश्चात् जब अल्लाह ने आदम (मनु) को सिजदा (प्रणिपात) करने को कहा तो सब फ़रिश्तों ने तो आदम को सिजदा कर लिया किंतु इसके घमंड ने यह कहलवा दिया ऐ अल्लाह मैं आग से बनाया गया और आदम मिट्टी से। मैं इसे सिज्दा कैसे करूँ। बस यह बात अल्लाह को पसंद नहीं आई और उसी दिन से इसे स्वर्ग से निकाल दिया गया। इबलीस का क़ुरान में आदम के क़िस्से के साथ नौ स्थानों पर उल्लेख है।[7] अल्लाहताला से उसने अपनी भक्ति के कारण एक याचना

१-२ क. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३४५-३४७
ख. पुनि जिउ देइहि इसराफीलू। तीनिहु कहं मारै अजराईलू।
आखिरीकलाम पृ० ३४६

३. क़ुरान, सूरे बकर (२), आयत ९२

४. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० ३७८

५-६. क. जायसी ग्रंथावली (आखिरीकलाम), पृ० ३४४, ३४५
ख. पहिले जिउ जिबरैल क लोई। लौटि जीउ मैकाइल देई।
आखिरीकलाम, पृ० ३४६

७. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० १४५

की कि मुझे इतनी छूट दे दें कि मैं क़यामत तक आदम की औलाद (वंश) को बुराई की ओर बहकाता रहूँ। 'उसको छूट दे दी गई और यह कहा गया कि जो तेरे बह-काये में आ जाएंगे क़यामत के दिन उनका भी वही हश्र (दुष्परिणाम) होगा जो तेरा होगा।'[1] क़ुरान में अनेक स्थानों पर कहा गया है कि शैतान इंसान का खुला दुश्मन है, इससे सावधान रहो।[2] हिंदी साहित्य में सूफ़ियों ने इसका इबलीस, शैतान तथा नारद नामों से उल्लेख किया है। तथा अन्य कवियों के यहाँ भी इसका उल्लेख मिलता है। ख़ुसरो ने आख की बुढ़िया की पहेली में शैतान का उल्लेख किया है और कबीर भी शैतानी हरकतों से परिचित हैं—

एक बुढ़िया 'शैतान' की खाला। सिर सफेद औ मुँह है काला।[3]

शैतान के विषय में सुंदरदास कहते हैं कि यदि तूने नफ़्स रूपी शैतान को क़ैद कर लिया तो फिर गोता नहीं खा सकता। गुरुग्रंथ साहब में कुमार्ग, शैतान से बचने का बहुत उल्लेख है—

नफ़स शयतान कूं कैद कर आपने क्या दुनी में फिरे खाय गोता।[4]

सिफती सार न जाणनी सदा बसै 'सैतानु'[5]

अर्थात् जो बुराई पर चलने वाले उस ख़ुदा का सार नहीं जानते उनमें शैतान बस रहा है। तीस रोजे (रमज़ान के) और (प्रतिदिन) पाँच (समय की) नमाज़ें पढ़ने पर भी जिसका नाम शैतान है उससे सदा होशियार रहो कहीं वह तुम्हारे इन सद्कर्मों को बरबाद न कर दे। धन दौलत काम नहीं आएगी सीधी राह पर चलो—

तीह करि रखे पंजि करि साथी नाउ 'सैतानु' मतु कढि जाई।
नानकु आखै राहि पै चलणा मालु धनु कितकू संजिआही।[6]

---

१. शाटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० १४५
२. क़ुरान, सूरे बनीइस्राईल (१७), आयत ५३, सूरे फातिर (३५), आयत ५
३. क. ख़ुसरो की हिंदी कविता, पृ० १७
ख. बाबा आदम की कछु न दरि दिखाई। उन भी भिस्त घनेरी पाई॥
दिल खल हलु जाकै जर दरुवानी। छोड़ि कतेब करै 'सैतानी'॥
कबीर-ग्रंथावली, पृ० १५०
४. सुन्दर-विलास, पृ० १२
५. नानक-वाणी (वार सोही शलोक महल्ला १), पृ० ४६८
६. नानक-वाणी (श्रीराग महला १ वार दो), पृ० १२६। शैतान के अन्य वर्णनों के लिए देखिये—गुरु-साहब वार मांझ महला १, वार दो। वार सारंग शलोक महला १, वार दो, वार जतेसरी शलोक महला ५, राग भैरों कबीर, श्लोक फ़रीद वार दो।

जायसी-ग्रंथावली में अखरावट और आखिरीकलाम में क़यामत (निर्णय का दिन) के संबंध में शैतान का कई स्थानों पर उल्लेख मिलता है। सृष्टि के मूल तत्वों का उत्पादन करके ईश्वर् अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने इब्लीस (शैतान) को बनाया। इस प्रकार हिंदी में शैतान का उल्लेख भी मुस्लिम संस्कृति संपर्क से आया है।

नूर मुहम्मद देखि तब, भा हुलास मन सोउ।
पुनि 'इबलीस' संचारेउ, डरत रहै सब कोउ॥[1]

नबी, रसूल, पैग़ंबर—

नबी अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है ईशदूत। फ़ारसी में पैग़ंबर (संदेश वाहक) तथा अरबी में रसूल शब्द भी इन्हीं अर्थों में आता है। सृष्टि की रचना के पश्चात् तथा आदम के जन्नत (स्वर्ग) से संसार में आने के बाद समय समय पर अल्लाह् ने जन कल्याण के लिए संसार के मनुष्यों में से उत्तम मनुष्यों को अपने आदेश से नबी, रसूल, पैग़ंबर नियुक्त किया।[2] नबी का बहुवचन *अंबिया* है। मुस्लिम संस्कृति के संपर्क से हिंदी में न केवल-नबी, रसूल, पैग़ंबर शब्दों का प्रयोग मात्र ही हुआ है अपितु क़ुरान में वर्णित असंख्य पैग़ंबरों तथा उनसे संबद्ध अनेक तलमीहात (अन्तर्कथाओं) का भी पर्याप्त विवरण उपलब्ध होता है।

बास सुबास लेउ हैं जहां। नावं 'रसूल' पुकारसि तहाँ।[3]

---

१. क. जायसी-ग्रंथावली (अखरावट), पृ० ३०५
   ख. आदम हौवा कहं सृजा, लेइ धाला कविलास।
   पुनि तहंवां ते काढ़ा, 'नारद' के बिसवास॥ जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३०७
   ग. आय सु 'इबलीस' हु जौ टारा। नारद होइ नरक महं पारा॥ जायसी-ग्रंथा० पृ० ३४१
   घ. खरिका लाइ करै तन घीसू। नियर न होइ, डरै 'इबलीसू'॥
   जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३३२
२. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ४२७, ४६६
३, क. जायसी-ग्रंथावली, आखिरीकलाम, पृ० ३४७
   ख. एतने वचन ज्योंहि मुख काढ़े। सुनत 'रसूल' भए ठाढ़े॥
   आखिरीकलाम, पृ० ३४८

सवा लाख 'पैग़ंबर' सिरजेउ। सात खंड बैकुंठ संवारेऊ ॥[1]
'नबी' नाम पैगंबर, पीरों हंदा थान वे ।[2]

आदम—

आदम अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ मूल पुरुष है। जो स्थान भारतीय धर्म एवं संस्कृति में 'मनु' का है लगभग आदम भी अर्थ समझने के लिए वही है। उत्पत्ति के विषय में क़ुरान में आदम एवं हव्वा (उनकी स्त्री) का स्थान स्थान पर वर्णन मिलता है। हिंदी के कवि क्योंकि लोक-कवि थे तथा मध्यकालमें मुस्लिम संस्कृति राजा-प्रजा सब तक पहुँच चुकी थी इसलिए क़ुरान में वर्णित आयतों के अनुरूप ही हिंदी में भी ऐसी चर्चा मिलती है। सामी पैग़ंबरवादी धर्मों में आदम चर्चा वैसी ही है जैसे क़ुरान में। क़ुरानमें आदम शब्द पच्चीस बार आया है।[3] अल्लाह कहता है कि हमने मनुष्य (आदम) को मिट्टी से बनाया।[4] हंसजवाहर में भी खुदा द्वारा आदम की पैदाइश के विषय में ऐसा ही मिलता है और खुसरो ने भी यही कहा है।

तुम करतार जगत के राजा। तुम अनूप 'आदम' उपराजा।[5]
बिधना ने एक 'परख' बनाया। 'तिरिया' दी और नीर लगाया ॥
चूक भई कुछ वासे ऐसी। देश छोड़ भये परदेसी ॥[6]

'चूक भई' यह क़ुरान की इस आयत की ओर संकेत है—'फिर शैतान ने उन दोनों (आदम हव्वा) को (बहका कर) पथ भ्रष्ट कर दिया और वे वहां से (जन्नत से) नीचे निकाल दिये गये।[7] जन्नत में आदम को सुख प्राप्त होना, समस्त सृष्टि में

---

१. क. जायसी-ग्रन्थावली (आख़िरीकलाम), पृ० २५७
ख. सतरि सहस सलार हैं जाकै, असी लाख 'पैकंबर' ताकै। कबीर-ग्रंथावली, पृ० १५२
ग. केते पीर केते 'पैग़ंबर', केते पढ़ें कुरान। दादू-बानी, भाग २, पृ० ६८
घ. सेख मसाइख पीर 'पैगंबर', है कोइ अगह गहै रे। दादू-बानी भाग २, पृ० ६८
२. क. दादू-बानी, भाग २, पृ० १२६
ख. जिसकी पनह पीर 'पैगंबर', मैं गरीब क्या गंदा। रैदास-बानी, पृ० २६
३. उर्दू एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, खंड १, भाग १, पृ० २२
४. क़ुरान, सूरे हजर (१५), आयत २६
५. क. हंसजवाहर, पृ० ५
ख. अवलि 'आदम' पीर मुलांना, तेरी सिफति करि भये दिवांनां।
कबीर-ग्रंथावली, पृ० ८४
६. खुसरो की हिंदी कविता (आदम की पहेली), पृ० २३
७. क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयत ३६

मानव का सर्वोत्तम होना आदि कथाएं क़ुरान और हदीस पर आधारित हैं[1] जो हिंदी में भी मिलती हैं। आदम को क़ुरान में आदि पुरुष अर्थात् अबुलबशर या अबू मुहम्मद या सफ़ी अल्लाह नामों से भी अभिहित किया गया है और सब फ़िरिश्तों को आदम को प्रणाम करने तथा उन पर आसमानी पैग़ाम का भी वर्णन है। जन्नत से शैतान के बहकाने से स्त्री के कहने पर दाना खाना, पतन होना[2] आदि का उल्लेख क़ुरान में है तथा हिंदी कवियों ने भी ऐसा ही वर्णन किया है—

'आदम' आदि जो पुरुष संवारा। सब सुख दीन कहें सरदारा।[3]
आदि पिता मैं ऐसा जाना। का दुख लाय खाय मक दाना।[4]
आदि अंत जो पिता हमारा। ओहु न यह दिन हिए विचारा॥
छोह न कींह निछोही ओहू। का हम्ह दोष लाग एक गोहूं॥[5]

इनके अतिरिक्त गुरुग्रंथसाहब[6], दादू-बानी तथा सूफ़ी कवियों के यहाँ आदम हव्वा का उल्लेख कुछ कम नहीं मिलता। विस्तार के भय से उसे यहां नहीं दिया जा रहा। स्पष्ट ही है कि यह मुस्लिम सम्पर्क का परिणाम है। आदि मानव तथा आदि पैग़ंबर के अतिरिक्त क़ुरान में अन्य पैग़ंबरों का भी उल्लेख मिलता है—'ऐ मुहम्मद, हमने तेरी तरफ़ ऐसी 'वही' (ईश-संदेश) भेजी जैसे हमने नूह (जल प्लावन वाली

१. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० १३
२, शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० १३-१४
३. (क) हंसजवाहर, पृ० २
(ख) भूतक देवपरी बुधि साजा। 'आदम' कीन सकल मनराजा।
जो करतार मिया अति कीना। सभी भोग आदम कहं दीना।
हंसजवाहर, पृ० ३
(ग) 'बावा आदम' पै नजरि दिलाई, नबी भिस्त घनेरी पाई।
कबीर-ग्रंथावली, पृ० १५२
(घ) 'बाबा आदम कौ कछु न दरि दिखाई। उन भी भिस्त घनेरी पाई।
कबीर-ग्रंथाबली, पृ० २५०
(ङ) आदम आदि सुधि नहीं पाई, मामां हवा कहां थैं आई।
कबीर-ग्रंथावली, पृ० १८१
४. (क) हंसजवाहर, पृ० १६५
(ख) आउ पिता जो जगतकर, छोड़ दींह कैलास
लीने 'तिरिया' के मते, 'नारद' मिटा सुवास। हंसजवाहर, पृ० १६५
५. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० १६७
६. गुरुग्रंथसाहब, राग भैरों, वार दो

कथा से सम्बद्ध) और इसके बाद अन्य नबियों और इब्राहीम व इस्माईल, इसहाक़ याक़ूब तथा उसकी संतान और ईसा, अय्यूब, यूनुस, हारून, सुलैमान की ओर भेजी थी'[1]

नूह

सूरे अंबिया (ईशदूत) (२१) में तथा सूरे नूह (७१) आदि में नूह के पैग़ंबर होने तथा ज़मीन पर भयंकर तूफ़ान, जलप्लावन कथा का वर्णन मिलता है कि किस प्रकार पृथ्वी अपने अपराधों के कारण जलमग्न हो गई थी और नूह एक किश्ती पर बच रहे थे।[2] हिंदी में भी यही अंतर्कथा कई स्थानों पर मिलती है तथा प्रसाद की कामायनी का भी एक बार इस दृष्टि से अध्ययन रोचकता से खाली न होगा। क़ासिमशाह तथा जायसी ने इस कथा तथा नबी का उल्लेख किया है—

तुम जल ऊपर देश बसावा। तुम हीं ऊपर शब्द उठावा।
'नौह' बनी जो बोहित पयारा। तुम खेवक परलो तब फेरा।[3]
'नूह' कहिन, जब परलै आवा। सब जग बूड़, रहेऊं चढि नावा।[4]

इब्राहीम

एक पैग़ंबर इब्राहीम हैं जिन्हें नम्रूद ने आग में डालकर जलाना चाहा था किन्तु अल्लाह के हुकुम से वह आग उनके लिए गुलजार (पुष्प वाटिका) बन गई।[5] इनका पिता विख्यात बुत (मूर्ति) बनाने वाला था जिसका नाम आज़र था।[6] क़ुरान शरीफ़ में एक सूरत सूरे इब्राहीम (१४) के नाम से ही है। क़ुरान में इनके पैग़ंबर होने का उल्लेख है। इन्हें खलीलुल्लाह (ईश्वर का मित्र) की उपाधि भी दी गई थी। इसका भी क़ुरान में वर्णन है। काबा इन्हीं का बनाया हुआ माना जाता है।[7] इब्राहीम खलीलुल्लाह का खुदा की शरण में जाना, आग का बाग़ हो जाना आदि का वर्णन ज्यों का त्यों हिंदी में मिलता है जो मुस्लिम संस्कृति के संपर्क का परिणाम है।

जो 'खलील' पुनि शरन तुम्हारी। जरत आग कीनी फुलवारी।[8]

---

१. क़ुरान सूरेनिसा (४), आयत १६३, १६४ तथा सूरे इनाम (६), आयत ८३-८८
२. शारटर एसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ ४५०-४५१
३. हंसजवाहर, पृ० ५
४. जायसी-ग्रंथावली (आखिरी कलाम), पृ० ३५२
५. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम पृ० १५४-५५
६. क़ुरान, सूरे इनआम (६), आयत ७६
७- क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयत १२४, सूरे आलेइमरान (३) आयत ९७
८. हंसजवाहर, पृ० ५

जेइ गाढ़े सुमिरेउ करतारा । भए ताकहं फुलवारि अंगारा ।[१]
'इब्राहीम' कह, कस ना कहत्यों । बात कहे बिन मैं ना रहत्यों ।[२]

यूसुफ़

यह अरवी भाषा का शब्द है । यह एक पैग़ंबर थे जो अपनी सुंदरता के लिए भी बहुत विख्यात हैं । क़ुरान में इनके नाम से एक सूरत सूरे यूसुफ़ (१२) भी है जिसमें इनका विस्तार से वर्णन है तथा इनके भाइयों का इनसे जलना (द्वेष), सौदागर के हाथ वेच देना तथा मिल जाना आदि का उल्लेख है ।[3] यूसुफ़ और जुलैखा का वर्णन प्रेमाख्यानक काव्यों (हिंदी) के अंतर्गत हमने लिखा है । यहाँ एक उदाहरण देकर संक्षिप्त करते हैं—

यूसुफ़ पड़े कौप अंधियारे । तुम्हीं मिसर पाट वैठारे ।[४]

यूनुस

यह भी एक पैग़ंबर थे । क़ुरान में इनके नाम से भी एक सूरत सूरे यूनुस (१०) है । वहाँ विस्तार से इनका तथा मछली का इन्हें निगल जाना और फिर ख़ुदा की कृपा से बच निकलना आदि का वर्णन है ।[५] क़ासिमशाह ने भी इनका उल्लेख किया है—

यूनुस पड़े मीन मुख मांहा । तोरे भजन भयो सुख ताहा ।[६]

मूसा

यह अरवी शब्द है । मूसा यहूदी, धर्म के प्रसिद्ध पैग़ंवर थे ।[७] ख़ुदा ने इनकी याचना पर अपना जलवा (नूर, प्रकाश) तूर (एक पर्वत) पर दिखाया था जिसकी वह ताव न ला सके और वेहोश हो गये थे, पर्वत भस्म हो गया था । ख़ुदा से इन्होंने बातचीत भी की थी । मुहम्मद साहव इन्हें भी अपने से पूर्व अनुकरणीय पैग़ंवर मानते थे । सूरे वनी इस्राईल (१७) तथा अन्य अनेक स्थानों पर क़ुरान में इनका वर्णन मिलता है ।[८] तौरैत (ईश्वर की उतारी हुई किताव) इन्हीं पर नाज़िल हुई थी । इनके

१. मधुमालती, पृ० १५०, पद १७८
२. जायसी-ग्रंथावली, आख़िरीकलाम, पृ० ३५२
३. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ५४६-६४८
४. हंसजवाहर, पृ० ५
५. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ६४५
३. हंसजवाहर, पृ० ५
७. क़ुरान, सूरे आराफ (७), आयत १५७-५८
८. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ४१४-१५

पास एक छड़ी थी जिसको अरबी में असा कहते हैं। वह अल्लाह के हुकुम से अनेक कठिनाइयों के अवसरों पर अनेक काम आती थी। इन्होंने क़ारून (विख्यात कृपण) फ़िरऔन घमंडी शासक और हामान का अंत किया।[१] मूसा तथा उनके 'असा' के मोजज़ों की अनेक अन्तर्कथाओं का हिंदी के उदार लोक कवियों में वर्णन मिलता है जो उन्होंने जन सामान्य में मुस्लिम संपर्क के कारण प्रचलन से ग्रहण की होंगी।

महर का 'असा' और तमसा भी मेहर का।[२]

'मूसा' पंथ नेर मुख दीना। पार भयो सो तुम कहं पहिना॥[3]

सौ दुइ कटक, कहउ लख घोरा। 'फरऊँ' रोवि नील महँ बोरा।[४] यहाँ पर जायसी ने अल्लाह के हुकुम से मूसा द्वारा फ़िरऔन को नील नदी में डुबवाने की ओर स्पष्ट संकेत किया है तथा क़यामत (निर्णय) के दिन मुहम्मद साहब के एक बार मूसा के पास जाने को भी कहा है किंतु मूसा ने यह उत्तर दिया कि मैं तो स्वयं इस समय कुछ नहीं कर सकता और फिर उन्होंने फ़िरऔन वाली बात कही।'[५]

ईसा

ये ईसाईयों के पैग़ंबर थे। बाइबिल (इंजील, तौरैत) इन्हीं पर नाज़िल हुई थी। इनके कई मोजज़े हैं जैसे अल्लाह के हुकुम से मुर्दों को ज़िंदा करना आदि। क़ुरान में सूरे मरयम (१९) में ईसा के विषय में विस्तार से बताया गया है तथा अन्य स्थानों पर भी यह स्पष्ट किया गया है कि ईसा और ख़ुदा का पुत्र पिता का कोई संबंध न था। ऐसा कहना जघन्य अपराध है।[६] जायसी ने इनके मोजज़े तथा क़यामत में मुहम्मद साहब से भेंट का उल्लेख किया है—

---

१. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ४१४-१५
२. रैदास की बानी, पृ० ३१
३. हंसजवाहर, पृ० ५
४. जायसी-ग्रन्थावली, पृ० ३४१
५. पुनि जैहैं 'मूसा' क दोहाई। 'ऐ बंधु ! मोहिं उपकरु आई॥
पहिले मो कहँ आयसु दीन्हा। फरऊं से मैं झगरा कीन्हा॥
+ + +
'रोवि नील' कै डारेसि झुरा। फुर भा झूठ, झूठ भा फुरा॥
पुनि जो मो कहं दरसन भएऊ। कोह तूर रावट होइ गएऊ॥
जायसी-ग्रन्थावली (आख़िरी कलाम), पृ० ३५१-३५२
६. विस्तार के लिए देखिये—शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० १७३-१७४

'ईसा' कहिन कि कस ना कहत्यों। जो कछु कहे क उत्तर पवत्यों॥
मैं मुए मानुस बहुत जियावा। औ बहुतैं जिउ-दान दियावा॥[1]

खिज्र

खिज्र एक पैग़ंबर, जिनका क़ुरान में अन्य स्थानों के साथ-साथ सूरे कहफ़ (१८) में विस्तार से वर्णन है,[2] उसमें पैग़ंबर मूसा का खिज्र के साथ एक यात्रा का वर्णन दिया हुआ है। ख़ुदा ने इन्हें क़यामत तक के लिए अमर कर दिया है। इनका प्रधान काम भूले भटके हुओं का पथ प्रदर्शन करना है। भारतीय धर्म दर्शन में हनुमान, विभीषण कृपाचार्य, मार्कण्डेय और अश्वत्थामा से भी ऐसी ही कथाएं संबद्ध हैं। महान् सूफ़ियों का ख्वाजा खिज्र से एक खास संबंध बताया जाता है। वह समय समय पर खिज्र से प्रेरणा प्राप्त करते रहते हैं।[3] खिज्र की आकृति एवं वेश भूषा आदि का उल्लेख जैसा मुस्लिम संस्कृति की कथाओं में मिलता है, लगभग वैसा ही हिंदी साहित्य के कवियों ने वर्णित किया है।

देते उस सागर के तीरा। ठाढ़े 'हज़रत ख्वाजा' पीरा॥
फटा ताज शीश पर आसा। पाँव खड़ाऊं लिये कर आसा॥
हरित रंग पीरा है गाता। मानौं रूप भानु परभाता॥
कहा के ख्वाजे ख्रिजिर मम नांव। रखौं न ठांव जो बरपों गांव॥

\+ \+ \+

ख्वाजहख्रिजिर जो विमल गुरु, सिद्ध अमल दै पीर।
पण्डित भे बुझ मनहिनां, बहुत लगाऊ नीर॥[4]
चले जो नांघ चढ़े दै पाऊं। ख्वाजेह खिजर देखि तेहि ठाऊं॥[5]

मुहम्मद साहिब

क़ुरान और हदीस में यह बात स्पष्ट रूप से दी गई है कि जब-जब संसार में मनुष्य एक ख़ुदा की इबादत को छोड़ कर अपने हाथ से बनाए हुए बुतों को ख़ुदा मान

---

१. जायसी-ग्रन्थावली (आखिरी कलाम), पृ० ३५२
२. क़ुरान, सूरे कहफ़ (१८), आयत ६०-८२
३. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० २३५, विस्तृत विवरण के लिए देखिये—पृ० २३२-१३५
४. हंसजवाहर, पृ० १०
५. क. हंसजवाहर, पृ० २४
ख. ख्वाजे खिजर देखि बह माहां। आये मन परखे चलि ताहां॥
मैं तो ख्वाजे ख्रिजर का चेला। ताहि भरोस चहूं ना कीना।
हंसजवाहर, पृ० १९८, १९९

बैठता है या उन प्राकृतिक शक्तियों की पूजा में लग जाता है, जो खुदा ने मनुष्य के हितार्थ बनाई हैं तथा प्रत्येक प्रकार से पतनोंमुख हो जाता है तब खुदा की ओर से भ्रष्ट मनुष्यों का पथ-प्रदर्शन करने के लिए पैग़ंबर भेजे जाते रहे हैं। अल्लाह ने क़ुरान में कहा है कि 'ऐ मुहम्मद हमने तेरी ओर ऐसी वही (ईश संदेश) भेजी है जैसी हमने नूह और उसके बाद अन्य नबियों और इब्राहीम, इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब, ईसा, अय्यूब, यूनुस, हारून सुलैमान की ओर भेजी थी और दाऊद को हमने ज़बूर (आसमानी पुस्तक) दी और अन्य कई रसूल हैं जिनका विवरण हमने तुझे पहले सुनाया और कई रसूल हैं जिनका हाल हमने तुझको नहीं सुनाया।[१] यह पैग़म्बर खुदा की हिदायत (निर्देश) तथा अपने सदाचरण से मानवता के कल्याण का प्रयत्न करते रहे हैं।

मुहम्मद साहब इस्लाम धर्म के संस्थापक-पैग़म्बर थे। इनके पिता का नाम अब्दुल्लाह तथा माता का नाम आमना था। इनका जन्म ५७० ई० में अरब के प्रसिद्ध प्रदेश मक्का में हुआ था तथा मृत्यु ६३२ ई० में हुई। क़ुरान एक आसमानी (खुदा ने जिबराईल के माध्यम से भेजी थी) किताब है।[२] इक़बाल के कथनानुसार 'अब मनुष्य इतना समझदार हो गया है कि अब उसे किसी नये नबी की आवश्यकता नहीं'[३] क़ुरान में स्थान स्थान पर आया है कि मुहम्मद आख़िरुज्ज़माँ पैग़म्बर हैं अर्थात् अंतिम रसूल। 'ऐ किताब वालो हमारा रसूल (मुहम्मद) हमारा आदेश सुनाने तुम्हरी ओर उस समय आया है जबकि अब रसूल आने बंद हो गए।'[४] क़ुरान में एक सूरत सूरे मुहम्मद (४७) भी है। हिंदी साहित्य में मुहम्मद संबंधी जितना भी उल्लेख मिलता है वह लगभग शब्दशः क़ुरानी आयत का अनुवाद मात्र है जो क़ुरान में स्थान स्थान पर दिया गया है। हिंदी के सूफ़ी कवियों ने अपने से पूर्व की फ़ारसी मसनवियों के आधार पर ही हिंदी मसनवियों के स्तुति खण्ड में मुहम्मद साहब का उल्लेख किया है—

रतन एक बिधनै अवतारा। नाव मुहम्मद जग-उजियारा॥[५]

यहाँ अवतार शब्द का अर्थ खुदा का स्वयं मुहम्मद रूप में अवतरित न होकर, पैदा करने, उतरने से ही है।

दादू दयाल के निम्न पद में मुहम्मद के आखिरुज्ज़माँ (अन्तिम) रसूल होने का भी उल्लेख है तथा क़ुरान की इन आयतों का भी अनुवाद है 'कि हर चीज़ मौत का मज़ा चखेगी।' तथा क़ुरान में कहा है कि 'मुहम्मद तो एक रसूल है उससे पहले भी बहुत से रसूल गुज़र गये हैं वह भी मर जाएगा।'[६]

---

१. क़ुरान, सूरे निसा (४), आयत १६३-१६५
२. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ३९०-४०४ के आधार पर
३. नक़दे-इकबाल, पृ० १७०
४. क़ुरान, सूरे माइदा (५), आयत १९
५. जायसी-ग्रंथावली (आखिरी कलाम), पृ० ३४१
६. क़ुरान, सूरे आलेइम्रान (३) आयत १८५, सूरे आलेइम्रान (३) आयत, १४४

(दादू) कहाँ 'मुहम्मद' मीर था 'सब नबियौं सिरताज'।
सो भी मरि माटी हुआ, अमर अलह का राज ॥[1]

सूफ़ियों के मतानुसार सृष्टि की रचना ही मुहम्मद की प्रीति के फलस्वरूप मानी गई है तथा एक हदीस है जिसका अर्थ है कि 'मैं एक छिपा हुआ खज़ाना था। मेरी चाह थी कि मुझे सब लोग जानें अतः मैंने मखलूक़ (सृष्टि) की रचना की'[2] जायसी ने अखरावट में ऐसा ही कहा है—

तब भा पुनि अंकूर, सिरजा दीपक निरमला।
रचा मुहम्मद नूर, जगत रहा उजियार होई ॥
ऐस जो ठाकुर किय एक दाऊं। पहिले रचा मुहम्मद नाऊं ॥
तेहि कै प्रीति बीज अस जामा। भए दुइ बिरिछ संत औ सामा ॥[3]

+ + +

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाम 'मुहम्मद' पूनौ-करा ॥
प्रथम ज्योति बिधि ताकर साजी। औ तेहि प्रीति सिहिटि उपराजी ॥[4]

सूफ़ी कवियों ने मुहम्मद साहिब के विषय में अपनी पुस्तकों में अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है। उनके मोजज़े शक़्क़ुलक़मर (एक ईश्वर प्रदत्त चमत्कार जो चंद्रमा में लकीर डालने से संबद्ध है) का भी मंझन कवि ने एक स्थान पर उल्लेख किया है—

वाकी अंगुरी करिकै अग्यां चांद भएउ दुइ खंड।[5]

मुहम्मद साहिब के रसूल होने तथा उनके मोज्ज़े (ख़ुदा द्वारा दिये गए चमत्कार) तथा अन्य वर्णन मुस्लिम संपर्क से ही हिंदी में आए होंगे, इसमें संदेह की क्या गुंजाइश है।

ख़लीफ़ा-चतुष्टय

ख़लीफ़ा अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ प्रतिनिधि, नाइब, नुमाइंदा या किसी की अनुपस्थिति में उसके स्थान पर काम करने वाला है।[6] इस्लाम में मुहम्मद साहिब के बाद धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से इन चारों ख़लीफ़ाओं का बड़ा महत्व है। धार्मिक दृष्टि से इन्होंने अपने अपने समय पर धार्मिक मान्यताओं को

---

१. दादूबानी, भाग १, पृ० २१०
२. कुंतो कंज़न मखफ़ियन फ़अहहब्तो अन आराफ़ फ़खलक़तुल खल्क़।
३. जायसी-ग्रंथावली (अखरावट), पृ० ३०४
४. जायसी-ग्रंथावली (पद्मावत), पृ० ४०
५. मधुमालती, पृ० ८, पद ७
६. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० २३६

दृढ़ता प्रदान की है तथा राजनैतिक दृष्टि से क्योंकि मुहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् ये चारों खलीफ़ा चुनाव द्वारा निर्वाचित होकर खलीफ़ा के पद पर आसीन हुए थे इसलिए इन्होंने जनतंत्रवादी सामाजिक व्यवस्था की उस काल में स्थापना की थी जबकि डिमाक्रेसी को कोई जानता भी न था तथा अनेक देश इनके युग में मुस्लिम शासन के आधीन हुए।[१]

मुस्लिम संपर्क से हिंदी साहित्य में इन चारों खलीफ़ाओं का यत्र तत्र उल्लेख तो मिल ही जाता है किंतु सूफ़ी कवियों ने अपनी मसनवियों के प्रथम खंड में खलीफ़ाओं का जो वर्णन किया है उसका उल्लेख इस शोध प्रबंध में मसनवी के अंतर्गत 'मनक़बत' में किया गया है।

ये चार खलीफ़ा हजरत अबूबकर सिद्दीक़, हजरत उमर फ़ारूक़, हजरत उसमान ग़नी तथा हजरत अली थे जो मुहम्मद साहिब के मित्र भी थे, साथी भी थे तथा बाद में चुनाव द्वारा उत्तराधिकारी भी निर्वाचित हुए।

अब सुनु 'चहूं मीत' कै बाता। सत नियाउ सास्तर के दाता।[२]
'चारि मीत' जो मुहमद ठाऊं। जिन्हहिं दीन्ह जग निरमल नाऊं।[३]
'चारि मीत' चहुं दिसि जग मोती। मांझ दिपै मनु मानिक-जोती।[४]
अहमद संग जो चारों यारा। चारिउ सिद्ध मीत करतारा।[५]

यहाँ पर 'चहूं मीत' चारि मीत, चारों यारा शब्द इन चारों खलीफ़ाओं के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं।

अबूबकर सिद्दीक़

मुहम्मद साहिब की मृत्यु के पश्चात् यह प्रथम खलीफ़ा चुने गए और ६३२ ई० से ६३४ ई० तक दो वर्ष खलीफ़ा चुने जाने के पश्चात् घोषणा की कि उस समय तक तुम्हें मेरी आज्ञाओं का पालन करते रहना चाहिये जब तक मैं ईश्वर और उसके पैग़ंबर (मुहम्मद साहिब) की आज्ञाओं का पालन करता रहूँ।[६] इन्होंने अपने शासन काल में शाम, इराक़, बसरा, दमिश्क़ आदि देशों पर विजय प्राप्त की। सदैव सत्य बोलने के कारण ही इनका लक़ब (उपाधि) सिद्दीक़ (सच बोलने वाला) पड़ गया।

१. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० २३७
२. मधुमालती, पृ० ६
३. जायसी-ग्रंथावली (पद्मावत), पृ० ५
४. जायसी-ग्रंथावली (आख़िरीकलाम), पृ० ३४१
५. हंसजवाहर, पृ० ४
६. हिस्ट्री आफ़ खलीफ़ाज, जलालुद्दीन सयूती—अनुवादक एच० एस० जारेंद, पृ० ६९-७०

हिंदी-साहित्य में विशेषरूप से सूफ़ी कवियों ने तथा अन्य कवियों ने भी इनका उल्लेख किया है। मंझन ने इन्हें प्रथम खलीफ़ा तथा मुहम्मद साहब के बचनों को मंत्र जानने वाला कहा है—

प्रथमहि 'अबाबकर' परवाना। सतगुर बचन मंत जिय जाना।[१]

जायसी तथा क़ासिमशाह ने भी अबूबकर को प्रथम ख़लीफ़ा, सत्यनिष्ठ तथा समझदार बताया है—

'अबाबकर' सिद्दीक़ सयाने। पहिले सिदिक दीन बड़ जाने।[२]
'अबूबकर' सद्दीक़ जो सांचे। पहिले प्रेम पंथ वह रांचे।[३]

उमर फ़ारूक़

इस्लाम धर्म के दूसरे खलीफ़ा तथा मुहम्मद साहब के मित्र थे।[४] अबूबकर की मृत्यु के पश्चात् ६३४ ई० में यह खलीफ़ा निर्वाचित हुए तथा ६४५ ई० तक रहे। इनके शासन काल में मिस्र, ईरान आदि देश विजित हुए। हिंदी में मंझन, जायसी, क़ासिमशाह आदि ने इनका उल्लेख किया है—

पुनि सो उमर खिताब सुहाए। भा जग अदल दीन जो आए।[५]
दूजें उमर नियाउ के राजा।
उमर खिताब दीन कर खांभा। कीन्हा अदल जगत तेहि थांभा।[६]

उसमान ग़नी

यह इस्लाम धर्म के तीसरे निर्वाचित खलीफ़ा हुए हैं। दानवीरता के कारण इनका खिताब (उपाधि) ग़नी पड़ गया था। इनका शासनकाल ६४५ ई० से ६५५ ई० तक रहा।[७] समस्त ईरान तथा अफ्रीक़ा इनके राज्यकाल में विजित हुए। हिंदी में मंझन, जायसी तथा क़ासिमशाह के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं। अन्य कवियों ने भी इनका उल्लेख किया है। ख़लीफ़ा उसमान ग़नी के काल में क़ुरानशरीफ़ का विविध पांडुलिपियों आदि के आधार पर जो संपादन हुआ था उसका उल्लेख मंझन तथा जायसी ने भी किया है और क़ासिमशाह ने भी—

---

१. मधुमालती, पृ० ६
२. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ५
३. हंसजवाहर, पृ० ४
४. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ६००-६०१
५. मधुमालती, पृ० ६
६. हंसजवाहर, पृ० ४
७. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ६०१

तीजे ठाउं राउ उसमाना । जेइं रे भेद वेद का जाना ।[1]
पुनि 'उसमान' पंडित बड़ गुनी । लिखा पुरान जो आयत सुनी ।[2]
उसमां पण्डित अस उजियारा । लिखा पुराण दीनो संसारा ।[3]

यहाँ पर राउ, पंडित, हज़रत उसमान के शासक, खलीफ़ा तथा आलिम होने के लिए प्रयुक्त हुए हैं तथा वेद एवं पुरान शब्द क़ुरान के लिए । वास्तव में ये सूफ़ी लोग बड़े ही उदारमना थे तभी तो धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से इन्होंने भारतीय जनता का दिल मोह लिया था तथा हिंदी को पद्मावत जैसे अनेक अमर काव्य प्रदान किए ।

हज़रत अली

हज़रत अली चौथे खलीफ़ा थे ।[4] इनका निर्वाचन ६५६ ई० में हुआ तथा ६६१ तक रहे । इन्होंने कूफ़ा को राजधानी बनाया । अली अपनी वीरता तथा बहुमुखी प्रतिभा के लिए बहुत विख्यात हैं । हिंदी-साहित्य में अनेक सूफ़ी असूफ़ी कवियों ने इनकी वीरता तथा अन्य गुणों की चर्चा की है । यहाँ मंझन, जायसी तथा क़ासिमशाह के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

चौथे 'अली' सिंघ बहु गुनी । दान खरग जेइं साधी दुनी ।[5]
चौथे 'अली' सिंघ बरियारू । सौंह न कोऊ रहा जुझारू ।[6]
चौथे 'अली' सूर जग माना । कफ़र भंज सब लोक बखाना ।[7]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अबूबकर, उमर, उसमान एवं अली, इन चारों खलीफ़ाओं का हिंदी में विवरण प्राप्त होना मुस्लिम धर्म एवं संस्कृति के संपर्क का परिणाम है ।

जन सामान्य में प्रचलित इस्लाम धर्म की इन बातों के अतिरिक्त हिंदी साहित्य में इस्लाम के अनेक सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक विचारों का भी एक विस्तृत विवरण मिलता है । अध्ययन की सुविधा के लिए उनको दो भागों में विभाजित करके यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं । पहला सैद्धांतिक पक्ष जिसमें इस्लाम धर्म एवं मुस्लिम-संस्कृति के आधारभूत प्रेरक तत्व आएंगे तथा दूसरे व्यवहार पक्ष के अन्तर्गत धार्मिक अनुष्ठान

१. मधुमालती, पृ० ९
२. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ५
३. हंसजवाहर, पृ० ४
४. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० ३०
५. मधुमालती, पृ० ९
६. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ५
७. हंसजवाहर, पृ० ४

या धार्मिक कृत्यों को लिया जाएगा।

१. सैद्धांतिक पक्ष—इस्लाम (मुस्लिम-संस्कृति) के आधारभूत प्रेरक तत्व

सैद्धांतिक पक्ष के अंतर्गत इस्लाम धर्म के मूल सिद्धांतों की चर्चा की गई है।

तौहीद या पैग़ंबरी दृढ़ एकेश्वरवाद

तौहीद अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है ख़ुदा को एक मानना या एक करना[1] अर्थात् एकता पर बल देना। धार्मिक दृष्टि से मुस्लिम संस्कृति की नींव अथवा मुख्य सिद्धांत तौहीद या दृढ़ एकेश्वरवाद में दृढ़ विश्वास रखने तथा उस पर अमल (कार्यबद्ध) करने पर ही है। तौहीद केवल ख़ुदा के एक होने का नाम ही नहीं है तौहीद का अर्थ एक करना अर्थात् समस्त मानवों को नाना प्रकार के धार्मिक मतवाद से हटा कर केवल एक शक्ति (अल्लाह) की ओर लगा देना भी है ताकि वे एक अल्लाह (ईश्वर) की बंदगी के कारण एक ही परिवार के सदस्यों की भांति भाई भाई बन जाएं।[2] क़ुरानशरीफ़ में कहा गया है कि 'तेरे रब की यही आज्ञा है कि तुम लोग उस एक ख़ुदा के अतिरिक्त किसी दूसरे की बंदगी या पूजा न करो'[3] तथा यह भी कहा है कि 'दीन का ही रास्ता ठीक है, दीन में कोई ज़बरदस्ती नहीं'[4] शासन तो केवल अल्लाह का ही है, उसी की आराधना करो'।[5] संसार या सृष्टि को देखने के बाद भी यही अनुभव होता है कि इस सृष्टि को चलाने वाली या प्रबंधक कोई एक ही महान् शक्ति है। उसी एक शक्ति के संचालन से सम्पूर्ण सृष्टि में गति है। यों तो अल्लाह और तौहीद का ख़याल संसार में पहले भी था किंतु क़ुरान में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि हमने समय समय पर भटके हुए लोगों को सीधी राह पर चलाने के लिए पैग़ंबर भेजे हैं तथा मुहम्मद पर हमने मानवोचित ज्ञान को संपूर्ण कर दिया है। इसीलिए क़ूरान में स्थान स्थान पर तौहीद पर बल दिया गया है और कहा है कि "अल्लाह ही माबूद (भजनीय) है उसके सिवा कोई माबूद नही[6] पैग़ंबरी एकेश्वरवाद का मतलब यह है कि एक सर्व शक्तिमान सब से परे शक्ति अल्लाह की है जो सृष्टि का रचयिता, पालक और संहारक है।

हिंदी साहित्य में उपलब्ध तौहीद के अनेक उदाहरणों को प्रस्तुत करने तथा

---

१. शारटर एंसाइक्लीपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ५८६
२. क़ौमी तहज़ीब का मसला, पृ० ८४
३. क़ुरान, सूरे बनी इस्राईल (१७), आयत २३
४. क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयत २५६
५. क़ुरान, सूरे आराफ़ (७), आयत १५८
६. क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयत २५५

तौहीद को भली भांति समझने समझाने के लिए क़ुरान की कुछ आयतें यहाँ उद्धृत करना आवश्यक हैं। क़ुरान में कहा गया है कि ख़ुदा के अतिरिक्त अन्य कोई भजनीय नहीं है। वह बहुत ही कृपालु और दयावान् है। वही आकाश और पृथ्वी का स्वामी है। क़ुरान में ख़ुदा की सिफ़ात (गुणों) का स्थान-स्थान पर निरूपण मिलता है जिसको हमने 'सिफ़ाते-इलाही' के अंतर्गत लिखा है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। उसके अनेक गुणों में से सर्जीवता,[1] ज्ञान विशिष्टता,[2] शक्तिमत्ता, स्वेच्छाचारिता,[3] श्रवण शीलता[4], दृष्टि संपन्नता तथा सर्वज्ञता[5] आदि भी विचारणीय हैं। तौहीद के सिद्धांत के परिणाम स्वरुप मुस्लिम-संस्कृति में सामाजिक सुव्यवस्थाओं को बड़ा बल मिला है। तौहीद के कारण ही इस्लाम में पुरोहितवाद का कोई स्थान नहीं रह गया।[6] न ही मनुष्य और निर्माता के बीच किसी सत्ता को स्वीकार किया गया है। रंग, नस्ल, जातीयता या व्यवसाय के आधार पर कोई भेद-भाव इस्लाम स्वीकार नहीं करता। अल्लाह की शक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य देवी देवताओं को नहीं मानता, न ही इसमें सामाजिक छूत छात का कोई स्थान है। रंग, नस्ल या लिंग के आधार पर मनुष्य को बुनियादी अधिकारों से रोका नहीं जाता या जिस प्रकार कोई व्यक्ति प्रोटैस्टेंट बन नहीं सकता, वह पैदा ही होता है, इस प्रकार का कोई प्रतिबंध इस्लाम नहीं मानता, अपितु घोर विरोध करता है। क़ुरानशरीफ़ कहता है "अल्लाह ही पूजनीय है, उसके अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं। वह अमर और सबका संस्थापक है। न उसे ऊँघ आती है न नींद। जो कुछ आसमान और ज़मीन में है सब उसका है......।"[7] आगे कहा गया है कि, "क्या तुझको पता नहीं कि आसमान और ज़मीन का राज्य अल्लाह ही का है, वह जिसे चाहे दंड दे और जिसे चाहे क्षमा करे और अल्लाह प्रत्येक वस्तु का स्वामी है।"[8] "जब उसकी कुछ करने की इच्छा होती है तो वह कहता है 'कुन' (हो जा) अतः वह कार्य तुरंत हो जाता है (फ़यकून)"[9] जो लोग किसी को अल्लाह का शरीक (साझीदार) ठहराते हैं उनको विशेषरूप से बुरा बताया गया है तथा शिर्क को जघन्य अपराध कहा गया है। उसका किसी से पिता-पुत्रादि का कोई संबंध नहीं, सब उसके बंदे (दास) हैं, वह सबका स्वामी है।[10] 'वही अल्लाह है, एक-मात्र सर्वशक्तिमान्, आसमानों और ज़मीन को ठीक बनाया, दिन और रात, सूरज और

१-५. क़ुरान २१।२२—२२।८—१४।४.३२—५—६।१०५

६. दी स्प्रिट आफ़ इस्लामिक कल्चर, पृ० ३

७. क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयत २५५

८. क़ुरान, सूरे मायदा (५), आयत ४०

९. क़ुरान, सूरे मरियम (१९), आयत ३५

१०. क़ुरान, सूरे मरियम, आयत ८७-९४

चांद वनाया......वही है अपराध क्षमा करने वाला।[1] इस प्रकार क़ुरान में स्थान-स्थान पर सर्वशक्तिमान् रहीम (दयालु) ख़ुदा के वारे में तरह तरह से समझाया गया है तथा तौहीद के विषय में वताया गया है "तू कह कि अल्लाह एक है अल्लाह निराधार है वह निर्लिप्त है सव उसके मौहताज हैं। न उसने किसी को जना (जन्म दिया या अपने पेट से पैदा किया) और न वह किसी से जना गया। उसके जोड़ का कोई नहीं।'[2] लोगो हमने तुम्हें (अपने हुकुम से) एक पुरुष और एक स्त्री से पैदा किया और आपस में पहचाने जाने के लिए कुटुंव बनाए। तुममें सवसे अधिक वड़ा अल्लाह के नज़दीक वही है जो तुम में सवसे अधिक अल्लाह का कहना मानने वाला है।[3] इस प्रकार तौहीद का अर्थ यह हुआ कि सब प्रकार के मतवाद तथा देवी देवताओं को छोड़कर विना किसी पुरोहित की आवश्यकता के एक ख़ुदा की इवादत करो जो सर्वशक्ति संपन्न है। उसको हाज़िर नाज़िर समझो तथा एक आदम की संतान के नाते सव समान होकर भाई भाई वन जाओ।[4] हिन्दी-साहित्य में सूफ़ी, असूफ़ी अनेक कवियों ने जो तौहीद का वर्णन किया है उनमें से अधिकांश क्योंकि क़ुरानी आयतों का अनुवाद मात्र है, इसलिए तौहीद को इतने विस्तार से देना पड़ा।

सूफ़ी कवि आमतौर पर इस्लाम का अच्छा ख़ासा ज्ञान रखते थे इसलिए उनकी हिंदी रचनाओं में तौहीद का होना तथा क़ुरानी आयतों के अनुसार अल्लाह की व्याख्या मिलना स्वाभाविक ही है। लगभग सभी सूफ़ी कवियों ने अपनी मसनवी शैली की रचनाओं के प्रथम खंड में तौहीद का वर्णन इस्लामी ढंग से किया है। जायसी का निम्न पद क़ुरान की सूरे इख़लास (११२) का अनुवाद मात्र है जो तौहीद का द्योतक है—

> अलख अरूप अवरन सो कर्ता।
> "ना ओहि पूत न पिता न माता। ना ओहि कुटंव न कोई संग नाता।"
> "जना न काहु, न कोइ ओहि जना। जहं लगि सव ताकर सिरजना।"
> वै सव कीन्ह जहां लगि कोई। वह नहिं कीन्ह काहु कर होई।
> हुत पहिले अरु अव हैं सोई। पुनि सो रहै नहिं कोई ॥[5]

जायसी एक पढ़े लिखे महान् सूफ़ी थे। इस्लाम का ज्ञान उनका कुछ कम न था, इसीलिए वह ख़ुदा को अलख और अवरन वताते हैं तथा सूरत ११२ के अनुवाद

१. क़ुरान, सूरे जमुर (३९), आयत ३-५
२. क़ुरान, सूरे इख़लास (११२), आयत १-४
३. क़ुरान, सूरे हिजरात (४९), आयत १३
४. इन्फ्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० ५१
५. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३

के बाद ख़ुदा के ख़ालिक़ (सृष्टा) तथा क़ादिरे-मुतलक़ (सर्वशक्ति संपन्न) आदि गुणों को बताते हैं तथा अंतिम पंक्ति 'होवल अव्वलो-वल आख़िरो वज़्ज़ाहिरो वल बातिन्' का अनुवाद है। नूरमुहम्मद भी तौहीद का अनुमोदन करते हैं तथा क़ासिमशाह ने भी ऐसा ही कहा है—

सिर्जन हार एक है, काहू जना न सोइ।
आप न काहू सों जना, वह समान नहिं कोई।[1]
ऐसे अलख जो अहै अकेला। परघट गुप्त सभी रंग खेला।
वह करतार जो जगत विधाता। सब मंगता वह सबकर दाता।
ना वह मात पिता नहिं भाई। ना वाके कोई कुटुंब सगाई।
ना वह होय कि होकर बारा। वह किन रचा रचा वह सारा।[2]

शब्द, भाव, भाषा एवं शब्दावली आदि अनेक दृष्टियों से इन सूफ़ी कवियों के ही ढर्रे पर कबीर, दादू[3], नानक तथा अन्य[4] कवियों ने ख़ुदा की तौहीद का गुणगान किया है। जायसी और तुलसी के निम्न पदों में कितना साम्य है—

जायसी ने क़ुरान के लिए पुरान और वेद शब्दों का भी प्रयोग किया है। यहाँ क़ुरान के मुताबिक़ ख़ुदा की ज़ात एवं सिफ़ात की व्याख्या की है—

एहि विधि चीन्हहु करहु गियानू। जस पुरान महं लिखा बखानू॥
जीउ नाहिं, पै जियै गुसाईं। कर नाहीं पै करै सबाई॥
जीभ नाहिं, पै सब किछु बोला। तन नाहीं, सब ठाहर डोला॥
श्रवन नाहिं, पै सब किछु सुना। हिया नाहिं, पै सब किछु गुना॥
नयन नाहिं, पै सब किछु देखा। कौन भांति अस जाइ बिसेखा॥
है नाहिं कोइ ताकर रूपा। ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा।
ना ओहि ठाउं, न ओहि बिन ठाऊं। रूप रेखा बिनु निरमल नाऊं।[5]

सगुण राम भक्ति शाखा के कवि तुलसीदास भी कहते हैं—

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।

---

१. इन्द्रावती, पृ० १३६ २. हंसजवाहर, पृ० ३
३. (क) अलख इलाही जगत गुर, दूजा कोई नाहिं। दादू-बानी, भाग १, पृ० १३६
(ख) अव्वल आखिर एक तूं ही, जिंद है कुरबान। दादू-बानी, भाग २, पृ० १६७
४. औवल आख़िर इलाह, आदम फरिस्ता बंदा। रैदास की बानी, पृ० २६
५. देखिये—जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३ पद ८

अखि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।[१]

पैग़ंबरी दृढ़ एकेश्वरवाद और भारतीय अद्वैतवाद में सैद्धांतिक भेद है।[२] फिर भी भारतीय साधु संतों की वाणी में एक ओर तो ईश्वर से पति-पत्नी, पिता-पुत्रादि संबंध सूचक विचार मिलते हैं।[३] दूसरी ओर डा० ताराचंद के मतानुसार इस्लाम के सिद्धान्त 'तौहीद" से भारतीय विचारधारा को बड़ी प्रेरणा प्राप्त हुई है।[४] कबीर क्योंकि स्वतंत्र विचार धारा के साधु थे इसलिए उन्होंने समय समय पर अपनी रुचि के अनुसार अपनी मान्यता को मोड़ दिया है। यहाँ कबीर का राम अवतारी राम नहीं रह गया। न तो उसने दशरथ के घर जन्म लिया है और न लंका के राजा रावण को ही उसने सताया है। न तो वह देवकी की ही कोख से जन्मा और न यशोदा ने गोद में लेकर उसे खिलाया। वह ग्वालों के साथ विचरने वाला भी नहीं, न ही उसने कभी गोवर्धन ही उठाया। उसने वामन रूप धारण करके राजा बलि को कभी नहीं छला। इस प्रकार मूर्ति आदि में वह नहीं हैं। कबीर पर इस्लाम तथा सूफ़ियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है।[५]

ता साहिब कै लागी साथा। दुख सुख मेटि रह्यौ अनाथा॥
नां जसरथ घरि औतरि आवा। नां लंका का राव 'सताया'॥
दैवै कूख न औतरि आवा। ना जसवै ले गोद खिलावा॥
ना वो ग्वालन के संग फिरया। गोवरधन ले न कर धरिया॥
वांवन होय नहीं बलि छलिया। धरनी बेद लेन उधरिया॥
गंडक सालिक रांम न कोला। मछ कछ ह्वै जलहि न डोला॥
बद्री बैस्य ध्यांन नहीं लावा। परसरांम ह्वै खत्री न संतावा॥
द्वारामती सरीर न छाड़ा। जगनाथ ले प्यंड न गाडा॥[६]

शैख़ तक़ी या किसी अन्य सूफ़ी मुर्शिद की कृपा से कबीर तौहीद को मीठा बताते हैं—

---

१. रामचरितमानस, बालकांड। ११८, पृ० १०२

२. जायसी-ग्रंथावली (भूमिका), पृ० १३०

३. (क) हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया।
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।
कबीर-ग्रंथावली, पृ० ६५

(ख) हरि जननी मैं बालक तेरा। कबीर-ग्रंथावली, पृ० ६४

४. इन्फ़्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० १११

५. इन्फ़्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० १५१ तथा १४३-१६५

६. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १८४-८५

अल्लह अलख न जाई लखिया गुरु गुड़ दीना मीठा ।[1]

गुरुग्रंथ साहब में (नानक वाणी में) अनेक स्थानों पर तौहीद तथा क़ुरानी आयात के समान ही ख़ुदा के विषय में विचार मिलते हैं। बाबा साहिब कहते हैं कि मेरा ख़ालिक और मालिक एक ही हैं हाँ भाई वह एक ही है वही मारने वाला और जिन्दा करने वाला (युहयी वयुमीतो वहोवा हय्युला युमीतो)......वह जो चाहता है करता है अर्थात् वह 'फ़आलुल्लेमायुरीद' है।

साहिबु मेरा एक है। एको है भाई एको है ॥
आपे मारे आपे छोड़े। आपे ले वै देई ॥
आपे वेखै आपे विगसे आपे नदरि करेई ॥
जे किछु करणा सो करि रहिआ अवरु न करणा जाई ॥
जैसा वरतै तैसो कहीए सभ तेरी वडिआई।[2]

क़ुरान की सूरे इख़लास (११२) में ख़ुदा के विषय में कहा गया है कि "तू कह वह अल्लाह एक है अल्लाह बेनियाज़ (निराधार) है न उसने किसी को जना है और न वह किसी से जना गया है और उसके जोड़ का कोई नहीं।" नानक वाणी में इन आयतों से कितना साम्य मिलता है—

अलख अपार अगम अगोचर ना तिसु कालु न करमा।
जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाउ न भरमा ॥
साचे सचिआर विटहु कुरवाण।
ना तिसु रूप वरनु नही रेखि आ साचै सवदि नीसाणु ॥
"ना तिसु मात पिता सुत बंधुप ना तिसु कामु न नारी ॥"
अकुल निरंजनु अपर परंपरु सगली जोति तुमारी ॥[3]

निम्न पद में अल्लाह के अर्शेमोअल्ला, उसके क़ादिरे मुतलक़ तथा ग़नी (वेपरवाह) एवं ख़ालिक़े-कायनात (सृष्टा) आदि सिफ़ाते-इलाही (गुणों) की ओर स्पष्ट संकेत है—

१. क. कबीर-ग्रंथावली, पृ० २०३
ख. तेरा रूप नहीं रेख नाही मुद्रा नही माया ॥
× × ×
तेरी गति तूंही जानै, कबीर तो सरनां ॥ कबीर-ग्रंथावली, पृ० १२१
ग. जाके मुख माथा नही, नही रूपकरूप।
पुहुप वास ते पातरा, ऐसा तत्व अनूप ॥ कबीर ग्रंथावली, ४७
२. नानक-वाणी, पृ० २५०
३. नानक-वाणी (राग सोरठ महल्ला १), पृ० ३९२

एको 'तखतु' एको, एको पातिसाहु। सरवी थाई वेपरवाहु ।
तिसका कीआ त्रिभवण सारू। ओह अगमु अगोचर एकंकारू।[१]

जायसी और क़ासिमशाह ने भी उसे ख़ालिक[२] और क़ादिर[३] कहा था ।

क़ियामत—

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है निर्णय का दिन, हश्र। आख़िरत भी अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ परलोक या उक़्बः है । इस्लाम के आधार-भूत सिद्धांतों में से इस जीवन के पश्चात् क़ियामत पर विश्वास रखना भी एक महत्व-पूर्ण सिद्धांत है जो इस जीवन की ही एक अन्तिम कड़ी है। यौमुल क़्यामः यौमे-जज़ा या यौमुद्दीन आदि अनेक नामों से क़ुरान में इसका वर्णन है। क़ियामत पर विश्वास रखना इस्लाम का इतना बड़ा सिद्धांत है कि लगभग क़ुरान के एक तिहाई भाग में स्थान-स्थान पर तरह तरह से इसका वर्णन मिलता है। यों तो इस जीवन के बाद के जीवन के विषय में सामान्यरूप से संसार भर के धर्मों में और विशेष रूप से सामी मतों में आगामी जीवन के विषय में चर्चा मिलती है पर क़ियामत, जज़ा, सज़ा (पुरस्कार एवं दंड) आदि का रहस्योद्घाटन जितने विस्तार से क़ुरान में किया गया है अन्य स्थानों पर कहीं ऐसी निश्चित व्याख्या नहीं मिलती।[४]

हिंदी-साहित्य में क़ियामत तथा क़ियामत के साथ जज़ा सज़ा, जन्नत-दोज़ख, पुलसिरात, शफ़ाअत, आवेकौसर आदि मुस्लिम-संस्कृति के अनेक सिद्धांतों और अंत-र्कथाओं का विस्तृत विवरण मिलता है इसलिए क़ियामत का यहाँ कुछ विस्तार से वर्णन करना पड़ेगा।

तौहीद (एकेश्वरवाद) के साथ-साथ क़ियामत (निर्णय का दिन) पर विश्वास रखना भी मुस्लिम-संस्कृति के धार्मिक-पक्ष का एक महत्वपूर्ण अंग है अर्थात् जुज़्वेईमान है। यदि इसे भली-भाँति समझ लिया जाए तो यह मानव जीवन के नैतिक उत्थान के लिए एक महत्वपूर्ण आधार है। इसलिए मुसलमानों का यह विश्वास है कि अल्लाह सिंहासनारूढ़ होकर क़ियामत (निर्णय) के दिन अन्तिम रसूल मुहम्मद साहब के नेतृत्व में उम्मत को प्रतिफल देगा। उस दिन सद् असद् के बीच नीर-क्षीर-विवेक हो जायगा। क़ुरान में कहा गया है कि "वही पूर्व और पश्चिम का रब है।"[५] और

१. नानक-वाणी, पृ० ७१२

२. कीन्ह सबै अस जाकर दूसर छाज न काहि। जायसी-ग्रंथावली, पृ० १
जो चाहै सो विधि करे, अहै सो आप अकेल। हंसजवाहर, पृ० २

३. है नाहिं कोइ ताकर रूपा। ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा।
जायसी-ग्रंथावली पृ० ३

४. दी होली क़ुरान, भूमिका, पृ० १० (क़ुरान, सूरे सजदः (३२), आयत ६-२२

५. क़ुरान, सूरे रहमान (५५), आयात १७।१८, सूरे बक़र (२), आयत ११५

"जो कोई अल्लाह पर और उसके फ़िरिश्तों और आसमानी किताबों और रसूलों पर तथा आख़िरी दिन (क़ियामत) पर विश्वास नहीं रखेगा वह पथ भ्रष्ट हो जायगा।"[1] "वही है जिसने आसमानों और ज़मीन को विधिवत् बनाया और जिस दिन वह (क़ियामत को) कहेगा कि हो जा वह (प्रलय) हो जाएगी।" "उसी की बात सच्ची है और उसी का शासन होगा जिस दिन सूर (तुरही) फूंका जायेगा।"[2] क़ुरान में उन लोगों के लिए आगे कहा गया है "जो इस पर विश्वास नहीं रखते और कहते हैं कि जब हम हड्डियाँ और चूरा हो जाएंगे तो क्या हम नये जीवन में उठेंगे ? तू कह (ऐ मुहम्मद) तुम पत्थर हो जाओ या लोहा बन जाओ या जो कोई अन्य वस्तु जो तुम्हें बड़ी मालूम हो, हो जाओ मगर अवश्य उठोगे क़यामत के दिन। फिर वह कहेंगे कि हमें पुनः कौन बुलाएगा ? तू कह जिसने तुम्हें पहली बार अपने हुक्म से पैदा किया। फिर वह तेरी ओर अपने सिर हिलाएंगे (ठट्ठे से) और कहेंगे कि वह क़ितामत कब आएगी, तू कह (ऐ मुहम्मद) सम्भवतः वह निकट ही है जिस दिन तुम्हें वह (ख़ुदा) पुकारेगा।"[3] बुरे काम करने वाले "लोगो अपने रब (ईश्वर) से डरो, निःसन्देह प्रलय का भूचाल एवं बवंडर एक भयंकर वस्तु है जिस दिन उसे देखोगे प्रत्येक दूध पिलाने वाली अपने दूध पिलाये हुए को भूल जायगी और प्रत्येक गर्भवती गर्भ गिरा देगी और तुझे सबप्राणी नशे में मालूम होंगे, यद्यपि वह नशा न होगा। अल्लाह का अज़ाब (दंड) कठोर है।"[4]

"क़ियामत के दिन बाज़-पुर्स (पूछताछ लेखाजोखा) होगी,"[5] "और जिस दिन क़ियामत आएगी, दोषी निराश होंगे और उनके शरीकों (देवी-देवताओं) में से कोई भी उनका सिफ़ारशी न हो सकेगा।"[6] क़ियामत का विवरण क़ुरानशरीफ़ में इस प्रकार भी मिलता है कि "सारी पृथ्वी क़ियामत के दिन उसके वश में होगी और सब आकाश उसके दाहने हाथ में (वशीभूत) लिपटे होंगे तथा नरसिंघा फूंका जाएगा तो जो कुछ आसमानों और ज़मीनों में है अचेत हो जाएगा किंतु जिसे अल्लाह चाहेगा फिर दोबारा (अपने आदेश से) पुनः सूर के फूंकने पर जीवित हो खड़े होंगे।......पृथ्वी अपने रब (ख़ुदा) के नूर (अलौकिक प्रकाश) से देदीप्यमान हो उठेगी, और कर्म लेखा यानी आमालनामे रखे जाएंगे तथा प्रत्येक प्राणी को जो उसने किया है उसका (यथोचित) बदला मिलेगा।[7]

---

१. क़ुरान, सूरे निसा (४), आयत १३६
२. क़ुरान, सूरे इनआम (६), आयत ७३
३. क़ुरान, सूरे बनी इस्राईल (१७), आयत ४९-५२
४. क़ुरान, सूरे हज्ज (२२), आयत १
५. क़ुरान, सूरे अनकबूत (२९), आयत १३, सूरे बनीइस्राईल (१७), आयत १३,१४
६. क़ुरान, सूरे रूम (३०), आयत ११-१३
७. क़ुरान, सूरे ज़ुमुर (३९), आयत ६६-७०

इस्लाम में जज़ासज़ा (पुरस्कार-दंड) का जो विधान है[1] वह भी मुस्लिम-संस्कृति को बड़ा बल प्रदान करता है। क़ुरान में लिखा है कि यह पुस्तक क़ुरान ऐसा पथ-प्रदर्शन करती है जो सीधा रास्ता है और सत्कर्म करने वालों को आकाशवाणी करती है कि उनके लिए अच्छा बदला (पुरस्कार) है और जो आख़िरत (अंतिम दिन) को नहीं मानते उनके लिए कष्टदायक अज़ाब हमने तैयार किया है।[2]

जन्नत और दोज़ख (स्वर्ग और नर्क) का वर्णन भी क़ुरान में इस प्रकार आया है "जो ईमान लाए (विश्वास किया और क्रियान्वित किया) और नेक काम किये अल्लाह उन्हें उन बाग़ों में (स्वर्ग के) प्रविष्ट करेगा जिनके नीचे नहरें बहती हैं (दूध की) उसमें उन्हें सोने के कंगन और मोती पहनाए जाएंगे और उनकी वेश भूषा रेशम की होगी[3] (संसार में मुस्लिम मर्द के लिए रेशम हराम इसलिए कर दिया हैं कि उसके पहनने से अनेक विकार, वासना, घमंड पैदा होता है) और जो काफ़िर (खुदा के साथ शिर्क करने वाले) हैं उनके लिये नर्क की (घधकती हुई) अग्नि है और उनसे दोज़ख का अज़ाब भी कम नहीं किया जाएगा। प्रत्येक नाशुक्रगुज़ार (कृतघ्न) को हम यों ही दंड दिया करते हैं और वह दोज़ख में चीत्कार करेंगे कि ऐ रब हमारे हमें निकाल अब हम ऐसा नहीं करेंगे उत्तर मिलेंगे कि क्या हमने तुम्हें इससे पहले सोचने और समझने की मोहलत न दी थी-अवश्य दी थी—और पैग़म्बर भी भेजे थे।[4]

क़ुरान में उस स्वर्ग का वर्णन है जिसका मुत्तक़ियों (साधुवृत्ति पुरुषों) को वचन दिया है कि—"वहाँ उन्हें सब प्रकार के सुख और भोग होंगे और जो लोग नास्तिक हैं उनको नरक में डाला जाएगा, वह आग में रहेंगे और खौलता पानी एवं पीप तथा पस (घाव या फोड़े का श्वेत मवाद) पीने को मिलेगा जो उनकी अंतड़ियाँ काट डालेगा।"[5] इस प्रकार क़ुरान में क़ियामत का स्थान-स्थान पर वर्णन मिलता है।

क़ियामत के विस्तृत विधिवत् तथा क़ुरान और हदीस पर आधारित विवरण की दृष्टि से हिंदी साहित्य में 'आख़िरी कलाम' अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है[6] जो हिंदी साहित्य को मुस्लिम संस्कृति के प्रतीक एक सूफ़ी मलिक मुहम्मद जायसी के सम्पर्क के परिणाम स्वरूप प्राप्त हुआ है। इस पुस्तक में क़ियामत का यंत्रवत् विवरण नहीं मिलता अपितु बड़े विद्वतापूर्ण एवं रोचक ढंग से हम्द नात आदि काव्यरूप तथा

१. क़ुरान, सूरे फ़ज्र (८९), आयत २२-३०, सूरे त्वाहा (२०) आयत ७४, ७५
२. क़ुरान, सूरे बनी इस्राईल (१७), आयत ९
३. क़ुरान, सूरे हज्ज (२२), आयत २३। सूरे फ़ातिर (३५), आयत ३३
४. क़ुरान, सूरे फ़ातिर (३५), आयत ३६, ३७
५. क़ुरान, सूरे मुहम्मद (४७), आयत १५
१. जायसी-ग्रंथावली, आख़िरीकलाम, पृ० ३३९-३६१ में क़ियामत का पूरा विवरण दिया गया है।

फ़रिश्तों, आबेकौसर पुलसिरात, शफ़ाअत, आदम हव्वा, रिसालत, करबला, जन्नत, शराबेतहूरा, हूरें आदि मुस्लिम-संस्कृति के अनेक सिद्धांत एवं अंतर्कथाएं इसमें मिलती हैं। विस्तार भय के कारण इनके उदाहरण यहाँ नहीं दिये जा रहे।

आख़िरीकलाम के अतिरिक्त जायसी ने पद्मावत में तथा अन्य सूफ़ी कवियों ने भी क़ियामत का वर्णन किया है। जायसी कहते हैं कि क़ियामत के दिन ख़ुदा अच्छाई और बुराई पूछेगा हिसाब किताब होगा सत्-कर्म करने वाले जन्नत में जाएंगे तथा हाथ पाँव की गवाही देने की भी बात है जो रत्नसेन से अपनी माँ को समझवाई है।

गुन अवगुन विधि पूछब, होइहि लेख औ जोख।
वै विन उब आगे होई, करब जगत कर मोख॥
हाथ, पाँव, सरवन औ आँखी। ए सब उहाँ भरहिं मिलि साखी।
सूत सूत तन बोलहिं दोखू। कहु कैसे होइहि गति मोखू।[1]

सूफ़ी कवियों के अतिरिक्त गुरुग्रंथ साहब में अनेक स्थानों पर क़ियामत, जजासज़ा तथा क़ियामत-संबंधी अनेक संकेत मिलते हैं। नानक जी कहते हैं कि यह दुनिया फ़ानी है और एक दिन ऐसा निश्चित है जबकि यह चाँद सूरज और सितारे सब फ़ना (नाश) हो जाएंगे और उस समय वहदत (ख़ुदा) का दौर-दौरा होगा और वही बाक़ी रहेगा। वही आमाल (कर्म) का फल देता है—

'मुक़ामु' करि घरि बैसण नित चलणै की घोख।
मुक़ामु ता परु जाणीए जा रहै निस्चलु लोक॥
'दुनिआ' कैसी 'मुक़ामे'।
करि सिदकु करणी खरचु बधांहु लागि रहु नामे॥१॥ (रहाउ)
जोगी त आसणु 'मुला' करि बहै मुक़ामि।
पंडित वखाणहि पोथीआ सिध बहमह देव स्थानि॥२॥
सुर सिध गण गंधरब मुनिजन 'सेख़' पीर सलार।
दरि कुच कुचा करि गए अवरे भि चलणहार॥३॥
'सुलतान खान मलूक उमरे' गए करि करि कूचु।
घड़ी मुहति कि चलणा दिल समझु तूं भि पहुंच॥४॥
सब दाह माहि वजाणीऐ विरला तू बूझै कोइ।
नानकु वखाणै वेनती जलि थलि मही अलि सोइ॥५॥
'अल्लाहु अलखु अगंम क़ादरु करन हारु करीमु'।
'सभी दुनी आवण जावणी मुक़ाम एकु रहीम'॥६॥
मुक़ाम तिसनो आखिऐ जिसु सिपि न होवी लेखु।
असमानु धरती चलसी मुक़ामु ओहि एकु॥७॥

---

१. जायसी-ग्रंथावली (जोगी खंड), पृ० ५५

दिन रवि चलै निसि ससि चलै तारिका लाव पलोइ ।
मुकाम ओही एक है नानका सचु बुगोइ ॥८॥[1]

प्रस्तुत पद में मुकामु दुनिया, खरचु मुल्ला, दरि कूच, सुलतान, खान, मलूक उमरे, अल्लाह क़ादिर आसमान, बुगोई आदि शब्द भी अरबी फ़ारसी के तथा भाव भी क़ियामत सम्बन्धी हैं जो मुस्लिम सम्पर्क से इन्हें प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त निम्न पद भी विचारणीय है। नानक कहते हैं कि हम ज़मीन पर बसने वाले लोग फ़ानी हैं बाक़ी अल्लाह की ज़ात रहेगी (अल्लाहो बाक़ी मिन कुल्ले फ़ानी) तथा क़ुरान की एक आयत है कि 'कुल्लो नफ़सिन ज़ाएक़तुलमौत'[2] अर्थात् प्रत्येक प्राणी मौत का मज़ा चखने वाला है यानी फ़ानी है नश्वर है। यह भाव भी नानक जी ने व्यक्त किया है—

हम 'जेर जिमी' 'दुनिया' पीरा मसाइका राइआ।
मेखरी 'वादि साहा' 'अफजूँ' 'खुदाई' ॥
एक तूही एक तूही ॥२४॥
न देव दानवा नरा। नसिध साधिका धरा॥
असति एकु 'दिगरि' कुई। एक तुई एक तुई॥
'न दादे दिहंद आदमी' न सपत ज़ेरे जिमी ॥
असत एक दिगरि कुई। एक तुई एक तुई॥
न सूर ससि मंडलो न सपत दीप नह जलो ॥
अनं पउण थिरु न कुई। एक तुई एक तुई॥
न 'रिजकु' 'दसत' 'आ कसे'। हमारा एकु आस वसे॥
असति एकु दिगर कुई। एक तुई एक तुई॥
परंदए न गिराह जर। दरखत आव आस कर॥
दिहंद सुई। एक तुई एक तुई॥
नानक लिलारि लिखिआ सोई। मेटि न साकै कोई॥[4]

उपर्युक्त पद की अरबी फ़ारसी बहुला शब्दावली, स्पष्ट रूप में खुदा का नाम आना तथा अन्य भाव मुस्लिम-संपर्क का परिणाम हैं। इनके अतिरिक्त राग गौड़ी महला ५ तथा राग तिलंग आदि में दुनिया फ़ानी और क़ियामत संबन्धी विचार व्यक्त किये गये हैं—

दुनिया मुक़ाम फ़ानी तहक़ीक़ दिल दानी
मम सर मुए इज्राईल गिरफतः दिल हेचनदानी[4]

---

१. नानक-वाणी (राग श्री महला १), पृ० १५६, १६०
२. क़ुरान, सूरे अंबिया (२१), आयत ३४
३. नानक-वाणी (वार माँझ शलोकु महला १), पृ० १८७
४. गुरु ग्रंथ साहब राग तिलंग मला ५ वार दो। नानक वाणी, पृ० ४२७

नानकु आखे रे मना सुणिए सिख सही ।
लेखा रब्ब मंगेसिआ बैठा कढि वही ।।
तलबा पऊ सनि आमिआ बाकी जिनारही ।
इज्राईलु फरिश्ता होसी आई तही ।।[1]

क़ियामत का जो विवरण यहूदी, ईसाई तथा इस्लाम आदि सामी मतों में उपलब्ध होता है उसमें और भारतीय दृष्टिकोण में अंतर है। इस्लाम में न तो कल्पांतर की कोई कल्पना है और न ही जीवों के पुनर्जन्म को माना जाता है। क़ुरान के जो उद्धरण इससे पहले हमने दिये हैं तथा हदीसों में जो कुछ बताया गया है उसके अनुसार संक्षेप में क़ियामत को इस प्रकार कहा जाएगा कि वर्तमान सृष्टि पहली और आख़िरी है। न तो खुदा ने इससे पहले कोई अन्य सृष्टि की थी और न वह आगे भी करेगा। क़ियामत या प्रलय के आने तक सब जीवात्मा इकट्ठे होते जाएंगे और क़ियामत के दिन उन सबका उनके कर्मानुसार फ़ैसला होगा। आमालनामे पेश किये जाएंगे, अंग प्रत्यंग स्वयं (ख़ुदा के हुक्म से) गवाही देंगे तथा पुण्यात्माओं को जन्नत में चिरंतन सुख मिलेगा और पापियों को दोज़ख़।

बन्दा अपने गुनाहों (पापों) की क्षमा इसलिए चाहता है कि उसे क़ियामत का डर है। ख़ुदा की सिफ़ात (गुणों) में से याग़फ़ूरो (गुनाहों (पापों) का बख्शने वाला, क्षमा करने वाला) या तव्वाबो (तोबः (पश्चाताप) कुबूल करने वाला) ग़फ़्फ़ारो (क्षमा करने वाला) या रऊफ़ो (रहम करने वाला) तथा या मुंतक़िमो (गुनाहगारों को गुनाहों के बदले अज़ाब (दंड) देने वाला) आदि गुणों का क़ुरान में स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

हिंदी-साहित्य में भी सामान्य शब्दावली के अतिरिक्त क़ुरानी शब्दावली के माध्यम से भी अपने गुनाह करने तथा माफ़ी की आशा रखने के विचार कवियों ने व्यक्त किये हैं।[2] मौत के बाद हिसाब देने तथा क़ब्र के अज़ाब का यहाँ स्पष्ट उल्लेख है—

गाफ़िल है बंदा 'गुनाह' करै बार बार।
काम पड़े 'साहेब' वाँ कैसा फरमावैगा।।
'आखिर जमाने' को डरता है मेरा दिल।
'जब जबरील' हाथ गुर्ज लिये आवैगा।
खाब सी दुनिया दिल को न करै सात पांच।
'काली पीली' आखें कर फिरिस्ता दिखलावैगा।।"[3]

---

१. नानक-वाणी, पृ० ५६६ (वार रामकली)

२. तीन लोक जाके औसाफ जन का 'गुनह' करै सब माफ़। मलूक-वानी, पृ० ३

३. क. मलूक-वानी, पृ० ३०

ख. गुनहगार तूं हुआ सरासर दोजख बांध चलाया। मलूक-वानी, पृ० २५

धरमराइ जव लेखा मांग्या, वाकी निकसा भारी ।
अवकी वेर वकसि वंदे कौं, सव खत करौ नवेरा ।।[1]

गुनाहों के वख्शवाने की कवीर की आशा इस्लामी दृष्टि पर आधारित है तथा खुदा के ग़फ़्फ़ार या ग़फ़ूर या रऊफ़ सिफ़ात से याचना है ।

दादू भी अपने गुनाहों को आंकते हैं और वखशिश की आशा में हैं—

दादू गुनहगार है, मैं देख्या मन माहिं ।
भावै वंदा वकसिये, भावै गहि करि मारि ।[2]
पल पल में गुनही तेरा, वकसौ औगुण मेरा ।[3]

गुनाहों के वख्शवाए जाने का तथा खुदा के ग़रीव-नवाज़ होने का तसव्वुर (विचार) शुद्ध इस्लामी है । क़ियामत के दिन रसूल अपनी-अपनी उम्मत (अनुयायी) की शफ़ाअत (सिफ़ारिश) करेंगे किंतु उसकी भी मंज़ूरी-नामंज़ूरी सव अल्लाह के हाथ है[4] मुहम्मद साहव की शफ़ाअत का उल्लेख हदीसों में भी है ।[5] हदीसों से सिद्ध है कि क़ियामत के दिन वह अपनी उम्मत की शफ़ाअत (उद्धार या त्राण) के लिए हश्र के मैदान में प्रयत्नशील रहेंगे । अन्य सूफ़ी कवियों ने तथा जायसी ने भी क़ुरान और हदीस के अनुसार उसका वर्णन किया है—

सवा लाख पैगंवर जेते । अपने अपने पाएं तेते ।।
एक रसूल न वैठहिं छाहां । सवही धूप लेहिं सिर माहां ।।
घामैं दुखा उमत जेहि केरी । सो का मानै सुख अवसेरी ?
दुखी उमत तौ पुनि मैं दुखी । तेहि सुख होइ तौ पुनि मैं सुखी ।।
पुनि करता कै आयसु होई । उमत हंकारु लेखा मोहि देई ।।
कहव रसूल कि आयसु पावौं । पहिले सव धरमी लै आवौं ।[6]

फिर मुहम्मद साहिव, आदम, नूह मूसा, ईसा सव पैगंवरों के पास उम्मत के गुनाहों को वख्शवाने जाते हैं ।[7] हंस जवाहर में भी क़ासिमशाह ने कुछ ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं—

अन्त समय आवे प्रलय, कोउ न वांधे धीर ।

---

१. कवीर-ग्रंथावली, पृ० १२२
२. दादू-वानी, भाग १, पृ० २४२
३. दादू-वानी, भाग १, पृ० २३४
४. क़ुरान, सूरे ज़मुर (३९) आयत ४२.४३
५. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ५१२
६. जायसी-ग्रंथावली, आख़िरीकलाम, पृ० ३५०
७. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३५०-३५४

अहमद चारिउ यार संग, कई लगावें तीर ।[१]

शफ़ाअत के इस विचार से प्रेरित तथा ख़ुदा के ग़फ़ूर एवं ग़रीब-नवाज़ होने संबंधी विचार अनेक हिंदी कवियों में अरबी फ़ारसी की उसी शब्दावली में मिलते हैं । इस संबंध में तुलसी की विनयपत्रिका का प्रस्तुतिकरण तथा हनुमान एवं सीता के माध्यम से राम तक पहुँच करने के प्रयत्न में तुलसी के मस्तिष्क में मुग़ल दौर में अरजी गुज़ारने का ढंग अवश्य रहा होगा जो शफ़ाअत का ही एक दुनियावी (भौतिक) रूप है ।[२] यहां 'वसीले' शब्द से भी वही भाव ध्वनित होता है । शफ़ाअत से प्रेरित तुलसी में यह भाव भी द्रष्टव्य है जिनकी शब्दावली स्पष्ट रूप से मुस्लिम- प्रभाव की ओर इशारा करती है—

तेरे 'निवाजे' गरीब निवाज विराजत बैरिन के उर साले ।।[३]

+ + +

जानत 'जहान' हनुमान को निवाज्यो जन

+ + +

साहेब सुभाय कपि साहेब संभारिए ।।[४]

राम के गुलामनि को काम तरु रामदूत,

मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारिए ।।[५]

यहाँ तकिया होना एक प्रसिद्ध मुहावरा है अर्थात् सहारा होना जिसमें शफ़ाअत (उद्धार या त्राण) का अर्थ स्पष्ट ध्वनित होता है जबकि गुनाहों के बख़्शवाए जाने की धारणा अवैदिक है ।[६]

सूफ़ी एवं उनसे प्रभावित निर्गुण शाखा के कवियों के अंदाज़ पर ही हिंदी में राम एवं कृष्ण-भक्ति शाखा के (सगुण) कवियों ने यद्यपि राम कृष्ण की कल्पना अवतार रूप में की है फिर भी भाव भाषा (अरबी-फ़ारसी शब्दावली) की दृष्टि से ख़ुदा के बख़्शनेवाले या ग़फ़ूर आदि सिफ़ात, रसूल की शफ़ाअत तथा सांसारिक रूप से मुग़ल दौर के बादशाहों के ग़रीब-नवाज़ आदि विशेषणों के प्रचलन से हिंदी के इन लोक-कवियों ने भी अपने आराध्य के साथ लगभग पतितपावन की वही कल्पना की है । निम्नलिखित पद मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणाम को समझने के लिए विचारणीय है—

---

१. हंसजवाहर, पृ० ४

२. ऐसी तोहि न बूझिए हनुमान हठीले ।
साहेब कहूं न राम से, तो से न 'वसीले' ।।
सेवक को परदा फटै, तू समरथ सीले । तुलसी-ग्रंथावली (विनयपत्रिका), पृ० ३९३

३.-५. तुलसी-ग्रंथावली (कवितावली), पृ० २१०, २११, २१२

६. पर्शियन इन्फ़्लूएंस आन हिंदी, पृ० ८१

तू 'गरीब' को निवाज, हौं 'गरीब' तेरो[१]
प्रभु 'बकसत' गज बाजि बसनमनि, जइ-धुनि गगंन निसान हये[२]
गुनह लखन कर हम पर रोषू[३]
'विभीषण नेवाज,' सेतु सागर तरन भो[४]
राम गरीब-निवाज मेरे सिर राम गरीब-निवाज[५]

इनसे पूर्व के कबीर, दादू एवं नानक के कुछ पद भी प्रस्तुत हैं—

अंधा नर चेतै नहीं कटै न संसे सूल ।
और 'गुनह' हरि 'बकससी', कांमीं डाल न मूल ।[६]
बखिशिंदा तूं अज़ाब आखिर, हुकमं हाजिर सैल ।[७]

ख़ुदा की बखशिश के संबंध में गुरु नानक के विचार इस्लाम के अनुकूल ही हैं। वह उसकी रहमत (दया) से मायूस नहीं हैं—

साहिबु रिदै बसाइ न पछोतावही ।
गुन्हा बखसणहारु सबदु कमावही ॥[८]
गुर के चाकर ठाकुर भाणे । बखसि लीए नाही जम काणे ॥[९]

इस्लाम में क़ियामत को जुज्वेईमान (ईमान का अंग) इसलिए भी बनाया

---

१. क. विनयपत्रिका, तु० ग्र० ४१८, पृ० ७८
ख. गई बहोर 'गरीब नेवाज़ू' (मा० १।१३।४)
ग. सो तुलसी महंगो कियो राम गरीब निवाज । दो० १०८
घ. कायर कूर कूप तन की हद तेनु गरीब नवाज नेवाजे । क० ७।१, पृ० १६७
ङ. लाय जोग छेम को गरीबी मिस कीनता । वि० २६२

२. क. गीतावली, १।४३
ख. मै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा (मा० १३०६।२)
ग. बखसीस ईस जू की सीख होत देखियत (क० ६।१०)

३. मानस १।२८१।३

४. कवितावली, ५६, पृ० १६६

५. मीरा, पृ० ७६

६. कबीर-ग्रंथावली, पृ० ३१

७. दादू-वानी, भाग २, पृ० १३२

८. नानक-वाणी, पृ० ३००

९. क. नानक-वाणी, पृ० ७१६
ख. आपे जाणे आपे देइ । आखहि सि मि केई केइ ॥
जिसनो 'बखसे सिफति' सालाह । नानक पातिसाही पातिसाहु ।
नानक-वाणी, पृ० ९०

गया है कि मनुष्य संसार के इस अस्थायी जीवन को ही कहीं सब कुछ न समझ बैठे और हुक़ूक़ुलइबाद (वह अधिकार एवं कर्त्तव्य जो मानव जाति या जीवधारियों को दिये गये हैं) और हुक़ूक़ुल्लाह (अल्लाह के प्रति कर्त्तव्य) को भुला बैठे। इसीलिये हराम हलाल तथा उसके फलस्वरूप दोजख जन्नत, जज़ा सज़ा आदि कुछ ऐसे विषय हैं जो क़ियामत के ही प्रकरण में स्पष्ट करने उपयुक्त होंगे। हिन्दी कवि भी इससे अवगत मालूम होते हैं।

हराम-हलाल

मानव जीवन के विधिवत् संचालन के लिए क़ुरान में कुछ विधिनिषेधों का उल्लेख किया गया है। हराम अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है—'जिसका खान पान आदि धर्म में वर्जित हो'[1] तथा हलाल का अर्थ है जाइज, विहित, जिसका खाना और पीना आदि धर्म में वर्जित न हो।[2] सूअर का गोश्त[3], जुआ,[4] शराब,[5] यतीम (अनाथ) का माल हड़प कर जाना[6], सूदखोरी[7], कम तौलना[8], परस्त्री गमन[9], चोरी[10], झूठ[11] आदि समस्त अमानवीय कुकर्मों को क़ुरान में हराम कहा गया है। और इन हरामखोरियों के अनुपातानुकूल दोजख आदि के दंडों का स्पष्ट उल्लेख है जो क़ियामत के दिन भोगने होंगे। हलाल के विषय में क़ुरान में कहा गया है कि 'ऐ ईमानवालो पाक चीजों में से जो हमने तुम्हें दी हैं खाओ और अल्लाह का शुक्र अदा करो।[12]

नैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से इस विधिनिषेध की महत्ता यह है कि इनके प्रकाश में मुसलमान क़ियामत के दिन जवाबदेही से डरता है। तभी तो मुस्लिम समाज में इसका यहाँ तक प्रचलन है कि यदि कोई मुसलमान कभी झूठ बोल दे या कम तोल दे तो लोग कहते हैं—'मियाँ मुसलमान होकर झूठ बोलते हो, मियाँ मुसलमान

१.-२ शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० १३३-१३६
३. क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयत १७३
४. क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयत २१६
५. क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयत २१६
६. क़ुरान, सूरे बनीइस्राईल (१७), आयत ३५
७. क़ुरान, सूरे बक़र (१), आयत १७५, आले इम्रान (५) आयत, १३४
८. क़ुरान, सूरे बनी इस्राईल, आयत ३५
९. क़ुरान, सूरे बनीइस्राईल (१७), आयत ३२
१०. क़ुरान, सूरे मायदा (५), आयत ३८
११ क. क़ुरान, सूरे बक़र
ख. सूरे बनी इस्राईल (१०), आयत ३२-३५
१२. क़ुरान, सूरे बक़र (२) आयत, १७२

होकर कम तोलते हो, शर्म नहीं आती, अल्लाह के घर नहीं जाना ?' इसका एक उदाहरण हिंदी साहित्य में भी बड़ा मशहूर है। एक बार अकबर ने करनेश वंदीजन की कविता से प्रसन्न होकर अपने खज़ांची को उन्हें उचित इनाम देने को कहा। कोषाध्यक्ष बहुत दिनों तक टाल-मटोल करता रहा और कुछ भी हाथ से नहीं दिया। कवि को एक दिन क्रोध आ गया और खजांची को निम्नांकित छंद द्वारा फटकारा—

खात है 'हराम' दाम करत हराम काम घट घट तिनहीं के अपयश छावेंगे।
दोज़ख हूं जैहैं तब काटि काटि खैहैं खोपरी को गूदो काग टोंटनि उड़ावेंगे॥
कहैं करनेस अब घूस खात लाज नहीं, रोजा औ निमाज अंत काम नहिं आवेंगे।
कविन के मामले में करै जौन खामी तौन निमक हरामी मरै कफन न पावेंगे॥[1]

केवल टाल मटोल करने पर ही सच्चा मुसलमान कितना दोषी ठहराया जा सकता है और उसके रोज़े नमाज़ सब अकारथ चले जाते हैं, न केवल यह बात करनेश *को मुस्लिम दरबार के सम्पर्क से मालूम हो गई थी अपितु हराम हलाल में फ़र्क़,* दोज़ख के अज़ाब, मरने के बाद कफ़न मिलना न मिलना आदि मुस्लिम संस्कृति के धार्मिक संस्कारों से भी करनेश भली भांति परिचित मालूम होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कवि भी हराम और हलाल की धारणाओं से अवगत हैं—

जोर न करै 'हराम' न खाई। सो मोमिन भिस्त में जाई।[2]
कूड़ु बोली मुरदारू खाइ। अवरी नो समझावणि।[3]
मुठा आपि मुहाए साथै। नानक ऐसा आगू जापै॥[4]
गिरो हिये हहरि, हराम हो हराम हन्यो।
हाय हाय करत परीगो काल फंग में॥
'खांहि हलाल हरांम' निवारैं, भिस्त कौं होई।[5]

नानक जी कहते हैं हलाल होकर ही हक़ (सीने) में जा लगता है और उसके दर्शन से उसके दरबार में प्रविष्ट होता है और रैदास भी हक़ हलाल को पहचानने के लिए अर्ज़दाश्त करते हैं—

होई 'हलालु' लगै हकि जाइ। नानक दरि दीदार समाई॥[6]
रैदास की अरदास सुनि, कुछ 'हक़ हलाल' पिछान वे।[7]

---

१. मित्रबंधु विनोद, प्रथम भाग, पृ० ३२४
२. दादू-वानी, भाग १, पृ० १२९
३ नानक-वाणी, पृ० १७७
४. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, पृ० १८१, कवितावली ७६
५ कवीर-ग्रंथावली, पृ० ६२
६. नानक-वाणी, पृ० ५७०
७. रैदास की वानी, पृ० १६

जज़ा-सज़ा—(पुरस्कार-दंड)

जैसा कि क़ुरान पर आधारित क़ियामत का विवरण इससे पूर्व हम लिख आए हैं कि क़ियामत के दिन जज़ा-सज़ा (पुरस्कार-दंड) का एक निश्चित विधान है। हिंदी के अनेक कवि इससे न केवल अवगत हैं अपितु अरबी फ़ारसी के उन्हीं शब्दों के माध्यम से तत्संबंधी विचार भी अभिव्यक्त किये हैं। आखिरीकलाम में जायसी ने इसका सविस्तार वर्णन किया है—

जबहि अंत कर परलै आई। धरमी लोग रहै ना पाई ॥[1]
होयगा हिसाब जब मुख से न आवै ज्वाब।
सुंदर कहत लेखा लेत राई राई को।[2]
जुलम कूं करता है धनीसूं न डरता है दोजख कूं भरता है खजाना बलाई का।
होयगा हिसाब जब आवेगा न ज्वाब तब, सुन्दर कहत गुनेहगार है खुदाई का।[3]

कबीर भी ज़ोर जुल्म के बदले जज़ा सज़ा को मानते हैं—

जोर किया सो जुलुम है लेई जवाब खुदाइ।
दफतर लेखा नीकसै मार मुहै मुह खाइ ॥[4]
साहिब मेरा लेखा मांगै, लेखा क्यूं करि दीजै[5]
धर्मराज जब लेखा मांगै बाकी निकसी भारी
अबकी बार बखसि बन्दे कौं बहुरि न भव जल फेरा ॥[6]

दादूदयाल भी क़ियामत के हिसाब के दिन से चिंतित हैं और माफ़ भी कराना चाहते हैं—

दादू गुनहगार है मैं देख्या मन माहि।
खुसी तुम्हारी त्यूं करौ, हम तो मानी हारि।
भावै बन्दा बकसिये, भावै गहि करि मारि।
दादू जो साहिब लेखा लिया, तौ सीस काटि सूली दिया।
मिहरि मया करि फिलि किया, तो जीये जीये करि जिया ॥[7]

---

१. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३४४
२. सुन्दर-विलास, पृ० १८
३. क. सुन्दर-विलास, पृ० १९
ख. है गुनेहगार भी गूना ही करत है, खायगा मार तब फिरे रोता।
जिन तुझे खाक से अजब पैदा किया, तू उसे क्यु फरामोश होता।
सुन्दर-विलास, पृ० १२
४. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १९२ देखिये पृ० २०२ भी
५. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १३५
६ कबीर-ग्रंथावली, पृ० २२८ ७. दादू-बानी, भाग १, पृ० २४१

तुलसी भी सज़ा से परिचित हैं—

तो विधि देइहि हमहि 'सजाई'।[1]

अस्सिरात या पुलसिरात्

ये अरबी-फ़ारसी भाषा के शब्द हैं और मुसलमानों के अक़ीदे के अनुसार यह जन्नत और दोज़ख के बीच का एक पुल है[2] जिसे क़ियामत के दिन सब जीवों को पार करना पड़ेगा। इसके नीचे घोर अंधकारपूर्ण भयानक नरक है। यह पुल बाल से भी बारीक और खड्ग की धार से भी तेज़ बताया गया है। पापियों के लिए यह ऐसा ही रहेगा और पुण्यात्माओं के लिए अच्छा ख़ासा चौड़ा हो जाएगा ताकि वे सीधे जन्नत में पहुँच जाएं। पापी कट कट कर दोज़ख (रौरव नरक) में गिर पड़ेंगे जहां उन्हें दहकती आग में जलना होगा। हिंदी में इसे वैतरणी का पुल कह सकते हैं।

हिंदी के सूफ़ी कवि तो मुसलमान होने के नाते इससे भली भाँति परिचित ही थे। जायसी ने अखरावट में नाम सहित और पद्मावत में इसके नाम के बिना इसका उल्लेख किया है

तीस सहस्र कोस कै पाटा। अस साँकर चलि सकै न चाँटा॥
'खांड़े चाहि पैनि बहुताई। बार चाहि ताकर पतराई॥[3]
नासिक 'पुल सरात' पथ चला। तेहि कर भौंहैं हैं दुई पला॥[4]
जेतने परे सब सलरि उठावौं। 'पुलसरात कर पंथ रेंगावौं॥[5]
'पुलसरात' पुनि होइ अभेरा। लेखा लेब उमत सब केरा॥
एक दिसि बैठि मुहम्मद रोइहैं। जिबरईल दूसर दिसि होइहैं॥
वार पार किछु सूझत नाहीं। दूसर नाहिं, को टेके बाहीं॥
तीस सहस्र कोस कै बाटा। अस सांकर जेहि चलै न चाँटा॥
'बारहु तें पतरा अस झीना। खड़ग-धार से अधिको झीना॥'
दोउ दिसि नरक-कुण्ड हैं भरे। खोज न पाउब तिन्ह महं परे॥
देखत काँपे लागै जांघा। सो पथ कैसे जैहै नांघा॥
+ + +
जो धरमी होइहि संसारा। चमकि बीजु अस जाइहि पारा॥[6]

---

१. रामचरितमानस, २।१६।३
२. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम (क़ियामः), पृ० २६३
३. जायसी-ग्रंथावली (पदमावत), पृ०६६ एवं पृ० ३४६
४. जायसी-ग्रंथावली (अखरावट), पृ० ३०६
५. जायसी-ग्रंथाकली (आख़िरीकलाम), पृ० ३४७
६. जायसी-ग्रंथावली (आख़िरीकलाम), पृ० ३४८, ३४६

जायसी ने पद २७, २८ में पुलसिरात का मुस्लिम विश्वास के अनुकूल विस्तार से वर्णन किया है। हिंदी के मुसलमान सूफ़ी कवि तो निश्चित रूप से मुस्लिम संस्कृति के प्रतीक थे ही, इनके अतिरिक्त मुस्लिम समाज के संपर्क के परिणाम स्वरूप हिंदी के अन्य कवियों ने भी पुलसिरात का वर्णन किया है। रैदास जी क़ियामत के दिन के जज़ा सज़ा (पुरस्कार दंड) से भी परिचित मालूम होते हैं और पुलसिरात से भी—

हृदय करीम संभारि सवेरे।
आगै 'पंथ खरा है भीना', खांडे धार जैसा है पैना।
जिस ऊपर मारग है तेरा, पथी पंथ संवार सवेरा।
क्या तैं खरचा क्या तैं खाया, चल दरहाल दिवान बुलाया।
साहिब तो पै लेखा लेसी।[1]

गुरुग्रंथ साहव में भी पुलसिरात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

खंडेधार गली अति भीड़ा। लेखा लीजै तिल जिउ पीड़ा॥[2]
वालों की पुलसिरात कवनि न सयाहु।
फ़रीदा कूड़ पवन्दी ई खड़ा न आप सहाय।[3]
पुलसिरात का पंथ दोहेला। संग न साथी गवन अकेला।[4]

इनके अतिरिक्त राग सोही फ़रीद वार दो और राग रामकली महला ३ वार दो में भी इसका उल्लेख मिलता है।

कृष्ण भक्ति शाखा के कवि रसखान का यह पद भी इस विषय में विचारणीय है। उन्होंने प्रेम पंथ को पुलसिरात जैसा कठिन बताया है—

कमल तंतु सो हीन अरु कठिन खड़ग की धार।
अति सूधो टेढ़ो वहुरि, प्रेम पंथ अनिवार॥[5]

जन्नत-दोज़ख (स्वर्ग-नरक)

क़ियामत के दिन जज़ा-सज़ा (पुरस्कार-दंड) के निर्णय के पश्चात् कर्मानुकूल ही सत्यत्कर्मियों को जन्नत और कुकर्मियों को दोज़ख (रौरव नरक) दिया जाएगा। इसका विवरण हम क़ियामत के विषय में जो क़ुरान की अनेक आयतें उद्धृत की हैं उसमें दे आए हैं। यहाँ तो मुस्लिम संपर्क से हिंदी में जो विवरण मिलता है उसको देखना है। क़ुरान में कहा गया है कि जो ईमान लाए और जिन्होंने नेक काम किये

१. रैदास की वानी, पृ० २८, २९
२. नानक-वाणी, पृ०६२६
३. गुरुग्रंथ साहव, श्लोक फरीद (वार दो)
४. गुरुग्रंथ साहव, राग सोही (रविदास) वार दो।
५. प्रेमवाटिका, पद ६

(हराम न खाया) उन्हें हम जन्नत में दाखिल करेंगे।[1] माँ के क़दमों (पैर) के नीचे जन्नत है, यह भी इस्लामी विचार है।[2] दादू दयाल ने मोमिन को जन्नत मिलनेकी बात कही है—

जोर न करै हराम न खाई। सो मोमिन भिस्त में जाई।

जायसी ने हूराने-बिहिश्त (स्वर्ग की अप्सराएँ) के लिए अछरी कविलास का शब्द प्रयोग किया है। यह ऐसे ही जानिये जैसे इन्होंने क़ुरान के लिए पुरान और वेद शब्दों का पृ० ३४४ पर भी प्रयोग किया है। आखिरी कलाम के पदसैंतालीस (४७।४८) में जन्नत के चिरंतन सुख का जो इन्होंने वर्णन किया है वह इस्लामी विश्वास के अनुरूप ही है तथा जन्नत में शरावे-तहूरा (पवित्र शराब) जो मोमिनों को मिलेगी उसका जायसी ने स्पष्ट उल्लेख किया है—

एक तौ अमृत, बास कपूरा। तेहि कहं कहा शराव-तहूरा ॥[3]
फिरै तंबोल, मया से कहब अपुन लेइ खाहु।
भा परसाद, मुहम्मद उठि 'बिहिस्त' मंह जाहु ॥[4]

हिंदी के सूफ़ी कवियों ने जन्नत का वर्णन कैलाश[5] कविलास, बहिश्त, जन्नत, बैकुंठ आदि अनेक नामों से किया है। जायसी कृत आखिरी कलाम (पद २२, ३३, ४७, ४८, ४९) में सविस्तार इस्लाम के अनुसार जन्नत की व्याख्या मिलती है।

इन सूफ़ी कवियों के अतिरिक्त हिंदी के अनेक कवियों ने जन्नत का ऐसा वर्णन किया है कि जिससे पता चलता है कि उन्होंने मुस्लिम-धर्म का मुस्लिम समाज में उठ बैठकर अच्छा खासा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। गुरुग्रंथ साहब में जन्नत और

---

१. शारटर एंसाक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ८८
२. क. माता पिता को जो रहसावा। सौ बैकुंठ फल पावा। इंद्रावती, पृ० ३६
   ख. दादू बानी, भाग १, पृ० १२९
   ग. हौ 'अछरी कविलास' कै जेहि सरि पूज न कोई। जायसी-ग्रंथावली, पृ० ९१
   घ. मिलि हूरैं नेवछावरि करि हैं, सबके मुखन फूल अस झरि हैं।
   जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३५९
   ङ. चालीस चालीस 'हूरैं' सोइ। ओ संग लागि वियाही जोई ॥
   जायसी-ग्रंथावली पृ० ३५८
३. जायसी ग्रंथावली, पृ० ३५६
४. क. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३५६
   ख. कहब रसूल 'विहिस्त न जाऊँ। जौ लगि दरस तुम्हार न पाऊँ ॥'
   जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३५७
   ग. दुलह जतन मुहम्मद विहिस्त चले विहंसात ॥ जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३५८
५. हंसजवाहर, पृ० ३३

दोज़ख का कई स्थानों पर स्पष्ट उल्लेख मिलता है। एक ही रूपक में अनेक इस्लामी बातों को स्पष्ट कर दिया गया है, 'ऐ प्राणी अच्छे कामों (नेक कामों) को धरती, खुदा के नाम को बीज बनाओ······ज़मीन को सींचो किसान बनकर ईमान को पैदा करो तथा जन्नत दोज़ख को इस तरह समझो—

अमलु करि धरती बीज सबदो करि सच की आब नित देहि प्राणी।
होइ किरसाणु इमानु जंमाइ लै भिस्तु दोजकु मूड़े एव जाणी ॥[1]

आगे कहते हैं कि गुरु और पीर तब हामी भरेंगे, जब इन्सान मुरदार खोरी न करे। केवल बातों से कोई भी मनुष्य बहिश्त नहीं पा सकता—

गुरु पीर हामः तां भरे। जा मुरदार न खाए॥
गल्लें बहिश्त न जाए। छूटे सच कमाए॥[2]
बहिश्त पीर लफज कमाए अंदाजा। हूर नूर मश्क खुदाया बंदगी

+ + +

हक हलाल बाबूर बखाना। दिल दरयाव दोह्रो मै लाना।
पीर पिछाने बहिश्ती सोई। इज़राईल न दोज़ ठहरा॥[3]

इसके अतिरिक्त गुरु ग्रंथ साहब में राग रामकली महला १, राग आसा कबीर श्लोक कबीर,'बाड़ गउड़ी श्लोक महला ५, राग तिलंगा महला ५, आदि आदि अनेक स्थानों पर जन्नत दोज़ख का ऐसा वर्णन मिलता है जिससे स्पष्ट है कि बाबा साहिब (तथा गुरुग्रंथ साहब में संग्रहीत अन्य भक्तों की वाणी) इस्लाम में बताए हुए जन्नत दोज़ख, क़ियामत, जज़ा सज़ा की महत्ता को भली भाँति समझते थे, जो उन्हें मुस्लिम संस्कृति के प्रतिनिधि सूफ़ी कवियों, सूफ़ियों, मुस्लिम समाज एवं अमीर उमरा के संपर्क से प्राप्त हुआ होगा।

कबीर मनमौजी थे इसलिए उनके यहाँ विरोधाभास मिलना स्वाभाविक है। कहीं जन्नत की याचना करते हैं,[4] कहीं ठुकरा देने को तैयार हैं।[5]

दादू दयाल सच्चाई पर चलने वाले के लिए जन्नत का दरवाज़ा खुला हुआ

---

१. नानक-वाणी, पृ० १२६
२. गुरुग्रंथ साहब, राग गउडी महला १ वार २
३. गुरुग्रंथ साहब, रागमारू महला ५
४. क. जन कबीर तेरी पनह समाँनां, 'भिस्त' नजीक राखि रहमाँनाँ।
   कबीर-ग्रंथावली, पृ० १५२
   ख. दास कबीर तेरी पनह समाना। 'भिस्त' नज़ीक राखु रहमाना।
   कबीरग्रंथावली पृ० २५०
५. क. 'भिस्त न मेरे चाहिये, बाझ पियारे तुझ। कबीर-ग्रंथावली, पृ० १५
   ख. देखिये कबीर-ग्रंथावली, पृ० ८४, १३०, १८२, २५४ आदि

बताते हैं जो क़ुरान की एक आयत का अनुवाद मात्र है—

चालै साच संवारै वाट। तिनकूं खुलै भिस्त का पाट ॥[१]

वही कहते हैं कि अल्लाह ही आशिक़ों का ईमान है। उस दयालु के मुक़ाबले में जन्नत, दोज़ख़, दीन-दुनिया किस काम के हैं—

अल्लाह आसिकां ईमान।
'भिस्त दोजख' दीन दुनिया, चिकारे रहमान ॥[२]
तन मन भी छिन करौं, भिस्त दोजग भी वार।[३]

जहाँ पर क़ुरान में जन्नत से सम्बद्ध अन्य सुखों का वर्णन हैं वहाँ कौसर या आवे-कौसर का भी वर्णन मिलता है[४] यह स्वर्ग की एक नदी या चश्मा है। हिंदी कवि इससे भी परिचित हैं—

कै निरमल 'कौसर' अन्हवावौं। पुनि जीउन्ह बैकुंठ पठावौं।[५]
पुनि 'कौसर' पठउब अन्हवावै। जहां कया निरमल सब पावै ॥

दोज़ख़, जहन्नम (नरक)

कुकर्म करने वालों को जहन्नम का कठोर दंड दिया जाएगा। क़ुरान में इसका विस्तृत विवरण मिलता है।[६] इस्लाम में दोज़ख़ का विचार सांस्कृतिक दृष्टि से इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसके भय से दुराचारी व्यक्ति सदाचार की ओर आ सकता है[७] और सदाचारी व्यक्ति सभ्य एवं संस्कृत समाज का महत्वपूर्ण अंग है। हिंदी कवि भी दोज़ख़ (जहन्नम या नरक) की इस्लामी धारणा से भलीभांति अवगत हो गये थे। हरामख़ोरी के परिणाम स्वरूप कुकर्मी को दोज़ख़ में जाना होगा। 'करनेश' कवि ने इसे यों अभिव्यक्त किया है—

खात है हराम दाम करत हराम काम घट घट तिनहीं के अपयश छावेंगे।
दोजखहूं जैहै तब काटि काटि खैहैं खोपरी को गूदो काग टोंटनि उड़ावेंगे ॥[८]

---

१. दादू-वानी, भाग १, पृ० १२६
२. दादू-वानी, भाग २, पृ० १६६
३. दादू-वानी, भाग १, पृ० ३०
४. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम (जन्नत), पृ० ८८
५. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३४७
६. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ८१
७ जिसका नित नोन खात मुतलक भी ना डरात
कौल से बेकौल हुआ किसी की न लेत दुआ।
'दोजख' के लिये दिल कौन कौन मारा है। रैदास की वानी, पृ० २९
८, मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, पृ० ३२४

हिंदी के मुसलमान सूफ़ी कवि तो जैसा कि स्वाभाविक ही है जहन्नम की इस्लामी धारणा से भलीभांति परिचित थे ही, किंतु उन्होंने सामान्यतः अपनी कृतियों में नरक, नरककुंड आदि शब्दों का ही प्रयोग किया है—

निमिख लागि जो आपुहि नांसा। ता कहं 'नरक' माहिं भा बासा।[1]
बहुतक 'नरक-कुंड' महं गिरहीं। बहुतक रकत पीब महं परहीं॥[2]

यहाँ आखिरीकलाम में जहन्नम या दोजख का वर्णन क़ुरानी आयतों के अनुरूप ही वर्णित है। इनके अतिरिक्त अन्य हिंदी कवियों ने स्पष्ट रूप से दोज़ख का उल्लेख किया है—

जग अंधा नैन न सूझै, जिन सिरजे ताहि न बूझै॥
पाहण की पूजा करै, करि आतम घाता।
निरमल नैन न आवई, 'दोजग' दिसि जाना॥[3]

कबीर भी यह जानते थे कि क़ुरान में मुशरिक (खुदा को एक न मानने वाला) की सजा दोज़ख बताई गई है।[4] रैदास ने भी दोज़ख के भय को समझा है।

ईमान

ईमान का अर्थ है धर्म पर दृढ़ विश्वास रखना। अक़ीदा, यक़ीन इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है[5] कि ईमान लाने वाले मोमिन को यह मानना चाहिए कि 'मैं ईमान लाया अल्लाह पर और (सत्य जाना) उसके फ़रिश्तों पर और उसकी (पैग़ंबरों को भेजी हुई) किताबों पर और रसूलों (ईशदूत) पर और क़ियामत (निर्णय के दिन) पर ईमान लाया तथा मृत्यु के पश्चात् जी उठने पर (क़ियामत के दिन) तथा उसकी ओर से भेजे हुए आदेश पर।' इनमें से अनेक बातों की व्याख्या हम इससे पहले कर चुके हैं यहाँ तो केवल इतना कहना है कि हिंदी कवि मुस्लिम संपर्क के कारण शब्द ईमान तथा इसकी स्प्रिट (आत्मा) से कितना परिचित हुए हैं। दादू दयाल ने 'आमन्तो बिल्लाहि' का कैसा सुंदर अनुवाद किया है—

अल्लाह आप 'इमान' है, दादू के दिल माहिं।
सोई स्याबति राखिये, दूजा कोई नाहिं।[6]

१, मधुमालती, (पद १२७), पृ० १०६
२. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३४६
३. दादू-बानी, भाग २, पृ० ७६
४. हंम तौ एक एक करि जांनां।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग, जिन नांहिन पहिचानां॥ कबीर-ग्रंथावली, पृ० ८२
५. ईमाने-मुफ़स्सल—आमन्तो बिल्लाहि व मलाइकतिहि व कुतोबेही व रसुलेही वल्योमिल आखिरे वल्क़द्रि खैरेही व शर्रिही मिनल्लाहि तआला वल्बअसे बादलमौत।
६. दादू-बानी, भाग १, पृ० ६०

मलूकदास जी 'ईमान' खो देने को अच्छा नहीं बताते तथा उस सांसारिकता को भी धिक्कार कहते हैं जो दीन से बेदीन करे—

ऐ अजीज 'ईमान' तू, काहे को खोवै।
हिय राखै दरगाह में, तो प्यारा होवै॥[1]

नानक जी एक रूपक द्वारा ईमान को दृढ़ कर लेने की ओर ध्यान दिला रहे हैं—

अमलु करि धरती बीज सबदो करि सच की आब नित देहि प्राणी।
होइ किरसाणु 'इमानु' जंमाइलै भिस्तु दोजकु मूड़े एव जणी॥[2]

ईमान दुरुस्त करने पर ही मनुष्य सच्चा धर्मानुयायी बन सकता है, ऐसा कबीर का मत है—

सो हिंदू सो मुसलमांन, जिसका दुरस रहै ईमांन।

ईमान के साथ दीन, दुनिया से भी हिंदी-कवि परिचित हो गए थे—

बन्दे 'दुनियां' को 'दीन' गवंवाया।
सो दुनिया तेरे संग न लागी, मूड़ अजाब कमाया॥[3]
दादू दुनियां सूं दिल बांधि करि, बैठे 'दीन' गंवाइ।[4]

मुसावात

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है समानता, बराबरी, सबको एक जैसे अधिकार मिलने का सिद्धांत। भाईचारा या साम्यवाद भी इन्हीं अर्थों में आता है।

इस्लाम में मुसावात का सिद्धांत तौहीद से ही प्रेरित है। इस्लाम से पूर्व के इतिहास में भाईचारे का विचार केवल एक ऐसे दार्शनिक विचार तक ही सीमित मिलता है जिसका दैनिक जीवन के व्यावहारिक रूप में प्रचलन नाम मात्र तक ही सीमित था।[5] मुसावात इस्लाम धर्म की मुख्य विशेषताओं में से एक है। तौहीद

१. (क) मलूकदास की वाणी, पृ० १६
(ख) लानत इस दुनियां को जो 'दीन' से बे दीन करै
खाक ऐसे खाने जिन 'ईमान' बेच लिया है। मलूक-बानी, पृ० ३१
२. नानक-वाणी, पृ० १२६
३. मूलक-वाणी, पृ० २५
४. (क) दादू-बाणी, भाग १, पृ० १२७
(ख) भिस्त दोजख दीन दुनिया, चिकारे रहमान। दादू-बानी, भाग २ पृ० १६६
(ग) बेदीनां की दोस्ती बेदीना का खाणु। नानक-वाणी, पृ० ४६८
५. इस्लाम : ए स्टडी, पृ० ८

का अर्थ, जैसा कि इसके पूर्व स्पष्ट किया जा चुका है एक होना और एक करना है।[1]

इस्लाम के व्यावहारिक पक्ष (कर्मवाद) में जितने भी धार्मिक अनुष्ठान (धार्मिक कृत्य) हैं, आचार या सदाचार की दृष्टि से उन सबका एक महत्व यह भी है कि मुस्लिम समाज में मुसावात को इनसे बहुत बल मिलता है।

क़ुरान में कहा गया है 'लोगो ! हमने तुम्हें (अपने हुकुम से) एक मर्द और एक औरत (आदम, हव्वा) से पैदा किया और तुम्हारे कुनबे बनाए ताकि तुम आपस में पहचाने जाओ तुममें सबसे अधिक महान् (बुजुर्ग) अल्लाह के नजदीक वह है जो तुममें सबसे अधिक हमारा कहना मानता है।'[2] 'और यह सब मानव भाई भाई हैं और मैं तुम्हारा रब हूँ।'[3] एक हदीस में भी कहा गया है कि खुदा की सब खलक़त (रचना) एक कुनबा है और खुदा को वह सर्वाधिक प्रिय है जो उसकी मख़लूक़ (जीवधारी) से सर्वाधिक भलाई करे।[4] औरत (नारी) के अधिकारों के विषय में क़ुरान में एक सूरत (४) 'सूरे निसा' रखी गई है जिसमें एक स्थान पर यह भी कहा है, 'ऐ लोगो उस रब से डरो जिसने तुम्हें एक व्यक्ति आदम से बनाया और उसी से उसका जोड़ा बनाया और दोनों से बहुत से नर नारी पैदा किये।[5] इसी सूरत में औरत(नारी) को बाप दादा की जायदाद में से हिस्सा, विरसा मिलने, शादी व्याह आदि के अनेक अधिकारों का खोल कर वर्णन किया गया है। यही कारण है कि मुस्लिम संस्कृति में माँ के क़दमों के नीचे जन्नत होना, माँ का आदर तथा स्त्री के अधिकारों की रक्षा का खयाल अधिक रखा जाता है। और यही कारण है कि मुस्लिम औरतों (स्त्रियों) को उनके अपने नाम से पहचाने जाने या पुकारे जाने का रिवाज है जैसे-खदीजा, आइशा, फ़ातिमा, जैनब, न कि मिस जौन्स, मिसेज़ जेम्स आदि आदि।[6]

उपर्युक्त क़ुरानी आयतों के तथा अन्य अनेक स्थानों पर बताए हुए खुदा के आदेशों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि इस्लाम की आत्मा (स्प्रिट) की वास्तविक अभिव्यक्ति इस सत्यमें भी है कि 'इस्लाम जाति-पांति, रंग-नस्ल के भेदभाव[7]

१. शार्टर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ५८६
२. क़ुरान, सूरे हिजरात (४९) आयत १३-१४
३. क़ुरान, सूरे अंबिया (२१), आयत ९२
४. क. ग्लिम्पसेज़ आफ़ हदीस, न० ३८, पृ० १
ख. उनकी नजर न आवते, कोइ राजा रंक। मलूक-बानी, पृ० ७
५. क़ुरान, सुरे निसा (४), आयत १
६. दी स्प्रिट आफ़ इस्लामिक कल्चर, पृ० ६-७
७. दी होली क़ुरान, प्रीफ़ेस, पृ० १५ तथा स्प्रिट आफ़ इस्लामिक कल्चर, पृ० ३

तथा मनुष्य और निर्माता के बीच किसी प्रभुत्व, ठेकेदारी या पुरोहितवाद को स्थान नहीं देता । इस्लाम की दृष्टि में समस्त मानव (स्त्री-पुरुष, धनी-निर्धन) सब एक समान हैं और यही मुसावत है । इस्लाम की मुख्य विशेषताओं में से मुसावत (बराबरी, भाईचारा) भी एक है । नारी और ग़ुलाम (क्रीतदास) को भी क़ुरान में समान अधिकार दिए गए हैं[1] जिसके कारण मुस्लिम समाज के ग़ुलामों ने भी अनेक वर्षों तक शासन की बागडोर संभाली है[2] तथा नारियाँ भी धर्म की प्रोत्साहक (ख़दीजा) और शासक (रज़िया आदि) रही हैं ।

इस्लाम में व्यक्तिगत आजादी के लिए मुसावत आवश्यक है । प्रत्येक मनुष्य ख़ुदा से सीधा संबंध रख सकता है । किसी पुरोहित की बीच में आवश्यक्ता नहीं मानी गई । पैग़ंबर (ईश दूत) केवल पथ-प्रदर्शक हैं जो मार्ग दर्शन द्वारा ख़ुदा और मनुष्यों के संबंधों को दृढ़ बनाने का रास्ता बताते हैं। पैग़ंबर का आदर अवश्य करना चाहिए किंतु उसकी पूजा की आज्ञा क़ुरान ने कभी भी नहीं दी । धार्मिक अनुष्ठानों में भी मुसावत का सिद्धांत स्पष्ट रूप से सामने आता है। जैसे नमाज़ में अमीर ग़रीब, काला (हज़रत बिलाल हबशी) गोरा, बादशाह ग़ुलाम[3] (अयाज़) तथा लोहार बढ़ई सब ही कंधे से कंधा मिला कर नमाज़ (मस्जिद में) जमाअत से पढ़ते हैं । हज्ज (मक्का यात्रा) एक ओर तो सब लोग एक साथ अदा करते हैं तथा दूसरे समस्त संसार के लोग एक दिन एक स्थान पर (केन्द्रीकरण की दृष्टि से) इकट्ठे हो सकते हैं इसी प्रकार ज़कात (पुअर रेट) के द्वारा भी मुस्लिम समाज में मुसावत (आर्थिक-समानता) पैदा होती है। सूद के लेने को हराम इसलिये भी किया गया है कि अर्थ-शास्त्र या आर्थिक दृष्टि से इससे धन संचय (मोनोपली) तथा पूंजीवाद (कैपीटलिज़्म) पनप नहीं पाता । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस्लाम में मुसावत का सिद्धांत तथा उस पर अमल (कार्यबद्ध होना) मुस्लिम-संस्कृति का एक महान् गुण है ।

यहाँ पर मुसावत की चर्चा कुछ विस्तार से इसलिए करनी पड़ी है कि इस्लाम के भारत आगमन से पूर्व भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था, जात-पाँत, पुरोहितवाद तथा अन्य अनेक सामाजिक विषमताओं ने ऐसा विकराल रूप धारण कर लिया था जो इतिहास प्रसिद्ध है तथा प्राचीन भारतीय साहित्य बौद्ध, ब्राह्मण, शैव, शाक्तों आदि अनेक संघर्षों का साक्षी है ।[4] इन कमज़ोरियों के कारण भी बाहरी जातियों एवं

१. क़ुरान, सूरे निसा (४) आयत २४-२७, ३६

२. हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन इंडिया (ग़ुलाम पीरियड) स्लेव डाइनेस्टी

३. एक ही सफ़ में खड़े हो गये महमूदो-अयाज़ ।
न कोई बंदा रहा और न कोई बंदा नवाज़ । इक़बाल

४. विस्तृत विवरण के लिए देखिये—भारतीय संस्कृति का विकास, डा० मंगलदेव शास्त्री

धर्मों को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। इस्लाम के तौहीद, आखिरत, जज़ा-सज़ा, तथा मुसावत आदि गुणों का भारतीय विचार धारा एवं आचरण पर गहरा प्रभाव पड़ा है[1] तथा हिंदी साहित्य भी इसका अपवाद न रह सका।

तुलसीदास जैसे उदारमना महान प्रतिभाशाली व्यक्ति को अपने ही समाज से जिस प्रकार के आक्षेप-बाण प्राप्त हुए थे उसकी ओर संकेत करते हुए एक स्थान पर वे यह भी कहते हैं कि मुझे चाहे कुछ कहो मैं तो एक ऐसे मस्त सूफ़ी फ़क़ीर की भांति हूँ-जो इन सब बातों से ऊपर होता है, और जो मिल जाता है खा लेता है और जहाँ स्थान मिल जाता है, सो लेता है।

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
मांगि कै खैबो 'मसीत' को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ॥[2]

यहाँ पर पहली दो पंक्तियों में जाति-भेद या वर्ण-व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है तथा 'सरनाम गुलाम' से मुस्लिम संपर्क और 'मस्जिद में सो लेने' से इस्लाम के मुसावत एवं वर्ग-भेद-रहित होने की ओर स्पष्ट संकेत है। वास्तव में तुलसी बड़े ही स्पष्ट वक्ता एवं समन्वयात्मक दृष्टिकोण वाले उदारमना कलाकार थे। 'साह ही को गोत-गोत होत है 'गुलाम' को[3], भी मुस्लिम दौर के महमूद और अयाज़ तथा गुलाम ख़ानदान के शासक होने की मुस्लिम मुसावत की परंपरा की याद दिलाती है।

हिंदी-साहित्य में जात-पांत, वर्ण-व्यवस्था[4], मूर्तिपूजा तथा अन्य सामाजिक रीतियों या कुरीतियों एवं विषमताओं का जो चित्र कबीर, दादू, सुंदरदास तथा अन्य कवियों की रचनाओं में मिलता है यहाँ उसे उद्धृत करना नहीं है न हमारा कोई ऐसा आग्रह है कि इस्लाम के मुसावत का कितना अधिक प्रभाव हिंदी पर पड़ा है अपितु यहाँ मुस्लिम संस्कृति एवं धर्म के संपर्क के परिणाम को आंकने के नाते उन पद्यों को प्रस्तुत किया जाएगा जिनका भाव इस्लामी मुसावत के निकट है या क़ुरानी कथनों के

---

१. ऐतिहासिक एवं युक्तियुक्त विस्तृत विवरण के लिए देखिये—इन्फ़्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, डा० ताराचंद तथा अलबीरूनीज इंदिका (अल-हिन्द)

२. क. तुलसी-ग्रन्थावली, भाग २ (कवितावली। १०६), पृ० १८७

ख. लोग कहैं पोचु, सो न सोचु न संकोचु,
मेरे ब्याह न बरेखी, जाति पांति न चहत हौं।
तुलसी-ग्रन्थावली, भाग २ (विनयपत्रिका ७६) पृ० ४१७

३. तुलसी-ग्रन्थावली, पृ० १८८

४. पूजिय विप्र शील गुन हीना। शूद्र न गुन-गन ज्ञान प्रवीना। तुलसी

समीप जान पड़ता है। क़ुरान में कहा गया है कि ऐ लोगो तुम आपस में भाई भाई हो और एक आदम की औलाद हो मैं तुम्हारा रब हूँ। इसको ही फ़ारसी कवि ने कहा है 'बनी आदम आज़ा-ए-यक दीगरअंद।' अर्थात् सब मानव एक शरीर के अंग की भांति हैं। दादू के भाव भी ऐसे ही मिलते हैं।—

जाति हमारी जगत गुरु परमेसुर परिवार।[1]
आतम भाई जीव सब, एक पेट परिवार।
दादू मूल विचारिये, तौ दूजा कौन गंवार॥[2]

क़ासिमशाह कृत हंसजवाहर में शादी के भोज वर्णन में इस्लामी मुसावत की झलक मिलती है—

भयो व्याह सायत सुभग, दोउ दिशि भयो हुलास।
पुनि समाज भोजन भये, बैठ लोग चहुँ पास॥
बैठे लोग छतीसों जाती। जो जेहि भाँति सी तेहि पाती।
पाँति पाँति से सबै बिठावा। औ सबके पुनि हाथ धुआवा।
जहँलग पुर अमीर उमराऊँ। सेवक आन भये तेहि ठाऊँ।
राखे भार सम्हार के, सब रस प्रेम मिलाय।
नाउ निरंजन सुमिर के, लाग सबै जो खाय॥[3]

नाउ निरंजन सुमिर के से बिसमिल्लाह करना अभिप्राय है और वह एक निरंजन (तौहीद) ही मुसावत का कारण है तथा सब जाति के लोगों का इकट्ठा होना और जहाँ जिसे रुचे बैठना इस्लामी भाईचारा है। तुलसीदास जी भी जात पांत की अपेक्षा संसार को एक कुनबा मानते हैं—

मेरे जाति पांति, न चहौं काहू की जात पांति।
मेरे कोऊ काम को न, हौं काहू के काम को॥
+ + +
साह ही को गोत होत है गुलाम को।[4]

यहां पर 'साह (शाह)' और 'गुलाम' शब्द महमूद और अयाज़ की समानता तथा मुस्लिम संस्कृति के संपर्क की ओर संकेत करते हैं।[5]

१-२. दादू-बानी, भाग १ पृ० ८६, २२३। अल खलक़ो अयालुल्लाह अर्थात् खुदा की सब रचना उसका कुनबा है। ग्लिम्सेज़ आफ़ हदीस, पृ० १

३. हंस जवाहर, पृ० ८८

४. तुलसी ग्रंथावली भाग २ (कवितावली १०७), पृ० १८८

५. एक ही सफ़ में खड़े हो गये महमूदो-अयाज़।
ना कोई बंदा रहा और न कोई बंदा-नवाज़॥ कुल्लियाते-इक़बाल

निम्न पद भी मुसावत द्वारा प्रेरित परिस्थिति के बाद के हैं जिनका अध्ययन दिलचस्पी से खाली नहीं है। सूफ़ियों ने सदा समानता और मुसावत की शिक्षा दी है—

कहा भयो जो विप्र कुल जनम्यो सेवा सुमिरन नाही।
स्वपच पुनीत दास परमानंद जो हरि सन्मुख जाही।[1]
जात गोत कुल नाम गनत नहि रंक होइ कै रानी—१।११

निम्न पदों की शब्दावली तथा भाव भी विचारणीय हैं। शाह हो या गुलाम सबको उसकी इबादत का समान अधिकार है—

खड़ा रहूँ दरबार तुम्हारे, ज्यों घर का बंदा जादा।[2]
न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम।[3]
ऋद्धि अरु सिद्धि जाके हाथ जोरि आगे खरी,
सुन्दर कहत ताके सबही गुलाम हैं।[4]
हज काबे हौं जाइया आगे मिला खुदाइ।
+ + +
बलिहारी इहि प्रीति की जिह जाति बरन कुल जाइ॥[5]

२. व्यवहार पक्ष तथा कर्मवाद

अल्लाह के आदेश से मुहम्मद साहब के द्वारा इस्लाम का प्रवर्तन एक संघीय धर्म के रूप में हुआ। यह एक प्रवृत्ति प्रधान मज़हब है जहाँ इस्लाम के सैद्धांतिक पक्ष के प्रमुख स्तंभ तौहीद और आखिरत एवं ईमाने-मुफ़सल (अल्लाह पर, उसके मलाइका—फ़िरिश्तों, आसमानी किताबों, रसूलों, यौमे-क़ियामत आदि) पर विश्वास करना है और इसको मुसावत आदि द्वारा क्रियान्वित करना है, वहाँ दूसरी तरफ़ व्यवहार पक्ष के नाते धार्मिक-अनुष्ठान अथवा धार्मिक कृत्यों का भी आदेश दिया गया है जोकि नमाज़ रोज़ा, हज्ज, ज़कात आदि हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से इनका यह महत्व है कि यह धार्मिक अनुष्ठान ऐसे हैं जिनसे एक ओर जहाँ सामूहिक और संघीय जीवन को बल मिलता है तथा समस्त जीवन एवं विशेषरूप से आचार पक्ष का सुधार होता है वहाँ दूसरी तरफ़ धार्मिक दृष्टि से दुनिया और आख़िरत (लोक परलोक) में उत्तम सिद्धियों की प्राप्ति होती है

१. परमानन्ददास (हस्तलिखित प्रति), पृ० २७६
२. मलूक-बानी, पृ० ६
३. तुलसी-ग्रंथावली (विनय पत्रिका ७७), पृ० ४१७
४. सुन्दर-विलास, पृ० ७
५. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १६८, १६६

और रूहानियत (आध्यात्मिकता) की ओर बढ़ने का एक माध्यम हैं।

कुरान के आदेशानुसार इस्लाम धर्म के अनुयायियों का दृढ़ विश्वास है कि जो जैसा कर्म करेगा उसको क़ियामत के दिन वैसा ही फल प्राप्त होगा।[1] इसलिए इस्लाम में एक खुदा की इबादत (बन्दगी, आराधना) पर बल देते हुए नमाज, रोज़ा, हज्ज, ज़कात[2] आदि कृत्यों पर भी बल दिया गया है। भारतवर्ष का इस्लाम से दीर्घकाल का संपर्क है। मुस्लिम-संस्कृति के प्रतिनिधि सूफ़ियों के माध्यम से तथा मुस्लिम शासकों, मुस्लिम देशों के व्यापारियों एवं पर्यटकों और मुस्लिम समाज के संपर्क में हिंदी-कवि आदिकाल से ही रहे हैं। आलोच्यकालीन हिंदी-कवियों के काव्य के सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन से ऐसा प्रमाणित होता है कि ये हिंदी-कवि न केवल इस्लाम के सैद्धांतिक एवं व्यवहार पक्ष की मोटी मोटी बातों से ही परिचित हो गये थे अपितु वे इनको भली-भाँति समझते भी थे तभी तो उनमें से अधिकांश के द्वारा क़ुरआनी शब्दावली का इतना ठीक ठीक प्रयोग किया गया है कि जिसे देखते ही बनता है और जो हिंदी और मुस्लिम संस्कृति के संपर्क का एक सहज, सुखद एवं उदार परिणाम है।

कलिमा

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है शब्द, वाक्य तथा मुसलमानों का धर्ममंत्र। इस मंत्र का पारायण करना कि अल्लाह एक है और मुहम्मद उसका रसूल है (लाइलाहा इल्ललाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाहि)। भाव की दृष्टि से हिंदी के अनेक कवियों में अल्लाह के एक होने का भाव तो मिल ही जाता है किन्तु शब्द 'कलिमः (कलमा)' का भी हिंदी कवियों ने प्रयोग किया है—

> आप अलेख इलाही आगै, तहं सिजदा करै सलामं ॥
> (दादू) सब तन तसबी कहैं करीमं, ऐसा करले जापं।
> रोजा एक दूर करि दूजा, 'कलमा' आपै आपं ॥[3]

यहाँ पर इलाही, सिजदा, सलाम, तसबी (सुमिरनी) करीम, रोज़ा और 'कलमा' शब्द क़ुरानी शब्दावली के हैं। इससे मुस्लिम-संपर्क तो स्पष्ट झलकता ही है, दादू-साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन यह बताता है कि दादू कलिमा से भी अपरिचित नहीं मालूम होते—

> दिल दरियां में गुसल हमारा, ऊजू करि चित लाऊं।
> साहिब आगे करूं बन्दगी बेर बेर बलि जाऊं ॥
> (दादू) पंचौ संगि संभालूं साई, तन मन तौ सुख पाऊं।

---

१. क़ुरान, सूरे हाममीम अस सजद: (४१), आयत ४६
२. क़ुरान, सूरे साफ़्फ़ात (३७), आयत ३७-४२
३. दादू-बानी, भाग १, पृ० ६३

प्रेम पियाला पिवजी देवै, 'कलमा' ये लय लाऊं ॥[1]

यदि मनुष्य नापाक हो तो नमाज से पहले गुसल (स्नान) करे अन्यथा साधारणतः पांचों समय की नमाज़ से पूर्व (नापाक न होने पर भी) वुज़ू (ऊज़ू) करके ही बंदगी (नमाज़) करनी होती है, कलमा उसके बाद। दादू इन धार्मिक कृत्यों से परिचित ही मालूम पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त मनमौजी मस्त कबीर के एक दो उदाहरण से इसे यहीं संक्षिप्त किया जाता है।

अल्लह अवलि दीन को साहिब जोर नहीं फुरमावै ॥
निवाजु सोई जो न्याई विचारै 'कलमा' अकलहि जानै।
पांचहुं मुसि मुसला बिछावै तब तौ दीन पछानै ॥[2]

इसमें पहली पंक्ति क़ुरान की इस मशहूर आयत का अनुवाद मालूम होती है—लाइक्राहाफ़िद्दीन यानी अल्लाह कहता है, दीन में कोई जोर ज़बरदस्ती नहीं।

'कलमा' पढ़ि पढ़ि भई तुरकानी, अजहूं फिरै अकेली।[3]

नमाज़ तथा अरकान

यहाँ पर नमाज तथा उससे संबद्ध अज़ान (बांग), वुज़ू, ग़ुस्ल, नमाज के पांच समय, सजदा, रुकूअ, नमाज़ पढ़ने का स्थान (मस्जिद), अन्य उपकरण, मुसल्ला, तसबीह तथा उन सबही बातों की एक ही स्थान पर संक्षिप्त व्याख्या की जाएगी, जिनके उदाहरण आलोच्यकालीन हिंदी साहित्य में स्थान स्थान पर मिलते हैं।

इस्लाम के व्यवहार पक्ष के अंतर्गत इस धार्मिक अनुष्ठान का एक महत्वपूर्ण स्थान है। क़ुरान में स्थान स्थान पर नमाज़ पढ़ने का आदेश आया है तथा तत्संबन्धी विषयों की व्याख्या एवं उपयोगिता बताई गई है।[4]

नमाज का मुख्य उद्देश्य अल्लाह का स्मरण है जिसके माध्यम से बंदा (दास) अपने रब (पालने वाला) की ओर लपकता है, उसके सामने अपनी दीनता एवं विनम्रता प्रकट करता है और उससे अपने सुधार सँवार तथा नजात की याचनाएँ करता है। नमाज़ जीवन के लिए साँस की भाँति आवश्यक बताई गई है। नमाज़ से दूर व्यक्ति को जीवन की वास्तविकता से दूर बताया गया है। यह तो हुआ एक प्रकार का धार्मिक दृष्टिकोण। वैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्या करते हुए एक विद्वान ने नमाज़ की

१. दादू-बानी, भाग १, पृ० १३०

२. कबीर-ग्रंथावली, (परिशिष्ट-२१७), पृ० २५३-२५४

३. क. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १२४
   ख. जिन कलमाँ कलि माँहि पढ़ावा, कुदरति खोजि तिन्हू नहिं पावा ॥
   कबीर-ग्रंथावली, पृ० १८१

४. क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयतें ३, ४३, ४५, ११०, १४६, १५०, २३८ आदि

स्वास्थ्य के लिए उपयोगिता सिद्ध करते हुए कहा है—'नमाज़ में शारीरिक जोड़ों (ज्वाइंटस) से काम लिया जाता है जैसे हाथों को कान तक उठाकर 'नीयत' बाँधना रुकूअ (सिर झुकाना) और सजदा (बैठकर झुकना) करना 'क़अद:' में बैठना, सलाम फेरना, उंगलियों, कलाइयों, कंधों, कोहनियों, रीढ़ की हड्डी की गुर्रियों, घुटनों, टखनों और गर्दन की हड्डियों को काम में लेना होता है।

नमाज़ न केवल रूहानियत (आध्यात्मिकता) के उत्थान के लिए आवश्यक है[1] अपितु एक अच्छी हल्की शारीकि वरज़िश (एक्सरसाइज़) भी है जिससे शारीरिक जोड़ मज़बूत हो जाते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से नमाज़ में कंधे से कंघा मिलाकर एक ही सफ़ (पंक्ति) में गोरा काला, अमीर ग़रीब, क़ाज़ी, मुल्ला, सक़्क़ा, लोहार, बढ़ई, बादशाह, ग़ुलाम का खड़ा होना मुसावत भाईचारा और समानता तथा सामाजिकता को बढ़ावा मिलता है।[2]' वास्तव में इस्लाम पहला धर्म है जिसने सामूहिक इबादत (पब्लिक प्रेयर) करने के तरीक़े से तहज़ीबी यकरंगी (साँस्कृतिक एकता) प्रदान की।[3]

हिंदी के सूफ़ी कवि तो इन धार्मिक अनुष्ठानों और विशेष रूप से नमाज़ से परिचित ही होंगे, इसमें सन्देह की क्या गुंजाइश हो सकती है। सामान्यतः इन्होंने इसका शरीअत के नाम से उल्लेख किया है। शरीअत में नमाज रोजा आदि ये धार्मिक अनुष्ठान ही आते हैं—

सांची राह 'सरीअत', जेहि बिसवास न होई।
पाँव राख तेहि सीढ़ा नि भरम पहुँचै सोइ॥[4]

इन्होंने कहीं कहीं नमाज़ का भी स्पष्ट उल्लेख कर दिया है और कहीं पाँच वक़्त का भी—

सांई केरा बार, जो थिर देखे औ सुनै
'नइ नइ करै जोहार मुहमद निति उठि पाँच बेर'।
ना 'नमाज' है दीन कथूनी। पढ़ै नमाज सोइ बड़ गूनी॥[5]
वही किरति कीना सबै, वही दोउ जग साँच।

---

१. क़ुरानमजीद और तख़लीक़े-इनसान, पृ० ६८
२. विस्तृत विवरण के लिए देखिये - शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ४८६-४९९
३. दी स्प्रिट आफ़ इस्लामिक कल्चर, ४
इनडीड, इस्लाम वाज़ दी फ़र्स्ट रिलीजन टू इंन्ट्रोड्यूस 'दी ट्रेमैंडस पावर आफ़ पब्लिक प्रेयर ऐज़ ए यूनिफ़िकेशन कल्चर।'
४. जायसी-ग्रंथावली (अखरावट २६), पृ० ३२२
५. जायसी-ग्रंथावली (अखरावट २५, २६) पृ० ३२१

कासिम खोजौं वही का, नाम नित्त जग 'पाँच' ॥[1]

गुरुग्रंथ साहब में अनेक स्थानों पर नमाज़ के बारे में कहा गया है—

फरीदा बे निमाजा कुत्तया इह न भली रीत।
कबही चल न आया पंजेवखत मसीत।[2]
'पंजि वखत निवाज' गुजारहि पड़हि कतेब कुराण।
नानक आखे गोर सदेई रहिओ पीण खाण ॥[3]

इतना ही नहीं ग्रंथ साहब में राग तिलंग महला १ वार २ में नमाज़े-जनाज़ा (मरने के बाद मृतक के भार कम कराने के लिए जो नमाज़ पढ़ाई जाती है) का भी इन शब्दों में उल्लेख है। आख़िर बेयफतम कस नदारद, चूं शवद 'तकवीर'।[4] 'तकबीर' नमाज़ शुरुअ होते ही पढ़ी जाती है।

दादू वाणी में तो नमाज़ सिजदा शीर्षक से जो निम्नलिखित पद्य दिये गये हैं उनमें हौद, हज़ूरी, गुस्ल, उज़ू, अल्लाह निमाज, मसीत, पंजमाती, इमाम आदि अनेक शब्द हैं जो नमाज़ से संबंधित हैं। ये इस रूप में वर्णित किये गये हैं—

॥ नमाज़ सिजदा ॥

(दादू) 'हौद' हज़ूरी दिल ही भीतर, 'गुस्ल' हमारा सारं।
'उजू' साजि अलह के आगै, तहाँ 'निमाज' गुजारं ॥
(दादू) काया 'मसीत' करि 'पंचजमाती,' मनही 'मुला इमामं।'
आप अलेख इलाही आगै, तहं 'सिजदा' करै सलामं ॥
(दादू) सब तन 'तसबी' कहै करीमं, ऐसा कर ले जापं।
'रोजा' एक दूर करि दूजा 'कलमा' आपै आपं ॥
(दादू) अठे पहर अलह के आगै, इक टग रहिबा ध्यानं।
आपै आह, अरस के ऊपर, जहाँ रहै रहमानं।
अठे पहर इबादती, जीवन मरण निबाहि।
साहिब दर सेवै खड़ा, दादू छाड़ि न जाइ।[5]

---

१. हंसजवाहर, पृ० २७३
२. गुरुग्रंथ साहब, श्लोक फ़रीद जी (वार दो) २१६९
३. क. नानक वाणी, पृ० २७
   ख. तोह करि रखे 'पंजि करि साथी' नाउ सैतानु मतु करि जाई।
   नानकु आखै राहिपै चलणा मालु धनु कितकू संजि आही।
   नानकवाणी पृ० १२६
४. नानक वाणी, पृ० ४२७
५. दादू-बानी, भाग १, पृ० ६३

दादू ने उजू (वजू), निमाज (नमाज़), पंचजमाती (पाँचों समय की जमाअत) मसीत (मस्जिद), सिजदा, सलामं, तसवी (तसबीह), रोज़ा आदि जिन शब्दों का स्पष्ट उल्लेख किया है उनकी व्याख्या प्रसंगानुकूल आगे की जाएगी। इन्होंने प्रथम भाग में पृ० १३०, १५२ पर भी नमाज़ का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त रैदास भी सच्चे इश्क़ के जाग्रत होने पर ही नमाज़ की उपयोगिता बताते हैं—

जिसके इसक आसरा नहीं, क्या 'निवाज़' क्या पूजा।[1]

मलूकदास नमाज़ के क़ज़ा (छूट जाने) होने तथा नमाज़ से भी परिचित मालूम होते हैं—

तीजी और 'निमाज' न जानूँ, ना जानूं धरि 'रोजा'।
बाँग जिकर तबही से बिसरी, जब से यह दिल खोजा॥
कहैं मलूक अब 'कजा' न करिहौं, दिल ही सों दिल लागा।[2]

यहाँ सूफ़ियों की शरीअत से गुज़र कर आगे की स्थिति (स्टेज) की ओर भी संकेत है। दादू, मलूक, रैदास आदि साधु संत स्वतंत्र प्रवृत्ति के थे इसलिए इनके यहाँ मंडन और खंडन दोनों ही मिलते हैं। कबीर क्योंकि इनसे और भी आगे थे और अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति तथा अटपटी वाणी के लिए मशहूर हैं इसलिए उन्होंने जहाँ चाहा मंडन किया और जहाँ चाहा नमाज़ रोज़ा करने वालों को फटकार दिया। उनके नमाज़ सम्बन्धी दोनों प्रकार के विचार यहाँ दिये जाते हैं—

'निवाज' सोइ जो न्याई विचारै कलमा अवलहि जानै।
पांचहु मुसि मुसला बिछावै तब तौ दीन पिछानै।[3]
मुलनाँ बंग देइ सुर जांनी, आप मुसला बैठा ताँनी।
आपुन मैं जे करै 'निवाजा', सो मुलनाँ सरबत्तरि गाजा॥[4]

नमाज़ के कपड़ों की पाकी नापाकी (पवित्रापवित्र) का भी बड़ा ख़याल रखा जाता है और कपड़े में यदि ख़ून का धब्बा लगा हो तो नमाज़ नहीं पढ़ी जानी चाहिये

जो रतु लगै कपड़े 'जामा' होइ 'पलीतु'।[5]

---

१. रैदास की बानी, पृ० २९ २. क. मलूक दास की बानी, पृ० ७
ख. संध्या 'निवाज' समय करि देखै। मलूक-बानी, पृ० २७
३. कबीर-ग्रंथावली, पृ० २५४
४. क. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १६९
ख. जो दिल मैंहि कपट निवाज गुजारहु क्या हज काबै जाया।
कबीर-ग्रंथावली, पृ० २४८
५. क. नानक-वाणी, पृ० १७८
ख. तू 'नापाक' 'पाक' नहीं सूझ्या जिसका मरम न जान्या॥
कबीर-ग्रंथावली, पृ० २४८

ग़ुस्ल और वुज़ू

नमाज़ पढ़ने वाला यदि किसी मल मूत्र या वीर्य निष्कासनादि के कारण नापाक है तो केवल वुज़ू से काम न चलेगा। उसे ग़ुसल (स्नान) करना चाहिये। ग़ुस्ल और वुज़ू के विषय में क़ुरान में अनेक स्थानों पर उल्लेख है।[1] वुज़ू, नमाज़ पढ़ने से पूर्व शुद्धि की दृष्टि से हाथ आस्तीन तक, मुंह तथा पाँव विधिवत् धोने को कहते हैं।[2] कतिपय हिंदी के कवियों ने इसका उल्लेख किया है

> दिल दरिया में 'ग़ुसल' हमारा, 'ऊजू' करि चित लाऊँ।
> साहिब आगे करूँ वंदगी, वेर वेर वलि जाऊँ॥[3]
> क्या उज्जू पाक किया मुह धोया क्या मसीति सिर लाया।
> जौ दिल मैहि कपट, निवाज गुजारहु क्या हज काबै जाया॥[4]

यहाँ कबीर क़ुरानी उस आयत की ओर संकेत कर रहे हैं कि वुज़ू और नमाज़ तव ही वख्शी जाएगी जव दिल से पढ़ी जाए और दिल को सांसारिक कपट से पाक किया जाए अन्यथा सब निस्सार है।[5] इस आयत में मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) के लिए कहा गया है।[6]

अज़ान (वांग)

अज़ान का अर्थ है घोषणा करना[7], नमाज़ का बुलावा, नमाज़ की सूचना के शब्द जो ज़ोर ज़ोर से पुकारे जाते हैं। मुहम्मद साहव के ज़माने में सामान्यतः हज़रत बिलाल (एक हब्शी काले रंग वाले) अज़ान दिया करते थे। अज़ान, नमाज़ पढ़ने वालों को सूचना देने के लिए दी जाती है जिससे उन्हें यह पता चल जाए कि अब कुछ क्षणों के पश्चात् सामूहिक नमाज़ प्रारंभ होने वाली है। अज़ान का संक्षिप्त सार यह है कि 'ऐ नमाज़ पढ़ने वालो नमाज़ की ओर आओ। यह नमाज़ तुम्हारे

---

१. क़ुरान, सूरे अलमाइद: (५), आयत ५, ६
२. वुज़ू के विवरण के लिये देखिये - दी होली क़ुरान, प्रीफ़ेस, पृ० ३७
३. दादू-बानी, भाग १, पृ० १३०
४. (दादू) हौद हज़ूरी दिल ही भीतर 'गुसल' हमारा सारं।
'उजू' साजि अलह के आगे, तहां निमाज़ गुजारं। दादू बानी, भाग १, पृ० ६३
५. (क) कबीर-ग्रंथावली, पृ० २४८
(ख) उठ फरीद उजू साज, सुबह नमाज गुजार।
गुरुग्रंथ साहब, श्लोक फरीद जी वार दो।
६. क़ुरान, सूरे अन-निसा (४), आयत १४२
७. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० १६

सुधार का एक मार्ग है और जो एक अल्लाह के लिए पढ़ी जाती है जो बहुत महान् है, पाक है, मुहम्मद जिसका रसूल है।'[१]

मुस्लिम-संपर्क के परिणाम स्वरूप कतिपय हिंदी कवि अज़ान से परिचित मालूम होते हैं। गुरुग्रंथ साहब राग मारू महला पाँच में अज़ान (बांग) संबंधी चर्चा मिलती है और कबीर के यहाँ भी—

मुलनां 'बंग' देइ सुर जांनी, आप मुसला बैठा तांनीं ॥[२]

दादू और मलूक ने भी अज़ान (बांग) का उल्लेख किया है—

'बांग' जिकर तब ही से बिसरी, जब से यह दिल खोजा ॥[3]

सजदा

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है झुकना, माथा टेकना, सर झुकाना, ज़मीन पर सर रख कर खुदा को प्रणाम करना। सजदा नमाज़ का एक विशेष अंग है जिसमें मनुष्य अल्लाह की महानता, पाकी और सर्वशक्तिमत्ता का ध्यान रखते हुए अपना सिर उसके लिए ज़मीन पर रख देते हैं।

हिंदी-कवियों ने अपने काव्य में सजदा का उल्लेख किया है—

तब साहिब कौं 'सिजदा' किया, जब सिर धरया उतारि।[४]
यौं दादू जीवत मरै, हिर्स हवा कौं मारि ॥[५]
जाती नूर अलाह का सिफाती अरवाह।
सिफाती 'सिजदा' करै, जाती बेपरवाह ॥[६]

---

१. शारटर एंसाक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० १६ तथा दी होला कुरान प्रिफ़ेस, पृ० १९

२. (क) कबीर-ग्रंथावली, पृ० १६९
(ख) कहु रे मुल्ला बांग निवाजा। एक मसीति दसै दरवाजा। कबीर-ग्रंथावली, पृ० २४०
(ग) रोजा किया निमाज गुजारी, 'बंग' दे लोग सुनावा। कबीर-ग्रंथावली, पृ० १३३

३. (क) मलूकदास की बानी, पृ० ७
(ख) हर रोज हजूरी होइ रहु, काहे करै कलाप।
मुल्ला तहां पुकारिये, जहं अरस इलाही आप ॥ दादू-बानी, पृ० १३०

४. देखिये—शीर्षक 'नमाज सिजदा', दादू-बानी, भाग १, पृ० ६३

५. दादू-बानी, भाग १, पृ० १६६

६. दादू-बानी, भाग १, पृ० १८२

सिदकु करि 'सिजदा' मनु करि मखसूद।[1]

मलूकदास ने स्पष्ट रूप में सिजदा को विधिवत् व्यक्त किया है—

कहत मलूक महबूब पिया खूब यार।
सिर लगाय जमीं में 'सिरदा' कराइये॥[2]

दरूद

नमाज़ की एक विशेष दुआ है और सलाम विशेषतः रसूल पर भेजा जाता है। नानक जी इससे भी परिचित मालूम होते हैं। यह एक पारिभाषिक शब्द है—

पीर पैकामर सालक सादक सुहदे अउर सहीद।
सेख मसाइक काजी मुला दरि दरवेस रसीद॥
बरकति तिन कउ अगली पड़दे रहनि 'दरूद'।[3]

तसवीह

नमाज़ के बाद विशेषरूप से तथा वैसे भी खाली समय में नमाज़ी तसवीह पढ़ता है। तसवीह अल्लाह की महानता के वर्णन के रूप में पढ़ी जाती है। तसवीह सुमिरनी को भी कहते हैं—

माला कहाँ औ कहाँ तसवीह[4]—
मन मनके करि 'तसवी' फेरूँ, तव साहिव के मन भावै।[5]

मुसल्ला

नमाज़ पढ़ने की चटाई या दरी को मुसल्ला कहते हैं। कवीर ने इसका भी प्रयोग किया है—

पाँचहु मुसि 'मुसला' विछावै तव तौ दीन पछानै।[6]

मस्जिद—(मसीत)

नमाज़ पढ़ने के भवन को मस्जिद[7] कहते हैं। वस्तुकला की दृष्टि से गुंवद

---

१. नानक-वाणी, पृ० १६६
२. (क) मलूक-बानी, पृ० २६
   (ख) कितने वैठे सिरदा करते, माया जाल लपेटा। मलूक-बानी पृ० १
३. नानक-वाणी, पृ० १३२
४. (क) मलूक-बानी, पृ० २७, २८
   (ख) तसवी फेरौं प्रेम की हियां करौं निवाज। मलूक-बानी, पृ० ७
५. दादू-बानी, भाग १, पृ० १३०
६. कवीर-ग्रंथावली, पृ० २५४
७. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, पृ० ३३०-३५३ के आधार पर

तथा बहुत बड़े बड़े दरों महराबों वाली इमारत होती है। इसमें सहन (आंगन) भी होता है तथा यदि संभव हो तो इसमें वज़ू करने के लिए हौज़ (जलाशय) भी होता है। अन्य पूजा स्थानों की भांति इसमें गोपनीयता का कोई स्थान नहीं होता। दमिश्क़ और बग़दाद आदि प्रमुख मुस्लिम केंद्रों में मस्जिद के एक भाग में ही मदरसा (पाठशाला) भी हुआ करता था जहाँ पर संसार भर के ज्ञान-विज्ञान की शिक्षाएँ भी दी जाती थीं। भारत में भी मुस्लिम शासन के काल में अनेक मस्जिदों से ही मदरसा (पाठशाला) भी संबद्ध (अटैच्ड) थे जहाँ पर ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी।[1] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मस्जिद संकुचित भावना की द्योतक नहीं। यह केवल-मात्र एक ऐसा धर्म-स्थान नहीं है जहाँ नमाज़ी के अतिरिक्त और किसी का प्रवेश ही न हो। अल्लाह वाले सूफ़ी संत और मस्त फ़क़ीर (यदि अन्य स्थान न मिले तो उसमें) रात को विश्राम भी कर सकते हैं। संभवतः तुलसीदास जी ने कभी ऐसा देखा भी हो। एक मस्त सूफ़ी फ़क़ीर की सी तरंग में आकर तुलसीदास ने यह बात कही है—

तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
मांगि कै खैवो 'मसीत' को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ॥[2]

ये पंक्तियाँ तुलसीदास जी की उदारता की सूचक हैं तथा इससे पूर्व के सवैयों में इन्होंने अपनी सामाजिक विषमता का स्पष्ट चित्र दिया है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक हिंदी कवियों ने मस्जिद का वर्णन किया है जो मुस्लिम संपर्क का ही परिणाम है—

(दादू) हिन्दू लोग देहुरै, मुसलमान 'मसीति'।
न तहां हिन्दू दहुरा, न तहां तुरक 'मसीत'।
यहु 'मसीत' यहु देहुरा, सतगुर दिया दिखाइ।[3]

रोज़ा—

यह फ़ारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है व्रत, उपवास। इसके लिए अरबी शब्द सियाम या 'सौम' है। क़ुरान में रोज़ा रखने के लिए अनेक स्थानों पर

१. देखिये—सोसाइटी एंड कल्चर ड्यूरिंग दी मुग़ल एज, पृ० १४४-१४५, १४७

२. तुलसी-ग्रंथावली, (कवितावली। १०६), पृ० १८७

३. क. दादू-वानी, भाग १, पृ० १६५

ख. 'मसीत' संवारी माणसौ, तिस कौं करै सलाम। दादू-वानी, भाग १, पृ० २२४

ग. महल मियां का दिलहि में औ 'महजिद' काया। मलूक-वानी, पृ० ७

घ. पढ़ि ले काजी बंग निवाजा, एक 'मसीति' दसौं दरवाजा।
कबीर-ग्रंथावली, पृ० ८३ तथा २४०

आदेश आया है। जिस मास में तीस रोजे रखे जाते हैं वह रमज़ान कहलाता है। क़ुरान में आया है 'रमज़ान का महीना है जिसमें क़ुरान नाज़िल (उतरा) हुआ कि लोगों के लिए मार्ग दर्शन की खुली निशानियाँ हैं।[1] तो तुम में से जो कोई इस महीने को पाए उसे चाहिए कि उसमें तीस रोज़े रखे। और जो कोई बीमार हो तो बाद में पूरा करे। रोज़ा प्रत्येक वयस्क मुसलमान पर फ़र्ज़ (अनिवार्य) किया गया है तथा इसकी अनेक उपयोगिताएँ बताई गई हैं। सियाम शब्द का अर्थ है रुक जाना, रोज़े में मुसलमान प्रातःकाल पौ फटने के समय से लेकर संध्या तक खाने-पीने तथा स्त्री प्रसंग से रुका रहता है। इसके साथ-साथ रोज़े से मनुष्य में धर्मपरायणता आती है, हृदय और आत्मा की शुद्धि तथा आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास होता है, वह संयमी और अल्लाह से डरने वाला बनता है। रोज़ा रखने का एक उद्देश्य यह भी है कि मनुष्य को भूख तथा ग़रीबों के अभाव का एहसास भी हो सके। यों तो व्रत, उपवास का प्रचलन संसार भर के धर्मों में किसी न किसी रूप में रहा है जो किसी भी असमय (दुःख, विपत्ति आदि) के अवसर पर रखा जाता था। किंतु इस्लाम में मनुष्य की मानसिक प्रवृत्तियों के सर्वतोमुखी विकास एवं संस्कार के लिए रोज़े की उपयोगिता बताई गई है।[2] तथा इससे स्वास्थ्य वृद्धि, आत्म शुद्धि एवं दृढ़ संकल्प को बल मिलता है।

मुस्लिम संपर्क के कारण हिंदी-साहित्य में रोज़े का भी उल्लेख किया गया है। हिंदी के सूफ़ी कवियों ने इसे भी 'शरीअत' के अंतर्गत ही वर्णित किया है।[3] इनके अतिरिक्त गुरु ग्रंथ साहब में बताया गया है कि रोजा (तीसों) रखने और नमाज़ (पांच समय) को साथी बनाने (पढ़ने) से शैतान (नारद) के षड्यंत्रों से मनुष्य बच जाता है—

'तीह करि राखे' पंजि करि साथी नाउ सैतानु मतु करि जाई।
नानकु आखै राहि पै चलणा मालु धनु कितकू संजि आही ॥[4]

दादू, मलूक, कबीर आदि कवियों ने भी रोज़े का उल्लेख किया है—

'रोजा' किया निमाज गुजारी, बंग दे लोग सुनावा।[5]

---

१. क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयतें १८३-१८५

२. दी होली क़ुरान, प्रीफ़ेस, पृ० २५-२६

३. सांची राह 'सरीअत', जेहि बिसवास न होइ।
पांव राख तेहि सीढ़ी निभरम पहुंचे सोइ ॥ जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३२२

४. नानक-वाणी, पृ० १२६

५. क. कबीर ग्रंथावली, पृ० १३३
ख. हिन्दू एकादसि चौबीस, रोजा मुस्लिम तीस बनाये। बीजक, पृ० ३८८

रोजा करै निमाज गुजारै ।[1]

नमाज़ और रोज़े की नैतिक उपयोगिता की ओर संकेत करते हुए करनेश कवि कहते हैं कि यदि जो रोज़ा रखने और नमाज़ पढ़ने के बाद भी रिश्वत लेता है उसे शर्म आनी चाहिए, उसकी ये इबादतें नष्ट हो जाएंगी ।[2]

हज्जे-कअबा, मक्का, मदीना, आबे-ज़मज़म—

हज्ज अरबी भाषा का शब्द है। यह मुसलमानों का एक धार्मिक कृत्य है जो मक्के (अरब) में जाकर अदा करना होता है और प्रत्येक धनाढ्य वयस्क (स्त्री-पुरुष) पर फ़र्ज़ (अनिवार्य) किया गया है जो उसे जीवन काल में अवश्य एक बार अदा करना होता है। क़ुरान में हज्ज के अनेक स्थानों पर आदेश दिए हुए हैं तथा उनकी विधि भी है।[3] क़ुरान में कहा गया है कि हम (अल्लाह) ने ख़ाना-कअबा को लोगों की इबादत का घर बनाया और कहा इब्राहीम (एक विख्यात पैग़म्बर) को कि नमाज़ का स्थान इसे बनाओ ।[4] काबा मक्का नगर (अरब) में अल्लाह का वह पाक (पवित्र) घर है जिसकी दीवारें अल्लाह के हुक्म से हज़रत इब्राहीम (पैग़ंबर) और इसमाईल (पैगंबर) ने चुनी थीं। यह मानव जाति के वास्तविक धर्म का केंद्र है। इस (दिशा) की ओर मुंह करके संसार भर के मुसलमान नमाज़ पढ़ते हैं। क़िबला भी इसी दिशा को कहते हैं।

हज्ज इस्लाम के व्यवहार पक्ष का पाँचवाँ महत्वपूर्ण स्तंभ है। इसके द्वारा अल्लाह की बड़ाई और उसका प्रेम स्थायी रूप से मन में बैठ जाता है। मनुष्य अल्लाह को अपना स्वामी और पूज्य मानता है। सांस्कृतिक दृष्टि से इसका यह भी महत्व है कि संसार भर के मुसलमान (शाहंशाह से लेकर ग़रीब मज़दूर तक) इस केंद्र पर हर साल इकट्ठे हो जाते हैं। 'एहराम' (एक सादी वेशभूषा) उस सादे फ़क़ीराना लिबास को पहन लेते हैं तथा एक ही रीति से बिना किसी रंग, नस्ल, जात पांत, क़बीला तथा लिंग के ध्यान के एक अल्लाह के बंदे (दास) तथा एक आदम की संतान बन कर हज्ज अदा करते हैं। मुसावात (साम्यवाद समानता) का यह दृश्य द्रष्टव्य होता है जहाँ देश देशांतर के सभी बंधन टूट कर सब एक लड़ी में पिरोए जाते हैं।[5]

१. मलूक-बानी, पृ० २२

२. कहैं करनेस अब घूस खात लाज नहीं 'रोजा' और निमाज अंत काम नहि आवेंगे ।
मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, पृ० ३२४

३-४. क़ुरान, सूरे बक़र, आयतें १२५, १५८, १९१, १९६-२०३ आदि आदि।
तथा शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० १२१-१२४ के आधार पर

५. दी होली क़ुरान, प्रीफ़ेस, पृ० २८

हिंदी-साहित्य में हज्ज, काबा, क़िबला, मक्का संबंधी विचार मिलते तो हैं किंतु स्थानीय तीर्थ यात्रियों के विगड़े हुए रूप को देखकर कहीं कहीं ये संत कवि हज्ज को भी वैसा ही समझ बैठे हैं जो उनके समुद्र पार न जाने के विश्वास एवं संकोच का प्रतिफलन ही समझना चाहिये। कबीर जहाँ बहुश्रुत ज्ञान रखते थे वहाँ अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति का भी प्रयोग करते थे। वे कहते हैं—दिल जब तक साफ़ नहीं करोगे तब तक हज्ज भी—सार रहेगा—

हिरदै कपट मिलै क्यूं साई, क्या 'हज्ज काबै' जावा।[१]
'हज्ज' काबै' ह्वै ह्वै गया, केती बार कबीर।
मीरां मुझ मैं क्या खता, मुखां न बोलै पीर।[२]
हर दो आलम खलक खाना, मोमिना इस्लाम।
'हजां हाजी' कजा काजी, खान तू सुलतान।[३]

जायसी ने मक्का, मदीना आदि को एक रूपक द्वारा एक ककहरे (अलिफ़नामे से प्रेरित) में अभिव्यक्त किया है—

घा, घट जगत बराबर जाना। जेहि महं धरती सरग समाना॥
माथ ऊंच 'मक्का' बन ठाऊं। हिया 'मदीना' नबी क नाऊं॥
सरवन, आंखि, नाक मुख चारी। चारिहु सेवक लेहु बिचारी॥[४]

कबीर भी कुछ ऐसे ही अंदाज से कहते हैं—

मन करि 'मक्का' 'किबला' करि देही। बोलनहार परस गुरु एही।[५]

मक्का और मदीने का भी नामोल्लेख हिंदी कवियों में मिलता है—

कहूं भूल्यो 'मक्का' जइ कहूं भूल्यो काशी है।[६]
'मका' विचि मुसाफरीला, मदीना मुलतान वे॥[७]

---

१. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १३३
२. क. कबीर-ग्रंथावली, पृ० ६७
   ख. 'हज काबे' हौं जाइया आगे मिल्या खुदाइ। कबीर-ग्रंथावली, पृ० १६७
   ग. रोजा करें निमाज गुजारें, क्या 'हज काबै' जाए। कबीर ग्रंथावली, पृ० १३१
   घ. सेप सबूरी बाहिरा, क्या 'हज काबै' जाइ। कबीर ग्रंथावली पृ० ३६,२००
३. दादू-बानी, भाग २, पृ० १६६
४. जायसी-ग्रंथावली, (अखरावट।१०), पृ० ३१०
५. कबीर-ग्रंथावली, पृ० २४०
६. सुन्दर-विलास, पृ० ८२
७. दादू-बानी, भाग २, पृ० १३९

इतना ही नहीं मुस्लिम संपर्क के कारण ये कवि इस्लाम को और भी निकट से देख चुके थे। ज़मज़म मक्के का एक कुआँ है जिसका पानी बहुत ही पवित्र समझा जाता है। इसे आबे-ज़मज़म कहते हैं। दादू ने इसका भी उल्लेख किया है—

इथां 'आब ज़मज़मा', इथांई सुबहान वे।
तख़्त खानी कंगुरेला, इथाँई सुलतान वे।[1]

हिंदी के सूफ़ी-असूफ़ी कवियों में अधिकांश कवि बड़े ही उदार हृदय थे तथा समन्वयात्मक दृष्टिकोण रखते थे। सब अल्लाह के बंदे हैं, एक आदम की औलाद हैं ऐसा क़ुरान में अनेक स्थानों पर कहा गया है और वसुधैवकुटुंबकम की भारतीय परंपरा है। मनोहर कवि भी भारतीय एवं अरबी महान् आदर्शों के समन्वय की ही बात कहते हैं—

अचरज मोहि हिन्दू तुरुक बादि करत संग्राम।
इक दीपति सी दीपियत 'काबा' काशी धाम।[2]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी साहित्य में मुस्लिम संपर्क-स्वरूप हिंदी कवियों ने इस्लाम धर्म के अनेक सिद्धांतों का निरूपण करते हुए अंतर्कथाओं को और धारणाओं को काव्याभिव्यक्ति का साधन बनाया है।

तसव्वुफ़

संसार के प्रत्येक विख्यात धर्म में तसव्वुफ के तत्व पाये जाते हैं। यह बात अलग है कि उसका नाम देश काल के साथ बदलता रहा। पश्चिम हो या पूर्व यह प्रत्येक स्थान पर नजर आता है। इसके पथ अनेक हो सकते हैं[3] किंतु आधारभूत विश्वास प्रत्येक देश के सूफ़ियों के एक से है। प्रत्येक सूफ़ी का लक्ष्य परमसत्ता की खोज, उसकी अनुभूति, उसका दीदार, उसका नैकट्य प्राप्त करना तथा इससे भी एक क़दम आगे रहा है।

तसव्वुफ इश्क़ (प्रेम) पर आधारित बताया जाता है और इसका स्वरूप ऐसा विश्वव्यापी है कि कोई भी देश, कोई भी जाति इससे खाली नहीं। प्रत्येक जाति में कुछ न कुछ ऐसे व्यक्ति निकल आते हैं जिन्हें परमात्मा से इश्क़ की हद तक लगाव होता है। आदि काल से अब तक यदि पूर्व और पश्चिम की महान् विभूतियों की सूची पर ध्यान दिया जाए तो उसमें विचारशील व्यक्ति ऐसे भी मिलेंगे जो किसी न किसी

---

१. दादू-बानी भाग २, पृ० १३६

२. हिंदी-साहित्य का इतिहास, शुक्ल, पृ० २०५

३. विधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत तन रोवां जेते॥
जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३२१

रूप में तसव्वुफ़ के क़ायल थे। इसी प्रकार संसार के प्रमुख साहित्यों पर भी तसव्वुफ़ की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

यह विषय इतना गहन, विशाल, बहुमुखी एवं जटिल है कि इसके साथ पूरा पूरा न्याय करने के लिए कई विशालकाय ग्रंथों की आवश्यकता है। फिर प्रस्तुत शोध प्रबंध की कुछ सीमाएं भी हैं और तसव्वुफ़ इसका एक अंश मात्र है जिसमें मुस्लिम संपर्क के परिणामस्वरूप आलोच्यकालीन हिंदी कवियों द्वारा वर्णित तसव्वुफ़ को प्रस्तुत करना है। इसलिए यहाँ तसव्वुफ़ का कोई विश्वव्यापी इतिहास प्रस्तुत करना उचित न होगा न ही अन्य धर्मों से आदान प्रदान की पूरी कहानी कहना अपेक्षित है।

तसव्वुफ़ की प्राचीनता एवं व्यापकता में विश्वास रखने वाले तथा आदम से लेकर मुहम्मद साहब तक के, अल्लाह द्वारा भेजे हुए पैग़ंबरों का समन्वय करने वाले कतिपय विद्वानों ने तसव्वुफ़ की प्राचीनता इस क्रम से वर्णित की है कि तसव्वुफ़ का बीजवपन हज़रत आदम (आदि मानव एवं पैग़ंबर) में, अंकुर हज़रत नूह (पैग़ंबर—जलप्लावन कथा वाले) में, कली हज़रत इब्राहीम (पैग़ंबर, जिनका लक़ब खलीलुल्लाह अर्थात् अल्लाह का मित्र) में, विकास हज़रत मूसा (पैग़ंबर, तूर पहाड़ पर जलवा, ईश-ज्योति देखने वाले) में, परिपाक मसीह (ईसा पैग़ंबर) में, एवं फलागम मुहम्मद साहिब में हुआ। इसके अतिरिक्त कुछ का मत है कि सूफ़ियों के आठ गुणों का अविर्भाव क्रमशः इब्राहीम, इसहाक़, अय्यूब, ज़क्रिया, यहया, ईसा एवं मुहम्मद साहिब में हुआ। इससे अभिप्राय यही हो सकता है कि सूफ़ी-संप्रदाय का सामी विचारधारा से संबद्ध इस्लाम धर्म से घनिष्ठ संबंध है।

जिस प्रकार ईसाई रहस्यवाद को बिना ईसाई धर्म के संदर्भ के नहीं समझा जा सकता और हिंदू दर्शन या भारतीय रहस्यवाद को बिना हिंदू धर्म के संदर्भ के नहीं समझा जा सकता उसी प्रकार तसव्वुफ़ या इस्लामी रहस्यवाद को समझने के लिए इस्लाम के आंतरिक और बाह्य विकास पर ध्यान देना ज़रूरी है। अरबी, फ़ारसी और तुर्की, इस्लाम की इन तीन प्रमुख भाषाओं में 'सूफ़ी' शब्द के प्रयोग में एक विशेष धार्मिक संकेत या अनुमान पाया जाता है तथा इसका व्यवहार केवल उन रहस्यवादियों के लिए होता है जो इस्लाम धर्म में विश्वास रखते हों।

तसव्वुफ़ की परिभाषा

तसव्वुफ़ या सूफ़ी मत की कोई निश्चित परिभाषा देना इसलिए कठिन है कि यह अल्लाह और बंदे के बीच एक ऐसा अनुभव है कि अनुभवकर्ता अभिव्यक्त करने की चेष्टा करने पर भी इसे पूर्णतः अभिव्यक्त करने में सफल नहीं हो पाता। अंग्रेजी भाषा का शब्द मिस्टिसिज़म तथा हिंदी के आध्यात्मवाद या रहस्यवाद जिन अर्थों में आते हैं,

तसव्वुफ़ से भी लगभग यही आशय है, फिर भी तसव्वुफ़ की परिभाषा अनेक विद्वानों ने की है। लेगेसी आफ़ इस्लाम में प्रोफ़ेसर निकलसन ने कहा है कि दूसरी सदी हिजरी समाप्त होने वाली थी कि इराक़ में एक नई इस्तलाह 'सूफ़ी' सामने आई और उसके बाद मुसलमान सूफ़ी आमतौर पर इसी लक़ब (उपाधि) से विख्यात हुए जिसका मूल 'सूफ़' था अर्थात् बिना रंगे ऊन का एक खुरदरा कपड़ा।[१] अलबीरूनी ने भी सूफ़ी शब्द की उत्पत्ति सूफ़ (ऊन) से ही मानी थी,[२] क्योंकि तसव्वुफ़ में हृदय की शुद्धता पर बहुत बल दिया गया है इसलिए इसकी धातु सफ़ और सफा को भी माना गया है।[३] तज़करतुलऔलिया और नफ़हातुलउन्स में जिन महान् सूफ़ियों के उद्धरण दिये गये हैं उनसे यही पता चलता है कि तसव्वुफ़ 'सफ़ा' से संबद्ध है। कुछ उद्धरण इस प्रकार हैं—अबुलहसन अन्नूरी का कथन है कि सूफ़ी वे लोग हैं जिनका हृदय शुद्ध हो तथा मनुष्य से किसी प्रकार का द्वेष न रखते हों। हज़रत जुनैद बग़दादी का कथन है कि तसव्वुफ़ खुदा के लिए मरना और जीना है।[४] मअरूफ़अलकरखी का कथन है कि हक़ (सत्य) को पकड़ना तथा धन दौलत (मालोमता) को तर्क (त्याग) करना तसव्वुफ़ है। ये परिभाषाएँ भी एकांगी ही हैं। जिस प्रकार ख़ुदा की तारीफ़ शब्दों से पूरे तौर पर नहीं की जा सकती उसी प्रकार ख़ुदा और बंदे के संबंधों या तसव्वुफ़ को भी परिभाषा बद्ध करना कठिन है। फिर भी कहा जा सकता है कि तसव्वुफ़ उस तरीक़े का नाम है जिस पर खुलूस, वफ़ा, तसलीमो-रिज़ा के साथ चलने वाले का व्यक्तित्व परम तत्व का अपने दिव्य चक्षुओं से दर्शन द्वारा नैकट्य प्राप्त कर लेता है।[५] या यों कहिये कि सूफ़ीमत पूर्ण रूप से आत्मानुशासन है।[६]

तसव्वुफ़ और इस्लाम

इस्लाम दुनिया के सामने केवल तौहीद (दृढ़एकेश्वर वाद) का सिद्धान्त लेकर ही नहीं आया था अपितु अख़लाक़े-हसना (सदाचार, नैतिकता) का पाठ भी इस्लाम से मिलता है जिसका दर्पण मुहम्मद साहिब का व्यक्तित्व है। मुहम्मद साहिब के जन्म के समय अरब देश समस्त प्रकार के मानसिक एवं नैतिक पतनों से ग्रस्त था। यह मुहम्मद साहिब का व्यक्तित्व एवं क़ुरान की शिक्षाएँ ही थीं जिन्होंने अपने सदाचरण से उनका

---

१. मीरासे-इस्लाम, पृ० २९३
२. अलबीरूनी इंडिया, अनुवादक सचाऊ, पृ० ३३
३. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ३७९
४. आईनाए-मारिफ़त, पृ० १०
५. आईनाए मारिफ़त, पृ० ११
६. इस्लाम के सूफ़ी साधक, पृ० २१

उद्धार किया।

इस प्रकार अल्लाह ने समस्त मानवों तथा तत्कालीन अरब वालों के लिए मुहम्मद साहिब को पैग़ंबर, मुर्शिद[1] या गुरु बनाकर भेजा जिसने क़ुरान के प्रकाश में ख़ुदा से मिलने का सीधा रास्ता दिखाया।

मुहम्मद साहब के, अल्लाह द्वारा 'वही', इलहाम (ईश-संदेश) भेजे जाने से पूर्व के जीवन पर यदि एक दृष्टि डाली जाए तो पता चलता है कि वह बचपन में ही यतीम (जिसके पिता का स्वर्गवास हो गया हो) हो गए थे। ख़ानदान की आर्थिक दशा भी अच्छी न थी। युवावस्था तक उनकी परवरिश (देखरेख) का कोई यथोचित प्रबंध न था अरब क़ौम की दशा बहुत हीन थी। इसलिये स्वयं अपने अस्त व्यस्त जीवन तथा क़ौम के लज्जाजनक हालात ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि वे ग़ारे-हिरा (एक पहाड़ी खोह) की तन्हाइयों में गहन सोच विचार में मग्न रहा करते थे जहाँ से उन के मन में सूफ़ियाना प्रवृत्ति पनपी। इसके साथ साथ आने वाले रोजे जज़ा (क़ियामत) का भय तथा समाज के खोखलेपन ने उनकी रुह को बेचैन कर दिया तब वही (ईश-संदेश) ने उनका पथ प्रदर्शन किया। जिस मजहब की उन्होंने तबलीग़ (प्रसार) की वह अत्यंत सादा था। तौहीद (एकेश्वरवाद) का सिद्धांत उनके धर्म का मेरुदण्ड था तथा रोज़ा, नमाज, हज्ज, ज़कात आदि को मुहम्मद साहिब ने अल्लाह के हुकुम से इबादत बताया।

इस प्रकार निकलसन आदि का यह कथन उचित ही है कि तसव्वुफ़ की बुनियाद निश्चित रूप से इस्लामी है[2] या यों कहें कि सूफ़ीवाद का जन्म इस्लाम के हृदय से हुआ तो अत्युक्ति न होगी। इसका उद्गम स्रोत क़ुरान और पैग़ंबरे-इस्लाम का जीवन है। मुहम्मद साहिब एक सूफ़ी थे[3] और क़ुरान की आयतों में तसव्वुफ़ की आवाज स्पष्टतया सुनाई देती है। मक्की सूरतोंमें (भाग) विशेष रूप से तथा मदनी सूरतों में कहीं कहीं तसव्वुफ़ के तत्व बीज रूप में पाए जाते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं— 'अल्लाह ज़मीन और आसमानों का नूर है।[4] वही आदि और वही अंत है अर्थात विश्वैति चान्ते विश्वमादौ। और वही (ज्ञानियों के लिये) प्रकट एवं (अज्ञानियों के

---

१. हिंदी-साहित्य के बृहत् इतिहास प्रथम भाग, पृ० ७२५ पर भी सूफ़ी गुरु-परम्परा का प्रभाव इन शब्दों में माना है—'अनेक भारतीय संप्रदायों में जो 'गुरु' की इतनी मर्यादा बढ़ी······वह इस्लाम के नबी के उसूल का ही फल था।' गुरु नबी का स्थापन्न हुआ।

२. मीरासे-इस्लाम, पृ० २६३ तथा आईनाए-मारिफ़त, पृ० ५८

३. इन्फ्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० ६४

४. क़ुरान, सूरे नूर (२४), आयत ३५

लिए) गुप्त है।[१] उसके अतिरिक्त कोई अन्य पूज्य नहीं है। हर चीज नश्वर है सिवाय उसके स्वरूप के[२] और हमने इन्सान को पैदा किया और हम जानते हैं जो कुछ उसके जी में आता है क्योंकि हम उसकी शह-रग (प्रमुख नाड़ी) से भी ज्यादा उसके निकट हैं।[3] और मैंने इंसान में रूह फूंकी।[४] पूर्व और पश्चिम (सब)अल्लाह (ही) के हैं, जिस ओर भी तुम मुंह करोगे, उसी ओर अल्लाह का रुख होगा।[५] जिसको अल्लाह नूर नहीं देता उसके पास कोई नूर नहीं।[६] ख़ुदा, अपने मानने वालों से कहता है—'ख़ुदा उनसे मुहब्बत करता है और वह ख़ुदा से'[७] इसीलिए उसका प्यारा नाम मुहब्बत करने वाला (माबूद) है। क़ुरान कहता है कि जो लोग अज्ज (विनम्रता)से ज़मीन पर चलते है उन्हें जन्नत मिलेगी। 'वही तुम्हारा स्वामी, संरक्षक और मित्र है'। इनके अतिरिक्त सदाचार, सादा जीवन, गुनाहों से तौबा (क्षमा याचना) करने का आदेश अल्लाह पर तवक्कुल करने का पाठ तथा सब्र (संतोष) आदि क़ुरान में असंख्य ऐसे स्थल हैं जिनसे सूफ़ियों ने अपने काम के तत्व ढूंढ निकाले हैं। प्राचीन सूफ़ियों ने क़ुरान की उन रहस्यमय आयतों पर गहन विचार करके (जिनमें मुहम्मद साहिब के मेराज, खुदा के दर्शन का भी उल्लेख है) प्रेरणा प्राप्त की।'

फिर भी यह कहना उचित न होगा कि आरम्भ से लेकर आज तक का सारा ही तसव्वुफ़ शुद्ध इस्लामी है। यह एक ऐसे चिन्तनशील प्राणियों की जमाअत (संस्था) है जिसमें संसार भर के महान् चिंतकों के विचारों की झलक मिलती है तथा क़ुरान के सामान्य अर्थो के अतिरिक्त सूफ़ियों ने अपने अनुभवों एवं मान्यताओं के आधार पर भी प्रतीक रुप में या लाक्षणिक अर्थ लगा लिये हैं। अनेक विद्वान इस विषय में एक मत है कि तसव्वुफ़ एक उस महा नद के समान है जिसमें विभिन्न देशों की छोटी छोटी नदियाँ आकर मिलती हैं और उसका घनत्व बढ़ा देती हैं।[८] सारांश यह है कि तसव्वुफ़ का मूल उद्गम क़ुरानशरीफ़और मुहम्मद साहिब की जीवनी है। मसीहियत (ईसाई) और नव अफ़लातूनी दर्शन ने इसका घनत्व बढ़ाया है। हिंदु धर्म दर्शन तथा बौद्ध दर्शन से भी इसे अनेक नये विचार मिले हैं। किंतु हमारा विषय क्योंकि 'हिंदी-साहित्य

---

१. क़ुरान, सूरे अलहदीद (५७), आयत ३
२. क़ुरान, सूरे क़िसस (२८), आयत ८८
३. क़ुरान, सेरे काफ़ (५०), आयत १५
४. क़ुरान, सूरे हिज़ (१५), आयत २६
५. क़ुरान, सूरे बक़र (२), आयत ११५
६. क़ुरान, सूरे नूर (२४), आयत ४०
७. क़ुरान, सूरे हज्ज (२२), आयत ७८
८. इन्फ़्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० ६३

में मुस्लिम (संस्कृति के) संपर्क का परिणाम' है इसलिए निरीक्षकों या पाठकों को यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिये कि विषय के विपरीत अन्य प्रभावों की विस्तार से चर्चा की जाए। इसलिए यहाँ पर तसव्वुफ़ का संपूर्ण इतिहास तथा सूफ़ियों की शाखाओं का उल्लेख नहीं किया जा रहा।[1]

तसव्वुफ़ और हिंदी-साहित्य

वास्तव में मुस्लिम संस्कृति के प्रतिनिधि और प्रतीक ये सूफ़ी लोग ही थे जिन्होंने दूर दराज़ के लक़दक़ मैदानों और घने जंगलों का सफ़र किया और हिन्दोस्तान पहुँचे। मनुष्य मनुष्य को एक दृष्टि से देखा तथा सब के दिलों में एक ख़ुदा का नूर जगाने का प्रयत्न किया। उनकी कथनी करनी एक थी, सादा जीवन व्यतीत करते थे तथा अपने अनेक गुणों के कारण वे हिंदू मुसलमान दोनों वर्गों में समान आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। इतना ही नहीं वे इस हदीस के भी अनुयायी थे कि 'ज्ञान प्राप्त करो चाहे कितनी ही दूर दराज़ हो[2]' और इसी ज्ञान पिपासु प्रवृत्ति के कारण हिंदी साहित्य में हिदोस्तानी कथाओं को लेकर चले और हिंदी सूफ़ी काव्य धारा की एक सुदृढ़ परम्परा भी चलाई। इन सूफ़ी कवियों में इस्लामी मसव्वुफ़ के साथ नव-अफ़लातूनी ईसाई, बौद्ध तथा हिंदू धर्म दर्शन के सिद्धांतों को भी स्पष्टतः देखा जाता है।

दर्शन ऐसा तथ्यात्मक विषय है जिसका साहित्य में क्रमबद्ध रूप में शास्त्रीय एवं विस्तृत विवरण मिलना अधिक संभव नहीं। फिर भी भारतीय दर्शन के साथ जो कुछ भी तसव्वुफ़ का वर्णन आलोच्यकालीन हिंदी साहित्य में मिलता है उसे ऐसे सरल क्रम से वर्णित किया जाएगा जिससे हिंदी कवियों द्वारा तसव्वुफ़ की पारिभाषिक शब्दावली तथा जानकारी का पता चल सके।

सूफ़ी

तसव्वुफ़ के अनुयायी, आध्यात्मवादी ब्रह्मज्ञानी को अरबी में सूफ़ी कहते हैं। हिंदी में सूफ़ी काव्य परंपरा तो अपने आप में स्वयं ही विख्यात है जिसमें जायसी, कुतबन, मंझन आदि सूफ़ी विशेष उल्लेखनीय हैं। सूफ़ी शब्द तथा उनकी विशेषताओं का अनेक हिंदी कवियों के यहाँ भी उल्लेख मिलता है। नानक जी कहते हैं कि उन सूफ़ियों को सत्य दिया गया है (ताकि वे सत्य के बल पर ख़ुदा का दरबार रख सकें) अन्य कवियों ने भी 'सूफ़ी' का उल्लेख किया है

सचु मिलिआ तिन 'सोफिया' राखण कउ दरबारु ॥[3]

---

१. विस्तृत ऐतिहासिक एवं क्रमिक विकास के लिये देखिये--इन्फ़्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, (मिस्टिसिज़्म इन इस्लाम), पृ० ४६-८३

२. उत्लुबु इलमा वलौकाना फ़िस्सीन। गिलम्पसेज आफ़ हदीस, पृ० ३४

३. नानक-वाणी, पृ० १०४

शेख कहैं गुरु 'सूफि' कहै गुरु या हित सुन्दर होत हिरानै ।[1]
दूधाधारी संगमी, 'सूफी' दरश कबीर ।[2]
(दादू) सोई जोगी सोई जंगमा, सोइ 'सोफी' सोई सेख ।[3]

शैख़

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है वृद्ध, सरदार या अध्यक्ष, पहुँचा हुआ संत, मशाइख़ शैख़ का बहुवचन है ।

दादू दयाल कहते हैं कि सबही एक दिन समाप्त हो जाएंगे—
'पीर' पैग़ंबर किया पयाना । 'सेखे' 'मसाइख' सबै समाना ।[4]

वली

वली उत्तराधिकारी, महात्मा ऋषि को कहते हैं और औलिया इसका बहुवचन है । क़लंदर भी एक प्रकार के मस्त फ़क़ीर और आज़ाद सूफ़ी को ही कहते हैं । हिंदी में इनका भी उल्लेख मिलता है—

मनु मंदरू तनु वसे 'कलंदरू' घर ही तीरथ नावा[5]

दरवेश

दरवेश फ़ारसी में पुनीतात्मा, विनीत एवं विनम्र संयासी को कहते हैं । फ़क़ीर शब्द भी लगभग इन्हीं अर्थों में आता है । हिंदी कवि के यहां सूफ़ियों के लिए इन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग आमतौर पर मिल जाता है—

इसक अजब अबदाल है, दरदवंद 'दरवेस'
दादू सिक्का सबर है, अकलि 'पी' उपदेस ॥[3]
दर्द-दिवाने बावरे, अलमस्त 'फकीरा' ।

---

१. सुन्दर-विलास, पृ० १६१
२. हंसजवाहर, पृ० १६१
३. दादू-बानी, भाग १ पृ० १४२
४. क. दादू-बानी, भाग २, पृ० ६१
ख. 'सेख मसाइख' पीर पैगंबर, है कोइ अगह गहै रे । दादू-बानी, भाग२, पृ० ६८
ग. केते काजी केते मुल्ला, केते 'सेखे' सयाना । दादू-बानी, भाग २,-पृ० ६८
५. क. नानक-वाणी, पृ० ४७४
ख. दादू सेख मसाइख 'औलिया', पैगंबर सब पीर । दादू-बानी, भाग १, पृ० १४७
६. (क) दादू-बानी, भाग १, पृ० १४८
(ख) केते 'पीर' केते पैगंबर, केते पढ़ै क़ुरान । दादूबानी, भाग २, पृ० ६८

एक अकीदा लै रहे, ऐसे मनधीरा ।[1]
हवा हिरिस फल्दू लगी नाहक भये 'फकीर'
नाहक भये 'फकीर' 'पीरं' की सेवा नाही ।[2]
(दादू) मन 'फकीर' सतगुर किया, कहि समझाया ज्ञान[3]

दरगाह

दरगाह फ़ारसी में चौखट या किसी वली के मजार या आसताने को कहते हैं। मलूक दरगाह में दिल को रखने पर प्यारा बनने की बात कहते हैं—

ऐ अजीज ईमान तू, काहे को खोवै।
हिय राखो 'दरगाह' में, तो प्यारा होवै ॥[4]

सूफ़ी, शैख, मशाइख, क़लंदर, औलिया, दरवेश, पीर, फ़कीर, दरगाह आदि शब्दों का संत कवियों के यहाँ आमतौर पर प्रयोग इस बात का द्योतक है कि आलोच्यकालीन हिंदी कवियों का सूफ़ियों से संपर्क सहज, सरल एवं स्वाभाविक रूप में रहा होगा।

नूरेइलाही (ईश्वरीय ज्योति, प्रकाश)

इस्लाम में अल्लाह को सृष्टि का कर्त्ता, रक्षक और संहारक सभी माना गया है। और यह सब कुछ उसके एक आदेश 'कुन' (होजा) से हो जाता है (फयकून)।[5] इसके साथ ही परमात्मा जीवात्मा और जड़जगत् तीनों को अलग अलग माना जाता है। इस विषय में इस प्रबंध के धर्म वाले भाग में विस्तार से चर्चा की गई है। नूर के विषय में यहाँ पर क़ुरान के कुछ उद्धरण देने आवश्यक मालूम होते हैं। क़ुरान शरीफ़ में एक सूरत 'अन्नूर' (२४) के नाम से भी दी गयी है जिसमें

१. मलूक-बानी, पृ० ७
२. पलटू दास की बानी, पृ० २
३. (क) दादू-बानी, भाग १, पृ० ७
   (ख) मन फकीर जग थैं रह्या, सतगुर लीया लाइ। दादू-बानी, भाग १, पृ० ७
४. (क) मलूक-बानी, पृ० १६
   (ख) दरगाह' में दीवाण तत, पसे ज बैठो पाण। दादू-बानी, भाग १, पृ० ४३
   (ग) चलु दरहाल दिवान बुलाया। हरि फुर्मान 'दरगह' का आया।
   कबीर-ग्रंथावली, पृ० २०२
   (घ) बस 'दरगाह' जाइ नहिं पैठा। नारद पंवरि कटक लेइ बैठा।
   पद्मावत, पृ० ३२६
५. एकै शब्द कहा 'कुन' केरा। सिरजा भूमि अकाश घनेरा ॥ भाषा प्रेम रस-शेखरहीम।

एक स्थान पर आया है 'अल्लाह आसमानों और ज़मीन का 'नूर' (प्रकाश) है। उसके प्रकाश की मिसाल ऐसी है जैसे एक ताक़ हो जिसमें चिराग़ हो। वह चिराग़ एक फ़ानूस में हो। वह फ़ानूस ऐसा हो मानो वह एक चमकता हुआ तारा है। अल्लाह अपने 'प्रकाश' की ओर जिसे चाहता है (अधिकारी को) राह दिखाता है।'[१]

'ऐ नबी (मुहम्मद) हमने तुझे शुभसूचना देने वाला—बनाकर भेजा और अल्लाह की ओर से उसके ही आदेश से 'रौशन चिराग़' (प्रकाशमान प्रदीप्त) बनकर।'[२] और अल्लाह ज़ालिमों (अत्याचारियों) को राह नहीं दिखाता।' चाहते हैं कि अल्लाह का 'नूर' (प्रकाश) अपने मुँह (की फूकों) से बुझा दें[३] और ईमान लाओ अल्लाह पर और उसके रसूल पर और उस 'नूर' पर जिसे हमने उतारा।'[४] सूफ़ियों ने इन आयतों पर तथा इन जैसी अन्य नूर संबंधी आयतों पर अधिक चिंतन किया है जिससे यह कहा जा सकता है कि जब सूफी सूक्ष्म अनुभूतियों की ओर बढ़ते हैं तो उस दिव्य शक्ति (अल्लाह) को नूर कहकर अभिहित करते हैं या मानते हैं तथा जब सूक्ष्म चिन्तन से कुछ स्थूल की ओर उतरते हैं तो ये सूफी मुहम्मद को नूर कहकर अभिव्यक्त करते हैं तथा जब बिलकुल ही स्थूल होकर जगत की बात करते हैं तब भी इस जगत् को उसी नूर से प्रकाशित मानने लगते हैं। यह बात विचारणीय भी है। इसीलिए सूफी लोग ख़ुदा को परम लावण्यरूप भी मानते हैं और वे कहते है कि अल्लाह परम सौंदर्य (नूर) है इसीलिए प्रेम का पात्र है या प्रियतम भी है। हृदय माधुर्य भाव का आधार है। हृदय में निर्मलता आने पर उसका आभास मिलता है इसीलिए यहाँ तक कहा गया है कि प्रियतम का वास हृदय में है।[५] ख़ुदा को अनंत सौंदर्य (नूर) मानते हुए ही पद्मावती के रूप की भी ऐसी ही उपमा दी है।[६] हिंदी साहित्य में प्रकाश, ज्योति के अतिरिक्त 'नूर' शब्द को लेकर नाना प्रकार चर्चा मिलती है। सूफी कवियों का नूर से परिचित होना तो स्वाभाविक ही था किंतु संत कवियों ने बड़े विस्तार तथा विशेप-रूप से नूर की बड़ी चर्चा की है जो मुस्लिम संपर्क का स्पष्ट परिणाम है। अल्लाह

---

१. क़ुरान, सूरे अन-नूर (३४) आयत ३५
२. क़ुरान, सूरे अहज़ाब (३३), आयत ४६
३. क़ुरान, सूरे सफ्फ (६१), आयत ८
४. क़ुरान, सूरे तग़ाबुन (६४)
५. हिरदय भीतर पीउ बसे, मिलै न पूछौं काहि।
जायसी-ग्रंथावली (पद्मावत), पृ० २७६
१. (क) सरवर रूप विमोहा, हीये हिलोरहि लेइ।
जायसी-ग्रंथावली, पृ० २४
(ख) तेज पुंज की सुन्दरी, तेज पुंज का कंत। दादू-बानी, भाग १, पृ० २२८

को नूर बताने वाले तथा अल्लाह के नूर की चर्चा करने वाले कवियों के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जयाते हैं—

जाती 'नूर' अल्लाह का, सिफाती अरवाह ।
सिफाती सिजदा करै, जाती वे परवाह ॥
वार पार नाहिं 'नूर' का, दादू तेज अनंत ।[1]
'नूर' तेज है जोति अपार, दादू राता सिरजन हार ।[2]
अल्ला आले नूर का, भरि भरि प्याला देहु ।[3]
'नूर' तेज अनन्त है, दादू सिरजनहार ।[4]
दादू तेज अनन्त हैं, अल्लाह आले नूर ।[5]

दादू तौहीद (दृढ़ एकेश्वरवाद) का अनुमोदन करते हुए कहते हैं कि वह खंड खंड नहीं हुआ है—

खंड खंड निज ना भया, इकलस एकै नूर ।
ज्यों था त्योंही तेज है, जोति रही भरपूर ॥
'नूर' सरीखा 'नूर' है, तेज सरीखा तेज ।[6]

दादू के काव्य में नूर को नाना प्रकार से अभिव्यक्त किया गया जिसके अन्य उदारहण विस्तार भय से नहीं दिये जा रहे हैं । इनके अतिरिक्त तानसेन, सुंदरदास, बुल्लाशाह आदि कवियों ने भी नूर का वर्णन किया है ।[7]

---

१. दादू-बानी, भाग १, पृ० १८२, ५१ २. दादू-बानी, भाग २, पृ० १४८
३. दादू-बानी, भाग १, पृ० २४० ४. दादू-बानी, भाग १, पृ० २६
५. (क) दादू-बानी, भाग १, पृ० ४६
(ख) नैन हमारे 'नूर' मां, तहां रहे ल्यौ लाइ । दादू-बानी, भाग १, पृ० ५०
(ग) दादू अलख अलाह करू, कहु कैसा है नूर ।
दादू बेहद हद नहीं, सकल रह्या भरपूर । दादू-बानी, भाग १, पृ० ५१
६. दादू-बानी, भाग १, पृ० ५१
७. (क) तुम ही करता तुम ही भरता तुम ही नभ ऊपर 'तेज' तपेहो ।
कीवऊ भांति कनूरू न काऊ के मांसों कहो किते काहि चपै हो ।
ऐसी कहा कीनो है नाथ जु ऐसे बड़े तुम ऐसे छिपे हो ।
अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० १८५-८६
(ख) दीदार 'पुर नूर' ऐसो जाके दरस कौ परमत नैना मेरो । (तानसेन)
अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ४०२
(ग) दीये राज ढाहि मुख बरषत 'नूर' है । सुन्दर-विलास, पृ० ११३
(घ) हाजिर हजूर त्रिवेनी संगम, झिलिमिलि 'नूर' जो जाप । बुल्लासाहब, पृ० ५

नुरे-मुहम्मदी

सूफ़ियों की मान्यता है कि खुदा ने सर्व प्रथम नूरे-मुहम्मदी (मुहम्मद की ज्योति) को अपने आदेश से बनाया[1] और उसी की प्रीतिस्वरूप सृष्टि की रचना की। इसकी पुष्टि वह हदीसों से भी किया चाहते हैं।[2] हिंदी के सूफ़ी कवियों ने फ़ारसी के सूफ़ियों की परंपरा के अनुरूप ही अपनी मसनवी के स्तुति खण्ड में इस प्रकार की चर्चा की है। जायसी कहते हैं—

कीन्हेसि 'प्रथम जोति परकासू'। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू ॥
कीन्हेसि अगिनि, पवन, जल खेहा। कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा ॥[3]
कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाम मुहम्मद पूनौं-करा ॥
'प्रथम जोति बिधि ताकर साजी'। औ तेहि प्रीति सिहिरि उपराजी ॥
दीपक लेसि जगत् कहं दीन्हा। भा निरमल जग, मारग चीन्हा ॥
जो न होत 'अस पुरुष' उजारा। सूझि न परत पंथ अवियारा ॥[4]
गगन हुता नहिं महि हुती, हुते चंद नहिं सूर।
ऐसइ अंध कूप महं रचा मुहम्मद नूर ॥[5]

अन्य उदाहरण इस प्रबंध के काव्यरूप वाले भाग में मनक़बत के अंतर्गत तथा धर्म में 'मुहम्मद' के अंतर्गत दिये गये हैं। इसलिए यहाँ यह कह देना पर्याप्त होगा कि सूफ़ी कवियों के ही ढर्रे पर संत कवियों ने नूर की चर्चा की है पर कबीर जैसे मस्त क़लंदरों ने भारतीय विचार धारा का समन्वय भी कर दिया है।

इश्क़ (प्रेम)

प्रारंभिक सूफ़ियों ने क़ुरान की सूरे अश-शुअरा (४२) की आयत २७ तथा अन्य इसी प्रकार की आयतों की इस प्रकार व्याख्या की कि जिससे रहबानियत (निवृत्तिमार्ग) की ओर बढ़ें किंतु ला रहबानियत : फ़िल इस्लाम का अर्थ यह है कि इस्लाम में निवृत्तिमार्गी को अच्छा नहीं समझा जाता। फिर भी इन सूफ़ियों में उस समय तक जुहद (इंद्रिय-निग्रह, संयम, मनोगुप्ति) की ओर अधिक झुकाव था जिसका कारण उपर्युक्त आयतों के प्रकाश में खुदा के खौफ़ (भय) तथा अज़ाबे-इलाही (ईश्वर

१. मीरासे इस्लाम (लेगेसी आफ़ इस्लाम), पृ० ३१२
२. (क)अव्वला मा खलक़ल्लाहो नूरी वअना मिन्नूरिल्लाहे व कुल्लु शैअन मिन नूरी।
(ख) कुंतो कंज़न मख़फ़ियन् फ़अहबबतों अन आरफ़ा फ़ख़लक़तुम्।
३. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० १
४. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० ४
५. जायसी-ग्रंथावली, अखरावट, पृ० ३०३

प्रदत्त दंड) से भयभीत रहना अधिक था। उनकी यह मान्यता थी कि अल्लाह ही एकमात्र भजनीय है और जहन्नम (नरक) से बचने के लिये तथा जन्नत (स्वर्ग) प्राप्ति के लिए जुहद, तवक्कुल (ईश्वर पर ही पूरा भरोसा) तसलीमो-रिज़ा आदि पर ही बल दिया जाना चाहिए।

इस प्रारंभिक दौर के बाद के सूफ़ियों ने अल्लाह के साथ संबंध स्थापित करने की एक और राह ढूंढ निकाली और वह इश्क़ (प्रेम) था। इन सूफ़ियों में बसरा की निवासी सूफ़िया राबेआ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हल्लाज का तो अक़ीदा यहाँ तक था कि ख़ुदा जौहरन् (अपने गुण सिफ़त से) इश्क़ है और बन्दे को चाहिए कि केवल उसी से इश्क़ करके सामीप्य प्राप्त करे[1] तथा इस दौर के सूफ़ियों में अल्लाह के भयावह रूप की अपेक्षा इश्क़मय रूप की प्रधानता रही है।

क़ुरान और हदीस में स्थान-स्थान पर मुहब्बत (प्रेम) की महत्ता भी बताई गई है जैसे 'और जो ईमान वाले हैं उन्हें सबसे बढ़कर मुहब्बत (प्रेम) अल्लाह से ही होती है, नहीं मोमिन हो सकता तुम में से कोई यहाँ तक कि मैं महबूब हो जाऊँ उस व्यक्ति को...।'[2]

इश्क़ की सामान्य व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि किसी चीज़ की विशेषताओं पर जब मन आकृष्ट होता है तो उस दशा को मुहब्बत कहते हैं किन्तु यही मुहब्बत जब बढ़ते-बढ़ते चरम सीमा पर पहुंच जाती है तो इश्क़ कहलाती है और यही आशिक़ और माशूक़ के बीच में संबंध की एक कड़ी बन जाती है जिसके द्वारा नैकट्य प्राप्त होता है। अर्थात् आत्मानुभूति प्राप्त होती है। तसव्वुफ़ का सारा दारोमदार इश्क़ पर है। सूफ़ी इश्क़ को एक अथाह सागर बताते हैं और यहाँ तक कहते हैं कि 'अल इश्क़ो होवलअल्लाह' इतना ही नहीं सूफ़ी समस्त सृष्टि का मूल कारण ही इश्क़ को मानते हैं। जिसकी पुष्टि में वे यह हदीस भी प्रस्तुत करते हैं 'मैंने चाहा कि मैं पहचाना जाऊं पस मैंने पैदा किया'[3] कुछ सूफ़ियों ने इश्क़ आशिक़ और माशूक़ को एक ही माना है और कहते हैं कि आशिक़ वह है जो ख़ुदा की ज्योति पर आसक्त हो। सालिक (साधक यात्री) जब सारी सीढ़ियाँ पार कर ले और उसका व्यक्तिगत इश्क़ केवल परमात्मा के लिए हो जाता है तभी पूर्ण बनता है। इब्नुल अरबी का यह दावा है कि इस्लाम विलक्षण रूप से इश्क़ (प्रेम) का धर्म है क्योंकि

---

१. मीरासे-इस्लाम (लेगोसी आफ़ इस्लाम), पृ० ३००

२. वल्लज़ीना आमनू अशद्दो हुब्बल लिल्लाह। क़ुरान, सूरे बक़र (२) आयत १६५ ला योमिनो अहदो कुम हत्ता अकूना अहब्बा इलैहै मिन वालदेही व वलदेही वन्नासे अजमईन। बुख़ारी व मुस्लिम (हदीस)

३. इज़ा अहब्बतो अन ओअरेफ़ा फ़ख़लक़तुल ख़लक़।

पैग़ंबर मुहम्मद साहिब को हबीब-अल्लाह (अल्लाह का प्रिय) कहा गया है।[1] जिससे सूफ़ियों ने सखा भाव की भक्ति चलाई। इसके अतिरिक्त अल्लाह के अनेक नामों या गुणों में, 'यावदूदो' (नेकी का दोस्त रखने वाला या महबूब दोस्तों का) भी एक है। हिंदी-साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा।[2]

सूफ़ियों की मान्यता यह भी है कि प्रेम अर्जित नहीं किया जाता अपितु यह मारिफ़त (ज्ञान) की भांति ख़ुदाई देन है। ईश्वर अपने प्रेमियों से भी प्रेम करता है। हुज्वेरी ने कश्फ़ुलमहजूब मे इश्क़ की बड़ी ही सुंदर व्याख्या की है। प्रेम और सौंदर्य का भी अटूट संबंध है। अलग़ज़ाली का कथन है कि 'सौंदर्य वह है जो वास्तव में प्रेम को जन्म देता है'[3] और इससे उसका अभिप्राय नूरेइलाही (ईश्वर ज्योति-सौंदर्य) से ही है। इसलिए आत्मा सांसारिक सौंदर्य पर ही नहीं टिकी रहती अपितु इससे भी परे उस अलौकिक हुस्न की ओर ही आकृष्ट होती है। यही सांसारिक हुस्न का मूल स्रोत समझा जाना चाहिए।

आलोच्यकालीन हिंदी-साहित्य में इश्क़, आशिक़, माशूक़ की बड़ी ही व्यापक चर्चा मिलती है और हमारे सामने हकीम सनाई, राबिआ हल्लाज आदि फ़ारसी कवियों के ऐसे अनेक शेर हैं जिनके समान ही हिंदी कवियों के उदाहरण भी उपलब्ध होते है किंतु उन्हें इस प्रबंध के साहित्य वाले भाग में लिया गया है। इश्क़ आशिक़ माशूक़ शब्दों का संत कवियो ने हिंदी के मुस्लिम सूफी कवियों से कहीं अधिक खुलकर प्रयोग किया है। दादूदयाल उसमें सबसे ही आगे बढ़ गये हैं। सूफ़ी काव्य परंपरा में हिंदी के मुस्लिम सूफ़ी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानक काव्यों म प्रेम की जो पीर (वियोग-संभोग) दिखाई है वह फ़ारसी के सूफ़ी कवियों तथा दार्शनिकों से बहुत ही प्रभावित है और संत कवियों ने इनके संपर्क से पूरा-पूरा लाभ उठाया है।

हिंदी-साहित्य में मुस्लिम सूफी काव्य-परंपरा से पूर्व के भारतीय साहित्य में यदि प्रेम के स्वरूप को देखना हो तो उस संबंध में सूफ़ी असफ़ी काव्य परंपरा का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए डा० श्याममनोहर पांडेय ने अपने ग्रंथ में बड़े वैज्ञानिक ढंग से चर्चा की है।[4] प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रेमाख्यान की खोज करते हुए विद्वान वैदिक काल तक पहुच जाते है और ऋग्वेद में यम यमी संवाद पर उनकी दृष्टि जाकर टिकती है जहाँ यमी अपने भाई यम से ही प्रेम प्रस्ताव कर डालती है। इनके अलावा पुरूरवस् और उर्वशी आदि की भी कथाएं मिलती हैं। किंतु यह बात

---

१. इस्लाम के सूफ़ी साधक, पृ० ६६
२. हिंदी-साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ७१५
३. अल ग़ज़ाली दी मिस्टिक, पृ० १०६
४. देखिये—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डा० श्याममनोहर पाण्डेय

इतिहास प्रसिद्ध है कि भारत में मुसलमानों के आगमन के समय तक संस्कृत का अध्ययन जनसामान्य के लिए न रह गया था।[1] इसलिए सूफ़ी संतों पर इसका कोई प्रभाव पड़ा होगा इसकी संभावना कहाँ रह जाती है। इसके अतिरिक्त लौकिक संस्कृत में दुष्यंत और शकुंतला, नल-दमयंती, उषा अनिरुद्ध तथा माधवानल काम कंदला आदि कथाओं का जो हिंदी साहित्य में प्रभाव मिलता है उसमें और सूफ़ी काव्य के प्रेम में एक विशेष अंतर है। डा० पांडेय ने वैदिक संस्कृत से लेकर लौकिक संस्कृत, प्राकृत की जैन कथाओं तथा अपभ्रंश के प्रेमाख्यानकों का अध्ययन करते हुए यह मत प्रकट किया है कि इनमें प्रेम का स्वाभाविक विकास नहीं हुआ। जैन कवियों का लक्ष्य पूर्व जन्म के कर्मों का प्रभाव और संसार की नश्वरता दिखा कर वैराग्य में जीवन को परिणत करना है।[2] जो इस्लाम के मूल सिद्धांतों के विरुद्ध है। इसलिए भी फ़ारसी कवियों या हिंदी के मुस्लिम सूफ़ी कवियों से प्रेम संबंधी मौलिक दृष्टिकोण पर सैद्धांतिक रूप से प्रभाव पड़ने की सम्भावना कम रह जाती है। फिर एक बात और यह है कि यद्यपि संस्कृत के भागवत् आदि ग्रंथों में गोपी-कृष्ण के प्रणय में प्रणयवाद का विवेचन मिलता है लेकिन यह प्रणयवाद साकार कृष्ण को लेकर है, जबकि सूफ़ियों का प्रणय निराकार खुदा के लिए है। सूफ़ियों ने भारतीय वातावरण की कथाएं अवश्य ली हैं परन्तु इसमें भी ईश्वरीय प्रेम की व्यंजना की गयी है। स्थान-स्थान पर ईश्वरीय सौंदर्य (नूर) शक्ति और शील का वर्णन कर संकेतों द्वारा यही प्रदर्शित किया गया है कि दुनियावी प्रेम मावराई (ईश्वरीय) इश्क़ की एक सीढ़ी है अर्थात् इश्क़ेमजाज़ी इश्क़ेहक़ीक़ी तक पहुंचने की एक सीढ़ी है, जो फ़ारसी मसनवियों के आधार पर ही समझी जानी चाहिए। इसलिए यह कहा जा सकता है कि हिंदी में साधना के निमत्त इश्क़(प्रेम) को आधार बनाते हुए सर्वप्रथम सूफ़ी संतों को ही पाया जाता है जिसका संत कवियों ने उदारता से उपयोग किया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सूफ़ियों की साधना में इश्क़ का बड़ा महत्व है और उन्होंने निराकारोपासना में प्रेम की आधार शिला पर साधना का एक हसीन महल तामीर किया है और भारतीय प्रेम कथाओं को लेकर इश्क़ेमजाज़ी के माध्यम से इश्क़ेहक़ीक़ी की तरफ़ बढ़े हैं। यहाँ पर हिंदी के

---

१. क. संस्कीरत है कूप जल भापा बहता नीर।
कबीर-ग्रन्थावली, भापा का अंग, साखी १
ख. का भापा का संस्कृत, प्रेम चाहिये सांच।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच।। तुलसी-ग्रन्थावली भाग २, पृ० १२७

२. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डा० पाँडेय, पृ० ५६

३. अल मजाज़ो कंतरतुल हक़ीक़ : (एक प्रसिद्ध मक़ूला है)

सूफ़ी कवियों के प्रेम-संबंधी मौलिक दृष्टिकोण, भारतीय प्रेम कथाओं में तसव्वुफ़ को अलौकिक गुंफन, सूफ़ियों के विरह का फ़ारसी अंदाज़ का चित्रण आदि की अधिक व्याख्या नहीं की जा सकती पर कुछ प्रमुख उदाहरण दिये बिना संतों में प्रेम-चर्चा के चित्रण की कड़ी अधूरी रह जाएगी। भारतीय-साहित्य में ढोला मारू रा दूहा, बीसलदेव रास, लखमसेन पद्मावती कथा जैसे दाम्पत्यपरक और गणपति कृत माधवानल काम कंदला, चतुर्भुजदास कृत मधुमालती जैसे कामपरक प्रेमाख्यान अवश्य मिल जाते हैं किंतु सूफ़ी प्रेमाख्यान फ़ारसी की मसनवी परंपरा की ओर अधिक झुके ए हैं। इन सूफ़ियों की मान्यता है कि ख़ुदा ने रसूल के प्रेम में सृष्टि की रचना की द था प्रेम का ही प्रकट रूप यह सृष्टि समझा जाना चाहिए। इसीलिए संसार में प्रेम की स्थिति अनिवार्य है। सूफ़ियों के दृष्टिकोण को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इनके प्रेमाख्यान की रचना का चरम लक्ष्य ईश्वरीय प्रेम है तथा इन्होंने आत्मा के उन्नयन के लिए प्रेम का संदेश दिया है जिसके माध्यम से मनुष्य-मनुष्य के बीच आई हुई कृत्रिम संकीर्णताओं को तोड़ा है और ये मानवीय प्रेम से ईश्वरीय प्रेम की ओर बढ़ते हैं। अतः सूफ़ियों की संपूर्ण साधना प्रेम पर आधारित है। प्रेम के विषय में प्रकट किये हुए कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। जायसी कहते हैं कि प्रेम का खेल कठिन तो है किंतु जिसने खेला वह दोनों लोकों में तर गया। जो प्रेम के रंग में रंग जाता है उसकी भूख नींद सब जाती रहती है—

भलेहि प्रेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा प्रेम जेइ खेला॥
जो नहिं सीस पेम-पथ लावा। सो प्रिथिमी महं काहे क आवा।[१]
जेहिं के हिये प्रेम-रंग जामा। का तेहि भूख नींद बिसरामा॥[२]

उसमान और नूर मुहम्मद आदि सूफ़ी कवियों की भाँति ही दादू भी प्रेम की महत्ता बताते हैं—

प्रेम पहार स्वर्ग ते ऊचा।[३]
कठिन प्रेम का फांद, मुकुत न होई।[४]
दादू पाती प्रेम की बिरला बांचे कोई।
वेद पुरान पुस्तक पढ़े प्रेम बिना क्या होई।[५]

१. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ४०
२. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ५८
३. चित्रावली, पृ० ४०
४. अनुराग-बांसुरी, पृ० १६
५. क. जब लग सीस न सौंपिय, तब लग 'इसक' न होइ। दादू-बानी भाग १, पृ० ३२
ख. आसिक मरणै ना डरै, पिया पियाला सोई। दादू-बानी भाग,१, पृ० ३२

हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों में यदि प्रेम के स्वरूप को देखना हो तो हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि यह सूफ़ी इस्लाम का अच्छा खासा ज्ञान रखते थे और उसमें दृढ़ आस्था भी थी। इनकी दृष्टि में क़ुरान, हदीस तथा अरबी फ़ारसी सूफ़ियों की परंपरा पर भी रही होगी। इसलिए ये सूफ़ी कवि ख़ुदा के स्वरूप के विषय में भी सहमत हैं। जायसी ने अपनी अमर कृति पद्मावत में कहा है कि ख़ुदा एक है, वह अलख है, अरूप है, प्रकट और गुप्त सभी स्थानों का इहाता किये हुए है, न उसके कोई पुत्र है न माता-पिता। यह क़ुरान के सूरे इख़लास (११२) का अनुवाद मात्र है।[१] मंझन[२] और उसमान[३] ने भी ख़ुदा को निरगुन तथा अमूर्त माना है और शेखनबी भी ख़ुदा को पाक और अलख अमूर्त ही कहते हैं[४] इसी के साथ-साथ क़ुरान में अल्लाह को ज़मीन और आसमानों का नूर भी बताया है।[५]

प्रेम, रसूल और सृष्टि के संबंध में यह कहा जा चुका है कि सूफ़ी सृष्टि की उत्पत्ति अल्लाह के रसूल के प्रति प्रेम के परिणाम स्वरूप मानते हैं तथा जायसी और शेख नबी आदि शरीअत के पाबंद सूफ़ी ख़ुदा (सृष्टा) और कायनात (सृष्टि) में किसी प्रकार की एकता का संबंध नहीं मानते।[६] उसने सारे जगत् को रचा है किन्तु उसके नूर का प्रकाश संसार में है।[७]

हदीसों के ही आधार पर सूफ़ी कवि कहते हैं कि ख़ुदा ने मुहम्मद के नूर को सबसे पहले बनाया। उदाहरण प्रस्तुत है—

पहले नूर मुहम्मद कीन्हा, पाछे तेहिक जनता सब कीन्हा ॥

---

१. अलख अरूप अबरन सो कर्ता। वह सब सों सब ओहि सों बर्ता ॥
परगट गुपुत सो सरब बिआपी। धरमी चीन्ह, न चीन्है पापी ॥
ना ओहि पूत न पिता माता। ना ओहि कुटुंब न कोई संग नाता ॥
जना न काहु, न कोइ ओहि जाना। जहं लगि सब ताकर सिरजना ॥
जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३

२. निरगुन एकंकार गुसाईं ॥
अलख निरंजन करता, एक रूप बहु भेस। मधुमालती, पृ० ४

३. आप अमूरति मुरति उपाई। चित्रावली, पृ० २

४. पाक पवित्र एक ओह करता। अलख अमूरत पातक हरता। ज्ञानदीप, पृ० १

५. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का नूर शीर्षक देखिये।

६. ना वह मिला न बेहरा अइस रहा भरपूरि।
दिस्टिवंत कंह नीअरे अंध मुरुख कहं दूरि ॥ जायसी ग्रंथावली, पृ० ३

७. वोहि के रूप सब होत सरूपा। वोह निरूप नहिं काहुके रूपा।
ज्ञान-दीप, छन्द २

अपनी दिस्टि जाइ जह केरी । सोवें तहें वह जोत सत तेरी ॥[१]

जब ख़ुदा के द्वारा सृष्टि की रचना ही प्रेम के कारण बताई जाती है तब संसार में प्रेम की स्थिति तो स्वयं ही अनिवार्य हुई। यही कारण है कि सूफ़ी कवि प्रेम को अधिक महत्ता देते हैं। प्रेम और सौंदर्य तथा प्रेम मार्ग की कठिनाइयों एवं प्रेम तथा विरह का इन सूफ़ी कवियों ने बड़ा व्यापक चित्रण किया है। हिंदी के प्रेमाख्यानों में ये कवि भारतीय कथाओं को लेकर लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की ओर बढ़े हैं।—

अब यहाँ पर असूफ़ी कवियों की प्रेम संबंधी चर्चा की जाती है जिन पर सूफ़ी प्रेम का प्रभाव है जो मुस्लिम सपर्क का परिणाम मालूम होता है। फ़ारसी कवि रूमी ने कहा है

मिल्लते इश्क़ अज़ हमा दींहा जुदास्त।
आशिक़ां रा मज़हबो-मिल्लत ख़ुदास्त ॥[२]

अर्थात् प्रेम-मार्ग सब संप्रदायों से जुदा है। प्रेमी-भक्तों का संप्रदाय और पंथ तो ख़ुदा ही है। दादू कहते हैं—

'इश्क' अलह की जाति है, 'इश्क' अलह का अंग।
इश्क अलह औजूद है, इश्क अलह का रंग।[३]

आशिक़—दादू कहते हैं कि आशिक़ वही है जो जान की बाज़ी लगा दे—

आसिक मरणौ ना डरै, पिया पियासा सोई।[४]

---

१. क. मृगावती,
ख. कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाउं मुहम्मद पूनिउं करा ॥
प्रथम जोति विधि तेहि केरसाजी। ओ तेहि प्रीति सिष्टि उपराजी ॥
जायसी-ग्रंथावली, पृ० ४
ग. प्रथमहि आदि पेम प्रविस्टि। पाछें भई सकल सिरिस्टि ॥
उतपति सिस्टि प्रेम सों आई। सिस्टि रूप भर पेम सवाई ॥
जगत जनमि जीवन फल ताही। पेम पीर उपजी जिअ जाही ॥
मधुमालती, पृ० २३

२. आइनाए मारफ़त, पृ० १५६

३. क. दादू-वानी, भाग १, पृ० ४०
ख. जिस घठ इस्क अलाह का, तिस घट लोहि न मास। दादू-वानी, पृ० ३२
ग. अल्लाह आसिकां ईमान।
भिस्तदोजख दीन दुनिया, चिकारे रहमान ॥ दादू-वानी, भाग १, पृ० १६६

४. दादू-वानी, भाग १, पृ० ३२

माशूक़—प्रिय के संबंध में भी दादू के विचार प्रस्तुत हैं—

सब लालौं सिर लाल है, सब खूबौं सिरखूब।
सब पाकौं सिर पाक है, दादू का 'महबूब'।[1]

फ़ारसी का एक मशहूर शेर है—

मन तू शुदम तू मन शुदी मन तन शुदम तू जाँ शुदी।
ता कस न गोयद बाद अज़ीं मन दीगरम तू दीगरी।

दादूदयाल ने अन्य सूफ़ी कवियों से भी आगे बढ़कर इश्क़, आशिक़, माशूक़ का केवल स्पष्ट उल्लेख ही नहीं किया, उनके काव्य में फ़ारसी सूफ़ी कवियों की सी तीव्रता भी मिलती है—

आसिक मासुक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ।
दादू उस मासूक का,अल्लहि आसिक होइ।[2]
\+ \+ ×
(दादू कहै) हम कौं अपणा आप दे, इस्क मुहब्बत दर्द।[3]
\+ \+ \+
दादू आसिक रब्ब दा, सिर भी डेवै लाहि।
अल्लाह कारणि आप कौं, साँडे अंदरि माहि।
दादू रता हिक दा, मन मोहब्बत लाइ।
दोस्त दिल हरदम हजूर, यादगार हुसियार।
(दादू) आसिक एक अलाह के, फारिग दुनिया दीन।[4]
\+ \+ \+
आशिकाँ रह क़ब्ज़ कर्दः व जाँ रफ़तंद।
अलह आले नूर दीदम, दिले दादू बंद॥
दादू इसक अवाज सौं, ऐसैं कहै न कोई।
दर्द मुहब्बत पाइये, साहिब हासिल होइ॥[5]
\+ \+ \+
कहं आसिक अल्लाह के, मारे अपने हाथ।

---

१. क. दादू-वानी, भाग १ पृ० १८०
ख. तूं मीठा महबूब वे सजण आव। दादू-वानी, भाग २, पृ० ४१
२. दादू-वानी, भाग १, पृ० ४०
३. दादू-वानी, भाग १, पृ० ३१
४. दादू-वानी, भाग १, पृ० ३२
५. दादू-वानी, भाग १, पृ० ३३

कहं आलम औजूद सौं, कहै जवां की वात ।
दादू इसक अलह का, जे कबहूँ प्रगटै आइ ।
दादू नूर दादनी, आशिकां दीदार ।।[१]

इस प्रकार दादू-वानी भाग १, २ में इश्क़, आशिक़, माशूक़ की वड़ी ही चर्चा की गई है।

प्रेम पियाला नूर का, आसिक भरि दीया ।
दादू दर दीदार में, मतवाला कीया ।।
इसक सलौना आसिकां, दरगह थैं दींया ।
दर्द मोहव्वत प्रेम रस, प्याला भरि पीया ।।
दादू दिल दीदार दे, मतवाला कीया ।
जहं अरस इलाही आप था, अपना करि लीया ।।
दादू प्याला नूर दा, आसिक अरस पिवन्नि ।
अठे पहर अल्लाह दा, मुंह दिट्ठे जीवन्नि ।।[२]

ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों में इश्क़, मुहव्वत, दर्द, आशिक़, माशूक़ और फिर यह सव कुछ निर्गुण निराकार अल्लाह के लिए होना ही यह ज़ाहिर करता है ज्ञानाश्रयी शाखा के इन कवियों के प्रेम का आलंवन जो निर्गुण व्रह्म था वह सूफ़ियों से प्रेरित था। इधर शव्द की जिस व्यंजना शक्ति से सूफ़ी कवि काम लेते आए हैं वही व्यंजना शक्ति वाद में कृष्ण भक्ति शाखा के कुछ कवियों में सक्रिय दिखाई पड़ती है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि सूफ़ियों का रहस्यवाद भागवत के रहस्यात्मक अर्थ लगाने में सहायक हुआ है। कृष्ण-भक्त कवियों में मीरा और रसखान के यहां सूफ़ी प्रेम की व्यंजना और दर्द स्पष्ट दिखाई पड़ता है—

अकथ कहानी प्रेम की, जानत 'लैली खूव' ।
दो तनहु जहं एक भे, मन मिलाइ महवूव ।।[३]
जांवाजी वाजी जहां, दिल का दिल से मेल ।[४]
+ + +
सिर काटौ, छेदौ हियौ, टूक टूक करि देहु ।।[५]

मीरा कृष्ण के प्रेम में दर्द दिवानी होकर जंगल-जंगल घूमती दिखाई पड़ती

१. दादू-वानी, भाग १,पृ० ३३
२. दादू-वानी, भाग १, पृ० ६४-६५
३. प्रेमवाटिका, ३३
४. प्रेमवाटिका, ३१
५. प्रेमवाटिका, २२

हैं जो अरबी फ़ारसी आशिक़ों की दश्तनवरदी या सहरानवरदी ही है—

> हे री मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरा दरद न जाणे कोई।
> घाइल की गति घाइल जाणै, जो कोई घाइल होइ।
> दरद की मारी वन वन डोलूं, बैद मिल्यो नहिं कोई।[1]
> जोगण होकर जंगल हेरूं तेरो नाम न पायो भेस।[2]

मीरा की माधुर्य भाव की भक्ति, उनकी वाणी की वेदना की तुलना राबिया तथा अन्य मस्त सूफ़ियों से की जा सकती है। मीरा के उन्माद तथा सूफ़ियों की रक़्स और हाल दशा भी विचारणीय है—

> कभी हमारी गली आवरे, जिया की तपन बुझाव रे। प्यारे मोहन प्यारे
> घायल फिरूं तड़पती, पीड़ जानै नहिं कोई।[3]
> तलफत तलफत कल न परत है, विरह वाण उर लागी री॥
> विरह भुंजुग मेरो डसो है कलेजो लहरि हलाहल जागी री॥[4]

इसमें भी सूफ़ी कवियों की सी विरह दशा मिलती है। सूफ़ियों का वियोग पक्ष हिंदी-साहित्य में विख्यात है। विस्तार भय के कारण उसे यहाँ नहीं दिया जा रहा।

शैख़ (धर्मगुरु) पीरो मुर्शिद

ख़ुदा की इबादत के सीधे रास्ते पर चलाने तथा उसकी भक्ति-साधना संबंधी सूफ़ी मार्ग का निर्देश, सालिक (नव दीक्षित साधक) को, गम्भीर ज्ञान एवं परिपक्व अनुभव वाले जिस पवित्र व्यक्ति, से प्राप्त हो, उसे शैख़ (गुरु) या पीरो-मुर्शिद कहते हैं। यह उत्तरदायित्व वही व्यक्ति ठीक ढंग से पूरा कर सकता है जिसे अल्लाह ने सद्बुद्धि दी हो और उसने अपनी साधना से ख़ुदा को पहचान लिया हो।

गुरु की महत्ता सब धर्मों एवं साधनाओं में किसी न किसी रूप में स्वीकार की गयी है। प्राचीन भारत में महान् गुरुओं का बड़ा आदर था। एकलव्य की गुरु-भक्ति विख्यात है। आलोच्यकालीन हिंदी-साहित्य में (विशेष रूप से कृष्ण भक्ति में) गुरु की महत्ता इतनी अधिक पाई जाती है[5] कि गुरु को ही ईश्वर का स्वरूप तक

१. मीरा के पद, पृ० ११
२. मीरा के पद, पृ० १६
३. मीरा-पदावली, पृ० १७, १८, पद १८
४. मीरा-पदावली, पृ० ३६, ३७, पद ६४
५. क. गुरु गोबिंद दोऊ खड़े काके लागौं पांय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय। कबीर-वचनावली, ३००
ख. हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर। कबीर-वचनावली, ३०८

मान लिया गया है। भक्त, भक्ति, भगवंत, गुरु, चतुर नाम बपु एक।[1]

अष्टछाप के कवि गुरु को ईश्वर स्वरूप मानते हैं। सूरदास ने परमाराध्य के लीला-गान को 'आचार्य-यश-वर्णन' के समान बताया है[2] दोनों को एक रूप माना है जो पुर्नजन्म या अवतार-धारण-दर्शन के परिणाम स्वरूप हुआ होगा—

हरि-गुर एक रूप नृप, जानि। यामैं कछु संदेह न आनि।[3]
व्रजपति वल्लभ एक ही जानो भेद नहीं है नमो-नमो।[4]

इस्लाम में न तो पुर्नजन्म को ही माना जाता है और न यह माना जाता है कि अल्लाह जो कि बेनियाज़ है, पूर्ण है, न किसी से जना गया न किसी को उसने जना है। वह किसी प्रकार का अवतार धारण करेगा? शिर्क को इस्लाम में जघन्य अपराध माना है। खुदा, कायनात (सृष्टि) रसूल आदि में अंश-अंशी का संबंध इस्लाम नहीं मानता।

हाँ इतना अवश्य है कि सबकी अपनी-अपनी सीमा है। अल्लाह सबसे अधिक आदरणीय है, भजनीय है। रसूल का आदर करने और उनके सत्य वचनों पर कार्यबद्ध होने का मोमिन को आदेश दिया गया है और तसव्वुफ़ में शैख़ (गरु) पीरो-मुर्शिद का उसके महत्वानुसार आदर तथा आदेश मानना सूफ़ी विधान की एक धारा है। जहाँ तक धर्म-गुरु का संबंध है मुहम्मद साहिब मनुष्य को इस्लाम से परिचित कराने वाले होने के नाते धर्म गुरु है। 'इस्लाम के नबी (या रसूल) के उसूल से अनेक भारतीय संप्रदायों में गुरु की महत्ता बढ़ी'।[5]

सूफ़ी मार्ग पर चलने के लिए सलिक को अपना एक आध्यात्मिक गुरु बनाना आवश्यक होता है[6] जिसके निर्देशानुसार उसे साधना करनी होती है। गुरु का महत्व यहाँ तक बताया गया है कि शैख़ का प्रत्येक शब्द शिष्य के लिए आखिरी क़ानून होता है। जो साधक बिना किसी गुरु के सूफ़ी साधना मार्ग पर चलना

---

१. नाभादास कृत, भक्तमाल, दो० १
२. अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १०५
३. सूरसागर. ६-५
४. क. कृष्ण कीर्तन, भाग २, पृ० २३६
ख. गुरु पद अहै सबन से भारी।
चारों वेद तुलै नहिं गुरुपद, ब्रह्मा विष्णु और ब्रह्मचारी।
धर्मदास मैं गुरुपद भजिहौं, साहब कबीर समरथ बलिहारी।
धर्मदास की बानी पृ० ३
५. हिंदी-साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ७२५
६. आउट लाइन आफ़ इस्लामिक कल्चर, पृ० ३५४

चाहता है, उसके विषय में यह कहा जाता है कि उसका गुरु शैतान बन जाता है जो उसे किसी भी समय पथ भ्रष्ट कर देता है।

सूफ़ी शैख़ के विषय में बताते हुए हुजवेरी ने कहा है 'जब कोई नव शिष्य इस उद्देश्य से उनका साथ पकड़ता है तो वे तीन वर्षों की अवधि तक उसे आध्यात्मिक अनुशासन में रखते हैं और इस अवधि में पूरा उतरने पर ही उसे पथ में प्रविष्ट करते हैं। प्रथम वर्ष में जनसाधारण की सेवा में, द्वितीय वर्ष में परमात्मा की सेवा में संलग्न रहना पड़ता है तथा तृतीय वर्ष में उसे स्वयं अपने हृदय की चौकसी करनी पड़ती है।[1] निकलसन महोदय ने जुनैद बग़दादी तथा उनके शिष्य शिबली की कथा से स्पष्ट किया है कि किस प्रकार शैख़ अपने मुरीद (शिष्य) को शिक्षा देते हैं।

सूफ़ियों के यहाँ शैख़ ही ऐसा महान् व्यक्तित्व है जो शिष्य को मंज़िल तक पहुंचाता है किन्तु शैख़ के भी कर्त्तव्यों की व्याख्या तसव्वुफ़ के ग्रंथों में की गई है जैसे शैख़ को चाहिए कि शिष्य की क्षमता का ठीक-ठीक अंदाज़ा लगाले, उसका आदेश स्पष्ट हो और शैख़ को ख़ुद भी उन तमाम बातों का आमिल (कार्यबद्ध) होना चाहिए जिसका वह आदेश दे।[2]

सालिक को मुर्शिद का आदेश मानना चाहिए। हाफ़िज ने उसे सांकेतिक भाषा में एक ऐसा शेर कहा है जिसका सीधा सादा अर्थ लगाने से तो सालिक और शैख़ दोनों ही इस्लाम के बाग़ी माने जाएंगे किंतु आध्यात्मिक अर्थ लगाना ही ठीक है। बहरहाल शैख़ का पूरा आदेश मुरीद को किस हद तक मानना चाहिए उसका संकेत यहाँ अवश्य मिलता है—

व मै सज्जादः रंगीं कुन गरत पीरे-मुग़ाँ गोयद।
कि सालिक बे ख़बर न बुवद ज़े राहो रस्मे मंज़िलहा।[3]

हाफ़िज कहता है कि यदि शैख़ कहे कि शराब से मुसल्ले को सराबोर कर दे तो तू ऐसा कर डाल।

हिंदी-साहित्य में जो सूफ़ी काव्य परंपरा मिलती है उस संबंध में दो बातें अवश्य ध्यान देने योग्य हैं कि इन मुस्लिम सूफ़ी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में फ़ारसी मसनवियों के अंदाज़ पर ही प्रथम खण्ड या स्तुति खण्ड में जहां नात, हम्द, मनक़बत आदि कही है वहीं पर अपने शैख़, मुर्शिद या गुरु की चर्चा भी अवश्य की है। इसकी चर्चा इस शोधप्रबंध के काव्यरूप (मसनवी) वाले भाग में की गई है। इसके अतिरिक्त हिंदोस्तानी कहानियों को लेकर भी जो रचनाएँ की हैं उसमें भी प्रेम-साधना-

१. इस्लाम के सूफ़ी साधक, पृ० २७
२. आईनाए मारफ़त, पृ० १७२
३. अस्तकश्शुफ़ अन्मोहिम्मातुत् तसव्वुफ़, पृ० १२०

पथ पर चलने के लिए मुर्शिद या गुरु का आयोजन रखा है जैसे पद्मावत में हीरामन तोता।[1] चित्रावली में उसमान कवि ने भी गुरु की महत्ता बताई है। यहाँ पर परेवा गुरु रूप में है। इन कवियों ने शैख़, पीरो-मुर्शिद (गुरु) को अत्यंत आदरणीय अवश्य कहा है—

सैयद असरफ 'पीर' पियारा। जेहि मोंहि पंथ दीन्ह उजियारा।

+ + +

मुम्हमद तेइ निचिंत पथ जेहि संग 'मुरसिद पीर'।[2]

किंतु कृष्ण भक्त कवियों की भांति भगवान् नहीं माना केवल ख़ुदा का रास्ता बताने वाला माना है। इन सूफ़ी कवियों ने पीरो मुर्शिद शब्दों का इतना खुल कर प्रयोग नहीं किया जितना कि इनके संपर्क में आने वाले संत कवियों ने किया। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं, जो मुस्लिम संपर्क के परिणाम के द्योतक हैं—

(दादू) 'सेख' मसाइख औलिया, पैगंबर सब 'पीर'।[3]

दादू साधै सुरति को, सो गुर'पीर' हामरा[4]

सुंदरदास कहते हैं कि उस्ताद (पीर) के कदम की ख़ाक होने से ही हिर्स (लालच) और घमंड जाता है—

अवल उस्ताद के कदम की खाक हो हिर्स वगुजार सब छोड़ फैना।[5]

पीरो-मुर्शिद के विषय में मलूकदास के विचार भी दृष्टव्य हैं। वे कहते हैं कि जो दूसरों की पीड़ा जानता है वही पीर है—

मुलका सोई 'पीर है जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानही, सो फकीर बे पीर॥
पीर पीर सब कोई कहे, पीरे चीन्हत नाहिं।[6]

---

१. गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा॥
जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३०१

२. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ७

३. क. दादू-बानी, भाग १, पृ० १४७
ख. मुहम्मद किस के दीन में, जबराइल किस राह।
इनके मुर्सद पीर की, कहिये एक अलाह।
दादू-बानी, भाग १, पृ० १३६

४. दादू-बानी, भाग १, पृ० ५

५. सुन्दर-विलास, पृ० १३

६. क. मलूक दास की बानी, पृ० ३२
ख. बहुतक 'पीर' कहावते, बहुत करत हैं भेस। मलूकदास की बानी, पृ० ३२

मारे काल कलंदर दिल सौ, दरदमंद घर धीरा।
ऐसा होय तब पीर कहावे मनी मान जब खोवै।[1]

दादू कहते हैं कि पीर, सेख मसाइख सब ही काल का ग्रास हो जाएंगे और अलख ही बाक़ी रहेगा—

'पीर' पैगंबर 'सेख' 'मसाइख', सिव विरंच सब देवा रे।
कलि आया सो कोइ न रहती, रहसी अलख अभेवा रे ॥[2]

इन कुछ उदाहरणों से यह तो अंदाजा होता ही है कि यह संत कवि सूफ़ियों और शेख, मशाइख, पीर मुर्शिद के संपर्क में अवश्य आए होंगे तब ही तो उनके अच्छे बुरे की पहचान हुई होगी। अन्य स्थानों पर अन्य कवियों ने भी गुरु की महत्ता बताई है तथा हिंदी के सूफ़ी कवियों के अंदाज पर ही असूफ़ी प्रेमाख्यान काव्यों (दुख-हरनदास कृत पुहपावती)[3] में भी गुरु परंपरा का उल्लेख मिलता है। इधर सूफ़ी कवियों के प्रेमाख्यानों में इसका विधिवत् उल्लेख है ही जिससे यह स्पष्ट पता चल जाता है कि वे सूफ़ियों की किस शाखा में दीक्षित हुए।

तसव्वुफ़ के मुक़ामात या साधना-मार्ग की चार अवस्थाएँ

प्रयोग वैविध्य के होते हुए भी साधना मार्ग के लक्ष्य की पूर्ति के लिए सभी सूफ़ी संत लक्ष्य की दृष्टि से समान कहे जा सकते हैं। सूफ़ी संत बड़े ही उदार मना एवं मानवतावादी थे। उन्होंने जन सामान्य को उस परम तत्व तक पहुंचने के लिए किसी प्रकार के प्रतिबंध का आग्रह नहीं किया तभी तो वे कहते हैं कि 'उस' तक पहुंचने के लिए असंख्य रास्ते हैं—

बिधना के मारग हैं तेते। सरग नखत तन रोवां जेते।
जेइ हेरा तेइ तहँवें पावा। भा संतोष, समुझि मन गावा।[4]

किंतु यह सूफ़ी इस्लाम धर्मानुयायी थे। इनकी मान्यता है कि इस्लाम धर्म समस्त मानवता के लिए (केवल मुसलमानों की उस पर बपौती नहीं है) सब धर्मों के नवीनतम संस्करण के रूप में आया है और अल्लाह रब्बुल आलमीन (सबका पालक) है इसलिए इन सूफ़ियों ने उन लोगों के लिए जो जन सामान्य से उठकर विशिष्ट जन

---

१. क. मलूक-बानी, पृ० ४
   ख. 'मुरसिद' मेरा दिल दरियाई, दिल गहि गहि अंदर खोजा। मलूकबानी, पृ० ४
   ग. है वे पीर औ पीर कहावे। करि मुरीद तदबीर सिखावे। मलूक-बानी, पृ० २२
२. दादू-बानी, भाग १, पृ० १३७
३. नाउ मलूकदास गुरुकेरा। जिन्हके सरन भये हम चेरा।
४. जायसी-ग्रंथावली (अखरावट), पृ० ३२१

बनना चाहते है यह कहा है—

तेहि महं पथ कहौं भल गाई। जेहि दूनौ जग छाज बड़ाई ॥
सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कविलास बसेरा ॥
लिखि पुरान विधि पठवा सांचा। भा परवांन, दुवौ जग बांचा ॥
वह मारग जो पावै सो पहुच भवपार।
जो भूला होइ अनतहि तेहि लूटा बटपार ॥[१]

इसलिए तसव्वुफ़ में सालिक (साधक यात्री) की क्रमशः चार अवस्थाएँ या मुक़ामात या बसेरे[२] माने है—शरीअत, तरीक़त, मारिफ़त और हक़ीक़त। जिनको पार करने पर यात्री अपनी गतव्य-मंजिल पर पहुँच सकता है, आंखों के सामने से परदा (माया का) उठ जाता है और गुप्त भेद पा लेता है। हिंदी-साहित्य में सूफ़ी असूफ़ी संतों में इसकी चर्चा मिलती है जो मुस्लिम संपर्क का परिणाम है।

चहार मंजिल बयां गुफ़तम, दस्त करदः बूद[३]
मुक़ाम चि चीज हस्त दादनी सज़ूद।[४]

शरीअत

शरीअत उस अवस्था को कहते हैं जिसमें साधक धर्म ग्रंथों के विधि निषेधों का सम्यक रूप से पालन करे अर्थात् इस्लाम की शरअ ही शरीअत है। जब तक सालिक इस कूचे में रहता है तब तक शर्अ की पाबंदी द्वारा नमाज़ रोज़ा तथा क़ुरान और हदीस द्वारा बताये हुए अन्य रास्ते पर चल कर आगे आने वाली यात्रा के लिए अपने आपको प्रशिक्षित कर लेता है। प्रत्येक काम अपने शैख की आज्ञा से करता है। भारतीय दर्शन में इसे कर्मकांड कह सकते हैं। सूफ़ी शरीअत को सीधा मार्ग बताते हैं और बिना शरीअत की सीढ़ी को पार किये, सूफ़ी अपनी यात्रा पूर्ण कर, परम की खोज नहीं कर सकता।

सांची राह सरीअत, जेहि बिसवास न होई।
पांव राख तेहि सीढ़ी निभरम पहुंचै सोई ॥[५]

---

१. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३२१

२. क. 'चारि बसेरे' सौं चढ़ै, सत सौं उतरै पार ॥
जायसी-ग्रंथावली, पृ० १६
ख. बांक चढ़ाव, सात खंड ऊंचा।
चारि बसेरे जाइ पहुंचा ॥ जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३१५

३. दादू-बानी, भाग १, पृ० ५५

४. दादू-बानी, भाग १, पृ० ५३

५. जायसी-ग्रंथावली (अखरावट), पृ० ३२२

इसकी व्याख्या करते हुए जायसी नमाज की महत्ता इस प्रकार बताते हैं—

ना—नमाज है दीन क थूनी। पढ़ै नमाज सोइ बड़ गूनी।[१]

इसी प्रकार मज़हब (धर्म) की महत्ता हिंदी के प्रेमाख्यानों में अपने पात्रों द्वारा अन्य कवियों ने भी अभिव्यक्त कराई है—

सुनो कुंवर एक वचन हमारा। धरम पंथ दुहु जग उजियारा।
जाके हृदय धरम गा जागी। सो कस परै पाप कै आगी।[२]

धर्म के जाने पर फिर जीव पछताता है। इसलिए अकर्म करके क्यों धर्म नष्ट किया जाए—

अकरम कै का धरम नसाई। गएं धरम पुनि जिउ पछताई।[३]

संत लोग यद्यपि बेशर्अ (इस्लाम धर्म को पूर्णतः न मानने वाला) थे किंतु सूफ़ियों के संपर्क के परिणाम स्वरूप उन्होंने शरीअत की अच्छाइयों को भी अनुभव करके उसकी चर्चा की है। नानक जी कहते हैं—

मुसलमाना सिफति 'सरीअति' पड़ि पड़ि करहि बीचारु।
बंदे से जि पवहि विचि बंदी वेखण कउ दीदारु॥[४]
सरै 'सरीअति' करहि बीचारु। बिनु बूझे कैसे पावहि पारु।[५]

दादूदयाल के विषय में डा० ताराचंद जी ने अपनी पुस्तक में न केवल काव्य-रूप[६] की दृष्टि से इनकी भाषा को मुस्लिम-संस्कृति से प्रभावित बताया है अपितु दार्शनिक क्षेत्र में भी सूफ़ियों का प्रभाव स्पष्ट किया है। दादू कहते हैं कि जब आदमी पथ भ्रष्ट हो जाए तो पहला क़दम शरीअत का अनुसरण करना है। किसी बुद्धिमान से अच्छाई बुराई और हलाल और हराम में अंतर तथा नेकी बदी को पहचानने का ज्ञान प्राप्त करना ही शरीअत है। इन्होंने चारों मक़ामात की भी चर्चा की है—

हैवान आलिम गुमराह ग़ाफ़िल, अव्वल 'शरीअत' पंद।
हलाल हराम नेकी बदी, दर्से दानिशमंद॥[७]

तरीक़त

शरीअत के आदेशों पर चल कर सालिक (यात्री) अपने आपको इतना प्रशि-

---

१. जायसी-ग्रंथावली (अखरावट,) पृ० ३२१
२. मधुमालती, छंद १२७, पृ० १०६
३. मधुमालती, छंद १२८, पृ० १०७
४. नानक-वाणी, पृ० ३३२
५. नानक-वाणी, पृ० १६६
६. इन्फ़्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० १८३, १८४
७. दादू-बानी, भाग १, पृ० ५४

क्षित कर लेता है कि उसमें अच्छाई बुराई को पहचानने, अपने नफ़्स पर क़ाबू करने आदि की आदत हो जाती है फिर सालिक तरीक़त के मैदान में प्रवेश करता है जिसमें जीवात्मा आत्म-शुद्धि द्वारा ख़ुदा का चिंतन करती है। अब साधक का ज्ञान प्रसारित होने लगता है और जीव को भगवद् प्राप्ति का तरीक़ा मालूम हो जाता है, यही तरीक़त है। इसे उपासना कांड कहा जा सकता है। सूफ़ी इस मक़ाम पर आत्मा को पूर्ण रूप से शुद्ध करने का प्रयास करता है या यों कहा जा सकता है कि सालिक अमले जिसमानी (भौतिक क्रिया) से गुज़र कर अमले रूहानी (आध्यात्मिक प्रक्रिया) इख़्तियार करता है।[1] शरीअत और तरीक़त को एक शाइर ने इस प्रकार स्पष्ट करने की चेष्टा की है—

शरीअत सिर झुकाना है, तरीक़त दिल लगाना है।

हिंदी में सूफ़ी कवियों के यहाँ विशेपरूप से तथा संतों में भी तरीक़त का उल्लेख मिलता है। जायसी तरीक़त के विषय में कहते हैं—

कहीं 'तरीकत' चिसती पीरू। उघरित असरफ औ जहाँगीरू ॥[2]

कबीर का क्योंकि शैख़ तक़ी तथा अन्य सूफ़ियों से घनिष्ठ संपर्क था फिर वह थे भी बड़े विलक्षण संत इसलिए वह भी तरीक़त से परिचित ही मालूम होते हैं—

तुरक 'तरीकत' जानिये हिन्दू वेद पुरान।[3]

दादूदयाल को न केवल तसव्वुफ़ का अच्छा ज्ञान था अपितु उन्होंने कबीर आदि से अधिक अरबी फ़ारसी शब्दावली का प्रयोग किया है तथा जानकारी भी इनकी कम न थी। शरीअत के विषय में बता कर दादू कहते हैं कि तरीक़त वालों की धुर मंज़िल उनकी आत्मा (रूह) है और उनका मार्ग प्रेमा-भक्ति है। शरीअत की सीढ़ी से निकल कर प्रत्येक समय उस ख़ुदा को ही ध्यान में रख—

इश्क़ इबादत बंदगी, यगानगी इखलास।
मेहर मुहब्बत खेर खूबी, नाम नेकी पास ॥[4]

मारिफ़त

शरीअत तरीक़त के बाद सालिक (साधक-यात्री) का मक़ाम मारिफ़त आता है। यहाँ पर हिजाब (परदा) लगभग दूर हो जाता है। कश्फ़ो-करामात (आत्मशक्ति

१. आइनाए-मारिफ़त, पृ० ८२
२. जायसी-ग्रंथावली (अखरावट), पृ० ३२१
३. कबीर-ग्रंथावली, पृ० २३६
४. दादू-बानी, भाग १, पृ० ५४

द्वारा गुप्त बातों का ज्ञान एवं चमत्कार) में भी उसे दख़ल हो जाता है।[1] मारिफ़त को सत्यानुभूति-जनित सिद्धावस्था कहा जा सकता है। जायसी कहते हैं कि हक़ीक़त के मार्ग पर पड़ जाने वाला चूकता नहीं और मारिफ़त ही सिद्धावस्था है—

राह हक़ीकत परै न चूकी। पैठि 'मारफत' मार बुड़की ॥[2]

दादू दयाल भी मारिफ़त से परिचित मालूम होते हैं। वह कहते हैं कि मारफ़त वाला वह प्रेमी है जो दुनिया को तर्क (त्याग) कर दे संतुष्ट हो जाए प्रियतम का निरंतर ध्यान लगा रहे पानी, आग, अर्श (कुरसी) है वही उसका जहूर है यही मारिफ़त (ज्ञान की मंजिल) है—

कुल्ल फ़ारिग तर्क दुनियां, हर रोज हरदम याद।
अल्लह आले इश्क़ आशिक़, दरूने फरियाद ॥
आब आतश अर्श कुरसी, सूरते सुबहान।
सिर्रे सिफ़त कर्दः बूदन, 'मारिफत' मकान ॥[3]

हक़ीक़त

परमसत्ता (खुदा) का अस्तित्व ही वास्तविक या हक़ीक़ी है। सूफ़ियों ने उसी वास्तविक सत्ता की कृपा एवं ज्ञान की प्राप्ति को हक़ीक़त माना है। मारिफ़त के मैदान को तय करने के पश्चात् सालिक हक़ीक़त के (अथाह) समुद्र को जा पहुंचता है[4] जो उसकी वास्तविक और अन्तिम मंज़िल है। इसी स्थान पर पहुंचने के लिए यात्री सारी मेहनत एवं साधना करता है। यहीं पर सालिक को वास्तविक सत्य का बोध होता है। हुजवेरी ने परम सत्ता के मिलन (प्राप्ति) को ही हक़ीक़त माना है[5] उसका दीदार ही सूफ़ी की अंतिम मंज़िल है।

जायसी ने भी इसका उल्लेख किया है कि हक़ीक़त की राह पाने पर फिर चूक होती ही नहीं—

राह 'हक़ीक़त' परै न चूकी। पैठि मारफत मार बुडुकी ॥[6]

दादूदयाल कहते हैं कि हक़ीक़त मिल गई मैंने नूर (खुदा का) देख लिया, मक़-सूद मिल गया, दीदार हासिल कर लिया।

१. आईनाए-मारिफ़त, पृ० ८२
२. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३२१
३. दादू-बानी, भाग १, पृ० ५४
४. आइनाए-मारिफ़त, पृ० ८२
५. कश्फ़ुल महजूब, पृ० ३२६
६. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३२१

हक्क़ हासिल नूर दीदम, क़रारे मक़सूद।
दीदारे यार अरवाह् आदम, मौजूदे मौजूद ॥
चहार मंज़िल बयां गुफ़तम, दस्त करदः बूद।
पीरां मुरीदां खबर करदः, राहे माबूद ॥[१]

दादू कहते हैं कि हक़ीक़त वालों का इष्ट उनका परमेश्वर (मावूद) है जो खूबों में खूब है और नूर का ऐसा पुंज है जिसको देखकर आंखें झप जाती हैं। भक्तों के लिए अमी-रूप है।

यके नूर खूबे खूबां दीदनी हैरां।
अजव चीज़ खुर्दनी प्यालै मस्तां ॥[२]

इस प्रकार हम कह सकते हैं हिंदी-साहित्य में सूफ़ियों के यहाँ विशेष रूप से शरीअत, तरीक़त, मारिफ़त और हक़ीक़त का उल्लेख मिलता है तथा अन्य संत कवि भी मुस्लिम-संस्कृति के प्रतीक सूफ़ियों के संपर्क के कारण इनसे विधिवत् परिचित हो गये थे। दादू दयाल के काव्य के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि इनका मस्त सूफ़ी क़लंदरों से बड़ा संपर्क रहा है और यह उनके रंग में भी रंगे गये मालूम होते हैं।

यहाँ सूफ़ी-साधना पक्ष के अंतर्गत सूफ़ियों की साधना-अवस्थाओं का उल्लेख किया जाएगा। इन मदारिज (अवस्थाओं) से गुज़र कर एक नव दीक्षित सालिक या यात्री खुदा तक पहुंचता है। सामान्यतः यह तौवा, ज़ुहद, फ़ुक्र, सब्र, तवक्कुल, रिज़ा आदि हैं। बीज रूप में क़ुरान-शरीफ़ में स्थान-स्थान पर इनके संकेत मिलते हैं किंतु तसव्वुफ़ संबंधी ग्रंथों (जैसे किताबुललमा) में इनकी विस्तार से चर्चा एवं व्याख्या की गई है।

यहां पर केवल उनका ही उल्लेख किया गया है जो हिंदी-साहित्य में स्पष्ट रूप से मिलते हैं तथा इन कवियों ने सूफ़ियों की पारिभाषिक शब्दावली का भी उल्लेख किया है जो मुसलमान सूफ़ियों के संपर्क का परिणाम मालूम होते हैं।

तौबा (पश्चात्ताप)

सूफ़ियों को अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए कुछ आंतरिक क्रियाओं का सहारा लेना पड़ता है। इन सोपानों में सर्वप्रथम स्थान तौबा का है। पश्चात्ताप (तौबा) को अचेतनता रूपी निद्रा से जगाना कहा गया है।[3] पापी अपने पापपूर्ण कामों से इसके

४. दादू-बानी, भाग १, पृ० ५५
५. दादू-वानी, भाग १, पृ० ५४
१. इस्लाम के सूफ़ी साधक, पृ० २५

द्वारा सचेत हो उठता है और अपने पुराने गुनाहों की माफ़ी चाहता है ताकि वह फिर कभी ऐसा न करे। तौबा अपूर्णता से पूर्णता की ओर बढ़ने का एक साधन है।[1] हिंदी के सूफ़ी कवि तो स्वभावतः इससे परिचित ही थे तथा संतों और कृष्ण भक्तों के यहाँ भी पश्चात्ताप पर्याप्त मिलता है। मलूकदास ने इस्लामी तसव्वुफ़ की ही भाषा में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

कहता मलूक जब 'तोबा' कर साहब से।
छांड़ दे कुराह जिन जारे पर जाता है॥
कौल से वे कौल हुआ किसी की न लेत दुआ।
दोजख के लिये दिल कौन-कौन मारा है।[2]

नफ़्स : (वासनापूर्ण आत्म पक्ष)—

सूफ़ी लोग मनुष्य के चार विभाग मानते हैं उनमें से नफ़्स भी एक है। शेष हैं रूह (चित्, आत्मा), क़ल्ब (हृदय) और अक़्ल (बुद्धि)। सूफ़ी ग्रंथोके अनुसार साधक का प्रथम लक्ष्य नफ़्स के साथ जिहाद (युद्ध या धर्म युद्ध) जिसे हम विरक्ति पक्ष भी कह सकते हैं, बताया गया है। नफ़्स के विषय में क़ुरान में भी स्थान-स्थान पर चर्चा मिलती है।[3] नफ़्स को वशीभूत करना ही सूफ़ी-भक्ति-साधना का मुख्य कार्य है जिसके द्वारा मनुष्य चिंतनशील जीवन की ओर बढ़ता है। हिंदी में अनेक कवियों ने परोक्ष रूप से और कुछ कवियों ने प्रत्यक्ष रूप से तसव्वुफ़ की भाषा में अपने विचार अभिव्यक्ति किये हैं—

'नफ्स' शयतान कूं कैदकर आपने, क्या दुनी में फिरे खाय गोता।
है गुनेहगार भी गूना ही करते हैं, खायगा मार तब फिरे रोता॥
(दादू) 'नफ्स' नांव सूं मारिये, गोसमाल दे पंद।[4]

भाव-भाषा की दृष्टि से सुंदरदास एवं दादू दयाल के उदाहरण स्पष्ट रूप से मुस्लिम सूफ़ी संपर्क के द्योतक हैं।

ज़िक्र (स्मरण, जाप)

ज़िक्र से तात्पर्य है अल्लाह के नाम का जाप करना। ज़िक्र दो प्रकार का बताया गया है—ज़िक्रे-जली (ऊंचे स्वर में स्मरण) और ज़िक्रे-खफ़ी (मन ही मन में

---

१. इस्तलाहाते सूफ़िया, पृ० ३१
२. मलूक-बानी, पृ० २६
३. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ४३३
४. सुन्दर-विलास, पृ० १२
५. दादू-बानी, भाग १, पृ० १२८

मौन स्मरण)[१]। क़ुरान और हदीसों में इसका उल्लेख मिलता है।[२] सूफ़ियों ने साधना-पक्ष में ज़िक्र का भी आयोजन रखा जिसमें वह अल्लाह के नाम का जाप करते थे। इसके द्वारा जीवात्मा को मारिफ़त प्राप्त होती थी।[3] ज़िक्र, सूफ़ी अनुशासन के विधेयात्मक तत्वों में से एक है। क़ुरान में धर्म पर ईमान लाने वालों को स्थान-स्थान पर आदेश दिया गया है कि ख़ुदा का स्मरण प्राय: करते रहा करो। यह उपासना की एक साधारण परंतु महत्वपूर्ण क्रिया है। सूफ़ियों ने अपने भाने वाले ख़ुदा के कतिपय सूत्र को जपने का नियम बना लिया था जैसे 'सुबहान अल्लाह' (अल्लाह पाक है या अल्लाह की जै हो)। अल्लल्लाहू, ला इलाहा इल्लल्लाह (अल्लाह के अतिरिक्त और कोई भजनीय नहीं)। वे इसे यंत्रवत् सस्वर पढ़ते थे। निकलसन महोदय ने अपनी पुस्तक में इसकी विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने सहल इब्न अब्दुल्लाह का एक शिष्य को दिया हुआ आदेश भी उद्धृत किया है कि इन्होंने अपने एक शिष्य को सारे दिन और रात बिना क्षणिक विराम के 'अल्लाह', 'अल्लाह' कहते रहने का इतना अभ्यास कराया कि वह अपने सारे अस्तित्व को अल्लाह के ध्यान में लीन करने का अभ्यस्त हो गया। एक दिन अचानक शिष्य के सिर पर एक लक्कड़ आ पड़ा जिसकी चोट से सिर से रक्त बह निकला। 'लोगों ने देखा कि घाव से टपकने वाले खून में अल्लाह, अल्लाह शब्द लिखे थे।'[४] सूफ़ी साधना में ज़िक्र का क्या महत्व है, एक इसी उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। निकलसन महोदय ने ग़ज़ाली तथा अन्य सूफ़ियों द्वारा बताई गयी रीति एवं प्रभावों की विस्तार से चर्चा की है। हिंदी-साहित्य में जप, स्मरण की यों तो चर्चा भारतीय दृष्टिकोण से भी मिलती है किंतु यहां पर सूफ़ी-असूफ़ी कवियों के वे उदाहरण प्रस्तुत किये जाएंगे जो तसव्वुफ़ से प्रभावित मालूम पड़ते हैं। दादू दयाल कहते हैं—

> अल्लाह तेरा 'जिकर' फिकर करते हैं।
> आसिकां मुस्ताक तेरे, तर्स तर्स मरते हैं।
> खलक खेस दिगर नेस, बैठे दिन मरते हैं।
> दायम दरबार तेरे, गैर महल डरते हैं।[५]

हिंदी के सूफ़ी कवि इस्लाम और तसव्वुफ़ से तो स्वाभाविक रूप से परिचित

१-२ शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ७५

३. मीरासे-इस्लाम, पृ० २६७

४. इस्लाम के सूफ़ी साधक, पृ० ३८

५. क. दादू-बानी, भाग २, पृ० १६७

ख. 'हरदम तिस को याद कर', जिन वजूद संवारा।
सबे खाक दर खाक हैं, कुछ समझ गंवारा॥ मलूकदास की बानी, पृ० १५

ही थे। अब यहाँ पर कुछ उन सूफ़ी कवियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं जिनके संपर्क से संतों ने तसव्वुफ़ का ज़िक्र लिया होगा। नूर मुहम्मद अपनी नायिका इंद्रावती से कहलाते हैं—

निसि दिन 'सुमिर' मुहम्मद नाऊं, जासों मिले सरग में ठाऊं।[1]
जो भर जनम करे विधि जापा। बिनु वोहि नाम होहि सब लापा।।[2]
प्रेम के साथ जाप करने के लिए भी नूर मुहम्मद ने कहा है—
जब लगि प्रेम न व्यापै, तब लगि स्वाप।
स्वाप जात जब आवत, पाढ़त 'जाप'।।[3]
सुमिरत रहौ नाम करतारा। जेहि सुमिरे पावै भवपारा।[4]
नानक जी भी नाम के मनन करने से दुर्बुद्धि नष्ट होने की बात कहते हैं—
नाइ मंनिऐ दुरमति गई मति परगटी आइआ।
नाउ मंनिए हउमै गई सभि रोग गवाइआ।।[5]

तर्क (त्याग)

सूफ़ियों के लिए तर्क की बड़ी महत्ता बताई गई है। जब तक संसार में लिप्त रहने की इच्छा दिल से दूर नहीं हो जाती सूफ़ी अपनी मंज़िल से कोसों दूर रह जाता है। माल दौलत सांसारिक विषय का त्याग तथा तामसिक वस्तुओं के प्रयोग से बचना ही तर्क कहलाता है। हिंदी के सूफ़ी कवियों का तर्क से परिचित होना तो स्वाभाविक ही है जैसे कि जायसी ने एक स्थान पर खानपान में संकेत किया है

छांड़ु घिउ औ मछरी मांसू। सूखे भोजन करहु गरासू।।
दूध, मांसु घिउ कर न अहारू। रोटी सानि करहु फरहारू।।
एहि विधि काम घटावहु काया। काम, क्रोध, तिसना, मद, माया।।[6]
किंतु संत कवियों ने खुलकर तसव्वुफ़ की भाषा में तर्क के विषय में कहा है
(दादू) आसिक एक अलाह के, फारिग दुनिया दीन।

---

१. इन्द्रावती, पृ० ९६
२. चित्रावली, पृ० ६
३. अनुराग-बांसरी, पृ० २२
४. हंस-जवाहर, पृ० २५
५. क. नानक-वाणी, पृ० ७३४
ख. सुणिऐ सरा गुण के गाह। सुणिऐ सेख पीर पातिसाह।
नानक-वाणी, पृ० ८३
६. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३२८

'तारिक' इस औजूद पे, दादू पाक अकीन ॥[१]

दादू कहते है कि मारफ़त पाने वाले वे हैं जो दुनिया को तर्क करके संतुष्ट हो जाते हैं—

कुल्ल फ़ारिग़ 'तर्के दुनिया', हर रोज़ हर दम याद ।
अल्लह आले इश्क़ आशिक़ दरूने फरियाद ॥[2]

मलूकदास तो उसकी सूरत पर ही पगे हुए हैं और दुनिया को तर्क (त्याग) कर दीन को संभालना चाहते हैं—

तौन दुर्वेसन का पैंडा निराला है ।
रहते महजूब वे तो साहब की सूरत पर ।
दुनियां को 'तर्क' मार दीन को सम्हाला है ।
किसी से न करै स्वाल उनका कुछ और ख्याल ।
फिरते अलमस्त वजूद भी विसारा है ।[3]

रैदास भी तर्क से परिचित मालूम होते हैं—

दोजख भिस्त दोउ समकर जानौ दुहुँ ते 'तरक' है भाई ।[४]

अज्ज़ (दैन्य)

मुसलमान सूफ़ियों को आमतौर पर फ़क़ीर (निर्धन) दरवेश (भिक्षु) आदि नामों से दैन्य के कारण ही संवोधित किया जाता है । सच्चा दैन्य केवल संपत्ति का अभाव नहीं वल्कि संपत्ति की इच्छा का भी अभाव है । अर्थात् हृदय और हाथ दोनों ही खाली रहने चाहियें । ईश्वर की ओर बढ़ने से रोकने वाले प्रत्येक विचार अथवा इच्छा का परित्याग कर देना दैन्य के अंतर्गत आता है । क़ुरान में अज्ज़ो इनकिसारी (दैन्य) की शिक्षा अनेक स्थलों पर मिलती है जैसे 'जो लोग अज्ज़ो इनकिसारी (दैन्य) के साथ ज़मीन पर दवे पांव से चलते हैं और जब उनसे जाहिल वात करते हैं तो वे उन्हें सलाम (शांति) कहते है । उन्हें जन्नत में उच्च स्थान मिलेगा ।[५]

जामी का कथन है कि फ़क़ीर लोग खुदा को खुश करने के लिए सभी सांसारिक वस्तुओं को त्याग देते हैं जिसके तीन मूल कारण है । क़यामत का भय, स्वर्ग प्राप्ति, आध्यात्मिक शांति तथा आंतरिक सुख की अभिलाषा ।[६] यहाँ पर कुछ वे

१. दादू-वानी, भाग १, पृ० ३२
२. दादू-वानी, भाग १, पृ० ५४
३. मलूकदास की वानी, पृ० २७
४. रैदास की वानी, पृ० ४
५. क़ुरान, सूरे फ़ुरक़ान (२५) आयत ६३-६४
६. इस्लाम के सूफ़ी साधक ३०-३१ के आधार पर

उदाहरण प्रस्तुत किये जाएंगे जिनमें संतों ने इस्लामी तसव्वुफ़ के (अरबी फ़ारसी शब्दों के माध्यम से) दैन्य संबंधी विचार व्यक्त किये हैं। डा० ताराचंद ने अपनी पुस्तक में मुस्लिम सूफ़ियों के अज्जोइनकिसार एवं खुदसुपुर्दगी (दैन्य एवं परपत्ति) के विषय में विस्तार से चर्चा की है और संतों पर उसके प्रभाव की संभावना पर भी स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला है।

रैदास के विषय में उनका मत उद्धरणीय है 'इनके भजनों में इनकिसार (दैन्य) और खुदसुपुर्दगी (परपत्ति) का जजबा है'[1]। यहाँ पर रैदास की बानी के कुछ उदाहरणों से इस कथन की सोदाहरण पुष्टि होती है—

खालिक सिकस्ता मैं तेरा ।
दे दीदार उमेदगार, बेकरार जिव मेरा ।।
औवल आखिर इलाह, आदम फरिस्ता बंदा ।
जिसकी पनह पीर पैगंबर, मैं गरीब क्या गंदा ।
नालीदोज़ हनोज़ बेबख़त, कमि खिजमतगार तुम्हारा ।।
दरमांदा दर ज्वाब न पावै, कह रैदास बिचारा ।।[2]

+ + +

तूं सुलतान सुलताना, बन्दा सकिसता अजाना ।
मैं बे दियानत न नजर दे, दरमंद बरखुरदार ।
बे अदब बदबख़त बीरा, बेअकल बदकार ।।
मैं गुनहगार गरीब गाफिल, कमदिला दिलतार ।
तूं कादिर दरियाव जिहावन, मैं हिरसिया हुसियार ।।
यह तन हस्त खस्त ख़राब, खातिर अंदेसाविसियार ।
रैदास दासहि बोलि साहिब, देहु अब दीदार ।।[3]

प्रस्तुत उदाहरण भाव एवं भाषा की दृष्टि से स्पष्ट रूप से सूफ़ियों के अज्ज से प्रभावित हैं। डॉ० ताराचंद ने भी इसे कामिल सुपुर्दगी और अज्ज़ (दैन्य एवं परपत्ति) बताया है।[4]

तवक्कुल (परमात्मा पर भरोसा)

सूफ़ी साधना में तवक्कुल का भी महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। क़ुरान में

१. इंफ्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० १७९
२. रैदास की बानी, पृ० २९
३. रैदास की बानी, पृ० १६
४. इंफ्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० १८१

तवक्कुल करने वालों को पसन्द किया गया है और तवक्कुल का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है ।[1] तवक्कुल उस दशा का नाम है जब मनुष्य अपने सारे कार्यकलापों को खुदा के प्रति समर्पित कर दे और यह विश्वास कर ले कि जो कुछ करेगा वह खुदा ही करेगा । किंतु सूफ़ियों का एक वर्ग ऐसा भी है जो हाथ पर हाथ रखकर बैठने को निष्क्रियता मानता है और इसके पक्ष में नहीं है । तवक्कुल की ठीक-ठीक व्याख्या इस प्रकार है कि उद्देश्य के लिए प्रयत्न तो करो किंतु फल के लिए खुदा पर भरोसा करो क्योंकि परिणाम उसी के साथ है 'व तो इज़्ज़ो मन तशाओ व तो जिल्लो मन तशा' अर्थात् सद् असद् परिणाम उसी की ओर से है। तवक्कुल का सारा आधार दृढ़ विश्वास पर बताया जाता है । ख़ुदा के सर्व शक्तिमान गुण पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिये । वही गुनाहों का बख़्शने वाला है, रहमत वाला है। मनुष्य को हर हाल में संतोष रखना चाहिये । क़ुरान में कहा गया 'जिसने खुदा पर तवक्कुल किया उसका काम आसानी से हो जाएगा'[2] 'खुदा तवक्कुल करने वालों को दोस्त रखता है[3] अज्ज़ और तवक्कुल में आपसी संबंध है । तसव्वुफ़ में अज्ज़ोतवक्कुल तथा हिंदी-साहित्य में उसके संपर्क के परिणाम को समझने के लिए यहां पर डा० ताराचंद की महत्वपूर्ण पुस्तक के कुछ उद्धरण देना इसलिए आवश्यक हैं कि उन्होंने इस पर विस्तार से चर्चा की है । तवक्कुल अल्लाह पर पूर्ण विश्वास रखना है ।[4] मुहम्मद ने यह शिक्षा दी कि बंदे (मनुष्य) को चाहिये कि वह पूर्ण रूप से अपने आपको अल्लाह की शरण में देदे (इस्लाम) और तसव्वुफ़ की शिक्षा यह है कि शिष्य अपने आपको गुरु के सुपुर्द (समर्पण) कर दे जो पृथ्वी पर खुदा का प्रतिनिधि है ।[5] तौहीद की व्याख्या करते हुए इन्होंने लिखा है मनुष्य की भलाई इसमें है कि वह पूर्ण रूप से खुदा पर भरोसा (तवक्कुल) रखे । निश्चय ही यह कामिल सुपुर्दगी (आत्म समर्पण) की शिक्षा है ।[6] इस्लाम का अर्थ ही सुपुर्दगी (समर्पण) और मुसलमान वास्तव में प्रपन्ना है ।[7]

इन उदाहरणों को इसलिए दिया गया है कि डा० ताराचंद ने इस्लाम की खुदसुपुर्दगी (आत्म समर्पण) तवक्कुल तथा मुर्शिद के विषय में इस्लाम तथा तसव्वुफ़ का मध्यकालीन भक्ति साहित्य में जो प्रभाव दिखाया है उसमें संदेह की गुंजाइश

१. क़ुरान सूरत ६ आयत ४०
२. वतवक्कलो अलल्लाहे व कफ़ाबिल्लाहे वकीला, क़ुरान, सूरेनिसा, आयत, ८०
३. इन्नलल्लहा युहिब्बुल मुतवक्केलीन
४. इंफ्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० ६५
५. इंफ्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० ८२
६. इंफ्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० ५१
७. इंफ्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० ११४

इसलिए नहीं है कि इसकी पुष्टि हिंदी साहित्य स्वयं भी करता है तथा अन्य विद्वानों ने भी इसकी पुष्टि की है। डा० हरदेव बाहरी का भी मत है कि हिंदी साहित्य के विनय पदों (प्रभु मेरे अवगुण चित न धरो, भले बुरे सो तेरे) पर तसव्वुफ़ एवं तवक्कुल का प्रभाव है।[1] इनका कथन है कि तवक्कुल और ईशप्रनिधान तथा आत्म समर्पण एक ही है। सूफ़ियों का दर्शन इससे भी आगे बढ़कर कहता है ख़ुदा गुनाहों का बख़्शने वाला है महरबान है (ग़फ़ूर, रहीम) और वह अपने वंदे के बड़े से बड़े गुनाह को भी क्षमा कर देता है किंतु शर्त यह है कि वंदा अल्लाह पर पूर्ण तवक्कुल करे 'यह एक अवैदिक विचारधारा है जिसके अनुसार प्रत्येक पाप का फल भोगना होता है। इन विद्वानों के मतानुसार सूरदास आदि के विनय के पद तथा विनयपत्रिका एवं भक्ति-साहित्य पर सूफ़ी विचारधारा का प्रभाव पड़ा है।

प्रभु हौं सब पतितनि को टीको।
और पतित सब दिवस चारि कै हौं तौ जनमत ही को।[2]
हौं तो पतित - सिरोमनि माधौ।[3]
इन पापिन तें क्यों उबरौगे 'दामनगीर' तुम्हारे।[4]
कबहुक तोर 'भरोस'। जो मैं न कहूं तो मोर दोस।[5]

यहाँ पर दामनगीर एवं भरोस से तो तवक्कुल का पता चलता ही है दादू दयाल ने स्पष्ट रूप से गुनाहों को बख़्शवाने के लिए तवक्कुल किया—

गुनहगार अपराधी तेरा, भाजि कहाँ हम जाहिं।[6]
काहे कूं बबरा भयो फिरत अज्ञानी बर, तेरो तौ रिजक तेरे बैठे आइ है।[7]

गुरु नानक भी उस ख़ुदा के ग़फ़ूररहीम होने और बख़्शने वाले से परिचित हैं जो तवक्कुल ही है—

आपि करे अलख अपारु। हउ पापी तूं बखसण हारु।[8]

---

१. पर्शियन इंफ़्लूएंस आन हिंदी, पृ० ८१ के आधार पर

२. सूरसागर, १-१३८

३. सूरसागर, १-१३९

४. सूरसागर, १-३३४

५. रैदास की बानी, पृ० १०

६. दादू-बानी, भाग १, पृ० २३४

७. सुन्दर-विलास, पृ० ३८

८. नानक-वाणी, पृ० २६६

राग गऊड़ी सुखमनी महला ५ में एक स्थान पर कहते हैं मनुष्य पर तवक्कुल करना निरर्थक है। ख़ुदा ही सब का दाता है उसके देने से ही मनुष्य को तसल्ली होती है और जिसके बाद किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती वही मारने वाला रक्षा करने वाला है, मनुष्य के हाथ कुछ नहीं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निस्संकोच कहा जा सकता है कि आलोच्य-कालीन हिंदी-साहित्य में मुस्लिम संपर्क के परिणाम स्वरूप अनेक प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना हुई। ज्ञानमार्गी शाखा तथा सगुण-भक्त-कवियों के काव्य पर भी तसव्वुफ़ की गहरी छाप पाई जाती है।

तृतीय अध्याय

विषय-वस्तु (खंड ख)

१—राजनीतिक जीवन-चित्रण

आलोच्यकालीन-हिंदी-साहित्य में तत्कालीन मुस्लिम-शासन-व्यवस्था संबंधी जीवन का प्रमुख चित्रण यत्र तत्र स्फुट प्रसंगों से एकत्रित किया जा सकता है जिससे पता चलता है कि मुस्लिम संस्कृति के राजनीतिक जीवन की इन कवियों को अच्छी खासी जानकारी थी। यद्यपि सूफ़ी-संत कवियों ने आध्यात्मिक विचारों को अधिक व्यक्त किया है किंतु इन आध्यात्मिक रूपकों में भी राजनीतिक चित्र मिल जाते हैं। यहाँ पर उनका एक विशेष क्रम से उल्लेख किया जाता है।

शासक

हिंदी-साहित्य में शासक के लिए जहाँ पर राजा, नृप, नृपति, राव, राउ, भुवाल आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है वहाँ पर तत्कालीन मुस्लिम-शासन के संपर्क या जन-सामान्य में प्रभाव के कारण अरबी शब्द सुलतान, फ़ारसी शब्द शाह, शहंशाह, पादशाह या बादशाह का प्रयोग भी मिलता है। मुसलमान शासक अपने अपने समय में इन्हीं उपाधियों से अभिहित किये जाते थे। हिंदी के सूफ़ी कवियों ने अपनी मसनवियों के स्तुति खंड में शाहेवक़्त (समकालीन शासकों) की प्रशंसा की है। सूफ़ी कवि जायसी के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

सेर 'साह' देहली 'सुलतानू'। चारि खंड तपै जस भानू॥

+ + +

'बादशाह' तुम जगत के जग तुम्हार मोहताज।[1]

बाबर 'साह' छत्रपति राजा। राज-पाट उन कहँ बिधि साजा॥[2]

---

१. जायसी-ग्रंथावली (पद्मावत), पृ० ५

२. जायसी-ग्रंथावली, आखिरीकलाम, पृ० ३४१

वै सहगवन भई जब जाई। 'बादशाह' गढ़ छेंका आई ॥[1]
दिल्ली नगर आदि 'तुरकानू'। जहाँ अलाउद्दीन 'सुलतानू' ॥[2]

इन सूफ़ी कवियों के अतिरिक्त दरबारी कवि (जिनमें अकबरी दरबार के हिंदी कवि पुस्तक विशेष उल्लेखनीय है) भी अपने शासकों को उन्हीं उपाधियों से सम्बोधित करते थे।

तान हद्द मियां तान सेन बुद्धि हद्द बलबीर।
'साह' को 'साह' अकब्बरा टोडरमल 'वजीर'।[3]

अन्य कवियों ने भी इन उपाधियों का प्रयोग किया है।[4] तत्कालीन शासक प्रजावत्सल थे इसीलिए उन्हें ग़रीब नवाज़ कहा जाता था। दरबारी शिष्टाचार में तो यह शब्द आम था ही, प्रजा में भी इतना लोकप्रिय था कि हिंदी कवियों ने इसका प्रयोग खूब किया है। इसीलिए तुलसीदास ने इस शब्द का राम के लिए बड़े आदर से प्रयोग किया है—

राम 'गरीब निवाज' निवाजि है जानि है ठाकुर ठाऊगो।[5]
तूं 'गरीब को निवाज' हौं गरीब तेरो।[6]
राम 'गरीब नेवाज' भये हौ 'गरीब नेवाजी'।[7]

---

१. जायसी-ग्रथावली, आखिरीकलाम, पृ० ३००
२. (क) जायसी-ग्रंथावली, आखिरीकलाम, पृ० २०३ तथा देखिये—पृ० २०४, २०८, २२४, २२७, २३७, ३००, ३४१ आदि
(ख) सुलतान शब्द के लिए देखिये—सूरसागर १-१४५, हंसजवाहर १-२०, नानक-वाणी, पृ० २३४, १००, सुन्दर-विलास, पृ० ३०
३. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (गंग), पृ० ४३७
४. देखि गदर हित—साहबी, दिल्ली नगर मसान
छिनहि 'बादसा' वंस की ठसक छोरि रसखान। प्रेम-वाटिका, पद ४८
५. (क) गीतावली, ५।३०
(ख) नाथ 'गरीब निवाज' हैं मैं गही गरीबी। कवितावली, ६, ८
(ग) नाम 'गरीब अनेक नेवाजे'। मानस १।२५।१
(घ) गई बहोर 'गरीब नेवाजू'। मानस १।१३।४
६ (क) विनयपत्रिका, ७८
(ख) कायर क्रूर कपूतन की हदतेउ 'गरीब नेवाज नेवाजे'। कवितावली, ७।१
(ग) रीति महा राज की नेवाजिये जो मांगनो सो (कवितावली ७।२५)
७. (क) कवितावली, ७।६५
(ख) सोउ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम रे। विनयपत्रिका, ७१

इसी गरीब नवाज के अन्दाज पर तुलसी ने रंक निवाज, बिभीषन निवाज, हनूमान निवाज आदि सुन्दर शब्द दिये हैं जिनका भाषा अलंकरण की दृष्टि से बड़ा महत्व है और तत्कालीन मुस्लिम-हिंदू संस्कृति की सामासिकता तथा घुलामिला रूप सामने आता है—

'रंक के निवाज' रघुराज राजा राजनिके
'उमरि दराज' महाराज तेरी चाहिये ॥[1]
'बिभीषन नेवाजि' सेतु सागर तरन भो ।[2]
'जानत जहान' 'हनूमान को निवाज्यौ' जन ।[3]

पौराणिक चरित्र रामचंद्र जी का इस प्रकार गरीब निवाज दिखाया जाना तत्कालीन दरबारी अंदाज की एकदम याद दिला देता है। सूरदास ने भी इसका प्रयोग किया है—

नई न करत कहत प्रभु हौ सदा 'गरीब निवाज'[4]

सुलतानों और बादशाहों के सर पर एक शाही टोपी हुआ करती थी उसे शाही ताज या सर ताज (सर फ़ा०, शिर संस्कृत) इस प्रकार शासक के ताज का भी हिंदी में प्रयोग हुआ है। सरताज का अर्थ शिरोमणि, नायक, स्वामी भी है—

हाटक कलसा धुजा-पताका, छत्र-चवंर 'सिरताज'।
+ + +
सूर दास हरषत ब्रज बासी, रह्यो घोष 'सिरताज'।[5]
जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप 'सिरताज'।[6]

१. (क) तुलसी ग्रंथावली, भाग २, पृ० १८२
(ख) रंक निरगुनी नीच जितने 'निवाजे' हैं। बिनयपत्रिका, १८०
२. (क) कवितावली, ६।५६
(ख) राम कृपाल निषाद 'नेवाजा'—रामचरितमानस, २।२५०।४
३. हनूमान-बाहुक, २०
४. सूरसागर, १-१०८
५. (क) सूर-निर्णय, पृ० २२६
(ख) दुतिया पार सिहासन बैठे चवर 'सिरताज,' गोविन्दस्वामी, १२६
(ग) विकल मान खोयौ कौरव पति, परेउ सिर कौ ताज। सूर-सागर १-२५५
६. (क) रामचरितमानस, १।३२६
(ख) जहां बांको बीर तोसो 'सूर सिरताज' है।
तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, पृ० १४६
(ग) सूर-सिरताजनि के महाराज। तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, पृ० १६६

साज समाज सबै 'सिरताज' औ छाज की बात नहीं कहि आवै।[१]

संत कवियों ने सिरताज शब्द का अध्यात्मिक अर्थ में प्रयोग किया है।[२]

महल

शाही शानोशौकत एवं ऐश्वर्य तथा वैभव के अनुकूल ही मुस्लिम शाहंशाहों के भवन भी होते थे जो उन्हें अन्य इस्लामी देशों से विरासत (उत्तराधिकार) में मिले थे। महल अरबी भाषा का शब्द है तथा रंग और कुंज शब्द फ़ारसी के भी हैं और संस्कृत में भी लगभग इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। यहाँ रंग महल तथा कुंज महल आदि का भव्य भवनों के अंतःपुर से अभिप्राय है जो मुस्लिम दौर में आमतौर पर होते थे। हिंदी में महल (अ०) महलनि प्रयोग मुस्लिम काल का स्पष्ट प्रभाव है। सुदामा जैसे सीधे सादे ब्राह्मण के भवन को सूरदास ने स्वर्ण निर्मित बताया है।[३] यहाँ सुदामा के प्रति अगाध श्रद्धा की अपेक्षा तत्कालीन शासकों से बढ़कर चित्रण करने की प्रवृत्ति अधिक मालूम होती है। कंस ने सुफलक-सुत को महल में ही बुलाया है[४] महल, रंग-महल, मोती महल, रतन महल, कुंजमहल आदि का निरूपण तत्कालीन मुस्लिम शासन व्यवस्था का संपर्क है

टहल सहज 'महल महल' जागत चारो जुग जाम सो[५]
'रंग महल' में रतन सिंहासन, राधारवन पियारौ[६]

---

१. सुजान-रसखान, पद १५

२. (क) कहै मलूक मेरो प्रान रमइया, तीन लोक ऊपर सिरताज।
मलूक-बानी, पृ० ६
(ख) जनम जनम की दासी तेरी तुम मेरे सिरताज। मीरा, पृ० १०८
(ग) मीरा के प्रभु और न कोई, तुम मेरे 'सिरताज'। मीरा पृ० ७८

३. ऊंचे भवन मनोहर छाजे, मनि कंचन की भीति

४. सुनत बुलाइ 'महल' ही लीन्हौ, सुफलक-सुत गए धाइ। सूरसागर, २९२८

५. क. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २ (विनयपत्रिका), पृ० ४४६
ख. अन्तःपुर 'महलनि' रानी के सूर-सागर, ९८४
ग. छज्जनि तें छुटति पिचकारी। सूर-सागर, २९०२
घ. बने माधो के महल। परमानन्ददास, ७४६

६. क. कुंभनदास, ३७७
ख. मोतीमहल पोत अस देखा। कनक वार काई अवरेखा।
हंसजवाहर, १९१
ग. विरहणि बैठी 'रंगमहल' में मोतियन की लड़ पोवै। मीरा, पृ० ९९

'कुंजमहल' में बैठे पिय प्यारी लालन पहरे नौतन साज[1]

इतना ही नहीं हरमखानों, जनानखानों तथा खसखानों का चित्र भी हिंदी में मिल जाता है। खसखाने में प्राचीन कृष्ण का चित्र मुग़ल दौर के अलावा और कहाँ हो सकता है। मुग़ल गुलाबपाशी[2] का चित्र भी मिलता है

सीतल उसीर गृह छिरको 'गुलाब-नीर' तह बैठे पिय प्यारी केलि करत हैं।

+ + +

सीतल भाँगे बनाई सीतल सामिग्री धराई सीतल पान मुख बीरा रचत हैं।

सीतल सिज्या बिछाई 'खस के परदा' लगाई, गोविंद प्रभु तहाँ छवि निरखत हैं[3]

ठीक दुपहिरी में 'खसखानें' रचे ता मधि बैठे लाल बिहारी

'खासा' की कटि बन्यों पिछौरा चंदन-मौजें। 'कुलह' संवारी[4]

पहले तो कवि ने तत्कालीन शासक से अपने कृष्ण को बढ़ाते हुए दोपहरी में खस के परदे लगे, लेटे दिखाया और जब फिर भी संतोष न हुआ तो कृष्ण को तातारी कुलह भी पहना दिया जो मुस्लिम संस्कृति के संपर्क का स्पष्ट प्रभाव है।

दरबार

शहंशाह जिस स्थान पर उपयासकों, वज़ीरों और अन्य कर्मचारियों के साथ बैठकर राज्य-प्रबंध संबंधी समस्याओं पर विचार करता है, उसे दरबार या राज्य सभा कहा जाता है। हिंदी-साहित्य में वर्णित दरबार[5] की चर्चा यद्यपि सूर तुलसी आदि कवियों ने अपने परब्रह्म कृष्ण और राम की सभा के चित्रण में अधिक की है किंतु

---

१. परमानंददास, ३३६, ७६१

२. सम आसपेक्टस आफ सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दी मुगल एज।
चोपड़ा, पृ० ६४

३. गोविंदस्वामी, १६४

४. कुंभनदास, ८३

५. क. प्रीति पहिचानि यह रीति 'दरबार' की। विनयपत्रिका, ७१
ख. भई बड़ि भीर भूप 'दरवाग'। रामचरितमानस २। ७६। ३
ग. राग रंग रंगि संगि रह्यौ नंदराइ-दरबार। सूरसागर, २६०४
घ. जहाँ गायौ तहाँ रहै चरन तर परयौ रहै 'दरबार'। परमानददास, ८७५
ङ. हाल्यो मोल्यो सूं काम नहीं रे, सीख नहीं सिरदार।
काम दर्या सूं काम नहीं रे, मैं तो जाब करूँ 'दरबार'। मीरा, पृ० ६३
च. कीन्हौ नहीं प्यार नहीं सेयौ 'दरबार' चित। सुजान-रसखान, पद ६
छ. (दादू) माया चेरी संत की, दासी उस 'दरबार'। दादू-बानी भाग १, पृ० ११८

अरबी-फ़ारसी की प्राविधिक दरबारी शब्दावली तथा वर्ण्यविषय से ऐसा पता चलता है कि इन कवियों के सामने प्राचीन शासन-व्यवस्था की अपेक्षा तत्कालीन मुस्लिम-शासकों के दरबार का चित्र अधिक स्पष्ट रूप से सामने था। जहाँ पर दरबार में यदि देशी मुसलमान दरबारी सभासद होते थे तो विदेशी भी दरबार में संमान से बुलाए जाते थे। इसके साथ-साथ अनेक हिंदू दरबारी अधिकारी भी होते थे जिनमें सभी जातियों के प्रतिनिधि होते थे। इतिहास साक्षी है कि महमूद ग़ज़नवी की फ़ौज का कमाण्डर भी हिंदू (तिलक नामी) था और शासन व्यवस्था में भी ग़ैर मुस्लिम अधिकारी थे।[१]

जाति-पाँत कोउ पूछत नाही श्रीपति के 'दरबार'।[२]

दानलीला प्रसंग में तत्कालीन शासन व्यवस्था से प्रभावित एक बड़ा ही रोचक उदाहरण दरबार के विषय में मिलता है। सूरदास ने दिखाया है कि गोपियों से दूध दही, माखन आदि का दान उगाहने वाले कृष्ण को शक्तिशाली शासन का भय दिखाती हुई गोपियाँ जब कहती है कि इस प्रकार हमारा मार्ग न रोको क्या तुम नहीं जानते कि राज्य कंस का है[३] तो उत्तर में कृष्ण से सूरदास कहलाते हैं कि जाकर कंस से फ़रयाद करो कि वह हमें अपने हुज़ूर में बुला ले यानी दरबार में बुलाकर दंड दे ले।

जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।
दधि माखन घृत लेत छुड़ाए, आजु 'हज़ूर' बुलावहु।[४]

इस प्रकार का वर्णन और फिर हुज़ूर शब्द का प्रयोग मुस्लिम दरबार के प्रभाव का सूचक मालूम पड़ता है।

यह बात तो ठीक है ही कि हिंदी-साहित्य में वर्णित राज्य दरबार संबंधी वर्णन में प्राचीन भारतीय शासन-व्यवस्था का चित्रण हुआ है और मुग़ल शासकों ने हिंदोस्तानी शासन व्यवस्था में स्थानीय आदर्शों को भी अपनाया किंतु ग़ज़नी और ग़ौर के दरबारी आदाब जो ईरानी सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित थे उनको भी भारतीय दरबारों में अपनाया गया और दमिश्क़ तथा बग़दादी ख़िलाफ़त से भी इन मुस्लिम शासकों ने शासन व्यवस्था में बहुत कुछ लिया है।[५] इसीलिए आलोच्यकालीन हिंदी साहित्य में जो राजनीतिक जीवन संबंधी चित्र मिलता है उसमें इन हिंदी कवियों ने अरबी फ़ारसी शब्दावली के माध्यम से भी तत्कालीन मुस्लिम शासनव्यवस्था का

१. महमूद ग़ज़नवी, अलीबहादुर खां, पृ० २०३
२. सूरसागर, १-२३१
३. नाहिन राज कंस को जानत, मारग रोकत फिरत पराए। सूरसागर, १५१२
४. क. सूर सागर, १५१३
ख. कहिहौ जाय 'रायजू' के आगे करिहै और सौ और। परमान्ददास, १९८
५. तमद्दुनी-जलवे, पृ० १

चित्रण किया है । यहाँ पर सुल्तान या बादशाह के महल तथा उसके सेवकों के नाम दिये जाते हैं ।

दरबान

महल या राजमहल और राज सभा के द्वार पर रक्षार्थ खड़े किये गए व्यक्ति को दरबान कहा जाता था और उसके हाथ में हथियार या छड़ी होती थी । शब्द 'छड़ीदार' में दार प्रत्यय फ़ारसी का है । असल शब्द 'चोबदार' है जिसका हिंदी में छड़ीदार प्रयोग किया गया है । सूर के अतिरिक्त नानक ने परमात्मा के दरबार का दरबान बनना चाहा है ।

पौरी-पाट टूटि परे भागं 'दरबाना ।[1]

दरि सेवक 'दरबानु' दरदु तूं जाणही । भगित तेरी है रानु दरदु गवाही ।[2]

गुलाम—

सेवक आमतौर पर उस काल में जरखरीद[3] (क्रीतदास) होते थे और उन्हें गुलाम[4] कहा जाता था जो शासक का हुकुम[5] मानते थे किंतु मुस्लिम शासक गुलामों के साथ भी इस्लामी मुसावात (बराबरी) का बरताव करते थे यहाँ तक कि गुलाम-खानदान ने भी शासन किया उनसे किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखा जाता था । तुलसी ने भी इसे अनुभव करके राम का गुलाम बनना चाहा—

साह ही को गोत, गोत होत है 'गुलाम को ।[6]

राम बोला नाम हौं गुलाम राम साहि को ।[7]

---

१. क. 'छरीदार' बैराग बिनोदी झिरकि बाहिरै कीन्हौं । सूरसागर, १-४०
   ख. सूरसागर, ६-१३६

२. नानक-वाणी, पृ० ३०६

३. दादू दीवान तेरा, 'जरखरीद' घर के हैं । दादू-बानी, भाग २, पृ० १६७

४. क. कोऊ कहै राम को गुलाम खरो-खूब है । कवितावली, ७।१०८
   ख. सुभाव समुझत मन मुदित 'गुलाम' को । कवितावली, ७।१४
   ग. काम रिपु राम के 'गुलामनि' को काम तरु । कवितावली, ७।१६४
   घ. तुलसी सरनाम गुलाम है राम को । कवितावली, ७।१०६
   ङ. विषय सेती भयो आजिज कह मलूक गुलाम । मलूक-बानी, पृ० ५
   च. माया के 'गुलाम', गीदी क्या जानें बंदगी । मलूक-बानी, पृ० ११

५. जब ही भेजे तबहि बुलावै । 'हुकुम' भया कोइ रहन न पावे । मलूक-बानी, पृ० १३

६. कवितावली, ७।१०७

७. कवितावली, ७।१००

तुलसी के पद में शब्द शाह (साह दो बार है) और गुलाम तथा समभाव एक ओर तो राम के प्रति अगाध श्रद्धा एवं भक्ति के सूचक हैं दूसरी ओर तत्कालीन शासन-व्यवस्था का संपर्क भी है और ऐसा ही सूर के उदाहरण में है यद्यपि सूर को सख्यभाव की भक्ति पसंद थी—

सब कोउ कहत 'गुलाम' स्याम कौ सुनत सिरात हिये[१]

सूर है नंद-नंद जू को लयो मोल 'गुलाम' ।[२]

खवास—

शाहीमहल के वह निजी दास, दासी जो बादशाह के पास एकांत में आते जाते थे, खवास कहलाते थे (यह अरबी भाषा का शब्द है) तथा मुस्लिम शासकों के निजी सेवकों में एक प्रमुख स्थान रखते थे । सूर के विनय के पदों में तथा कंस-दरबार वर्णन में इसका प्रयोग किया गया है, शंकर को भी खवासी करते बताया गया है—

कहि 'खवास' कौं सैन दै सिर-पाव मंगायौ ।[३]

इन्द्रादि की कौन चलावै संकर करत 'खवासी'[४]

नक़ीब—

नक़ीब अरबी भाषा का शब्द है । बादशाह के निजी सेवकों में नक़ीब का भी एक ओहदा था जो बड़े ओहदों की अपेक्षा तो छोटा होता था किंतु शासक का नैकट्य प्राप्त होने के कारण बड़ा समझा जाता था । नक़ीब जनता को शाही फरमान पढ़कर सुनाते थे तथा शाही सवारी के आगे आगे डिम डिम घोष स्वर में घोषणा करते भी चलते थे ।[५] सूरदास[६] तथा तुलसीदास ने कोयल की ध्वनि नक़ीब की आवाज़ के समान बताकर अलंकरण की दृष्टि से भी अच्छा प्रयोग किया है ।

बोलत पिक 'नक़ीब' गरजनि मिस मानहु फिरत दोहाई ।[७]

---

१. सूरसागर, १-१७१

२. साहित्य-लहरी, ११८

३. क. सूर-सागर, २४७६

ख. मोदी लोभ 'खवास' मोह के, द्वारपाल अहंकार । सूर-सागर, १-१४१

४. सूर-सागर, ३०८९

५. इब्ने बतूता, जिल्द ३, पृ० २२८-२३२

६. अपजस अति 'नकीब' कहि टेरयौ, सब सिर आयसु मान्यौ ।

सूर-सागर, १४१

७. श्रीकृष्ण गीतावली, ३२

यह कर्मचारी अपने शासक को हुजूर[1] कहते थे तथा क्योंकि वह इन्हें इनके कामों से प्रसन्न होकर बख़शिश[2] देते थे इसलिए भी उमर-दराज़ी (दीर्घायु) के लिए कामना करते थे।

'उमरि दराज' महाराज तेरी चाहिए।[3]

यहां पर तुलसी जैसा संत यदि राम को उमर दराज़ी की दुआ आराध्य देव के नाते दे रहा है तो आश्चर्य की बात है। यह तो दरबारी आदाब ही है।

वज़ीर—

शासन-प्रबंध में सहयोग देने के लिए मुस्लिम दौर के भारतीय दरबार में वज़ीर हुआ करते थे। वज़ीर[4] अरबी भाषा का शब्द है जो अमात्य, मंत्री के लिए आता है। हिंदी के सूफ़ी कवियों ने शासक के लिए बादशाह, सुलतान आदि शब्दों का तो प्रयोग किया है किंतु वज़ीर के लिए देशी शब्द ही लिये हैं। सूर-सागर आदि में इसका उल्लेख है। जैसे मंत्री की सलाह शासक को शासन व्यवस्था में बहुत सहायता देती है, किंतु कुमति से अनर्थ भी हो सकता है—

पाप 'उजीर' कह्यौ सोइ मान्यौ, धर्म-सुधन लुट्यौ।[5]

क़ाजी—

क़ाजी अरबी शब्द है। इसका काम मीर अदल और मुफ़ती की सहायता से न्याय करना था।[6] इसके फ़ैसले की अपील भी हो सकती थी।[7] मुस्लिम काल में न्यायाधीश को ही क़ाज़ी कहते थे किंतु बाद में निकाह पढ़ाना (व्याह) काम ही रह गया था। हिंदी कवियों ने इसके प्रयोग इस प्रकार किये हैं—

---

१. दधि माखन घृत लेत छुड़ाए, आजु 'हज़ूर' बुलावहु। सूर-सागर, १५१३

२. क. कमल जब तें उरग-पीठि ल्याये सुने, वहै 'बकसीस' अब उनहिं देहौं।
सूर-सागर, २६३०

ख. नाचै फूल्यौ आंगनाइ, सूर 'बखसीस' पाई, माथे कै चढ़ाई लीनी लाल को बगा। सूर-सागर १०-३६

३. कवितावली, ७।७

४. विज़ारत एवं दीवान के विवरण के लिए देखिये—'सिराज अफ़ीफ़, पृ॰ ४१६-४२०

५. सूर-सागर, १-६४ तथा ४१, १४४

६. आईने अकबरी, भाग १, जिल्द १, पृ० ५७५

७. मुस्लिम सक़ाफ़त, पृ० १८३

'काजी' होइ कै बहै 'निआइ' । फेरे तसबी करे खुदाइ ।[1]
'सोइ 'काजी' जिनि आपु तजिआ इकु नामु किआ आधारो[2]
'काजी' सो जो काय विचारे। [3]

नानक जी निकाह (व्याह) पढ़ाने वाले क़ाजी से भी परिचित मालूम होते है और बाम्हन से भी—

'काजी' वामण की गलि थकी 'अगदु' पड़ै सैतानु वे लालो ।[4]

इस प्रकार निम्न उदाहरणों में नानक, दादू, कबीर, सूर[5] आदि अनेक कवियों ने क़ाज़ी संबंधी विचार व्यक्ति किये हैं जो मुस्लिम संपर्क का परिणाम हैं।

---

१. क. नानक-वाणी, पृ० ५६२
ख. ता तू मुला ता तू 'काजी' जानहि नामु खुदाइ ।
नानक-वाणी, पृ० १२३
ग. 'काजी' है आप हिसाब के लेखै ॥
मलूक-बानी, पृ० २७
घ. 'काजी' सेख भेख फकीरा । बड़े कहावहि हउमै तनि पीरा ॥
नानक-वाणी, पृ० २३५

२. क. नानक-बाणी, पृ० १२७
ख. सो 'काजी' जाको काल न व्यापै । कबीर-ग्रंथावली, पृ० १०४
ग. पढ़ि ले 'काजी' बंग निवाजा । कबीर-ग्रंथावली, पृ० ८३
घ. 'काजी' कौन कतेब बषानै । कबीर-ग्रंथावली, पृ० ८३
ङ. 'काजी' सो जानैं रहिमान । कबीर-ग्रंथावली, पृ० १५५

३. (क) कबीर-ग्रंथावली, पृ० १५०
(ख) 'काजी' सो जो काया विचारै, तेल दीप मैं बाती जारै। कबीर-ग्रंथावली, पृ० १६६
(ग) 'काजी' कजा न जानही, कागद हाथि कतेब । दादू-बानी, भाग १, पृ० १३५
(घ) सोई 'काजी' मुल्ला सोई, सोइ मोमिन मुसलमान । दादू-बानी, भाग १, पृ० १४२
(ङ) 'काजी' पंडित बावरे, क्या लिखि बंध भार । दादू-बानी, भाग १, पृ० १७३

४. नानक-वाणी, पृ० ४३१

५. नेत्र शीर्षक पदों में सूर ने लिखा है—इन सौं तुम परतीति बढ़ावत, ये हैं अपने 'काजी' । सूरसागर २८७५ तथा २१४८,२८७४

दीवान

वज़ीरों का विभाग दीवाने विज़ारत कहलाता था[1] किंतु दीवान एक अधिकारी होता था जो केंद्र की ओर से सूबेदार को शासन में सलाह देता था।[2] यह वज़ीर का समकक्ष ही होता था तथा मालगुजारी एवं राजस्व की देख भाल करता था। सुंदरदास ने कोटपाल, शिकदार, 'दीवान' आदि का स्पष्ट उल्लेख किया है—

पाजी पेट काज 'कोटवाल' के अधीन होत
कोटवाल सो तौ 'शिकदार' आगे दीन है।
शिकदार 'दीवान' के पीछे लग्यो डोले,
पुनि 'दीवान' जाय बादशाह आगे लीन है॥
बादशाह कहे या खुदाय मुझे और देई।[3]

सूरदास ने ध्रुव के लिए तथा तुलसी, रैदास, दादू, ब्रह्म आदि कवियों ने इसका प्रयोग किया है।[4]

अमीर, उमरा, मीरखान, खान भी तत्कालीन उच्च अधिकारी हुआ करते थे—

केरे जान 'मीरखान' आवै दही छीनै।[5]
वार पार नहिं सूझै, लाखन 'उमर' 'अमीर'॥[6]

१-२. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० १५४, १८१
३. सुन्दर-विलास, पृ८ ३५
४. (क) मारे बागवान, ते पुकारत 'देवान' गे। कवितावली ५।३१
(ख) भक्त ध्रुव को अटल पदवी, राम के दीवान'—सूर-सागर १-२३५
(ग) सांचो 'दिवान' है री कमननयन। परमानंददास, ८८०
(घ) क्या ते खरचा तैं खाया, चल दरहाल 'दिवान' बुयाया। रैदास, पृ०२६
(ङ) खोटा गांठि न बांधिये, साहिब के दीवान।
दादू-बानी, भाग १, पृ० २१६
(च) दाम के काम को लीबो 'दिवान' सों काहु को लै करि काहु को दीवो।
अकबरी दरबार, पृ० ३५४
५. (क) दान लीला, पद ५
(ख) पटे हीके वग और 'खान' सुलतान है। सुंदर-विलास, पृ० ३७
(ग) टढी पाग टेढ़े चले लागे वीरे 'खान'
भाउ भगत स्यों काज न कछुए मेरो काम 'दीवान'।
कबीर-ग्रंथावली, पृ० २२४
६. जायसी-ग्रंथावली, पृ० २०४

'उमरा' मीर रहे जहं ताई। सबकी वांटि अलगै पाँई ॥[१]
गठ माथे होइ 'उमरा' भुमरा। तर भए देख पीर' औ 'उमरा' ॥[२]

अमीन-मुस्तौफ़ी-मोहरिल-जासूस

तत्कालीन मुस्लिम शासन व्यवस्था के लिए नियुक्त अन्य कर्मचारियों का भी हिंदी साहित्य में उल्लेख मिल जाता है। विस्तार भय के कारण उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। अमीन (अ०) प्रजा से राजकर (अमल) आदि जमा करता था[3] मुस्तौफ़ी (अ०) आय व्यय-परीक्षक कर्मचारी या हैड मुनीम, हैड एकाउन्टैन्ट।[४] मोहरिल या मोहर्रिर (अ०) मुंशी, लिपिक होता था।[५] जासूस (अ०) अधिकारियों को गुप्त बातों की सूचना देने वाला होता था।[६] तथा मुहासिब[७] (अ०) हिसाब किताब लेने वाला।

युद्ध तथा हथियार

यद्यपि प्राचीन भारत तथा महाभारतकालीन अध्ययन से पता चलता है कि युद्ध तथा अस्त्र-शस्त्रों के विषय में भारत ने बड़ी उन्नति कर ली थी। किंतु यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि मुसलमानों के भारत आगमन के समय तक भारत अपने कुछ प्राचीन आदर्शों को खो बैठा था। इधर मुसलमान अरब, तुर्की, ईरान,[८] अफ़ग़ानिस्थान तथा संसार के अन्य देशों से अनेक प्रकार के नये अनुभव प्राप्त कर चुके थे

---

१. जायसी-ग्रंथावली, पृ० २३३
२. जायसी-ग्रंथावली, पृ० २३५
३. (क) 'मुगल' एम्पायर इन इंडिया, पृ० ३१०
(ख) आईने अकबरी, पृ० ६
(ग) नैन 'अमीन' अधमिन कें बस, जहं को तहां छयौ। सूरसागर, १-६४
४. (क) मुस्लिम सक़ाफ़त, पृ० १५६
(ख) चित्र गुप्त होत 'मुस्तौफी,' सरन गहूं मैं काकी। सूर-सागर, १-१४३
५. 'मोहरिल' पांच साथ करि दीने, तिनकी बड़ी विपरीति। सूरसागर, १-४३
६. (क) ऊधौ मधुप 'जसूस' देखि गहौ द्रुट्यौ धीरज पानि। सूरसागर, ४२६७
(ख) तब लगि मदन गोपाल देखन कौ 'जासूस' गयो। परमानंददास, ४६२
७. सूर आप गुजरान 'मुहासिब' लै जवाब पहुचावै। सूरसागर, १-१४२
८. फिरदौसी के शाहनामें में युद्ध कला का विस्तृत विवरण मिलता है जिससे मुसलमानों ने प्रेरणा प्राप्त की होगी।
शेरूलअजम, शिब्ली, भाग ४, पृ० २२६

और युद्ध कला [1] एवं अस्त्र शस्त्रों में भी उसी प्रकार उन्नत थे जिस प्रकार धर्म तथा अन्य सामाजिक क्षेत्रों में।

'अन्नासो अला दीनेमुलेकेहिम्' अर्थात् यथा राजा तथा प्रजा के सिद्धांत के अनुसार हिंदी साहित्य में मुस्लिम संपर्क के परिणामस्वरूप हिंदी कवियों ने अपनी उन प्राचीन पौराणिक कथाओं (राम-कृष्ण) के वर्णन में मुस्लिम दौर की अरबी, फ़ारसी तुर्की आदि शब्दावली के माध्यम फ़ौज, लश्कर तथा हथियारों का वर्णन किया है जिससे तत्कालीन सामासिक संस्कृति का सुंदर चित्र मिलता है।

इनके अतिरिक्त एक बात और कहनी है कि चाहे सूफ़ी कवियों ने युद्ध-वर्णन किया हो (जैसे पद्मावत में रत्नसेन, अलाउद्दीन युद्ध) या खुमान रासो तथा पृथ्वीराज रासो (चंद, मु० ग़ोरी) का युद्ध वर्णन हो, ये सब वर्णन मुस्लिम संपर्क का परिणाम अवश्य हैं। न युद्ध होता न संपर्क होता न वर्णन हो पाता।

दुश्मन

हिंदी में यत्र तत्र प्रचलित तत्संबंधी शब्दों को देखा जाएगा जिनका हिंदी कवियों ने अपने दृष्टिकोणानुसार प्रयोग किया है पर युद्धकला की जानकारी का इससे अवश्य पता चलता है। फ़ारसी में शत्रु या रिपु को दुश्मन कहते हैं। मीरा ने इसका प्रयोग किया है—

साजनियां 'दुसमण' होया बैठ्या सबनें लगूं कड़ी।[2]

कूच मुक़ाम

कूच मुक़ाम फ़ारसी में सेना के प्रस्थान स्थल को भी कहते हैं तथा संसार की नश्वरता अर्थों में भी कबीर और तुलसी ने इसका प्रयोग किया है—

तुलसी जग जानियत नाम सोच न 'कूच मुकाम' को।[3]
'कूच मुकाम' जोग के घर मैं, कछू एक दिवस खटांना।[4]

बैरक

विजय पताका या झंडे को तुर्की भाषा में बैरक कहते हैं। तुलसी ने इसका प्रयोग किया है—

दीजै भगति बांह 'बैरक' ज्यों सुबक बसै अब खरी -[5]
घन-घावन, बगपांति पटो सिर, 'बैरख' तड़ित सोहाई।

---

१. मुस्लिम युद्ध कला के लिए देखिये—मुस्लिम सक़ाफ़त हिंदोस्तान में, पृ० १२६
२. मीरा, पृ० ६६
३. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, पृ० ४४६ (विनयपत्रिका १५६)
४. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १४७
५. विनयपत्रिका, छंद १४५

बोलत पिक 'नकीब' गरजनि मिस मानहूं फिरति दोहाई ॥[१]

फ़ौज

चमू या सेना को अरबी में फ़ौज कहते हैं। हिंदी में इसका निरूपण इस प्रकार मिलता है—

'फ़ौज' वही सो रहै तैयार औ मौज उही सो मगाय कै दीजै।[२]
'तोप विना 'फौज' कहा हस्ती विन हौदा जैसे द्रव्व बिन देवे
दान देव कर मानिये।[३]
मागध देस देस ते आयो, साजे 'फौज' अपार।[४]

फ़ौज को ही फ़ारसी में लश्कर कहते हैं—

कई लाख तुम 'लसकर' जोड़े, केते घोड़े हाथी[५]
घर्यो आइ कुटुम-'लसकर' मैं जम अहदी पठयौ[६]

फ़ौज के सामान्यतः दो प्रकार होते थे। फ़ारसी-शब्द पियादा या पयादः पैदल चलने वाली सेना के लिए प्रयुक्त होता था तथा फ़ारसी-शब्द सवार आरूढ़ (अश्वारोही अथवा घुड़सवार) के लिए। सवार घोड़ों या हाथी पर होते थे। व्यापार तथा युद्ध सामग्री लाने ले जाने के लिए अरबी शब्द जहाज (यान) भी हिंदी में मिलता है। यहाँ पर इनकी चर्चा की जाती है। पयादे सामान्य पैदल के अर्थ में तुलसी ने इस प्रकार प्रयोग किया है तथा सूर सागर में भी इसका प्रयोग हुआ है—

१. क. कृष्ण गीतावली, छंद ३२, तुलसी-ग्रंथावली भाग २, पृ० ३६६
ख. बैरख बांह बसाइये पै तुलसी—घरू व्याध अजामिल खेरे। कवितावली, ७,६२
ग. अंचल उड़त बखानियै, मन 'बैरख' फहराई। सूर सागर, २८६२
घ. 'बैरख' फरहरात कलसन पर अरुन हरित बहुरंग। परमानन्ददास, ७४३
२. क. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (टोडरमल), पृ० ५३
ख. अस कहि सम्मुख 'फौज' रेंगाई। राम चरितमानस, ६।७६।६
ग. निधरक भयो चल्यो व्रज आवत, फौज पति मैन—सूर-सागर, ३३०४
३. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ४३३
४. क. सूर सारावली, ६०४
ख. मारि 'फौज' सब्रही मागध की जरासंध उर बारे—सूर-सारावली, ६०४
५. क. मलूकदास की बानी, पृ० १
ख. कई बार इन पैड़े, लस्कर लूटा मेरा। मलूकदास की बानी, पृ० १०
ग. लख 'लस्कर' लख बाजे नेजे लख उठि करहि सलामु।नानक-वाणी, पृ० २७०
६. सूर सागर, १-६४

तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें ।[1]

सवार या असवार

अब तुम होउ तुरी 'असवारा' । सेवक काज जो चहो संवारा ।[2]

हम ही अस्व हम ही 'असवार' । हमहि दास हमही सरदार ।[3]

अरबी घोड़े

अरबी घोड़े विख्यात होते ही थे । मुहम्मद बिन क़ासिम की फ़ौज के साथ भी शामी एराक़ी, नाना प्रकार के घोड़े थे ।[4] आईने अकबरी में भी चौगान खेल के साथ इसकी चर्चा की गई है ।[5] जायसी ने बादशाह चढ़ाई खण्ड में इनका उल्लेख किया है

चले पंथ बेसर सुलतानी । तीख तुरंग बाँक कनकानी ।।

कारे 'कुमइत' 'लील' सुपेते । खिंग, कुरंग बीज, दुर केते ।।

'अबलक' 'अरबी' लखि 'सिराजी' । चौघरी चाल, समंद भल 'ताजी' ।।

'किरमिज' 'नुकरा' जरदे, भले ।.........।[6]

घोड़ों की जीन[7], लगाम[8], चाबुक[9] का भी उल्लेख मिल जाता है जो मुस्लिम

---

१. क. रामचरितमानस, २ । २२१ । ३

ख. चलब पयादेहि बिनु पद त्राना । रामचरितमानस, २ । ६२ । ३

ग. पाँयन तौ पनही न, पयादेहि क्यों चलि हैं सकुचात हिये हैं । कवितावली, २।२०

२. क. हंसजवाहर, पृ० १४४

ख. राते कवच बरात सजि, खरनि भए 'असवार' । सूर-सागर, २९१४

३. मलूकबानी, पृ० २३ ४. मुस्लिम सक़ाफ़त हिन्दोस्तान में, पृ० १२४

५. देखिये—इस अध्याय का 'मनो विनोद' (चौगान) शीर्षक

६. क. जायसी-ग्रंथावली, पृ० १७, २२०-२२२

ख. 'ताजी' 'तुरकी' कछुक 'इराकी' गरभी जोधर कनक 'बुलाकी' ।

हंसजवाहर, पृ० २४१

ग. ताजी तुरकी सुइना रूपा कपड़ केरे भारा । नानक-वाणी, पृ० २१०

७. क. रचि रुचि 'जीन' तुरग तिन्ह साजे । रामचरितमानस, १ । २९८ ।२

ख. 'जीन जरित जराव' पाखरि लगी नव मुक्ता लरी । सूरसागर, ४१८६

ग. 'भीन' जराइ जु छगमगाई रहि, दखत दृष्टि भ्रमाई । सूर-सागर, ४७१४

घ. तजि द्वारिका घोप गमन को कंचन 'जीन पलाने बाजि । परमानंद कॉ० ११९२

८. बैल को नाथ घोड़े को 'लगाम' स हस्ति कूं अंकुस से कसिये । अकबरी दरबार के हिंदी कवि० (गंग) पृ० ४३५

९. व्याधि कूं तुरंग कूं 'चाबुक' चौपग कं त्रख दंड दियो है । अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ४३५

दौर में आया था।

जहाज़—

जहाज़ अरबी भाषा का शब्द है, तत्कालीन जलपोत से अभिप्राय है। इसका भी यहीं उल्लेख किया जाता है। इसे संत कवियों ने आध्यात्मिक रूपकों के अर्थों में अधिक प्रयुक्त किया है किंतु जहाज़ संबंधी जानकारी का पता अवश्य चलता है—

नाव 'जिहाज' खेवइया साधू, उतरे दास कबीरा।[1]
नख-सिख लौ मेरी यह देही है पाप की 'जहाज'।
पाछैं भयौ न आगे ह्वै है, सब पतितनि सिरताज ॥[2]
सहित समाज महाराज सो 'जहाज' राज।[3]

ज़िरिह बक़तर—

दो दलों के बीच जब युद्ध हुआ करता था तब दोनों दल हथियारों के आघातों से बचने के लिए कवच तथा ढाल आदि का प्रयोग करते थे। मुस्लिम-संपर्क से आया हुआ शुद्ध फ़ारसी शब्द 'जिरिह वक्तर' है[4] जो हिंदी में बख़तर के नाम से भी मिलता है। फ़ौजी इस लोहे के जाल के बने हुए कवच को पहना करते थे। क़ासिम शाह ने युद्ध वर्णन में इसका उल्लेख किया है—

निकसी कटक जो 'बखतर' डारे स्वर्ग चढ़े तन तीरन मारे।[5]
'बखतर' फोड़ पेट भै पारा निकसी अंत रक्त बहि धारा।[6]

सिपर—

'सिपर' फ़ारसी में तलवार के वार को रोकने वाली ढाल को कहते हैं। तुलसीदास के काव्य के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने मुस्लिम संपर्क से आए हुए हथियारों का भी वर्णन किया है। निम्न उदाहरणों में

---

१. कबीर-ग्रंथावली, पृ० ११४
२. क. सूर-सागर, १-३६
ख. जैसे उड़ि 'जहाज' को पंछी फिरि 'जहाज' पै आवै। सूर-सागर, १—१६८
ग. बुधि-बल वचन 'जहाज' बाँह गहि- सूर-सागर, १३३७
३. क. कवितावली, ६।२५
ख. मन्हूँ वारिनिधि बूड़ 'जहाजू'। रामचरितमानस, २।८६।२
४. तुंड कटि जोसन 'जिरह' कटि नीमा जीन काटि जिमी आन ठहकी।
अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० २२८
५. हंस-जवाहर, पृ० २४१
६. हंस-जवाहर, पृ० २५५

उन्होंने न केवल सीपर का ही प्रयोग किया है अपितु हीपर का अनुप्रास मिलाने के लिए फ़ारसी शब्द 'सिपर' का सीपर कर लिया है—

लागति साँगि बिभीषन हीपर 'सीपर' आपु भये हैं।[1]

तीर—

तीर फ़ारसी का शब्द है जो शर, बाण के लिए प्रयुक्त होता है। इसके अनेक प्रकार बताए गए हैं। तीर का ही एक प्रकार पैकान (पैकाम) भी होता है[2] हिंदी कवि इससे परिचित हैं—

देह ही कूँ 'तीर' लगै, देह हीकूँ 'तोप' लगै, देह कूँ कृपान लगै देह ही कूँघाव रो।[3]
मचयो घमसान तहाँ तोप 'तीर' बान चले मंडि बलवान किरिवानी कोपि गहकी।[4]
पिरम 'पैकामु' न दिकलै लाइआ तिनि सुजाणि॥[5]

कमान—

धनुष, धनु को फ़ारसी में कमान कहते हैं जो तीर छोड़ने के लिए प्रयुक्त होती है। कमानों के कई प्रकार बताए गए। जैसे—चाची, ख्वारज्मी, गज़नीची आदि।[6] सूर सागर तथा तुलसी के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

जलद 'कमान' वारि दारु भरि तड़ित पलीता देन।
गरजन अरु तड़पन मनु गोला पहरक मैं गठ लेत।[7]
जीभ 'कमान' बचन सर नाना।[8]

---

१. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, (गीतावली ६।५), पृ० ३३०
२. पृथ्वीराज रासा (उर्दू), पृ० ३५२
३. क. सुंदर-विलास, पृ० ८३
ख. तीर तीर तुलसी का सुहाई। वृन्द वृन्द वहु मुनिन्ह लमाई।
रामचरितमानस ७,१९
ग. 'तीर' ते उतरि जस कह्यो चहै, गुन गननि जयो है। गीतावली, ६।११
४. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (गंग), पृ० २२८
५. क. नानक-वाणी, पृ० ८०८
ख. 'नेजे' वाजे तखति सलामु। अधकी तसना 'विआपैकामु'। नानक-वाणी, पृ०२३२
६. पृथ्वीराज रासा (उर्दू), ह ३५५
७. क. सूर-सागर, ४२६७
ख. कुबुधि-'कमान' चढ़ाइ कोप करि वुधि-तरकस रितयौ। सूर-सागर १६४
ग. मंदन बान कमान ल्यायौ करषि कोप चढ़ाय। साहित्य-लहरी, ३२
८. रामचरितमानस, २।४१।१

तरकश—

तीर रखने के लम्बे खोल को जो कमर में लटकाया जाता है, फ़ारसी में तरकश कहते हैं। तूणीर, निषग, त्रोण भी इसके पर्याय हैं। इसका प्रयोग भी मिलता है जिनका भाषा के अलंकरण की दृष्टि से नवीन प्रयोग है—

कुबुधि कमान चढ़ाइ कोप करि बुधि-'तरकस' रितयो।[१]
कर में धनुष कमर में 'तरकश', सावज घेरे बारम्बार।[२]
तन 'तरकस' से जात है, स्वास सरीखे तीर।

नानक ने आध्यात्म रूपक के तौर पर शस्त्रास्त्रों का प्रयोग किया है, अच्छे गुणों की ओर प्रेरित करते हैं—

'तरकस' 'तीर' 'कमाण' सांग 'तेग़बद' गुण धातु।
वाजा 'नेजा' पति सिउ परगटु करमु तेरा मेरी जाति॥[३]

नेज़ा

नेज़ा तुर्कों और अरबों का एक विशेष हथियार है। लोहे के भाले के अतिरिक्त ईराक़ और ख़ुरासान में बेद (बेंत) का नेजा भी बनता था। नानक जी ने नेज़े का भी प्रयोग किया है। रसखान ने भी कहा है—

'नेजा' भाला, तीर कोउ, कहत अनोखी ठार।[४]

तेग़-शमशेर

प्रहरण अस्त्रों में मुस्लिम-संस्कृति से आए हुए ईरानी तेग़ तथा शमशेर का भी हिंदी में वर्णन है। तेग़े रूमी, तेग़ यमानी, तेग़े सुलैमानी, तेग़े शामी मशहूर हैं—[५]

---

१. सूर-सागर, १.६४
२. क. सुंदर-विलास, पृ० ७७
   ख. तुलसी-सतसई, १२०
   ग. धरे धनु, सर कर, कसे करि तरकसी। गीतावली, १। ४०
३. नानक-वाणी, पृ० १०६
४. क. प्रेमवाटिका, छंद २६
   ख. 'नेजे' वाजे तखति सलामु। अधकी तृसना विआपै कामु।
   नानक-वाणी, पृ० २३२
   ग. नखनि छत घात 'नेजा' सम्हारै—सूर-सागर, २१२६
   घ. लख लसकर लख वाजे 'नेजे' लख उठि करहि सलामु। नानक-वाणी, पृ० २७०
५. पृथ्वीराज रासा (उर्दू), पृ० ३५६

सूल सुलाकौं सौ सहं, तेग तन मारै।[1]
कहा सु तेगबंद गाडेरड़ि कहा सुताल कवाई ॥[2]
तन 'ताजी' असवार लिये 'समशेर' सांर[3]
पाव सेर लोह ते हिलाई सारी बादसाहीं
होतो 'समसेर' तो छिनाय लेतो आगरो।[4]

शमशेर और तेग़ तो समाज में इतने प्रचलित हुए कि प्रायः वीरों के नाम ही इस पर रखे जाने लगे। जैसे—गुरु तेग़ बहादुर, शमशेर बहादुर शमशेर सिंह आदि।

आतशीं हथियार (अग्नि अस्त्र)

बारूद

अनेक विद्वान् इस बात पर एक मत हैं कि बारूद (दारू) वाले हथियार जैसे बंदूक़ तथा तोप एवं तोपख़ाना और मिनजिनीख़ जैसे अग्नि अस्त्र जो मुसलमान अपने साथ लाए वह उस समय हिंदोस्तानियों के पास न थे।[5] यह बात अलग है कि महाभारत काल या किसी काल में हिंदोस्तानी इन जैसे किन्हीं हथियारों से परिचित हों। किंतु यह बात निश्चित है कि मध्यकाल में मुसलमानों के आगमन के साथ इस प्रकार के हथियार भारत में आए। हिंदी में पृथ्वीराज रासो तक में तोप, तुपक, गोलों तथा गोलियों की आवाज सुनाई देती है[6] जो मुस्लिम संपर्क का परिणाम। फ़ारसी में आग को आतिश[7] कहते हैं तथा श्वेतक्षार या अग्नि चूर्ण को बारूद कहा जाता है। हिंदी में इसका दारू के नाम से उल्लेख किया गया है—

काल तोपची तुपक महि, 'दारू' अन्य कराल।[8]
जलद कमान वारि 'दारू' भरि, तड़ित पलीता देत।[9]

फ़तीला

तुर्की भाषा का शब्द फ़तीला अरबी में भी प्रयुक्त हुआ है, किंतु हिंदी में आते आते

१. दादू-बानी, भाग २, पृ० ३४
२. नानक-वाणी, पृ० २९३
३. सुंदर-विलास, पृ० ११३
४. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ४४७
५. पृथ्वीराज रासा (उर्दू), पृ० २८७
६. पृथ्वीराज रासा (उर्दू), पृ० २७९
७. लोभ भंडार औ वदिये रानी। 'आतिश' सेज छूट दरवानी। हंसजवाह, पृ० २३२
८. दोहावली, ५१५
९. सूर-सागर, ४२९७

यह फलीता बन गया। गोला चलाने के लिए उसमें एक बारूद युक्त डोरा या फ़ीता लगा होता है। उसे आग लगाने से वह गोला या अस्त्र छूट जाता है। हिंदी में तुलसी आदि कवियों ने इसका खूब प्रयोग किया है—

पाप 'पलीता' कठिन गुरु गोला पुहमी पाल।[1]
जलद कमान बारि 'दारू' भरि तड़ित 'फलीता' देत।
गरजन अरु तड़पन मनु पहरक मैं गठ लेत॥[2]

कबीर ने एक ही पलीते से काम क्रोध तथा प्रेम को समझाने का प्रयास किया है—

काम क्रोध दोऊ भया 'पलीता', तहां जोगणी जागी।[3]
प्रेम 'पलीता' सुरति नालि करि, गोला ग्यांन चलाया।
ब्रह्म अग्नि ले दिया 'पलीता', एकै चोट ढहाया॥[4]

तोप

तुर्की भाषा का शब्द तुफ़ंग या तुफक छोटी तोप के लिए आता है। मुसलमान (बाबर) पहली बार भारत में तोपखाना लाए थे। हिंदी में भी प्रचलित हुआ—

काल तोपची 'तुपक' महि, दारू-अनय कराल।[5]
ओन्ही 'तुपक' तारित चलाइ ओन्ही हसति चिड़ाई।[6]

गोला फेंकने वाले यन्त्र को तुर्की भाषा में तोप कहते हैं। अकबरी दरबार के कवि गंग ने रहीम की वीरता के प्रसंग में यह कहा है—

मचयो घमसान तहां 'तोप' तीर बान चले मंडि बलवान किरिवान।[7]

---

१. क. दोहावली, ५१५
ख. उहैं नावं करता कर लेऊ। पढ़ौ 'पलीता' घूआ देऊ॥ हंसजवाहर, पृ० ३४३
२. सूर-सागर, ४२६७
३. क. कबीर-ग्रंथावली, पृ० ८५
ख. कामं क्रोध दोइ किया वलीता, छूटि गई संसारी। कबीर-ग्रंथावली, पृ० ८६
४. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १५६
५. दोहावली, ५१५
६. क. नानक-वाणी, पृ० २६४
ख. कोटिन 'तुपक' करोरन बाना सहसन अजगर चलै कमाना।
हंसजवाहर, पृ० २४१
ग. छूटत 'पन्दूक' बान मचै जहां घमसान। सुंदर-विलास, पृ० ११३
७. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ४२८

'तोपें' बिना फौज कहा हस्ती बिन हौदा जैसे द्रव्य बिन देसे दान देवकर मानिये ।[1]

अमीर खुसरो के नाम से भी इसी यंत्र की एक पहेली द्रष्टव्य है ।[2] इसे बंदूक भी कह सकते हैं ।

बंदूक तथा तोप,[3] तुफंग, फलीता आदि अग्नियन्त्रों का हिंदी-साहित्य में वर्णन निश्चित रूप से मुस्लिम संपर्क से ही आया है और मुसलमानों ने ही इस प्रकार के अस्त्रों का भारत में प्रचलन किया था । आईने अकबरी तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रंथ इसकी पुष्टि करते हैं ।

राजनैतिक जीवन संबंधी अन्य चित्रण

हिंदी के अनेक कवियों के यत्र-तत्र स्फुट प्रसंगों से एकत्रित प्रांतीय, ग्राम तथा न्याय व्यवस्था संबंधी कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं जो दीर्घकालीन मुस्लिम-शासन के कारण जन-जीवन में घर कर गए थे । कृषि तथा ग्राम-प्रबंध-संबंधी जीवन में अरबी फ़ारसी के माध्यम से आई हुई प्राविधिक शब्दावली का हिंदी-साहित्य में भी चित्रण मिलता है जो जन सामान्य के मुस्लिम संपर्क का परिणाम मालूम होता है ।

मुस्लिम काल में शासन-व्यवस्था की दृष्टि से सूबों (प्रांतों) शिक़ों में विभाजित किया गया था तथा प्रत्येक शिक़ का हाकिम शिक़दार कहलाता था ।[4] प्रायः बड़े प्रांत ही शिक़ों में विभाजित किये जाते थे जैसे मुहम्मद तुग़लक ने दक्कन को चार शिक़ों में विभाजित किया था ।[5] सूर ने इसका प्रयोग किया है ।[6] कई गांवों का भूभाग परगना (फ़ा०) कहलाता था [7] हिंदी में इसका प्रयोग भी मिलता है—

ब्रज 'परगन' 'सिकदार' महर तू ताकी करत नन्हाई ।[8]

---

१. क. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ४३३

ख. लोभ सों सुभट साधु तोप मूं गिराय दियो । सुन्दर-विलास, पृ० ११४

२. क. एक बार वह औषद खाए । जिस पर थूके वह मर जाए ॥

उसका पी जब छाती लाय । अन्ध नहि काना हो जाए ।

ख़ुसरो की हिंदी कविता, पृ० २६

ख. तोप के रूपक के लिए देखिये (पद्मावत), जायसी-ग्रंथावली, पृ० २२५

३. आईने अकबरी, भाग १, आईन ३७, ३८, पृ० २०८-२०९

४-५. मुस्लिम सक़ाफ़त, पृ० १७५

६. सूर-सागर, ९४७

७. मुस्लिम सक़ाफ़त, पृ० १७६

८. सूर-सागर, १।३२९

जो भूमि किसी को राज्य की ओर से किसी विशेष सेवा के पुरस्कार में दी गयी हो उसे मुस्लम शासनव्यवस्था तथा फ़ारसी में जागीर कहते थे।[1] भू-संपति जागीर या जायदाद को अरबी में मिल्क कहते थे। सूर एवं तुलसी ने भी इसका प्रयोग किया है—

> यह ब्रज भुमि सकल सुर पति सों मदन 'मिलिक' करि पाई ॥
> घन धावन बगपाँति पटो सिर 'बैरख' तड़ित सोहाई।
> बोलत पिक 'नकीब' गरजनि, मिस मानहु फिरति दोहाई ॥[2]

यहां पर अरबी शब्द 'मिलिक' तुर्की बैरख तथा अरबी नक़ीब शब्दों का रूपक एवं उत्प्रेक्षा के रूप में प्रयोग एक ओर तो भाषा में अलंकरण की दृष्टि से सुन्दर प्रयोग है दूसरी ओर शासन व्यवस्था की जानकारी के सूचक हैं जो मुस्लिम-संपर्क तथा तुलसी की उदारता का परिणाम हैं।

लगान और कर के लिए तत्कालीन शब्द पोता (फ़ा०) है[3] और जमीन की नाप जोख के लिए मसाहत[4] (अ०) प्रयुक्त होता था। आय व्यय परीक्षक को मुहासिब[5] (अ०) कहा जाता था। जिस कापी मे हिसाब रखते थे वह वारिज[6] (फ़ा० अवारिजः) या वही कही जाती थी। हिसाब के कागज़ या रसीद को फरद (फ़ा० फ़र्द) या रुक़्क़ा (अ०) कहते थे।[7] जाली या कुछ का कुछ कर देने के लिए मुस्लिम काल में तग़ईर[8] (अ०) कहा जाता था। हिंदी में जहाँ तत्तकालीन मुस्लिम शासन व्यवस्था के अन्य अनेक उदाहरण मिलते है वहाँ उपरोक्त निरूपण भी मिलता है।

न्याय-संबंधी शासन-व्यवस्था में अदल (अ०)[9] दावा (अ०)[10] तथा ज़मानत

---

१. भाव भगति 'जागीरी' पाऊं, तीनों बातां सरसी। मीरा के पद, पृ० २०
२. क. कृष्ण-गीतावली, ३२
   ख. सूर-सागर, ३३२४
३. सूर-सागर, १-१४२
४. काया ग्राम 'मसाहत' करि कै। सूर-सागर, १-१४२
५. सूर आपु गुजरान 'मुसाहिब' लै जवाब पहुचावै। सूर-सागर, १-१४२
६. करि 'अवारजा' प्रेम प्रीति कौ, असल तहां खतियावै—सूर-सागर, १-१४२
७. बट्टा काटि कसूर भरम कौ, 'फुरद' तले लै डारै—सूर-सागर, १-१४२
८. सुनी 'तगीरी' बिसरि गई सुधि मो तजि भए नियारे। सूर-सागर, १-१४३
९. 'अदल' नियाव कीन जहं ताई सुखी भई सिगरी दुनियाई। हंसजवाहर, पृ० २५९
१०. क. 'दावा' किसही का नहीं बिन बिलाइति बड राज। कबीर-ग्रंथावली, पृ० ४६
    ख. दावै दारभण होत है, निर दावै निसंक। कबीर-ग्रंथावली, पृ० ४८

(अ०) प्रतिभूति आदि शब्दावली भी हिंदी कवियों ने प्रयोग की है।[1] जनसामान्य में तो शासन-व्यवस्था संबंधी जीवन-चित्रण की असंख्य बातें ज्यों की त्यों चली आ रही हैं। कवि हिंदी क्योंकि लोक कवि थे इसलिए उन्होंने भी मुस्लिम-संपर्क से पूरा लाभ उठाया है।

आलोच्यकालीन हिंदी-साहित्य में चित्रित राजनीतिक जीवन का जो परिचय ऊपर दिया गया है उसमें यह ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि भक्तिकालीन भक्त कवि दरबारी कवि नहीं थे और न ही वे तत्कालीन राजनीतिक जीवन-चित्रण में कोई विशेष रुचि ही रखते होंगे, फिर भी अपने आराध्यदेव कृष्ण और राम की जिन लीलाओं या क्रिया-कलापों का कृष्ण और राम-भक्ति-शाखा के कवियों या अन्य कवियों ने चित्रण किया है उसमें स्वाभाविक रूप से तत्कालीन मुस्लिम शासन-व्यवस्था का चित्र दिखाई देता है। इसका कारण मुस्लिम-संस्कृति की व्यापकता तथा हिंदी-कवियों की उदारता एवं सहज आदान-प्रदान के अतिरिक्त और क्या हो सकता है।

(२) आर्थिक जीवन चित्रण

हाट बाज़ार, विभिन्न व्यवसाय एवं व्यवसायी (तिजारत, पेशे और पेशावर)—

उद्योग धंधे कालक्रम के साथ आगे बढ़ते चलते हैं। आज के वैज्ञानिक आविष्कार के युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नाना प्रकार के उद्योग एवं यंत्रों का आविष्कार हो जाने से प्राचीन काल के उद्योगों एवं व्यवसायों से कोई तुलना नहीं की जा सकती। प्राचीन काल का भारत लघु उद्योगों में अपने आप में पूर्ण था और नाना प्रकार के व्यवसायी अपने काम में निपुण थे। वैदिक काल में जो वर्ण-व्यवस्था की गई थी उसका मूल आधार अर्थ शास्त्र के श्रम विभाजन के सिद्धांत के दृष्टिकोण को सामने रख कर किया गया होगा ताकि अपनी शारीरिक, मानसिक क्षमता एवं योग्यता के अनुसार लोग काम कर सकें। जो लोग विद्याध्ययन में निपुण हो सकते थे उन्हें ब्राह्मण वर्ग तथा बल पौरुष एवं युद्ध में निपुण व्यक्तियों को क्षत्री वर्ग, वाणिज्य-व्यवसाय के काम वालों को वैश्य तथा अन्य कामों के लिए जिसमें मानसिक एवं शारीरिक निपुणता का अधिक महत्व नहीं, शूद्र वर्ग बना दिया गया था। यह एक बड़ा वैज्ञानिक विभाजन था परंतु बाद में इस वर्ण-व्यवस्था ने विकराल रूप धारण कर लिया और बौद्धिक वर्ग (ब्राह्मणों) ने समाज पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया था।

मुसलमानों के भारत आगमन से पूर्व तथाकथित शूद्र जाति और घसियारा, तेली, धोबी, नाई, चमार, मछेरे, लुहार, लकड़हारे, धुनिये (जुलाहे) आदि व्यवसायी वर्ग, जो वास्तव में समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई थे, शूद्र मान कर उपेक्षित समझे

१. क. देह 'जमानति' लीन्ही—सूर-सागर, १-१९६
ख. धर्म 'जमानत' मिल्यो न चाहै, तातै ठाकुर लूटौ। सूर-सागर, १-१८५

जाने लगे। इस विषय में डा० सेन का मत विचारणीय है। 'ब्राह्मणों की सत्ता बड़ी कठोरावस्था तक पहुँच चुकी थी। ज्यों ज्यों लोग कुलों उपकुलों में अधिक बंटते गये, जात-पांत के बंधन भी कड़े होते गये। ब्राह्मण लोग एक ओर तो धर्म के उच्चादर्शों को प्रस्तुत करते थे और दूसरी ओर जाति-भेद के कारण मानव-मानव बहुत दूर होता जा रहा था।······उच्च वर्ग ने नीच जातियों के लिए ज्ञान के द्वार बंद कर दिये थे। उनसे अपने जीवन को बेहतर बनाने का अधिकार भी छिन चुका था।'[1]

मुस्लिम संपर्क के परिणाम से जो इन तथाकथित नीच जातियों पर प्रभाव पड़ा उस विषय में डा० सर विलियम हंटर का कथन है 'इन मछेरों, शिकारियों, दरियाई लुटेरों और नीच जाति के लोगों के लिए इस्लाम एक दैवीय वरदान बन कर आया। यह शासक वर्ग का धर्म था तथा इसके जोशीले प्रसारक उपेक्षित जनता के लिए एकेश्वरवाद तथा भाई चारे का संदेश लेकर आए थे। इस्लाम ने आम लोगों के दिलों में घर कर लिया। उसे स्वीकार करने वालों में बड़ी संख्या ग़रीब निम्न जातियों की थी······।[2]

ये दो उद्धरण इसलिए देने पड़े हैं कि हिंदी-साहित्य में व्यवसाय तथा व्यवसायी संबंधी वर्णन अरबी फ़ारसी बहुल है। हो सकता है कि ये पेशे भारत में पहले भी उन्नत रहे हों किंतु निम्न जातियों की उपेक्षा के कारण तत्संबंधी शब्दावली का भी भाषा विज्ञान की दृष्टि से अर्थापकर्ष हो गया था तब ही मुस्लिम संपर्क की शब्दावली का प्रचलन अधिक हो पाया है। या यह कारण भी हो सकता है कि मुस्लिम शासन काल में नागरिक जीवन औद्योगिक दृष्टि से भी उन्नत रहा होगा।

वाणिज्य व्यवसाय एवं जीविका के साधन ऐसे तथ्यात्मक विषय हैं जिनका हिंदी-साहित्य में विस्तृत विवरण एक ही स्थान पर मिलना कठिन है। स्फुट प्रसंगों के आधार पर ही उस ढांचे को समझा या समझाया जा सकता है। अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

बाज़ार-दुकान—

यहाँ पर व्यापारी अपनी लेनदेन करते हैं उसे फ़ारसी में बाज़ार कहते हैं। परमानंददास, तुलसी, नानक, सूर आदि इससे भली-भाँति परिचित मालूम होते हैं—

दसरथ उठ 'बजार' पधारे सारी सुरंग बसायो।[3]

---

१. हिस्ट्री आफ़ बंगाली लेंग्वेज एंड लिट्रेचर, पृ० ४१३-४१४

२. सर विलियम हंटर, देखिये—टीचिंग आफ़ इस्लाम (आरनोल्ड), पृ० २७९-२८०

३. क. परमानंददास, ३३७

ख. गोकुल हाट-बजार करत जु लुटावन रे—सूर-सागर, १०-२८

'बाजार' रुचिर न बनइ बरतन वस्तु बिन गय पाइए।[1]

पण्यशाला या सौदा बेचने के स्थान को फ़ारसी भाषा में दुकान कहते हैं। मलूकदास एवं कबीर ने इसका प्रयोग अपने दार्शनिक ढंग से किया है—

पांच औ पचीस चोर लूटि हैं 'दुकनियां'[2]

तहुंआ एक 'दुकांन' रच्यौ है निराकार व्रत राजै।[3]

दलाल

मुस्लिम काल में व्यवसाय या बाज़ारों में लेन-देन कराने वालों के बीच के व्यक्ति को अरबी में दलाल कहते हैं—

काम-क्रोध मद लोभ-मोह तू सकल 'दलाली' देहि।[4]

दुकानों और बाजारों में बिकने वाली वस्तु को सौदा (अरबी) कहते हैं।[5]

माल नफ़ा बरामद

व्यापार में माल (अ० धन दौलत) पर नफ़ा (अ० लाभ) कमाने के लिए कुछ धन लगाना पड़ता है, उसे अरबी में जमा, असल, मुजमिल आदि नामों से जाना जाता है—

---

१. क. रामचरितमानस, ७।२८।६छं० १

ख. बाजारी बाजाम महि आइ कठहि बाजार ॥ नानक-वाणी, पृ० ३२६

ग. निकसे जाय जो माँझ बजारा। देखें लोग सबै संसारा॥ हंसजवाहर, पृ० १५६

२. मलूकदास की बानी, पृ० २६

३. कबीर-ग्रंथावली, हैं० १०३

४. सूर-सागर, १।३१०

५. क. साचा लीजी साचा दीजी, साचा 'सौदा' कीजी रे। दादू-बानी, भाग २, पृ० १७०

ख. सावधान ह्वै 'सौदा' कीजै जो दीज तो लोल फराई। परमानंददास, २६३

ग. गंधी को 'सौदा' नहीं जन-जन हाथ बिकाई—नंददास, रूपमंजरी, पृ०१७

घ. 'सौदा करत बहुत जुग बीते, दिन दूटी आई। मलूक-बानी, पृ० ८

ङ. साईं सौ 'सौदा' करैं, दादू खोलि कपाट। दादू-बानी, भाग १, पृ० १४२

च. सुहृद-समाज दगा बाजि ही को 'सौदा' सूत। विनय पत्रिका, २६४

छ. देखि देखि सोभा व्रज सुंदरि सौदा लेन लाल सौं आई। परमानंददास, २६४

ज. सूर स्याम की 'सौदा' सांचौ—सूरसागर, १—३१०

झ. सावधान ह्वै सौदा कीजै—परमानंददास, २६३

न. सुन्दर भूषन पहिरे सुंदरि 'सौदा' करन लाल सों आई। परमानंददास, २६२

तुम जानति मैं हूँ कछु जानत, जो-जो 'माल' तुम्हारौ ।[१]
लै आए हौ 'नफा' जानि कै सबै वस्तु अकरी ।[२]
चार पदारथ 'नफ़ा' भया मोहिं, वनिजै कब हूं न जइहौं ।[३]
तहीं दीजै मूल पूरै, नफौ तुय कछु खाहु ।[४]
'साबिक' 'जमा' हुती जो जोरी 'मिनजालिक' तल ल्यायौ ।[५]

रुपया प्राप्त करने तथा आयात को फ़ारसी में बरामद कहते हैं—

बढ़ौ तुम्हार बरामद हूं कौ ।[६]

तलब बेबाक़ बाक़ी

इनके अतिरिक्त तलब, बेबाक़ (मलूक बानी पृ० ८) बाक़ी (सूरसागर १४३) अरबी फ़ारसी शब्दों का प्रयोग हिन्दी में हुआ है। व्यापार में उस पत्र को हुंडी कहते हैं जो आपस में लेन देन करने वाले महाजन किसी को रुपया दिलाने के लिए भेजते हैं (महाजनी चैक)। राजा टोडरमल के निम्न छंद में मुद्दत, अंदाज, सनद, दाम जिकरी, कोरी का निरूपण मुस्लिम संपर्क स्वरूप है।[७]

ऊपर लिखे निवास सब रक्खे 'मुद्दत' होय। चलन निशां 'अंदाज' धन हुंडीकिये सोय ।।
हुंडी खेये पैठ लिख पैठ गये पर पैठा। 'सनद' एक के दाम' दे रोकड़ खाता डेढ़ ।।
जो हुंडी सिकरे नहीं 'जिकरी' लिखैं बनाय। हुंडी 'कोरी' पीठ तब धन देय चुकाय ।।[८]

खर्च[९] (फा०) और क़ीमत[१०] (अ०) भी व्यापार सम्बन्धी शब्द हैं—

---

१. सूरसागर, १५२६ २. सूर-सागर, ३६६३ ३. क. मलूकदास की बानी, पृ० ८
ख. होतौ 'नफा' साधु की संगति, मूल गाठि नहिं टरतरै। सूरसागर, १-२९७
ग. लै आये हो 'नफा' जानि कै—सूर-सागर, ३६२३

४. सूर-सागर, ३५१७ ५. क. सूर-सागर, १-१४३
ख. पुन्न करत 'जमा' और गंवाई। मलूक-बानी, पृ० १७
ग. बाम 'जमा' दच्छिन खरच सिर पेटा पर पेट। अकबरी दरबार के हिंदी कवि, ४५३

६. सूर-सागर, १४३ ७. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ४५२

८. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ४५२ ९. क, दादू-बानी, भाग १, पृ० ११९
ख. हौं तो गयो हुतो गुपालहिं भेंटन और 'खर्च' तंदुल गांठी कौ।
सूरसागर वेंकटेश्वर प्रेस, १०३.७२
ग. सूरदास कुछ खरच न लागत राम नाम मुख लेत। सूर-सागर, १-२९६

१०. क. 'कीमति' नहिं करतार की, ऐसा है भगवंत। दादू-बानी, भाग १, पृ० ५१
ख. केते पारिख पचि मुए, 'कीमति' कही न जाइ। दादू-बानी, भाग १, पृ० ७९
ग. 'कीमति' किनहूं ना कही, दादू रहु ल्यौ लाइ। दादू-बानी, भाग १, पृ० ७९

रोक न राखै, झूठ न भाखै, दादू खरचै खाई।[1]

पेशे और पेशेवर

हिंदी-साहित्य में स्थान-स्थान पर तत्कालीन प्रचलित व्यवसायों, शिल्पकारों एवं व्यवसायियों का उल्लेख मिलता है जिससे मुस्लिम-काल के सामाजिक एवं व्यापारिक वातावरण के विषय में भी जानकारी होती है। मुस्लिम काल में विशेष रूप से मुग़लदौर में व्यापार एवं कलाएँ उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गई थीं। यहाँ पर हम उनमें से कुछ का विवरण दे रहे हैं—

व्यवसाय के लिए पेशा, कारोबार, रोज़गार आदि फ़ारसी शब्दों का प्रचलन हिंदी में आम हो गया है तथा शिल्पकार, गुणवान् के लिए फ़ारसी-भाषा का शब्द हुनरमंद या कारीगर हिंदी में प्रयुक्त होता है। दादू सबसे बड़ा कारीगर विधाता को मानते हैं और कहते हैं कि उसकी हिकमत को कौन पहुँच सकता है, कौन देख सकता है, वह तो सबसे बड़ा कारीगर है—

'हिकमति' 'हुनर' 'कारीगरी', दादू लखी न जाइ।[2]
ऐसा उपाया साजि करि, 'कारीगर' करतार॥

श्रमिक को अरबी-फ़ारसी में मज़दूर तथा बिना दिये की मज़दूरी को बेगार कहते हैं। तुलसी, दादू ने इसका प्रयोग किया है। कसब (अ०) शब्द भी अर्जन, कमाना, पेशा, धंधा का वाचक है।

बहुत काल मैं कीन्हि 'मजूरी'[3]

जुलाहा

तंतुवाय के लिए फ़ारसी शब्द जोलाहा या जुलाहा है। कबीर के पूर्वज आदि तंतुवाय मुस्लिम संपर्क के कारण धर्म परिवर्तन के बाद ही जुलाहे हुए होंगे—

---

१. दादू-बानी, भाग १ पृ० ११६

२. क. दादू-बानी, भाग १, पृ० १८७

ख. कोइ कैसा 'कारीगरे' साइ सारी कोइ देखन। हंसजवाहर पृ० २०६

ग. उन्हकर 'हुनर' न कवनिहुं औरा। (रामचरितमानस, ७।३।१३)

३. क. रामचरितमानस, १।१२०।३

ख. 'चाकरी' न आकरी न खेती न बनिज भीख। कवितावली ७।६७

ग. 'किसबी' किसान कुल बनिक भिखारी भाट। कवितावली, ७।६७

घ. जानत न कूर कछु 'किसब' कबारु। कवितावली, ७,६७

ङ. आन देव की भक्ति-भाइ करि कोटि 'कसब' करैगो। सूरसागर, १-७५

च. दादू सींचे मूल बिन, बादि गई 'बेगार'। दादू-बानी, भाग १, पृ० ६१

तूं ब्राह्मण मैं कासी का जुलाहा, चीन्हि न मोर गियाना[१]
जाति जुलाहा नाम कबीरा[२]
ताणै वाणै जीव 'जुलाहा', परम तत्त सौं माता[३]

वस्त्र-वाणक के लिए अरबी-फ़ारसी शब्द बजाज़ का प्रचलन भी उस काल में हुआ है।[४] सूरदास ने उसका स्त्रीलिंग बजाजिन कहा है।

दरज़ी

कतिपय विद्वान् ह्यूनसांग (७ वीं सदी ई०) आदि के विवरण के आधार पर ये कहते हैं कि सिलाई एक कला या व्यवसाय के रूप में प्राचीन भारत में (अधिक उन्नत) न था।[५] इधर मध्यकालीन समाज एवं साहित्य में सिलाई-सम्बन्धी शब्दावली भी अधिकतर अरबी फारसी से ही सामने आती है। जैसे दरज़ी, बख़िया, कैंची नेफ़ा, आसतीन पाएंचा, जेब, तीरा, अस्तर, गज़, दामन, यहाँ पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। कपड़े सीने का काम करने वाले को फ़ारसी में दरजी कहते हैं। कृष्ण के मथुरा पहुंचने पर धनुष-भंग लीला के पूर्व, उनके शरीर का नाप कपड़े पहनाने में हुआ है। वस्त्र सीने से पहले दरजी कपड़े को ब्यौत लगाता है। सूर के एक पद में विरहिणी गोपियों के तन को ब्यौत और विरह को दरजी कहा गया है—

आई 'दरजी' गयो बोलि ताकौ भयौ सुभग अंग साजि उन विनय कीन्हे।[६]
ज्यूं कपड़ा 'दरजी' गहि 'ब्यौतत', काठहिं कूं बढ़ई कंसियानै।[७]
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु तनु भयौ 'ब्योंत' ब्रिरह भयो 'दरजी'।[८]

दरजी की स्त्री को दरजिन कहते हैं। सूर के एक पद में दूलह श्रीकृष्ण के

१. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १२८
२. कबीर-ग्रंथावली, पृ० ११५
३. क. दादू-बानी, भाग २, पृ० ११८
   ख. धूत कहौ अवधूत कहौ, रजपूत कहौ 'जोलहा' कहौ कोऊ। कवितावली, ७।१०६
४. क. बैठे 'बजाज' 'सराफ' बनिक अनेक मनहुं कुबेर ते। रामचरितमानस, ७,२२
   बजाजिनि ह्वै जाऊं निरखि नैननि सुख देऊं। सूरसागर वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० ३४९
५. परशियन इन्फ्लूएंस आन हिंदी, पृ० ३०
६. सूर-सागर, ३४०१ (३६६५)
७. क. सुंदर-विलास, पृ० ७
   ख. लोहा बढ़े 'दरजी' पाड़े सूई धागा सीवै। नानक-वाणी, पृ० ५६९
८. क. सूर-सागर, वेंकटेश्वर प्रेस १९५९
   ख. अबे देह भई पट नंद के घाले सों 'ब्योत' करै विरहा दरजी।
   तुलसी-ग्रंथावली, भाग, , २ पृ० १९२

बागे बनाने में ही उसकी कामना दिखाई गई है—

अपने गोपाल के मैं बागे रचि लेऊँ।
'दरजिनि' ह्वै जाऊँ निरखि नैननि सुख देऊं।[1]

जौहरी—

आईने अकबरी के आईन २ (नं० दो) में खजाना दारी, तीन में खजाना जवाहर तथा आईन छः में बनवारी या सोने की आज़माइश तथा खोटे खरे सोने का विस्तार से उल्लेख है। उसी में दहबानी सोना तथा बारहबानी सोने का अंतर भी बताया गया है।[2] मुस्लिम काल में बाजारों में सराफ़ (अ०) जौहरी तथा कुँदन, नगीना, मीनाकारी आदि अरबी फ़ारसी भाषा के शब्द मुस्लिम संपर्क से ही आए हैं। हीरे जवाहरात आदि बेचने वाले को जौहरी और सोने चाँदी के ज़ेवर बेचने वाले को सराफ कहते हैं निर्गुण-धारा के कवि सांसारिक शब्दों का भी आध्यात्मिक अर्थ में प्रयोग करते थे। इन्होंने जौहरी, सराफ का प्रयोग भी अपने अर्थों में लिया है—

ही लेगा 'जौहरी', जो मांगै सो देइ।[3]
पाया पारिख 'जौहरी', दादू मोल अपार।[4]

---

१. क. सूर-सागर, १०७५ (१६६६)
ख. 'दरजिनि' गोरे गात लिहे कर जोरा हो। रामललानहछू, दोहा ६
तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, पृ० ३

२. क. आईने अकबरी, जिल्द अव्वल, हिस्सा अव्वल, पृ० १८, २३, ३०-४५
ख. काहू कसौटी कसिए ? कंचन बारह-बान ।। जायसी-ग्रंथावली, पृ० ११६ तथा पृ० २०३, २०६

३. दादू-बानी, भाग १, पृ० ११७

४. क. दादू-बानी, भाग १, पृ० ५६
ख. दादू साधू 'जौहरी' हीरे मोल न तोल। दादू बानी, भाग १, पृ० ६०
ग. 'जौहरि' की गति 'जौहरी' जानै, दूजा न जाणे कोई—मीरा के पद, पृ० २२
घ. हरि हीरा जन जौहरी, ले ले मंडिय हाटि। कबीर-ग्रंथावली, पृ० ६२
ङ. 'जौहरी' के मिले बिन परखि न जानै कोई हाथ 'नग' लिये रहै संशय न टारसी, सुंदर-विलास, पृ० ६
च. बैठे बजाज 'सराफ़' बनिक अनेक मनहु कुबेर ते। रामचरितमानस, ७।२८।छं० १
छ. यहु परख 'सराफी' ऊपली, भीतर की यहु नाहि। दादू-बानी, भाग १, पृ० ६१६
ज. ऐसा साहु 'सराफी' करै। नानक-वाणी, पृ० २८४

सराफ़ा औ सराफ़ी (अ०) के लक्षण राजा टोडरमल के निम्न छंदों में भी मिलते हैं—

हुँडी लिखे न हाथ से 'जमा' न रक्खे भूल
लेय ब्याज देने नहीं सोई 'सराफी' भूल
जग सराफ ताको कहे जमा समय पर देय
व्यापारी सो जानिये समय पैं मुद्द लेय।[1]
प्रथम बनारस आगरा दिल्ली ओ गुजरात
आगर औ अजमेर से सिखै 'सराफी' बात[2]

लकड़ी का काम करने वाले को मिस्त्री (फ़ा० मिस्तर) कहते हैं। मुस्लिम काल में प्रचलित तत्संबंधी उपकरणों के नाम अधिकतर फ़ारसी के हैं जो आज भी प्रचलित हैं। जैसे—ख़राद, बरमा, बुरादा, दरवाज़ा ख़त (लाइन लगाना) रेगमाल, साहुल तथा उसके बनाए हुए फ़रनीचर मेज, कुर्सी, तख़्त, अलमारी आदि। यहाँ कुछ के उदाहरण प्रस्तुत हैं जो हिंदी-साहित्य में आए हैं। खराद (फा०) लकड़ी चिकनी करने, ख़रीदने का यंत्र है। कृष्ण जन्म पर सूरदास ने बढ़ई से चंदन का पालना भली भाँति ख़राद पर गढ़ लाने को कहा है—

पालनौ अति सुँदर गढ़ि लाउ रे बढ़ैया।
सीतल चंदन कटाउ, धरि 'ख़राद' रंग लाउ.........।[3]

रंगरेज़—

रंगरेज़ (फ़ारसी) कपड़ा रंगने का व्यवसाय करने वाला और उसकी स्त्री को रंगरेजन कहते हैं। कृष्ण की पगड़ी रंगी देखकर सूरदास की एक मानिनी गोपी उनसे व्यंग में पूछती है कि क्या कोई रंगरेज़िनी मिल गई थी—

ऐसी कहौ रंगीले लाल।
जावक सौं कहं पाग रंगाई, 'रंगरेजिनी' मिली कोऊ बाल।[4]

खेल तमाशे वालों में इंद्रजाल तिलिस्म करने वाले को जादूगर (फा०) कहते हैं।[5]

१·२. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ४५४, ४५३
३. सूर-सागर, १०-४१
४. क. सूर-सागर, २४८५
ख. मुमनौ 'रंगरेज' के रावर माँह महावर के मथना ढरके ॥
अकबरी दरबार के हिंदी कवि, गंग के छंद (परिशिष्ट) पृ० ४३६
५. देखो 'जादूगर' का हाल, डाले हरा निकाले लाल।
खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २७

बाज़ीगर

बच्चों बड़ों सब को ही तमाशा प्रिय होता है। मनोविनोद में मुगलकाल में यत्र-तत्र बाज़ीगर (फा०) कौतुकी बाजारों में अपना तमाशा किया करते होंगे, तभी हिंदी में उसका इतना उल्लेख है। कबीर को गर्व है कि बाज़ीगर के राज को उसका चेला ही समझता है। निर्गुण कवि आध्यात्म की ही बात करते थे इसलिए अधिकतर संकेतों के रूप में इसका प्रयोग किया है—

'बाजी' की 'बाजीगर' जानै कै बाजीगर का चेरा।[1]
'बाजीगर' का बंदरा, भावै तहं फेरै।[2]

इस परम बाजीगर का तमाशा भी मलूक दास को अजब ही लगा है—

अजब तमासा देखा तेरा। ताते उदास भया मन मेरा।[3]

क़साई—

क़साई या कसाब अरबी भाषा का शब्द है। इन्हें बधिक कहा जाना चाहिए या पशु काटने वाला। मुसलमान क्योंकि हलाल करके मांस का प्रयोग करते थे इसलिए उनके समाज में क़साई भी एक सांस्कृतिक व्यवसायी है। भारत में इस व्यवसाय को क्योंकि अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था इसलिए इस शब्द का अर्थापकर्ष हो गया। शिशु कृष्ण को मारने के लिए कंस के सामने स्वयं प्रस्तुत होने वाले श्रीधर बाँभन के कर्म को सूर ने कसाई के कर्म जैसा बताया है।[4] अकबर ने पशुवध-बंद करा दिया था और गौ-हत्यारे के लिए मृत्यु-दंड की व्यवस्था भी स्थिर की गई थी। नरहरि ने इस विषय में अकबर को प्रेरित किया था[5]—

---

१. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १२६
२. क. दादू-बानी, भाग १, पृ० १८५
   ख. 'बाजी' भरम दिखावा, 'बाजीगर' डहकावा। दादू-बानी, भाग २ पृ० १६
   ग यह बाजी खेल दिखावा, 'बाजीगर' किनहू न पावा। दादू-बानी, भाग २ पृ० १२५
   घ. बाजीगर परकासा, यह 'बाजी' झूठ 'तमासा'। दादू-बानी, भाग २, पृ० १२५
   ङ. ज्यों कपि डोरि बाँधि 'बाजीगर' कन कन को चौहटै नचावै।
   सूर-सागर, १-३२६
   च. 'बाजीगर' के सूम ज्यों, खल! खेह न खातो। विनयपत्रिका, १५१
३. क. मलूक दास की बानी, पृ० १२
   ख. उलटि जाय तो बार न बाकै, या का अजब 'तमासा'। मलूक-बानी, पृ० ३
४. श्रीधर बाँभन करम कसाई। कह्यौ कंस सौं बचन सुनाई। सूर-सागर, १०-५७
५. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ७३

अकबर जारी परवाने किये मारिबे को चारिहूँ महीपन लखानी बात हकसी।
व्यापि गयो हुकुम दिल्लीपति को हिंद भरि वाजिवी विचारि मन अति कै करकसी।
जीवन 'कसाइन' कौ गाइन को देत भयो गाइन की मौत ले 'कसाइन' को वकसी।[१]

धातु और सिक्के—

प्रारंभिक अवस्था में बाजारों में लेन देन का सामान्यतः रिवाज 'वस्तु-विनिमय' (बार्टर सिस्टम) पर आधारित होता था। हाट बाजारों में अपनी अपनी बनाई हुई वस्तुओं को लेकर लोग आते थे और अनाज कपड़ा आदि का लेन देन, वस्तु-विनिमय आदि से हो जाता था। धीरे-धीरे कौड़ी या नग तथा धातु के टुकड़ों से भी माल का लेन देन होने लगा। प्राचीन भारतीय सिक्कों की यहाँ चर्चा नहीं की जा सकती किंतु आलोच्यकालीन हिंदी साहित्य में जितने भी सिक्कों के नाम मिलते हैं वे तत्कालीन मुस्लिम शासन के संपर्क से आए हैं। फ़ारसी के प्राचीन इतिहासों और आईने अकबरी में धातु के साफ करने तथा सिक्कों आदि का विस्तृत विवरण मिलता है। ख़ज़ानेदारी[२] (आईन २) खज़ीनाए जवाहर[३] (आइन३) और दारुलज़रब (टकसाल)[४], अम्माल दारुल ज़रब (आइन ५) बनवारी[५] एवं सल्तनत आदि शीर्षकों से विस्तार से उल्लेख किया गया है जिससे पता चलता है कि मुस्लिम शासकों ने ईरान व तूरान तथा अन्य मुस्लिम देशों से प्रेरित होकर यहा पर उन सिक्कों का रिवाज किया। यह बात अलग है कि कुछ सिक्कों के नाम स्थानीय प्रजा की सुविधा को ध्यान में रखते हुए हिंदोस्तानी भाषाओं से ही ले लिए थे।

आईने अकबरी आदि[६] पुस्तकों को देखने के बाद यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि आलोच्यकालीन हिंदी कवियों ने जिन सिक्कों का उल्लेख किया

१. क. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ७३
ख. सबजग छेली काल 'कसाई' 'क़र्द' लिये कंठ काटे। दादू-बानी, भाग १, पृ० २०७
ग. कोसी काम धेनु कुहत कसाई है। कवितावली, ७।१८१
घ. मूरत पूजै बहुत मति, नित नाम पुकारें।
कोटि 'कसाई' तुल्य है, । जो आतम मारै ॥ मलूक-बानी, पृ० ८
ङ. विरह 'कसाई' मुं धरि अला, मंभे वरे बाहिरे। दादू-बानी, भाग २, पृ० ४७
च. चैत की चाँदनी के चितये तन कैसे छाड़े गो काम कसाई।
अकबरी दरबार के हिंदी कवि (गंग) पृ० ४४५
२-३. आईने अकबरी, जिल्द अव्वल, हिस्सा पृ० १८, २२, २५, २८, ४६
४-५. आईने अकबरी, जिल्द अव्वल, हिस्सा अव्वल, पृ० २५, ३८, ४६
६. मुस्लिम सक़ाफ़त (सिक्काशाही), पृ० ६८७

है वह तत्कालीन मुस्लिम-शासन-व्यवस्था की अर्थ व्यवस्था से प्रभावित है। सिक्के सोने चांदी दोनों से ही बनते थे। सोने को फ़ारसी में ज़र कहते हैं। दादू ज़र से परिचित मालूम होते हैं[1] और सिक्कों से भी।[2] कबीर ने भी 'जवाहर' कांसा तांबा आदि नग एवं धातुओं का उल्लेख किया है—

आपहि रतन 'जवाहर' मानिक आपै है पासारी।[3]

आईने अकबरी में बारहवानी सोने का वर्णन है[4] जो दहवानी से भी खरा होता था तथा आईन ११ में दिरम (दरहम) चांदी के सिक्कों का भी वर्णन है जो खलीफा उमर के काल से ही प्रचलित हो चुका था।[5] दीनार सोने का सिक्का था जिसका वजन एक मिस्काल बताया गया है। जायसी ने राघव चेतन देस निकाला खंड में इनका उल्लेख किया है तथा एक स्थान पर चोखे सोने सी पद्मिनी की कथा के सौंदर्य को बताया है—

दिल्ली नगर आदि तुरकानू। जहां अलाउद्दीन सुलतानू॥
सोन ढरै जेहि के 'टकसारा'। 'बारह बानी' चलै दिनारा'[7]

सिकंदर लोदी ने तांबे का सिक्का 'टंका' चलाया था और मुग़लों के जमाने में यही टंका रुपया हो गया। रुपये में चालीस 'दाम' होते थे। यह दाम तांबे का सिक्का था[8]। हिंदी में तत्कालीन-शासन में प्रचलित अनेक सिक्कों का वर्णन मिल जाता है। सूरदास ने टके का इस प्रसंग में वर्णन किया है कि राधा की माता ने पुत्री की खोई हुई 'मोतिसिरी' लाख टके में लाने की बात कही है तथा कृष्ण-जन्म पर यशोदा को दाई

१. दादू दीवान तेरा, 'जरखरीद' घर के हैं। दादू-वानी, भाग २, पृ० १६७
२. दादू 'सिक्का' सबर है, अकलि पीर उपदेश। दादू-वानी, भाग १, पृ० १४८
३. क. कबीर ग्रंथावली, पृ० २१०
ख. किन्हीं बनज्या कांसा तांबा किन्ही लौंग सुपारी। कबीर-ग्रंथावली, पृ० २१०
ग. पारस के संग तांबा बिगयो सो तांबा कंचन ह्वै निवग्यो। कबीर-ग्रंथावली, पृ० २१३
४. आईने अकबरी, जिल्द अव्वल, भाग १, आईन ६, पृ० ३०-३५, ५८
५. आईने अकबरी, जिल्द अव्वल, भाग १, पृ० ५५
६. आईने अकबरी, जिल्द अव्वल, भाग १, पृ० ५६
७. क. जायसी ग्रंथावली, पृ० २०३, पृ० ११९
ख. वह पदमिनी चितउर जो आनी। काया कुंदन 'द्वादसबानी'॥
जायसी-ग्रंथावली, पृ० २०९,११९
ग. सूरदास प्रभु हम हैं खोटी तुम तो बारहबाने—सूर-सागर, ३५२०
८. इन सिक्कों के विस्तृत विवरण के लिए देखिये—मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० ६८७

को नेग में लाख टके देते दिखाया है—

इक इक नग सत सत 'दामिनी' की लाख 'टका' दै ल्याई ।[१]

लाख 'टका' अरु झूमका सारी दाइ को नेग ।[२]

परमानंद ने सिक्के के अर्थों में दाम का प्रयोग किया है तथा तुलसी आदि ने भी प्रयोग किया है—

विप्रनि देहु गाय और सोनों माटन 'रूपों' 'दाम' ।[३]

करम जाल कलिकाल कठिन आवीन सुसाधित 'दाम' को ।[४]

करनेश, ब्रह्म, गंग आदि अकबरी दरबार के हिंदी-कवियों का 'दाम' से परिचित होना तो स्वाभाविक ही है । करनेश ने एक बार खज़ानची को फटकारा था—

खात है हराम 'दाम' करत हराम काम घट घट तिनही के अपयश छावेंगे ।[५]

मुग़लकाल में टंके के स्थान पर रुपया चला जिसमें चालीस दाम होते थे । यह पहले कहा जा चुका है कि आईने अकबरी में रुपया चाँदी का बताया गया है । यह गोल और वजन में साढ़े ग्यारह माशा है जो शेर खाँ के जमाने में ईजाद हुआ ।[६] दमड़ी दाम का $\frac{1}{8}$ (एक बटा आठ) होता था ।[७]

विप्रनि देहु गाय और सोनो माटन 'रूपों' दाम ।[८]

ज़र, दीनार, टंका, दाम, दमड़ी, रुपया के अतिरिक्त और भी ऐसे उदाहरण

१. सूर-सागर, १९७३

२. सूर-सागर, १०-४०

३. क. परमानंददास, १४

ख. लै संग चले घर 'दाम' देन कों तबाहि जनायो कटाखि । कुंभनदास १३

४. विनयपत्रिका, ३५५

५. क. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ३२

ख. 'दाम' के काम को लीबो दिवान सों काहु को लै करि काहु को दीबो ।

अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ३५४

ग. महल अटारी सुत सहोदर वित नारी निसि वास करत गुलामी विना दामकी ।

अकबरी दरबार हिंदी कवि, पृ० ४३०

६. आईने अकबरी, जिल्द १, हिस्सा १, पृ० ५०।५२

७. क. आईने अकबरी, जिल्द १, हिस्सा १, पृ० ५२

ख. लंपट, धूत पूत 'दमरी' कौ, विषय-जाप कौ जापी ।-सूर-सागर, १-१४०

ग. लंपट धूत पूत 'दमरी' कौ, कौड़ी कौड़ी जोरै । सूरसागर, १।१८६

८. क. परमानंददास, १४

ख. निर्भय 'रूपै' लोभ छांड़ि कै, सोइ वारिग राखै । सूर-सागर, ११४२

हिंदी में मिल जाते हैं जिससे पता चलता है कि तत्कालीन हिंदी कवि मुस्लिम शासन की अर्थ व्यवस्था से परिचित थे। खज़ाना अरबी में निधि कोष या राजकीय कोष भंडार को कहते हैं। तुलसी आदि ने खज़ाना और दाम का प्रयोग किया है—

अपनी भलाई भलो कीजै तो भलोई, न तौ
तुलसी को खुलैगो 'खजानो' खोटे दाम को ।[1]
दस छ सै सहस्र इकइस हर दिन 'खजाने' थें जाहिं वे ।[2]

संत-कवि सांसारिक उपकरणों को भी आध्यात्मिक संकेतों से समझा और समझाया करते थे। इसीलिए रैदास ने ऊपर वाले के खजाने की बात कही है तथा मीरा दादू भी उन्हीं के हमख्याल हैं।[3]

सिक्के सबंधी मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क का हिंदी में एक अन्य रोचक परिणाम भी आया है। यह एक इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि एक बार हुमायूँ को नदी पार करते समय डूबने से एक सक्के (खाल की मशक में पानी भरने वाला पेशेवर) निज़ाम भिश्ती ने बचाया था। हुमायूं ने प्रसन्न होकर सक्के की इच्छानुसार उसे आधे दिन का बादशाह बना दिया था। सक्के ने उसी आधे दिन के राज्य में मशक के चमड़े के के सिक्के चलाए जाने का आदेश जारी किया था[4] यद्यपि सूरदास के निम्न पद में इस कथा की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है किंतु यह बात और है कि उन्होंने इसे अन्य अर्थो में प्रयोग किया है। ऊधव से कही हुई निम्न उक्ति में गोपियों ने कुब्जा पर 'चाम के दाम' चलाने की अनीति का अभियोग लगाया है—

सिर पर सौति हमारे कुबिजा 'चाम के दाम' चलावै ।[5]

(३) साहित्य

साहित्य-उपकरण

मुस्लिम शासक और विशेष रूप से मुग़ल सम्राट ज्ञान-विज्ञान के महान् संरक्षक रहे हैं।[6] लिखने पढ़ने के उपकरणों में समय के परिवर्तन के साथ ही परिवर्धन

१. कवितावली, ७।७०
२. रैदास की बानी, पृ० १६
३. क. पापी कूं प्रभु परचो दीन्हों, दियो रे 'खजीना' पूर। मीरा, पृ० ९३
ख. सो धन मेरे साइयां, अलख 'खजीना' हाथ। दादू-बानी भाग १, पृ० २४
ग. खलक 'खजीना' भरे भंडार, ता घरि परतै सब संसार।
दादू-बानी, भाग २, पृ० १५६
४. बृहद् हिंदी कोश, पृ० ४३०
५. सूर-सागर, ३६३६
६. पर्शियन इन्फ्लूएंस आन हिंदी, पृ० २६

होता रहा है। प्राचीन भारत में लिखने के लिए भोज पत्र, ताड़ पत्र आदि उपकरण थे। अब इनका स्थान काग़ज़ ने ले लिया था। भारतवर्ष में काग़ज़ का प्रचलन मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क से हुआ।[१] आलोच्यकालीन हिंदी-साहित्य में मुस्लिम-संपर्क से आए हुए काग़ज़, किताब, क़लम, क़लमदान, सोख्ता, स्याही, तख्ती, दवात, पर्चा, इम्तहान, खत, लिफ़ाफ़ा आदि अनेक उपकरणों का उल्लेख मुस्लिम प्रभाव का द्योतक है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। मीरा के ऊधो भी का ज लिए आ रहे हैं जो भागवत पुराण काल के चित्रण से भिन्न है—

'कागद' ले ऊधो जी आयो, कहां रह्या साथी।
+ + +
'कागद' ले राधा बांचण बैठी भर आई छाती।[२]
व्याघ गीध गनिका जिहिं 'कागर' हों तिहि चिटी न चढ़ायो।[३]

काग़ज़ (अरबी शब्द) काट छाँट कर जिल्द बांधकर किताब का रूप धारण करता है। अरबी भाषा में किताब पुस्तक को कहते हैं। दादू ने काग़ज़ किताब दोनों का उपयोग किया है—

काजी कजा न जानही, 'कागद' हाथि 'कतेब'।[४]
काया कतेब बोलिये, लिखि राखूं रहिमान।[५]

किताब पर खुसरो की एक पहेली भी है। सतर अरबी में पुस्तक की लाइन करते हैं—

एक नार चातुर कहलावे। मूरख को ना पास बुलावे।
चातुर मरद जो हाथ लगावे। खोल 'सतर' वह आप दिखावे।[६]

किल्क, लेखनी से कुछ परिवर्धित रूप को अरबी में क़लम[७] कहते है और रोश-

१. मुस्लिम सक़ाफत, पृ० ३८६ (पर्सी ब्राउन, इंडियन पेंटिंग, पृ० २१)
२. क. मीरा जीवनी और काव्य, पृ० ८६
   ख. मसि 'कागज' के आसरे क्यों छूटै संसार। दादू-बानी, १, पृ० १३५
   ग. कागद काले करि करि मुए, केते वेद पुरान। दादू-बानी, १, पृ० १३५
   घ. कागद गरे मेख मसि खूटि, सर दव लागि जरे—सूर-सागर, ३६१८
३. सूर-सागर, ३२८२ ४. दादू-बानी, १ पृ० १३५
५. दादू-बानी' १ पृ० १३०
६. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ३३
७. क. घंनु सु 'कागदु' 'कलम' घंन घनु भांडा धंनु मसु। नानक-वाणी, पृ० ७७४
   ख. 'कागदि' 'कलम' न लिखणहारु। नानक-वाणी' पृ० ८४
   ग. दीबानु एको 'कलम' एका हमा तुम्हा मेलु। नानक-वाणी, पृ० ३५४

नाई[1] वाली दवात तथा कलम दवात रखने वाले पात्र को अरबी में क़लमदान[2] कहते हैं। दवात के लिए हिंदी में मसिदानी का प्रयोग हुआ है।[3] इसमें फ़ारसी प्रत्यय दान का दानी बना लिया गया है। निर्गुण-कवियों ने इन वस्तुओं का अपने आध्यात्मिक-दृष्टिकोणानुसार ही उपयोग किया है। उनके नज़दीक काग़ज़ क़लम कुछ भी तो ख़ुदा की पूरी तारीफ़ नहीं कर सकते।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी तथा हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में क़ाग़ज़ क़लम, रुक़्क़ा, मसौदा, पर्चा, लफ़्ज़ मानी (शब्द-अर्थ) जिल्द, जिल्दसाज़, शिकंजा, ख़त, पता, लिफ़ाफ़ा हरकारा आदि मुस्लिम संपर्क से साहित्य-उपकरणों के प्रयोग में अभिवृद्धि हुई है।

हिंदी-कवियों की अरबी-फ़ारसी जानकारी—

अरब और दक्षिण भारत का यद्यपि व्यापारिक संबंध बहुत प्राचीन था[4] किंतु ७१२ ई० में मुहम्द बिन क़ासिम के सिंध विजय के पश्चात् उत्तर भारत से भी मुसलमानों का संबंध स्थापित हो गया था। फ़ौजियों, पेशेवरों तथा अन्य राजकीय कर्मचारियों और सूफ़ी संतों के इन प्रदेशों में बस जाने के फलस्वरूप स्थानीय जनता से किसी न किसी रूप में संपर्क का श्रीगणेश हो गया। यह संपर्क यद्यपि कुछ आवश्यक दैनिक वस्तुओं के नामों के आदान-प्रदान तक ही सीमित रहा होगा, बाद में मुस्लिम-शासन की विधिवत्, भारत में, स्थापना के पश्चात् फ़ारसी भाषा का अध्ययन अध्यापन भी प्रारंभ हो गया। शाही दरबारों में नौकरी पाने और राजकीय कर्मचारियों का नैकट्य प्राप्त करने आदि की इच्छुक स्थानीय जनता ने उस भाषा में योग्यता प्राप्त करना आरंभ कर दिया। डा० केलांग के मतानुसार 'हिंदी अपने जन्म से ही विदेशी भाषाओं से प्रभावित होती रही है'।[5] इससे यह परिणाम भी निकाला जा सकता है कि हिंदी-कवि भी प्रारंभ से ही फ़ारसी के संपर्क में रहे होंगे। अकबर से पूर्व प्रशासन संबंधी रिकार्ड हिंदी में रखे जाते थे और फ़ारसी को राज्याश्रय प्राप्त था। अरब, ईरानी,

---

१. शरद निशि निशीथे चांद की रोशनाई। रहीम रत्नावली, पृ० ७३
२. कनक रचित लेखनि—'मसि दानी' धरी जहं चित्र रह्यौ अंबी कौ।
परमानंददास, कांक ५९
३. पत्रं लेखनी वर 'मसिदानी' लेख लिखनि की करि न्यारी।
परमानंददास, कांक ६०
४. इन्फ़्लूएंस आफ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० २९
५. आलमोस्ट फ़ाम इट्स वेरी ओरिजिन हिन्दी हैज़ बिन सब्जेक्टेड टु फ़ोरिन इन्फ़्लूएंस। रेव० एस० एच० केलांग, ए० ग्रामर आफ़ दी हिन्दी लैंग्वेज, चैप्टर ३, पृ० ३६।

अफ़गान, तुर्क, तातार पठान तथा अन्य देशी-विदेशी मुसलमान फ़ौजों के कारण भी बाज़ारों, नगरों और देहातों में मुस्लिम-संपर्क की संभावना पाई जाती थी। मुसलमान शासकों के हरमों, दरबारों और अमीर उमरा के वातावरण से भी भारतीय जनता ने संपर्क स्थापित किया। सूफियों में मोईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी तथा ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया देहलवी के अतिरिक्त स्थान स्थान पर अन्य सूफियों ने इस्लाम के प्रसार एवं हिंदू जनता को प्रभावित करने में बड़ा योग दिया है। इतना ही नहीं मुगलकाल में विशेष रूप से तथा इससे पूर्व भी सामान्यतः मुस्लिम सम्राटों, अमीर उमरा ने हिंदू-स्त्रीयोंसे विवाह करके सांस्कृतिक संपर्क को बढ़ावा दिया। यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार सामान्यतः देखा ऐसा गया है कि जनता शासक वर्ग का अनुकरण करने में गर्व समझा करती है। इन्हीं अनेक कारणों से हिंदी-साहित्य तथा हिंदी-कवियों का मुस्लिम-संस्कृति से घनिष्ठ संबंध स्थापित होने के फलस्वरूप हिंदी के अनेक कवियों ने केवल अरबी, फ़ारसी, तुर्की शब्दों का ही प्रयोग किया है अपितु इनकी फ़ारसी जानकारी का भी पता चलता है। बहुत कम लोग इस बात को जानते होंगे कि हिंदी कवियों की अधिकांश प्राचीन पांडुलिपिलाँ फ़ारसी लिपि में मिलती हैं। डा० परमेश्वरीलाल गुप्त का मत द्रष्टव्य है—'अभी पचास वर्ष पूर्व तक अधिकांश कायस्थ परिवारों का नागरी लिपि के साथ नाम का भी संबंध न था। उनके घरों में रामायण ही नहीं, दुर्गा-पाठ और भगवद्गीता का भी पाठ उर्दू-फ़ारसी में लिखी कापियों से होता था और वे शुद्ध उच्चारण के साथ इनका पाठ किया करते थे। इंगलैंड और फ्रांस के पुस्तकालयों में न केवल सूरसागर आदि धार्मिक ग्रंथों का ही, वरन् हिंदू कवियों द्वारा रचित अनेक शृंगार काव्यों यथा केशवदास की रसिक प्रिया, बिहारी सतसई आदि भी फ़ारसी लिपि में लिखी काफी प्राचीन प्रतियां सुरक्षित हैं। उन्हें देखते हुए यह कल्पना करना कि प्रेमाख्यानक काव्यों के रचयिता मुसलमानों ने अपने काव्य की आदि प्रति नागरी अक्षरों में लिखी होगी, नितांत हास्यास्पद है। ये कवि न केवल स्वयं मुसलमान थे वरन् उनके गुरु भी मुसलमान थे और उनके शिष्य भी मुसलमान ही थे। एक भी ऐसी नागरी प्रति उपलब्ध नहीं है जो सतरहवीं शती के पूर्व की हो।[१] पटना संग्रहालय के अध्यक्ष के उपर्युक्त उद्धरण से सिद्ध होता है कि प्रायः हिंदी कवि फ़ारसी लिपि से परिचित रहे होंगे। यहाँ पर हिंदी कवियों की फ़ारसी लिपि-जाकारी तथा हिंदी में प्रयुक्त फ़ारसी-साहित्य संबंधी प्राविधिक शब्दों के माध्यम से निरूपित स्फुट प्रसंगों के आधार पर प्रयुक्त तथ्यों के द्वारा हिंदी-कवियों का फ़ारसी जानकारी का दिग्दर्शन कराया जायगा। महमूद ग़ज़नवी काल के विद्वान् अलबीरूनी के बाद अमीर खुसरो से लेकर अकबरी दरबार के अबुलफ़ज़ल, फ़ैज़ी जैसे मुसलमान अरबी फ़ारसी के विद्वान

---

१. चन्दायन, पृ०२७-२८

संस्कृत और हिंदी से परिचित थे ऐसा इससे पूर्व कहा जा चुका है। मुल्लादाऊद, क़ुत-बन, मंझन, मलिक मुहम्मद जायसी जैसे मुसलमान सूफ़ी कवि अरबी-फ़ारसी से भली भाँति परिचित होंगे इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं। मनोहर कवि भी फ़ारसी का अच्छा कवि था तथा चंद्रभान ब्राह्मण का फ़ारसी ज्ञान प्रमाणित है।[1] इनके अतिरिक्त अन्य कवियों की तत्संबंधी जानकारी निम्न तथ्यों से भी पता चल सकती है। मुस्लिम-धर्म दर्शन एवं साहित्य के आदि ग्रंथ क़ुरान का नानक ने उल्लेख किया है—

कलि परवाणु कतेव 'क़ुराणु'। पोथीपंडित रहे पुराण ॥
नानक नाउ भइया रहमाणु। करि करता तू एको जाणु ॥[2]

अरबी शब्द शाइर से नानक परिचित मालूम पड़ते हैं—

तेरा हुकमु न जापी केतड़ा लिखि न जाणै कोई।
जे सउ 'साइर' मेलीअहि तिल न पुजावहि रोइ।[3]

सुन्दरदास ने कहा है कि फ़ारसी पढ़ने से ही आ सकती है—

पढ़ के नत्रैठों पास अक्षर न बांचि सकै, बिनही पढ़े ते कैसे आवत है फ़ारसी।[4]

तुलसीदास तत्कालीन राजभाषा से परिचित मालूम होते थे। इस विषय में रामनरेश त्रिपाठी भी तुलसी साहित्य के अध्ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में इतने अधिक अरबी-फ़ारसी के शब्दों का उपयोग किया है जितना शायद ही किसी हिंदी के पुराने और नये कवि ने किया हो—'मेरा अनुमान ही नहीं दृढ़ विश्वास भी है कि तुलसीदास अपने समय की राज-भाषा से अभिज्ञ थे और यही कारण है कि उन्होंने अपनी कविता में स्वतंत्रतापूर्वक राज भाषा के शब्दों का व्यवहार किया है।'[5] यहाँ उनके लिपि संबंधी दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

अनुस्वार अक्षर रहित, जानत हैं सब कोय।
कह तुलसी जहं लगि बरण, तासु रहित नहिं होय ॥[6]

जहाँ तुलसी ने इस दोहे में नागरी वर्णमाला के अनुस्वार के माध्यम से परमा-त्मा संबंधी दार्शनिक गुत्थी को सुलझाया वहां निम्न उदाहरण में अरबी, फ़ारसी वर्णो के माध्यम से फ़ल्सफ़ए ऐनुल यक़ीन और हक़्क़ुलयक़ीन का हल तलाश कर दिया है जो इनकी बहुमुखी प्रतिभा एवं पांडित्य का द्योतक है—

१. मुस्लिम सक़ाफ़त, पृ० ५५७, ५८
२. नानक-वाणी, पृ० ५०१
३. नानक-वाणी, पृ० १३२
४. सुंदर-विलास, पृ० ८-६
५. तुलसी और उनका काव्य, पृ० २५०
६. तुलसी-सतसई (छठा सर्ग दोहा ६), पृ० १८३

नाम जगत सम जानु जग, वस्तुन करि चित बैन।
बिन्दु गये जिमि 'गैन' ते, रहत ऐन को ऐन ॥[1]
आपु 'ऐन' विचार विधि, सिद्ध विमल मति मान।
आन बासना 'बिन्दु' सम, तुलसी परम प्रमान ॥[2]

ऐन और ग़ैन अरबी, फ़ारसी, उर्दू वर्णमाला के अक्षर हैं। ऐन पर बिन्दु नहीं होता और ग़ैन पर होता है। आकृति दोनों की एक सी होती है। बूल्लेशाह ने भी अरबी फ़ारसी वर्णमाला के इन्हीं वर्णो के माध्यम से नाम रूप के कारण पदार्थो में नानत्व स्पष्ट किया है—

टुक बूझ कबन छप आया है।
इक नुक्ते में जो फेर पड़ा, तब ऐन ग़ैन का नाम धरा।
जब मुरसद नुकता दूर किया, तब ऐनों एन कहाया है।[3]

कवि आलम जो ब्राह्मण से स्वेच्छा पूर्वक मुसलमान हुए थे उनपर तो विशेष रूप से मुस्लिम प्रभाव नजर आता है। अरबी-फ़ारसी वर्णमाला में क़ाफ़ भी एक वर्ण है। इसके माध्यम से फ़ारसी अंदाज का क्या सुन्दर हिंदी शेर कहा है—

अलक मुबारक तिय बदन लहकि परि यों साफ़।
खुसनसीब मुनसी मदन लिख्यो कांच पर 'काफ'।[4]

इसके अतिरिक्त यारी साहब[5], भीखा साहब [6]आदि सूफ़ी संत कवियों ने अलिफ़नामा (ककहरा फ़ारसी का) के अंतरगत अलिफ़[7] से लेकर ये तक, क्रम से अरबी फ़ारसी वर्णमाला के प्रत्येक वर्ण से प्रारंभ करके शेर कहे हैं जिनकी इस शोध प्रबंध के काव्यरूप (अलिफ़नामा) भाग में विस्तार से चर्चा की गई है। अनेक हिंदी कवियों ने अपने काव्य में अरबी, फ़ारसी, तुर्की के शब्दों का इतने सुंदर, स्वाभाविकि एवं ठीक रूप में प्रयोग किया है कि देखते ही बनता है। तुलसीदास इनके शिरोमण हैं। अत: कहा जा सकता है कि आलोच्यकालीन, राज्य द्वारा सम्मानित हिंदी में राज भाषा फ़ारसी के माध्यम से मुस्लिम-संस्कृति एवं साहित्य के प्रसार का बहुत अवसर मिला है जिसको हिंदी कवियों ने उदारता से ग्रहण किया।

१. तुलसी-सतसइ (चतुर्थ सर्ग, दोहा ७१), पृ० १३५
२. तुलसी-सतसई (चतुर्थ सर्ग, दोहा ७२) पृ० १३६
३. संत-वानी संग्रह (दूसरा भाग), पृ० १९०
४. रीतिकालीन-साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, पृ० ११३
५. यारी साहब की रत्नावली, पृ० ७-११
६. भीखा साहब की बानी, पृ० ७३
७. (दादू) अलिफ़ एक अल्लाह का, जो पढ़ि करि जाणै कोइ।
क़ुरान कतेबा इलम सब, पढ़ि करि पूरा होइ॥ दादू-बानी, भाग १, पृ० २३

डा० शिवलाल जोशी भी विस्तृत विवेचन के पश्चात् इस निश्कर्ष पर पहुँचे हैं 'ऐसा प्रतीत होता है कि खुसरो के समय में ही हिंदुओं ने फ़ारसी भाषा तथा उसके साहित्य का अध्ययन आरंभ किया था।[1]

हिंदी काव्य में फ़ारसी काव्यानुरूप भावाभिव्यक्ति—

मुस्लिम- काल में और विशेप रूप से मुग़ल दौर में ज्ञान, विज्ञान के प्रसार में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। कतिपय आलोचकों का मत है कि इस काल में भारत-वर्ष में जितनी अधिक मात्रा में तथा उच्च कोटि के फ़ारसी साहित्य की रचना हुई है, स्वयं ईरान में भी उस दौर में फ़ारसी साहित्य को इतना अधिक प्रोत्साहन प्राप्त नहीं था। राज भाषा फ़ारसी के साथ साथ राज्य-सम्मानित हिंदी साहित्य को भी मुस्लिम काल में अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

मकतवों में क़ुरान के अतिरिक्त बच्चों को फ़ारसी-साहित्य की शिक्षा आमतौर पर दी जाती थी। डा० चोपड़ा ने अपने शोध प्रबंध में मुग़ल कालीन पाठशालाओं के पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों की एक विस्तृत सूची दी है तथा काव्य, कथा-साहित्य, इतिहास, व्याकरण, नैतिकता शीर्षकों के अंतर्गत विषय विभाजन भी किया है।[2] और बताया है कि मुस्लिम दौर में किन किन फ़ारसी कवियों की रचनाएँ आमतौर पर पढ़ाई जाती थीं जिनमें से कुछ का उल्लेख किया जाता है। फ़िरदौसी कृत शहनामा, अमीर खुसरो की रचनाएं, मूल्लाजामी कृत यूसुफ़ जुलेखा, निज़ामी कृत सिकंदरनामा, मख़ज़ुनुल असरार, शीरीं ख़ुसरो, लैला मजनूँ, दीवाने हाफ़िज़, खाक़ानी, अनवरी, शम्स तबरेज, जहीर फ़ारयाबी (फ़ारयाबी) तथा शेख़सादी की रचनाएँ, गुलिस्ताँ, बोस्ताँ और क़साइदेबदरचाच आदि।

मकतबों और पाठशालाओं में मौलवियों और पंडितों की नियुक्ति होती थी तथा प्रत्येक वर्ग के लोगों को शिक्षा प्राप्ति का अधिकार था। डा० हरदेव वाहरी का मत है कि मुग़ल काल में मकतबों और मदरसों में हिंदूओं और मुसलमानों के साथ साथ शिक्षा ग्रहण करने के कारण गहरा प्रभाव पड़ा है।[3]

हिंदी साहित्य में सूफ़ी-काव्य परंपरा का यदि अलग से सूक्ष्म अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट रूप से फ़ारसी-साहित्य तथा इस्लाम धर्म-दर्शन की अनेक साहित्यिक एवं

---

१. रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि, पृ० २७८

२. सम आसपैक्ट आफ़ सोसाइटी एंड कल्चर ड्यूरिंग दी मुग़ल एज (अध्याय ६ एजुकेशन), पृ० १३६, १७२, १७५

३. दी हिंदूज़ टुक टु रीडिंग एंड राइटिंग पर्शियन.........दी इंफ्लूएंस वाज़ डायरे-एंड डीप एज़ हिंदूज एंड मुस्लिम स्टडीड टुगैदर इन दी सेम मकतव्स एंड मदरसाज़। पर्शियन इंफ्लूएंस आन हिंदी, पृ० ८

धार्मिक मान्यताओं का बहुत अधिक प्रभाव सामने आ सकता है। प्रस्तुत शोधप्रबंध के धर्म-दर्शन भाग में भी अनेक ऐसे उदाहरण प्रस्तुत कर दिये गये हैं। असूफ़ी कवियों पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

मुस्लिम दौर में दरबारों, अमीर-उमरा की महफ़िलों, पाठशालाओं, मकतबों, सूफ़ियों की दरगाहों आदि में फ़ारसी-साहित्य की इतनी चर्चा चलने पर अच्छे शेरों, उक्तियों एवं मुस्लिम अंतर्कथाओं का ज़रबुज़अमसाल (लोकोक्ति) बन कर जन सामान्य में प्रचलित हो जाना बड़ा ही स्वाभाविक मालूम होता है। मुशाइरों, साहित्यिक गोष्ठियों से लेकर क़िस्से कहानियों तक फ़ारसी साहित्य की अनेक मान्यताएँ जन सामान्य तक पहुँच गई तो हिंदी के उदार कवि इनसे परिचित कैसे रह सकते थे।

यहां केवल कबीर, जायसी और तुलसी के साहित्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं जिनसे पता चलता है कि ये कवि किसी न किसी रूप में फ़ारसी-साहित्यिक-मान्यताओं से अवश्य परिचित थे इसलिए तो अनेक फ़ारसी कवियों के अशआर (पद्यों) से या तो भाव साम्य मिलता है या कहीं कहीं उनका ज्यों का त्यों अनुवाद मिलता है।

कबीर—

कबीर के काव्य में जहाँ भारतीय धर्म-दर्शन-संबंधी जानकारी मिलती है वहाँ यह इस्लाम[1] तथा सूफ़ी साहित्य से भी प्रभावित है। डा० ताराचंद के अनुसार कबीर ने मुस्लिम सूफ़ियों के संपर्क में बहुत समय बिताया।[2] कबीर ने जात पात के बंधनों को नहीं माना। रमैनी के शब्दों एवं साखियों के माध्यम से इन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों, दोनों को उदारता की शिक्षा दी। इनका उद्देश्य दोनों में प्रेम का प्रसार करना था। डा० ताराचंद के शब्दों में कबीर की भावाभिव्यक्ति पर सूफ़ी दरवेशों और फ़ारसी-कवियों की पूरी पूरी छाप पाई जाती है[3] जिनमें पंदनामा फ़रीदुद्दीन अत्तार, जलालुद्दीन रूमी, शेख़सादी, जीली तथा बदरुद्दीन शहीद के उदाहरण देकर कबीर से तुलना की गई है। इतना ही नहीं इब्ने सीना मंसूर हल्लाज तथा इस्लाम के अनेक सिद्धान्तों का कबीर पर प्रभाव बताया है।

यहाँ पर फ़ारसी के विख्यात कवियों के कुछ शेर दिये जाते हैं। कबीर के काव्य में भी इन शेरों के समान ही भावाभिव्यक्ति मिलती है और कहीं कहीं शब्द साम्य भी इतना अधिक है कि अनुवाद सा लगता है।

उमर ख़य्याम (मृ० ११२३ ई०) कहता है यह कुल्हड़ बनाने वाले कुम्हार

१. देखिये—प्रस्तुत शोध प्रबंध का धर्म-दर्शन भाग।
२. इंफ्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर (रामानन्द एण्ड कबीर), पृ० १४८, १४९
३. इंफ्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, पृ० १५१

(जिनके हाथ मिट्टी, गारे में भरे हुए हैं और उसी पर अपनी अक़ल, बुद्धि तथा होश को लगाए हुए हैं) कब तक उसपर मुक्के, लात और चपत मारते रहेंगे। उनके मुंह में खाक वह इस मिट्टी को क्या समझते हैं। यह मिट्टी बड़े बड़े प्रतिभाशाली महान् पुरुषों की खाक है। उनको इसकी ऐसी दुर्गति नहीं करनी चाहिये—

ईं कूज़ा गरां कि दस्त बर गिल दारंद।
अक़्लो ख़िरदो होश बरां बे गुमारंद॥
मुश्तो लगदो तमांचा ता चंद जनंद।
ख़ाके बदहाने शां चे मी पिंदारंद॥[1]

माटी कहै कुम्हार से तू क्या रूंदे मोहि।
यक दिन ऐसा होयगा मैं रूंदूंगा तोहि।[2]

हाफ़िज़ शीराज़ी (मृ० १३९० ई०) के फ़ारसी शेर का एक मिस्रा (चरण) ज़रबुल मिस्ल (लोकोक्ति) की भांति मशहूर है जिसका अर्थ है हर शख्स अपनी नौबत पांच दिन बजा लेता है अर्थात् प्राणी क्षण भंगुर है—

हर कसे पंज रोज़ः नौबते ऊस्त।[3]

उन्हीं शब्दों में कबीर ने भी कहा है—

कबीर नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाइ।[4]
चारि दिन अपनी नौबति चले बजाइ।[5]

फ़िरदौसी (मृ० १०२५-२६ ई०) कहता है कि तू इस रंजोग़म से भरपूर क्षण भंगुर संसार से क्या दिल लगाता है यहां तो हर समय चलचलाव और कूच के नक़ारे (कोस) की आवाज़ आती है—

चे बन्दी तो दिल बर सराए फ़सोस।
कि हरज़मां हमी आयद अदाए कोस॥

कबीर ने इसी विचार को यों व्यक्त किया है—

कबीर सरीर सराए है क्या सोए सुख चैन।
स्वास नगारा कूच का बाजत है दिन रैन॥[6]

अबुलफ़रज ने कहा है हर शख्स (छोटा बड़ा) अपनी क्षमता के अनुसार आपत्ति में फंसा (गिरफ़तार) है उसने किसी को भी पूर्णतया दुख, कष्ट से बरी (मुक्त) नहीं किया—

---

१. तज़करावतबसरा व रुबाईयाते हकीम उमर ख़य्याम,
२. हिन्दी नवरत्न (महात्मा कबीरदास जी), पृ० ४३६
३. फ़िरहंगे अमसाल, पृ० १८८
४. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १६
५. कबीर-ग्रंथावली, पृ० २१७
६. काव्य-संग्रह (कबीरदास), पृ० २९

हर कस वक़दरे ख़ेश गिरफ्तारे महनत अस्त
कस रा न दादः अन्द वराते मुसल्लमी

कवीर कहते हैं—

राजा दुखिया प्रजा दुखिया जोगी को दुख दूना री
कहे कवीर सुनो भाई साधो कोइ मंदिर नही सूना री।

मौलाना रूम (मृ० १२७३ ई०) कहते हैं आँख, होठ, कान वंद कर अर्थात् दम को रोक तुझे उसका दीदार हो जाएगा और यदि दीदार न हो तो मुझ पर हँस—

चश्म वन्दोलब व वन्दो गोश वंद।
गर न बीनी सिरेहक़ बरमन व खंद ।।

कवीर का निम्न पद भी इसी भाव का मालूम होता है—

देख री देख तुझ महि तेरा धानी, दम को रोक दीदार पावे।
दम को रोक औरु मूल को वंदकर, चांद सूरज घर एक आवे ।।

शेखसादी (११८४-१२९१ ई०) का एक फारसी शेर जरबुलमिस्ल (लोकोक्ति) बन गया है जिसका अर्थ है कि किसी का दिल मोह लेना (ढाढ़स, सांत्वना देना) बड़ा हज है और हजारों कावों से एक दिल की महत्ता अधिक है—

दिल वदस्त आवर कि हज्जे अकबर अस्त।
अज़ हज़ाराँ कावा यक दिल वेहतर अस्त ।।[1]

कवीर कहते हैं—

सतरि कावे इक दिल भीतरि, जो करि जानै कोई ।।[2]

फारसी के कवि शेखसादी का एक शेर है जिसका अर्थ है जब तक मनुष्य मुँह से वात नहीं निकालता या वोलता नहीं तव तक उसके व्यक्तित्व के विषय में कुछ ठीक पता नहीं चलता—

ता मरद सखुन न गुफतः बाशद, ऐवो हुनरश नहुफतः बाशद[3]

कवीर के इस पद में कितना भावसाम्य है—

वोल्यां पीछे जांणिये, जो जाकौ व्यौहार ।।[4]

अव यहाँ पर तसव्वुफ संबंधी फारसी कवियों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाएंगे। भाव साम्य की दृष्टि से कबीर के यहाँ भी अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जो मुस्लिम सूफियों तथा जन सामान्य में प्रचलित फारसी कवियों के काव्य संपर्क का परिणाम मालूम पड़ते हैं।

---

१. फरहंगे अमसाल, पृ० १०६
२. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १३०
३. कुल्लयाते शेखसादी, पृ० ८१ तथा जखुल अमसाल, पृ० ६३
४. कवीर-ग्रंथावली-(पाद टिप्पणी), पृ० ६२

समस्त सूफी मौत की प्रतीक्षा में रहते हैं ताकि अस्तित्व का परदा दूर हो जाए और बिंदु सिंधु में जा मिले। अबू सईद (३५७ हि; ९४७ ई० पैदाइश) ने भी इस पर प्रसन्नता प्रकट की है—

दिल खस्तओ सीना चाक मी बायद शुद। वज़हस्तीए ख़ेश
पाक मी बायद शुद॥
आंवह के बखुद पाक शवेम अव्वलेकार। चूं आख़िरे कार ख़ाक
मी बायद शुद॥[1]

कबीर ने भी इसको निर्भय होकर कहा है—

जीवन थे मरबो भलो जो मर जाने कोए।
मरने पहले जे मेरे कुल अजरावर होए॥[2]

प्राचीन भारतीय साहित्य तथा धर्म साधना में मृत्यु को त्याज्य एवं अकाम्य माना गया है किंतु कबीर के लिए वह मृत्यु सूफियों की भांति परम काम्य है। प्रस्तुत उदाहरण में कबीर ने कहा है कि हक़ीक़त की मौत ज़िंदगी से कहीं बेहतर है। इससे भी अधिक स्पष्ट रूप में मस्त सूफी की भांति कबीर कहते हैं—

जा मरने से जग डरे मेरे मन आनन्द.[3]

सूफियों में दिलआज़ारी को विशेष रूप से मना किया गया है। हाफिज़ कहते हैं कि संसार में और जो चाहे कर ले किंतु किसी की दिल-आज़ारी (दिल दुखाना) मत कर, किसी को कष्ट मत दे, क्योंकि हमारी शरीअत में इससे बढ़कर और कोई पाप, अपराध नहीं है—

मबाश दरपए आज़ार व हरचे ख्वाही कुन।
कि दर शरीअते मां ग़ैर अज़ीं गुनाह नेस्त॥[4]

शेख़ सादी ने अत्यंत प्रबल शब्दों में कहा है कि दुखे हुए दिल की आह (चीत्कार) दुनिया में इंक़लाब पैदा कर देती है—

चिराग़े कि बेवां जने वर फ़रोख्त। बसे दीद: बाशी कि शह्रे बसोख्त[5]

कबीर कहते हैं—

दुरबल को न सताइए, जाकी मोटी हाय।

---

१. अबूसईद, आईनाए मारफ़त, पृ० १३०
२. आईनाए मारफ़त, पृ० १३०
३. हिंदी-नवरत्न (महात्मा कबीरदास जी), पृ० ४३७
४. फरहंगे अमसाल, पृ० १९३
दूसरा मिस्रा इस प्रकार भी है—कि दर तरीक़ते मां हेच अज़ीं गुनाहे नेस्त।
५. फरहंगे अमसाल, पृ० ७३

बिना जीव की सांस सों, लोह भसम ह्वै जाय ॥[1]

एक और हिंदी पद्य भी ऐसा ही है—

दुखिया को तुम जनु कल्पाओ कि दुखिया देहि रोय।
दुखिया के जो मुखिया सुनहि जड़ से देहि खोय ॥

मलिक मुहम्मद जायसी

फ़ारसी-साहित्य में जिन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व जलालुद्दीन रूमी, हकीम सनाई, निज़ामी गंजवी और हाफ़िज शीराजी आदि कवियों ने किया है उसी प्रकार का प्रतिनिधित्व हिंदी-साहित्य में क़ुतवन, जायसी और उसमान के हाथों हुआ। हिंदोस्तान में सर्व प्रथम अमीर खुसरो ने रूमी एवं हाफ़िज़ का अनुकरण किया और फिर हिंदी-साहित्य में फारसी-साहित्य की अनेक परंपराओं का प्रचलन हो गया। मुसलमान सूफी खासतौर पर क़ुरान, हदीस के साथ साथ अरबी-फ़ारसी-साहित्य का अच्छा खासा ज्ञान रखते थे।

हिंदी के मुसलमान सूफ़ी कवि भी इसका अपवाद नहीं थे। इसीलिए इनकी रचनाओं में भारतीय धर्म-दर्शन और सामान्य ज्ञान के साथ साथ इस्लाम तथा फ़ारसी-साहित्य की पूरी पूरी छाप मिलती है। मलिक मुहम्मद जायसी वंश परंपरा की दृष्टि से अरबी थे। इनके जीवन एवं साहित्य के सूक्ष्म अध्ययन से तथा इनकी 'आखिरी-कलाम' जैसी रचना से मुस्लिम धर्म-दर्शन की जानकारी का पूर्ण विश्वास हो जाता है तथा पद्मावत से पता चलता है कि इन्हें फ़ारसी की साहित्यिक-परंपराओं का अच्छा ज्ञान रहा होगा। सूफ़ी कवियों की मसनवियों में स्तुति खंड तो इस्लाम एवं फ़ारसी साहित्य की परंपरानुकूल है हीं अन्य स्थलों पर अरबी-फ़ारसी परंपराओं का समावेश मिलता है। पद्मावत फ़ारसी-अंदाज़ का प्रेम-काव्य है, अभिप्राय यह है कि हिंदी और संस्कृत साहित्य परंपरा के विपरीत इसमें औरत (पद्मावती) को माशूक़ और मर्द (रत्नसेन) को आशिक बनाया गया है। पद्मावत की तकनीक फ़ारसी-मसनवियों जैसी है। फ़ारसी मसनवियों में प्रत्येक आख्यान (हर दास्तान) के चारों ओर विभिन्न पात्र (के गिर्द मुख्तलिफ किरदार) हैं। उन किरदारों (पात्रों) की वागडोर रम्ज़ियत (प्रतीकात्मकता) के हाथों में है। यद्यपि उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम लौकिक है किंतु वास्तव में हक़ीक़त (अलौकिकता) ही उनकी मंज़िल है जैसे जलालुद्दीन रूमी की मसनवी 'मौलवी मानवी', निज़ामी गंजवी की खुसरो-शीरीं और लैला मजनूं आदि। यही अंदाज़ पद्मावत का है। यहाँ इनके काव्य में फ़ारसी-साहित्य से मिलते-जुलते तथ्यों का उल्लेख किया जाता है।

---

१. जैसे खाल लोहार की सांस लेत बिनु प्रान।
बिना जीव की स्वांस सों लोह भसम ह्वै जाय ॥

पद्मावत के वे भाग जो न्यायप्रिय शहंशाह की प्रशंसा में लिखे हैं[1] वे फ़ारसी के विख्यात कवि जहीर फारयावी (मृ० १२०१-२ ई०) के क़सीदों के रंग पर हैं।[2] निज़ामी की फारसी कृति सिकंदरनामा में कहा गया है कि आदमी औरतों के तिरिया चरित्र को वशीभूत नहीं कर सकता जिसका उदाहरण यह है कि जब नौशावा ने देखा कि सिकंदर का मुक़ाबला व्यर्थ है तो अपनी शक्ति का विचार मस्तिष्क से निकाल कर उसकी चेरी बन गई। जायसी ने भी एक स्थान पर ऐसा ही कहा है—

पुरुष न करहिं नारि-मति कांचि। जस नौशावा कीन्ह न बांची॥
परा हाथ इसकंदर वैरी। सो कित छोड़ कै भई बंदेरी॥[3]

फ़ारसी कवि फ़िरदौसी (मृ० १०२५-२६ ई०) के शाहनामे में एक स्थान पर आया है—

ज़े सुम्मे सुतूरां दरां पह्न दश्त। ज़मी शिश शुदो आसमां गश्त हश्त॥

जिसका अर्थ यह है कि उस लंबे चौड़े मैदान में घोड़ों की टापों से तबक़ाते-ज़मीन [पृथ्वी खंड] सात के स्थान पर छः रह गये और आसमान सात तबक़ (खंड) के स्थान पर आठ हो गये। मुस्लिम परंपरा के अनुसार ज़मीन और आसमान के तबक़ात [खंड] सात सात हैं। जायसी ने पद्मावत में अलाउद्दीन की चढ़ाई का उल्लेख करते हुए घोड़ों की टापों से उठती हुई धूल तथा आसमान पर छाई हुई धूल को इसी प्रकार अभिव्यक्त किया है—

सत-खंड धरती भइ षटखंडा। ऊपर अष्ट भए बरम्हंडा॥[4]

हाफ़िज़ शीराज़ी का एक शेर है—

अज़मे दीदारे तो दारद जानबर लब आमदः।
बाज़ गरदद या बर आयद चीस्त फरमाने शुमा॥

अर्थात् तुम्हारी दर्शनाभिलाषा के कारण प्राण होठों पर आ गये हैं, क्या आज्ञा

---

१. सेरसाहि देहली सुलतानू। चारिउ खंड तपै जस भानू॥
ओही छाज छात औ पाटा। सब राजै भुइं धरा लिलाटा॥
जाति सूर औ खांडे सूरा। औ बुधिवंत सबै गुन पूरा॥
सूर नवाए नवखंड वई। सातउ दीप दुनी सब नई॥
तहं लगि राज खड़ग करि लीन्हा। इसकंदर जुलकरन जो कीन्हा॥
हाथ सुलेमां केरि अंगूठी। जग कहं दान दीन्ह भरि मूठी॥
जायसी-ग्रंथावली (पद्मावत), पृ० ५-६

२. दीवान जहीर फारयावी क़साइद पृ० २६, ४५, ६५, १३०, १३१, ६०

३. जायसी-ग्रंथावली, (पद्मावत), पृ० २८६

४. जायसी-ग्रंथावली, (पद्मावत), पृ० २२६

है, रह जाएं या निकल जाएँ। इसी ढंग पर पद्मावत में राजा रत्नसेन का संदेश भी सुआ जाकर यों ही पहुँचाता है—

दहुं जिउ रहै कि निसरै, काह रजायसु होई ?[१]

इन सूफी कवियों के काव्य के अध्ययन से पता चलता है कि जितनी गहरी छाप इन पर मुस्लिम परम्पराओं की थी, भारतीय धर्म-दर्शन की इनकी जानकारी भी कुछ कम न थी। इनका उद्देश्य हिंदू मुस्लिम-एकता था तभी तो इन दोनों संस्कृतियों को शीरोशकर के समान एक कर दिखाया था।

तुलसीदास

तुलसीदास के काव्य में तत्कालीन मुस्लिम शासन संबंधी चित्र भी मिलते हैं। इतना ही नहीं इन्होंने अपनी कृतियों में उदारतापूर्वक सैकड़ों अरबी-फारसी-तुर्की शब्दावली के माध्यम से तत्कालीन मुस्लिम-संस्कृति के भावों की अभिव्यक्ति की है। इन शब्दों का इतना उचित एवं सुंदर ढंग से प्रयोग किया है कि जिनके आधार पर इससे पूर्व यह कहा जा चुका है कि तुलसीदास जी संभवतः तत्कालीन राजभाषा फ़ारसी से परिचित रहे होंगे। यहाँ पर इनके फ़ारसी साहित्य के संपर्क के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

तुलसीदास जी ने अपने भावों को मुस्लिम-संस्कृति की प्रमुख भाषाओं-अरबी फारसी, तुर्की शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करके हिंदू-मुस्लिम-संस्कृति की सामासिकता तथा समन्वयात्मकता का परिचय दिया है। इससे पूर्व कि यहां पर फ़ारसी साहित्य से संपर्क के कुछ उदाहरण दिये जाएँ एक हिंदी उदाहरण प्रस्तुत है—

लागति सांगि विभीषण-ही पर सीपर आपु भये हैं ॥[२]

यहाँ पर शुद्ध फ़ारसी शब्द सिपर (ढाल) का तुलसीदास जी ने हीपर का अनुप्रास मिलाने के लिए ही सीपर बना लिया है जिसका एक प्रतिभाशाली कवि को अधिकार होता है। इससे तथा इनके साहित्य में अनेक ऐसे प्रयोग मिलते हैं जिनसे इनकी फारसी जानकारी का अंदाजा हो सकता है।

तत्कालीन शहंशाहों के प्रभुता-संपन्न होने तथा स्वेच्छाचारिता के भी उदाहरण इतिहास में मिलते है। इसीलिए फ़ारसी का यह मक़ूला बना—

गाहे ब दुशनाय खिलअत दहंद व गाहे बसलाम मीरंजंद

अर्थात् कभी तो अपशब्द सुनकर भी शहंशाह बखशिश कर देते थे और कभी सलाम करना भी पसंद न आने पर सज़ा सुना देते थे। तुलसीदास कहते है—

खीजे पर निज लोक दियो और रीझे पर दइ लंक।

---

१. जायसी-ग्रंथावली (पद्मावत), पृ० ६६

२. तुलसी-ग्रंथावल, भाग २ (गीतावली), पृ० ३३०

अन्धा वुंच सरकार है, तुलसी भजी निसंक ॥

इससे भी अधिक रोचक एक उदाहरण फ़ारसी के विख्यात कवि शेख सअदी (५८६ हिजरी) का एक शेर है—

अब्र अगर आबे जिंदगी बारद । हरगिज अज़ शाखे बेद बर न खुरी ॥[1]

इसका अर्थ है कि यद्यपि अब्र (अब्रे नैसां) जलद जीवन प्रदान करने वाली वर्षा ही क्यों न करे बेद (फारसी में एक प्रकार की लचीली कड़की, बेत्र, बेंत[2]) से कोई फल हीं खा सकता । ग्यासुल्लुग़ात में बेद के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—ब फ़तहे जमा बेदाए कि ब मानी बयाबनस्त ब बमानी पेबंदो हलाकशुदन । ब बिलकस, दर फारसी नामे दरख्त अस्त गोयंद कि बार न दारद, ब मुअल्लिफेईं किताब बारे सर्व व बेद हरदो दीद: अस्त मगर क़ाबिले खुरदन न बाशद, मगर बेदे सादा ब जुज़ शगूफा समर न दारद..............।[3] फारसी के इस प्रामाणिक शब्द कोश में बेद की विस्तार से चर्चा मिलती है । यहां यह चर्चा इसलिए की गई कि गुरुवर आचार्य हाजरीप्रसाद द्विवेदी जी से इस विषय में महत्वपूर्ण तथा विस्तृत चर्चा सुनने को मिली थी । प्रस्तुत शब्द-कोश का भावार्थ इस प्रकार है—बेद के जबर (अ) से लिखे जाने पर अर्थ वन, जंगल, बयाबान होते हैं और फारसी शब्द बेद को ज़ेर (बिलकसर ज़ेर (इ)) से लिखे जाने पर एक दरख्त को कहते हैं जो फल नहीं रखता किंतु इस शब्दकोश के संपादक का कथन है कि उसने सर्व और बेद दोनों के फल देखे हैं जो खाने योग्य नहीं होते किंतु सादा बेद पर फूल के अतिरिक्त फल नहीं आता । इसके अतिरिक्त साहेब लताइफ एवं सिराजुल्लुग़ात व बहारेअजम तथा अन्य कोशों के आधार पर भी बेद के अनेक प्रकारों, जैसे—गुरब: बेद, खर बेद, बेदे मजनून, मुश्कबेद, बेदे सादा, बेदे सुर्ख, बेदे सियाह आदि की चर्चा की गई है ।

यहाँ तो तुलसीदास के इस उदाहरण को प्रस्तुत करना है जो सादी के शेर का शब्दश: अनुवाद मालूम पड़ता है—

फूलै फरै न बेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद ।[4]

प्रस्तुत उदाहरणों में तुलसी के पांडित्य एवं फारसी ज्ञान का पता चलता है । शेख सादी का ही फ़ारसी का एक मशहूर शेर है—

दोस्त मशुमार आँ कि दर नेमत जनद । लाफयारी ओ ब्रादर ख्वांदगी ॥
दोस्त आँ दानम कि गीरद दस्ते दोस्त । दर परेशां हालिओ दरमांदगी ॥[5]

---

१. कुल्लयाते शेखसादी, पृ० ८४

२. उर्दू-हिंदी शब्दकोश, पृ० ४५३

३. ग्यासुल्लुग़ात, ७७

४. तुलसी ग्रंथावली (दोहावली ४८४), भाग २, पृ० १२०

५. कुल्लयाते शेख सादी, पृ० ६३ एवं फर[illegible] अमसाल, पृ० १०८

जिसका अर्थ यह है कि उसको दोस्त मत गिन जो ऐश के ज़माने में दोस्ती और भाई बन्दी की डीगे मारता है अपितु मैं उसको सच्चा मित्र समझता हूँ जो विपत्ति के समय अपने मित्र के काम आए। रहीम ने भी ऐसा ही कहा है—

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे सो ही सांचे मीत॥

तुलसीदास के निम्न उदाहरणों में कितना भाव साम्य पाया जाता है—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्है विलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्र के दुख रज मेरु समाना॥
जिनके असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥[१]
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिये चारी॥[२]

यहाँ पर तुलसीदास पर फ़ारसी कवियों का प्रभाव दिखाने का कोई उद्देश्य नहीं है अपितु कहना यह है कि जब महमूद ग़ज़नवी के समय में अबूरेहान अलबीरूनी, अरबी-फ़ारसी तुर्की के साथ संस्कृत का भी डित था, मसऊदसाद सलमान, अमीर ख़ुसरो तथा अन्य सूफी कवियों के अतिरिक्त अकबर कालीन फारसी के विख्यात कवि अबुल फज़ल और फैज़ी हिंदी में रचना करते थे, मनोहर तथा चंद्रभान व्रह्मण फ़ारसी के भी कवि थे और अन्य मुग़ल सम्राटों के अतिरिक्त औरंगज़ेब तक ने हिंदी में रचना की है तो तुलसीदास जैसे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न उदार समन्वयवादी महाकवि तत्कालीन राजभाषा फारसी से अनभिज्ञ रहे हों, यह कहाँ तक युक्तिसंगत है ? यही कारण है कि फारसी कवियों के काव्य की सी भावाभिव्यक्ति इनके काव्य में भी मिल जाती है।

(४) कला

(क) संगीत कला

आर्य लोग जव मध्य एशिया, ईरान आदि प्रदेशों में से होकर भारत आए तो अपने साथ एक उन्नत-गान विद्या-विधान लेकर आए थे। इस संवंध में ईरानियों को सासानियों से भी वहुत कुछ प्राप्त हुआ।[३] प्राचीन भारत में सामवेद तथा अन्य वैदिक साहित्य में संगीत का आदर्श विधान मिलता है जो आर्यों का भारत को महान् उपहार कहा जा सकता है।

अरव में इस्लाम से पूर्व संगीत की वड़ी चर्चा रही है। मूर्तिपूजक अरव अपनी

१. रामचरितमानस (किष्किन्धा काण्ड, ७), पृ० ४४६
२. रामचरितमानस (अरण्य काण्ड, ५), पृ० ४०६
३. ईरान एंड इंडिया थ्रू दी ऐजेज़ पृ० २३५

मूर्तियों को प्रसन्न करने के लिए तथा उत्सवों आदि पर संगीत को बड़ा महत्व देते थे। इस कला में भोग-विलास होने के कारण इस्लाम ने इस पर कुछ प्रतिबंध लगा दिए । सामान्य मुसलमान संगीत कला को हराम (धर्म-विरुद्ध) समझते हैं, किंतु इस्लाम ने मौसीक़ी (संगीत) को हराम बताया हो ऐसा धर्म-ग्रंथों से पता नहीं चलता। एक विद्वान का यह कथन है कि क़ुरान मजीद में कहीं ऐसा स्पष्ट उल्लेख नहीं है जिससे यह कहा जाए कि मौसीक़ी हराम है और न ही किसी प्रामाणिक हदीस में मौसीक़ी को हराम कहा गया है।[१]

निस्संदेह इस्लाम में आमोद-प्रमोद को भोग-विलास की सीमा तक स्थान नहीं दिया गया है तथा सदैव ही सात्विकता (प्यूरिटेनिकल व्यू) पर बल दिया गया है, किंतु लेगेसी आफ़ इस्लाम (मीरासे इस्लाम) के देखने से पता चलता है कि इस्लाम से पहले और इस्लाम के बाद भी मुसलमानों और विशेष कर अरबों ने इस कला में कितनी अधिक उन्नति की थी । जब अरब ईरानियों के संपर्क में आए तो इनके दृष्टिकोण में और भी लचक आ गई । इसके अतिरिक्त ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि जब अब्दुल्ला इब्नज़ुबैर काबा शरीफ़ (पवित्रतम धर्म स्थान) की मरम्मत कराना चाहता था तब उसने ईरानी और यूनानी मेमारों (भवन निर्माण-कारीगर) को भी बुलाया जो मरम्मत करते समय गाते रहते थे और मरम्मत भी करते रहते थे, उन्हें ऐसा करने से रोका भी नहीं गया तथा अरबों ने भी उससे प्रेरणा प्राप्त की।[२]

मुसलमान जब ईरान होते हुए भारत में आए तो अपने साथ एक उन्नत निज़ामे मौसीक़ी (संगीत विधान) लाए थे। इसमें गायन वादन दोनों ही प्रकार थे। उधर अरब शासक भी संगीत-कला का संरक्षण करते रहे थे तथा प्रजा ने भी उनका अनुकरण किया । इब्ने सीना, फ़ाराबी और अलकिंदी जैसे महा पंडित इसके समर्थक थे और इन्होंने मौसीक़ी के विषय में महान् ग्रंथों की रचना की।[३] धीरे धीरे दमिश्क़, बग़दाद तथा ग़रनाता संगीतकला के प्रमुख केंद्र बन गए और अरब मौसीक़ी ने योरोप को बहुत कुछ दिया।[४] संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुसलमान भारत-आगमन के समय तक अरब, ईरान तथा मध्य एशियाई मौसीक़ी को उत्तराधिकार रूप में अपने साथ लाए।

इस विवरण को देने के पांच प्रमुख कारण हैं। एक तो यह कि एक ओर भारत एक उन्नत संगीत-विधान रखता था । दूसरे अरबों तथा बाद के सूफियों ने ईरान एवं अरब

---

१. दौरे जदीद (पत्रिका), जून १९६३, पृ० १४

२. विवरण के लिए देखिए—ईरान एंड इंडिया थ्रू दी एजेज, पृ० २३७

३. मीरासे इस्लाम, पृ० ५०९

४. मीरासे, इस्लाम, पृ० ५२०

आदि से प्रेरित होकर अपनी साधना में मौसीक़ी (समअ) संगीत को बड़ा महत्व दिया। तीसरे भारतवर्ष के अनेक मुस्लिम शासक संगीत-कला के महान् संरक्षक हो गुजारे हैं।[१] चौथे अमीर खुसरो, मियाँ तानसेन तथा शरक़ी खानदान के अनेक ऐसे महान् कलाकार भारत में हो गुजरे हैं जिन्होंने अनेक राग-रागिनियों को जन्म दिया और वाद्य यन्त्रों को ईजाद किया एवं सुधार किया।[२] मुस्लिम-सूफी कवि भी मौसीक़ी से भली-भांति परिचित थे। जिसके परिणाम-स्वरूप हम देखते हैं कि आलोच्यकालीन हिंदी-साहित्य में सूफी कवियों के अतिरिक्त सूर-तुलसी आदि कवियों ने अनेक ऐसे अरबी फारसी वाद्य यन्त्रों आदि की चर्चा की है जिनका पौराणिक चरित्रों (राम कृष्ण) की लीलाओं, उत्सवों, विवाह प्रसंगों में वर्णन तत्कालीन मुस्लिम-संस्कृति के प्रतीक दरबार एवं सूफी-कवियों के संपर्क का स्पष्ट परिणाम है।

संगीत संबंधी अरबी-संस्कृत शब्दों का साम्य—

संगीत कला संबंधी कुछ प्राविधिक शब्दों के विषय में सम्मेलन की पत्रिका ने अरबी तत्सम शब्द दिये हैं।[३] जिनका उल्लेख रोचकता से खाली नहीं है।
निदा (अरबी)=नाद[४]=आवाज़, नदब—नद (अ०)=नाद=आवाज़, नादी (अ०) =नादी=पुकारनेवाला, ग़िना (अरबी)=गान=गायन=गाना,[५] ताल[६] (अरबी) =तार[७]=ऊंचा, शामिल (अ०)=सम्मिल=सम्मिलित, ऊद (अ०)=आवृत= लौटना, इश्क़ (अ०)=आसक्ति=प्रेम करना, आशिक़ (अ०)=आसक्त=प्रेमक रने वाला, रग़ब—रागि (अ०)=राग, राग़िब (अ०) रागी=प्रेमी। इन शब्दों से ही हिन्दोस्तान और अरब के संगीत की प्राचीनता का अन्दाज़ा होता है।

राग-रागिनियां—

राग-रागिनियों के विषय में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि भारतीय संगीत-

---

१-२. एन आउट लाईन आफ़ दी कल्चरल हिस्ट्री आफ़ इंडिया (म्यूजिक), पृ० ३३४ तथा हिंदी-साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ० ७३०, ६५५

३. सम्मेलन पत्रिका प्रयाग, भाग ४५, संख्या ४, आश्विन शक संवत् १८८१ पृ० ८७-८९

४. क. जैसे मगन 'नाद-रस' सारंग बधत वधिक बिन बान—सूर-सागर, १-१६९
ख. बचन रसाल सुरति और भूली सुनि बन मुरली 'नाद' कुरंगी—
परमानंददास, २४९

५. काफी राग मुख गावैं, मुरली वजाइ री। सूर-सागर, २८८७

६. क. 'ताल' त्रिवट ततकार चांचर खेल मनाइए—कुंभनदास, ७२
ख. राग केदारी, चर्चरी 'ताल' साजै। छीतस्वामी, ११८

७. नाचति कुंवरि मिले 'झपतार'—सूर-सागर, ११८०

कला यद्यपि अत्यन्त उन्नत थी किंतु मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क से आए हुए ईरानी, अरबी तथा अन्य परंपरा के रागों का भी प्रचलन हुआ। अमीर खुसरो, तानसेन तथा हुसैन शाह शरकी आदि कलाकारों ने हिंदोस्तान में अनेक ढंगों का प्रचलन किया जिनमें खुसरो की अट्ठारह बहारें भी हैं।[1] चिश्तिया-बहिश्तिया नामी पुस्तक (१६५५ ई०) में अमीर खुसरो की ईजादों का विवरण भी मिलता है। अमीर खुसरो द्वारा आविष्कृत रागों में से कुछ ये हैं। साजगारी, ऐमन (यमन) उश्शाक़, ग़ज़ल, ज़ीलफ़, फ़रग़ाना···शाहाना सिवील।[2]

हुसैनशाहशरकी शाहे जौनपुर (१४५७ ई०)ने ध्रुपद के ढंग पर ख़याल ईजाद किया।[3] सन्तों ने ध्रुपद के साथ साथ ख़याल भी गाए हैं। यह अरबी शब्द है और फ़ारसी में भी प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है विचार तथा गायन का एक विशेष प्रकार एवं छंद विशेष में की हुई कविता। राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी इच्छा से विभिन्न आलाप तानों का विस्तार करते हुए एक ताल, तीन ताल, चौताल आदि तालों में गाया जाता है। श्रृंगार रस इसका मुख्य विषय होता है। बड़े ख़याल विलम्बित तथा छोटे ख्याल द्रुत में गाये जाते हैं।[4] संत गुंडा केशो का एक ख्याल उद्धृत किया जाता है—

ख्याल

लगी प्रेम लगन कि याद
पीया बिन जियेरा केकर जीये
खुदस्ते वू नियाद ॥
मेहरबक्ष दयाल अजीज कुं
और न ज्यानु बादा ॥
गुंडा केशो प्रेम दीलंया,
तेरी खाने ज्यादा ॥[5]

इसके अतिरिक्त आचार्य विनयमोहन शर्मा ने अपनी पुस्तक में मुस्लिम संपर्क से आए हुए अनेक राग रागिनियों तथा गायकियों की चर्चा की है और उदाहरण भी दिये हैं। जैसे राग भूपाली[6] राग हुसैनी मुंडा[7] लावनी[8]। हुसैनशाह द्वारा रचित अन्य

१. एजाज़े खुसरवी, पृ० १८०   २. सक़ाफ़ते पाकिस्तान, पृ० १००
३. मुस्लिम ईयर बुक आफ इंडिया, १९४८-४९, पृ० ११४-१५
४. संगीत-विशारद, पृ० १२८, १२९
५. हिंदी को मराठी संतों की देन, पृ० ४६३, ४६४
६. हिंदी को मराठी संतो की देन, पृ० २३७
७. हिंदी को मराठी संतों की देन, पृ०३७० पर नं० ३६-४२
८. हिंदी को मराठी संतों की देन' पृ० २३१

नए नए राग रागिनियों का उल्लेख करते हुए 'सालिक' ने लिखा है कि कान्हड़ा के दो प्रकार, कल्यान में शाम कल्याण के दस प्रकार, राग भूपाली, जौनपुरी टोडी, टोडी रसूली......आदि इनकी ईजाद हैं।[1] इस प्रकार ग़जल, ख़याल, तराना, क़व्वाली, लावनी, रेख़ता, क़ौल, क़लबान आदि अनेक प्रकारों का प्रचलन मुस्लिम-संपर्क से हुआ है।[2] जिनका आलोच्यकालीन हिंदी साहित्य में उल्लेख होना स्वाभाविक था। यहां पर उपर्युक्त रागों आदि में से कुछ अन्य का संकेत मात्र किया जाता है। रहीम की मदनाष्टक में रेख़ता गाने का उल्लेख है।

जरद बसनवाला गुल चमन देखता था। झुक झुक मतवाला गावतां रेखतां था॥[3]

सूर आदि गायक कवियों ने भी अपनी लीला वर्णन एवं उत्सवों पर जहाँ प्राचीन भारतीय रागों का उल्लेख किया है वहाँ ऐमन (यमन) भूपाली, कान्हरा आदि मुस्लिम-संपर्क से आए हुए उपर्युक्त रागों का भी उल्लेख मिलता है —

सुर सावंत 'भूपाली ईमन' करत कान्हरो गान।[4]

परमानंददास, नंददास आदि अष्टछाप के गायक कवियों ने कृष्ण लीलाओं, पर्वोत्सवों तथा भजनों में अनेक प्राचीन भारतीय राग रागिनियों का उल्लेख किया है वहाँ तत्कालीन मुस्लिम संपर्क से भी अनेक राग रागिनियों का निरूपण मिलता है[5] जो स्वाभाविक ही है।

इनके अतिरिक्त अनेक हिंदी कवियों ने अपने पौराणिक देवी देवताओं के वर्णन में, ऋतु-वर्णन में तथा मंदिरों के कीर्तनों, उत्सवों आदि पर तथा जहाँ कहीं भी अवसर मिला है अरबी फ़ारसी और अन्य मुस्लिम साज़ों (वाद्ययंत्रों) का ऐसा रुचिपूर्ण निरूपण किया है कि मानों तत्कालीन मुस्लिम दरबारों की महफ़िलों-जुलूसों, तक़रीबों पर ये कवि बाजी ले गए हों। इन साज़ों में से यहाँ कुछ का उल्लेख किया जाता है।

वाद्य यंत्र—

हिंदी में मुस्लिम-संपर्क से आए हुए साज़ों (वाद्ययंत्रों) को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। मीरासेइस्लाम[6], आइने अकबरी[7] तथा अन्य[8] ग्रंथों में इनकी विस्तृत चर्चा की गई है।

---

१. मुस्लिम-सक़ाफ़त, पृ० ४१३   २. हिंदी-साहित्य का वृहत् इतिहास, ६५४
३. रहीम रत्नावली, पृ० ७३   ४. क. सूरसागर, १०१३
ज. नीको बन्यो राग 'असावरी'। परमानंददास, २५०
५. विस्तृत विवरण के लिए देखिये—चतुर्भुजदास कृत षटऋतु वर्णन तथा सूर सारावली आदि
६. मीरासे इस्लाम, पृ० ५०२, ५०४
७. आइने अकबरी, (जिल्द दोयम), पृ० २१५-२२६
८. हि० के मु० हु० के तमद्दुनी जलवे, पृ० ५२३

१. चमड़ा मढ़े साज—

मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क से आए हुए इस वर्ग के बाजों में हिंदी दोहल (ढोल) निशान, चंग, दफ़ (डफ) दमामा नक़्क़ारह आदि का उल्लेख विशेप रूप से मिलता है। इसका वर्णन ताल-वाद्य के अंतर्गत भी आ जाता है। चमड़ा चढ़े हुए बाजे हाथ की थाप से या सुगढ़ डंडियों की चोट से भी बजाए जाते हैं। आउज, रुंज, मरुंज, मृदंग, डिमडिम, डमरू, उपंग आदि प्राचीन भारतीय परंपरा के वाद्य-यंत्र भी इसी वर्ग के माने जाते हैं। यहाँ पर मुस्लिम संपर्क से आए हुए वाद्य-यंत्रों की चर्चा की जाएगी जिन्हें हिंदी कवियों ने अपने आराध्य देवों की लीलाओं एवं उत्सवों पर बड़े चाव से बजते बजाते दिखाया है जो तत्कालीन मुस्लिम-महफ़िलों, दरबारों आदि का प्रभाव है।

डफ़—

यह वास्तव में अरबी दफ़ है। प्रारंभ में चौकोर आकार का साज़ था, गोलाकार दफ़ भी होता था तथा उसके अनेक प्रकार हैं।[1] हिंदी में होली के बाजों के साथ खासतौर पर बजाया गया है चंग से भी साम्य रखता है। जायसी ने राजा बादशाह-युद्ध वर्णन में अनेक अरबी-फ़ारसी साजों का उल्लेख किया है जिनमें डफ भी है—

जंत्र पखाउज औ जत बाजा। सुर 'मादर रबाव' भल साजा॥
बीना बेनु 'कमाइच' गहे। बाजे अमृत तहं गहगहे॥
'चंग' उपंग नाद सुर तूरा। महुअर बंसि बाज भरपूरा॥
हुड़ुक बाज, 'डफ' बाज भंभीरा। औ बाजहिं बहु झांझ मजीरा॥[2]

सूफ़ी कवियों ने तो मुस्लिम संपर्क से आए हुए वाद्यों का इतना अधिक प्रयोग नहीं किया जितना असूफ़ी कवियों में विशेप रूप से कृष्ण-भक्त तथा तुलसी आदि कवियों ने इन वाद्य यंत्रों का निरूपण किया है, जो इनकी उदारता तथा तत्कालीन सामाजिक संस्कृति का प्रतीक है। सूर ने तो दफ़ (डफ) की ध्वनि सुनकर गोपियों को विकल होते दिखाया है तथा सूरसागर में अनेक स्थानों पर अन्य बाजों के साथ इसका भी निरूपण है—

'डफ' की धुनि सुनि विकल भई सब, कोउ न रहति घर घूंघट वारी।[3]

---

१. मीरासे इस्लाम, पृ० ५०४ २. जायसी-ग्रंथावली, २३५ ३.क. सूर-सागर, ३४८८
ख. 'डफ' बांसुरी रुंज अरु महुअरि बाजत ताल मृदंग। सूर-सागर, २८६०
ग. 'डफ' बाँसुरी सुहावनी ताल मृदंग उपंग। सूर सागर, २८६७
घ. डिमडिमी पटह ढोल 'डफ' बीना मृदंग 'चंग' अरु तार। सूरसागर, २५०६
ङ. इकतुंबुर इक 'रबाब' भांति सौं बजावै।
एक अमृत कुंडली, इक 'डफ' कर धारै। सूर-सागर, २८२२
च. दुन्दुभि 'ढोल' पखावज आवझ बाजत 'डफ' मुरली रुचिकारी। सूरसागर, २८९३
छ. रुंज मरुज 'डफ' झांझ झालरी, जंत्र पखावज तार। सूरसागर, २९०६

सूर के अतिरिक्त नंददास,[१] कुम्भनदास,[२] परमानंददास[३], चतुर्भुजदास,[४] गोविंदस्वामी,[५] छीतस्वामी,[६] तुलसी, दफ से परिचित हैं—

बाजहिं मृदंग 'डफ' ताल वेनु।[७]

और मीरा ने भी इसका उल्लेख किया है।[८]

चंग—

फ़ारसी में ऐसे टेढ़े आकार के बाजे को चंग कहते हैं जो दाहिने हाथ से बजाया जाता है। आकार की दृष्टि से लकड़ी के घेरे पर चमड़ा मढ़ा होता है। ख्याल नामक गीत को गाते समय इस वाद्य-यंत्र का विशेष प्रयोग होता है। जायसी ने तो इसका प्रयोग किया ही है—

'चंग' उपंग नाद सुर तूरा। मंहुअर बंसि बाज भरपूरा॥[९]

इनके अतिरिक्त सूरदास,[१०] परमानन्ददास,[११] चतुर्भुजदास,[१२] और तानसेन

---

१. क. बाजत ताल मृदंग, मुरज 'डफ' कहि न परति कछु बात। नंददास पदावली, पृ० ३३
   ख. ताल, मृदंग, उपंग, रंज, मरुज, 'डफ' बाजही। नंददास पदावली, पृ० ३३९
   ग. बाजत ताल, मृदंग, झांझ 'डफ' 'सहनाई' अरु 'ढोल'। नंददास पदावली, पृ० ३३८
२. क. बाजत 'डफ' मृदंग, बांसुरी, किन्नर सुर कोमलरी। कुंभनदास, ६९
   ख. बाजत आवज उपंग, बांसुरि सुर बेनु। संख बंस झांझि 'डफ' मृदंग, ढोलना कुंभनदास, ७४
   ग. बाजत ताल, मृदंग, अघौटी, बाजत 'डफ' सुर बीन उपंगे। कुंभनदास, ७६
३. बाजत ताल मृदंग झांझ 'डफ' मुरली मुरज उपंग, परमानंददास, ३८८
४. क. बाजत ताल मृदंग झांझि 'डफ', आवज बीना किन्नरेस। चतुर्भुजदास, ७१
   ख. भेरी महुवरि 'डफ' झांझि ढोलना। चतुर्भुजदास, ७७
५. चहु दिसि तें बाजे बजे रुंज मुरझ 'डफ' ताला हो। गोविंदस्वामी, ११७
   ख. इनके अन्य डफ संबंधी पद देखिये—११०, ११२, ११४, ११६, ११७, ११२४, १२५
६. रुंज मुख, डफ बांसुरी भेरिनि को भरपूरि। छीतस्वामी, ५७
७. क. तुलसी ग्रंथावली २ (गीतावली) ७. २२
   ख. तुलसी त्रिकूट कहत डफोरिकै। तुलसी ग्रंथावली, भाग २, पृ० १५०
८. मुरली 'चंग' बजत डफ न्यारो संग जुवति व्रजनारी। मीरा, पृ० ८८
९. जायसी-ग्रंथावली, पृ० २३५
१०. क. डिमडिमी पटह ढोल 'डफ' बीना मृदंग चंग अरु तार। सूर-सागर, २५०९
    ख. कंसताल करताल बजावत सृंग मधुर मुंह चंग। सूर सारावली, १०७५
११. क. वेनु मुरझ उपंग 'चंग' मुख चलत विविध सुरताल। परमानंददास, २४८
    ख. मुहवरी 'चंग' जो बांसुरी बजावत गिरिवर लाल केलि रस। परमानंददास, ३३४
१२. मधुर जंत्र बाजत मुख चंग। चतुर्भुजदास, ८६

ने भी इसका वर्णन किया है—

अमृत कुंडली 'चंग' औ अवझ और अनेक।[1]
'चंग' लोहरे अनेक हैं तानसेन उर मान॥

निशान—

तांबे, कांसे या धातु का बना हुआ नगाड़ा जिसका मुंह चमड़े से मढ़ा हुआ होता है फ़ारसी में निशान कहलाता है। युद्ध में वीरों को जोश दिलाने वाला यह बाजा है। सूरदास ने भी उत्सव एवं युद्ध दोनों अवसरों पर इसको बजवाया है तथा[2] इनके अतिरिक्त तुलसीदास,[3] दादूदयाल,[4] परमानंददास[5] आदि[6] कवि इससे भली भांति परिचित मालूम पड़ते हैं।

दमामा

फ़ारसी में बड़े नक़्क़ारे (अरबी) या धौंसे को दमामा कहते हैं। यह दुंदुभि से आकार में बड़ा होता है और आवाज भी भारी होती है। बड़ी खाल चढ़ा हुआ यह वाद्य सुगढ़ लकड़ी की डंडियों से बजाया जाता है तथा कभी कभी लकड़ी पर गोल वाशर प्रकार की रबर या मुलायम कपड़ा आदि भी चढ़ा होता है। कबीर,[7] नानक[8] आदि[9] अनेक कवियों ने इस वाद्य की जानकारी का परिचय दिया है। ढोल भी वास्तव

---

१. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (तानसेन), पृ० ३७२
२. (क) निर्भय अभय 'निसान' बजावत, देत महरि कौं गारी। सूरसागर, ६२२
(ख) घर घर बजै 'निसान,' सु नगर सुहावनरे। सूर-सागर, ६४६
(ग) झांझ झिल्ली निर्झर 'निसान' 'डफ' मेरि भंवर गुंजार। सूर-सागर, २८५३
३. (क) भूपति सदन सोहिलो सुनि, बाजै गहगहे निसान। गीतावली १,२
(ख) परेउ 'निसानहिं' घाउ चाउ चहुं दिसि पुर। पारवती मंगल, ६३
(ग) तुरग नचावहिं कुंअर वर, अकनि मृदंग 'निसान'। रामचरितमानस १,१२२
४: मन की मूठि न मांडिये, माया के 'नीसाण'। दादूवानी भाग १, पृ० ११०
५. धुरत 'निसान' सबद सहनाई बाजत है जो वधाई। परमानंददास २७ तथा ८६७
६. (क) ढोल 'निसान' दुन्दुभी बाजत। चतुर्भुजदास, ८६
(ख) ताल 'निसान' पटह बाजे बजें मधि मृदंग धांवल गंधेलें। गोविंदस्वामी, १२३
७. (क) कबीर-ग्रंथावली, पृ० १६
(ख) रसखान 'ढोल' बजाइकै, बेच्यो हिय जिय साथ। सुजान-रसखान, पद ७१
८. गगन 'दमामा' बाजिया परयो निसानै घाउ॥ नानक-वाणी, पृ० २००
९. (क) चहुं वेद-ध्वनि करत महामुनि पंच सबद 'ढप' 'ढोल'। परमानंददास, १५
(ख) बाजत ताल मृदंग बांसुरी, 'ढोल,' 'दमामा,' भेरी। परमानंददास, २७
(ग) व्रजपुर बाजत सबही के घर 'ढोल' 'दमामा' भेरी। परमानंददास, २५५
(घ) भेरि 'दमामा' धौसा काइ न संभार। गोविंदस्वामी, ११८

में फ़ारसी दुहुल है जो दोनों ओर से खाल से मढ़ा होता है। हिंदी में ढोल, ढोलना, ढोलक नामों से मिलता है—

> 'ढोल' 'दमामा' दुड्वड़ी, 'सहनाई' संगि भेरि।
> औसर चल्या बजाइ करि, है कोइ राखै फेरि।[1]

नक्क़ारा (अ०) ख़ुसरौ ने इस पर एक पहेली भी कही है। नक्क़ारा भी युद्ध के समय बजता है। हिंदी में नगाड़ा भी इसीके लिए प्रयुक्त हुआ है।[2]

> एक नहाय एक तापन हारा। चल खुसरौ कर कूच नक़ारा।[3]

इसी वर्ग के वाद्य-मंत्रों में तबला[4] (फा०) तथा पखावज भी हैं जो अमीर खुसरो की ईजाद बताई जाती हैं।[5] तबला बजाने वाले को तबलबाज़ कहा जाता है। नानक जी ने लिखा है कि नक्कारची गुरु ने 'शब्द' के द्वारा चेताया है।[6]

२. तारदार साज़ या तत्वाद्य

उन बाजों को तत्वाद्य कहते हैं जो पीतल लोहे के तार या रेशमी सूती डोरी से बंधे होते हैं जिन्हें लकड़ी, हाथीदांत या 'मिज़राब' से बजाते हैं। इस वर्ग के जंत्र बीन, तंबुर, किन्नरी, रबाब, सुरमंडल, सारंग, पिनाक आदि बताए गये है।[7] यहाँ पर हिंदी में मुस्लिम-संपर्क से आए हुए साजों की ही विशेष रूप से चर्चा की जाएगी।

रबाब

फ़ारसी भाषा का शब्द है। यह सारंगी और सितार से मिलता जुलता बाजा है। आईने अकबरी में इस पर तांत के छः तार तथा बारह या सोलह तार भी बंधते बताए गये हैं।[8] इसके आविष्कार के विषय में एच० जी० फारमर का विचार है कि

---

१. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १६
२. (क) सुनत 'नगारे' चोट किसे कमल मुख। सुंदर-विलास, पृ० १११ तथा ११२
   (ख) बजे नगाड़े दुन्दुभी, कांपा स्वर्ग पतार। हंसजवाहर, २४२ तथा २५५
३. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २२
४. हिंदी-साहित्य का वृहत् इतिहास, पृ० ७३०
५. (क) मुस्लिम सक़ाफ़त हिंदोस्तान में पृ० ४११
   (ख) बीना झांझ 'पखाउज' आउज और राजसी भोग। सूर-सागर, ६-७५
६. फुरमानी है कार खसम पठाइआ। 'तबलबाज' बीचार सबदि सुणाइआ। नानक-वाणी, पृ० १८३
७. आईने अकबरी, जिल्द २, पृ० २२२ तथा हिंदी-साहित्य का वृहत् इतिहास पृ० ६५४, ६५५
८, आईने अकबरी, जिल्द २ पृ० २२२

अलफ़ारावी (९५० ई०) ने रवाब और क़ानून नामी बाजे ईजाद किये[1] तथा हिंदी-साहित्य के बृहत् इतिहास में सिकंदर ज़ुलकरनैन को रवाब का आविष्कर्त्ता बताया गया है।[2] सालिक ने इसका श्रेय मियाँ तानसेन को दिया है।[3] कुछ भी हो वह साज़ मुस्लिम परंपरा से ही प्राप्त माना जाना चाहिए। जायसी आदि सूफ़ी कवियों का इससे परिचित होना स्वाभाविक था।

जंत्र पखाउज औ जत बाजा। सुर मादर 'रबाब' भल साजा।[4]

इनके अतिरिक्त हिंदी में अनेक कवियों ने अनेक प्राचीन वाद्य यंत्रों के साथ बड़े चाव से इसकी चर्चा की है।[5] इस वर्ग के साज़ों में सितार[6] अमीर खुसरो की तथा सारंगी[7] भी मुसलमानों की ईजाद मानी जाती है।

३. सांस से बजने वाले साज़ या सेखर वाद्य

ये साज़ हवा के दबाव के द्वारा या मुंह से फूंक कर बजाये जाते हैं।[8] इस वर्ग का प्राचीनतम वाद्य-यंत्र मुरली या बांसुरी है। मुस्लिम संपर्क से हिंदी में आये हुए वाद्य शहनाई, सूर, नौबत आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। क़ुरान शरीफ में कहा गया है कि क़यामत (निर्णय) के दिन इसराफ़ील फरिश्ते को सूर (अरबी तुरही) फूंकने का आदेश दिया जाएगा। जायसी ने आख़िरीकलाम में इसकी विस्तार से चर्चा की है।

पुनि इसराफीलहि फरमाए। फूंके सब संसार उड़ाए।।
दै मुख 'सूर' भरै जो सांसा। डोलै धरती लपत अकासा।।[9]

---

१. मीरासे इस्लाम, पृ० ५०४
२. हिंदी-साहित्य का बृहत् इतिहास, पृ० ६५५, ७३०
३. मुस्लिम सक़ाफ़त, पृ० ४१७
४. जायसी-ग्रंथावली, पृ० २३५
५. (क) बाजत बीन 'रबाब' किन्नरी अमृतकुंडली जंत्र। सूरसागर, १०७३
   (ख) मुरली इक उपंग इक तुंबुर इक 'रबाब' भांति सो बजावैं। सूरसागर, २८८८
   (ग) बाजै ताल मृदंग 'रबाब' घोर—सूर सागर, २८५६
   (घ) बेनु बीना ताल उघटित मुरज, मृदंग रबाब। कुंभनदास, १२०
   (ङ) बाजत बेनु 'रबाब' किन्नरी कंकन नूपुर किंकिनि सोरी। परमानंददास, २३०
   (च) ताल मृदंग 'रबाब' झांझ 'डफ' मृदंग मुरली धुनि थोरी, । गोविंदस्वामी १०६
६. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृ० ६५५ तथा मुस्लिम सक़ाफ़त, पृ० ४११
७. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृ० ६५५, ७३० तथा मुस्लिम सक़ाफ़त पृ० ४२५
८. आईने अकबरी, जिल्द २, पृ० २२२
९. जायसी-ग्रंथावली (आखिरीकलाम), पृ० ३४५-३४६

शहनाई

शहनाई (फा०) लाल चंदन की लगभग एक हाथ लंबी होती है। इसमें आठ छेद होते हैं। यह नफीरी (अ०) का वड़ा रूप होता है। मुबारक मौक़ों पर शहनाई वादन की प्रथा मुस्लिम दरबारों में भी रही है तथा हिंदी-साहित्य में भी। राम के विवाह के बाद अवधपुरी लौटने पर शहनाई से स्वागत किया गया था। इसके अतिरिक्त कृष्ण जन्मोत्सव के वाद्य-यंत्रों में भी इसका उल्लेख मिलता है नफीरी और शहनाई मुस्लिम-संपर्क से ही आई हैं।[1] तुलसी के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

भेरि 'नफीरि' बाज 'सहनाई'।[2]

तुलसी के अतिरिक्त सूरदास[3] आदि अनेक कवियों ने तत्कालीन मुस्लिम संपर्क से इसको अन्य वाद्य-यंत्रों के साथ बजवाया है।[4] दुंदुभी के साथ शहनाई अथवा नफीरी आदि बजने पर फारसी में नक्क़ारखाने में नौबत नाम से प्रसिद्ध है। नौबत बजना एक फारसी मुहावरा भी है। यह खुशी की अभिव्यक्ति है। फारसी के प्रसिद्ध कवि हाफ़िज़ के शेर का एक मिस्रा (चरण) है—हरकसे पंज रोजः नौबत अस्त। इसका अनुवाद कबीर ने क्या सुंदर किया है—

कबीरा नौबत आपनी दस दिन लेओ बजाइ।

या चारि दिन अपनी 'नौबति' चलै बजाई।[5]

अन्य कवियों ने भी नौबत का प्रयोग किया है।[6]

इनके अतिरिक्त मौसीक़ी संबंधी अनेक ऐसे प्राविधिक शब्द भी हैं जिनसे मुस्लिम संपर्क का पता चलता है जैसे उस्ताद (महान् कलाकार) साज़ (वाद्ययंत्र)।

जिन राग-रागिनियों तथा साज़ों की ऊपर चर्चा की गई है उनके अतिरिक्त

---

१. हिंदी-साहित्य का वृहत् इतिहास (वाद्य), पृ० ७३०

२. (क) रामचरितमानस, ७।७६।५

(ख) झांझ मृदंग संख 'सहनाई'। रामचरितमानस, १।२६३।१

(ग) घसुर सरस 'सहनाइन्ह' गावहिं। गीतावली, ७।२१

(घ) सरस राग बाजहिं 'सहनाई'। रामाज्ञाप्रश्न, १.१०२

३. वेनु विषान मुरलि धुनि किंनी संख सब्द 'सहनाई'। सूर-सागर, ३४७२

४. (क) ढोल निसान दुन्दुभी बाजत मदन भेरि आनक 'सहनाई'। चतुर्भुजदास, ८६

(ख) वाजत जभाउ सहनाई सिंधु राग पुनि। सुन्दर विलास, पृ० ११२

५. कबीर ग्रंथावली, पृ० १६, २१७

६. (क) हट अन्याय, अधर्म, सूर नित नौबत द्वार बजावत। सूर-सागर, १-१४१

(ख) बाजत ढोल भेरि और मुहवर नौबत धुनि घनघोर बजाई।

परमानंददास, ३०६

अनेक ऐसे साज हैं जो भारत को अरब ईरान तथा अन्य मुस्लिम परंपरा के देशों से मिले हैं और यहां के संगीत को मालामाल किया है। आलोच्यकालीन हिंदी-कवियों ने अपने धार्मिक कृत्यों, उत्सवों पर प्राचीन भारतीय परंपरा के वाद्य-यंत्रों के साथ मुस्लिम संपर्क से आए हुए वाद्य-यन्त्रों और रागों का ऐसा सुरुचिपूर्ण निरूपण किया है, जो देखते ही बनता है। इससे यह स्पष्ट अन्दाज़ा होता है कि ये हिंदी कवि लोक कवि थे, उदारमना थे तथा उस काल की संस्कृति हिंदू-मुस्लिम-संस्कृति का एक मिला जुला रूप था। इसे सामासिक संस्कृति कहा जा सकता है जो मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क का सुखद परिणाम था।

(ख) वास्तुकला

वास्तुकला किसी जाति की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं की द्योतक हुआ करती है। जिस वातावरण में जो संस्कृति पलती बढ़ती है उसी के अनुरूप उसकी कलाओं का विकास होता है।

मुस्लिम-वास्तुकला

रूहानी (आत्मिक) एतबार से इस्लामी सभ्यता एवं संस्कृति का लालन पालन ऐसे प्रदेशों में हुआ था जहाँ विशाल एवं घने जंगल नाम को भी न थे। वहाँ विस्तृत मरुस्थल और अर्ध-बंजर ज़मीन के होते हुए भी प्रत्येक वस्तु बड़ी साफ और प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती थी। यही कारण है कि मुस्लिम वास्तुकला में स्वच्छता, व्यापकता, शालता तथा आकृति की भव्यता स्पष्ट दीख पड़ती है।

इस्लामी प्रदेशों में बहुत मज़बूत इमारती लकड़ी भी अधिक उपलब्ध न थी और कई प्रदेशों में तो बड़े बड़े पत्थर भी अलभ्य थे। ये सब कमियां होते हुए भी इस्लाम की सामूहिक इबादत (आराधना पद्धति) मुसावात (भाईचारा, बराबरी) आदि गुणों के कारण मेमार (राज, शिल्पी) बड़े बड़े क्षेत्रफलों को भवन निर्माण के लिये चुनते थे जिनमें बड़े बड़े सहन (आंगन) मेहराब (वृत्तखंड) दालान, गोल गुंबद आदि बनाने पड़ते थे।

अरब के मुसलमान हो जाने के बाद वहाँ की सभी सांस्कृतिक वस्तुओं को क़ुरान के प्रभाव में इस्लामी रंग में रंजित कर लिया गया। उसके पश्चात् इस्लाम का प्रसार जहाँ जहाँ हुआ वहाँ वहाँ संस्कारों को इस्लामी आदर्शों के अनुसार ढाल कर मुस्लिम-संस्कृति को उन्नत किया गया। मुस्लिम वास्तुकला ने कहीं तो ग़रनाता के क़सरतुज्ज़हरा और क़सरे अहमर, कहीं बग़दाद के क़सरे आमीन और क़सरे ज़ुबैदा के तर्ज़े तामीर (वास्तु-ढंग) को इस्लामी आदर्शों पर ढाल कर अपनाया, कहीं ईरानी हश्तपहलू (पटकोणी) तर्ज़ेतामीर को अपनाया, कहीं सार संग, सुरयानी (सारसेनिक) प्रभाव को ग्रहण किया। इस प्रकार असीरिया, बेबीलोनिया मिश्र, यूनान, रोम, वाज़-

नतीन, बग़दाद, ईरान आदि जहाँ जहाँ भी इस्लामी आध्यात्मिक शक्ति का प्रसार हुआ, मुसलमानों ने इस्लाम के प्रकाश में ढाल कर वहां की संस्कृति को अपनाया और कलाओं को ग्रहण किया।

भारत में मुस्लिम-वास्तुकला से हमारा अभिप्राय उस कला से है जो भारत में मुस्लिम व्यापारियों, सूफियों तथा शासकों के आगमन पर अन्य मुस्लिम देशों से प्रेरित वास्तुकला का भारत में प्रचलन किया गया। संक्षक्षेप में मुस्लिम वास्तुकला की चर्चा वास्तुकला-विशेषज्ञ फर्ग्युसन के शब्द में इस प्रकार है—'ये इमारतें (भवन) पुकार पुकार कर कहती हैं कि जहाँ ये हों वहां लचक, नज़ाकत, चमक दमक, फव्वारों की फुआर और सुरीले पक्षियों का होना अनिवार्य है'[1] फ़ीरोज़दावर ने भी लिखा है कि मुस्लिम वास्तुकला में सादगी, व्यापक गुंबद, नोकीले मेहराव, बड़े बड़े सुतूनों वाले हाल, बड़े बड़े ऊँचे दरवाज़े (बुलंद दरवाज़े) होते हैं।[2]

मुस्लिम-धर्म एवं संस्कृति के इन्हीं उदार विचारों ने मुस्लिम स्थापत्य का विभिन्न शैलियों को जन्म दिया जिनमें मिश्र, सीरिया, फारस तथा तुर्की आदि शैलियाँ बहुत मशहूर हैं।

मुसलमानों के भारत आगमन के पश्चात् मुस्लिम-वास्तुकला ने स्थानीय वास्तु-कला से भी लाभ उठाया फिर भी वास्तुकला संबंधी प्राविधिक शब्दावली अधिकांश में अरवी फ़ारसी है। जैसे राज (अ० अलराज तथा अलराइज़) मिस्त्री (अ० मिसतरी) साहूल (छोटा लोहा जिसमें धागा बंधा होता है तथा जिससे दीवार की सीध लेते हैं) यह अरवी साक़ूल है। कोनी (अ० अलकोनिया)। घरों पर जो सफेदी (फा०) होती है उसके लिए क़लई (अ० अलक़लअ)।[3] इनके अतिरिक्त बुनियाद, रद्दा, चौबच्चा, मरम्मत, सांचा, पुश्त:, बुर्ज, दीवार, वारहदरी, दालान, गुसलखाना, हवेली, हौज, मकान, मंज़िल, महल, शीशमहल, तहखाना, ज़ीना, बालाखाना, दीवानख़ाना, क़िला, मक़बरा,[4] आदि सभी अरवी फारसी प्रचलित शब्दावली भारत में मुस्लिम-वास्तु-कला के संपर्क के परिणाम की द्योतक हैं। हिंदी-साहित्य के बृहत् इतिहास में भी मुस्लिम वास्तुकला की विशेषताओं तथा मुस्लिम शासकों की बनाई हुई इमारतों पर

१. फन्ने तामीर, डा० आइ० एच० कुरैशी, पृ० ९२

२. दी सेलिएंट फीचर्स आफ मुस्लिम आर्कीटेक्चर वर सिंप्लीसिटी दी ग्रेट डोम, दी पाइंटेड आर्च, दी पेलेस हाल्स सपोर्टेड आन पिलर्स दी सेलेंडर टरेट्स ऐट दी कारनर्स एंड दी मेगनीफिसेन्ट गेट बिल्ट इन इंडो-सरासेनिक स्टाइल। ईरान एंड इंडिया थ्रू दी एज़ज, पृ० १९९

३. इन शब्दों की विस्तृत व्याख्या के लिए देखिये—हिंदोस्तानी मुसलमान। नदवी, पृ० ७५-७६

४. विस्तृत विवरण के लिए देखिये—पर्शियन इन्फ्लूएन्स आन हिंदी, पृ० ३७

प्रकाश डाला गया है, तथा कहा गया है कि ये इमारतें भारतीय गौरव का प्रतीक बनीं। आगरा, दिल्ली, अजमेर, जौनपुर, गौड़, मालवा, गुजरात, बीजापुर, सासाराम, लखनऊ आदि में सुंदर क़िले, मस्जिदें, जामा मस्जिदें, मक़बरे, इमामबाड़े, मदरसे बाग़ बनवाए गए तथा ताजमहल, क़ुतुबमीनार, लालक़िले जैसे भवन संसार की वास्तुकला के लिए स्पृहणीय और आदर्श बन गये। फिर भला हिंदी-साहित्य के उदारमना लोक कवियों ने इनसे प्रेरणा न ली हो, ऐसा कैसे हो सकता है। आलोच्यकालीन हिंदी-साहित्य के कवियों में अधिकांश सूफी-संत हैं जिनका दृष्टिकोण सदैव ही रीतिकालीन कवियों सा नहीं रहा। इसलिए इस विषय पर यत्र-तत्र स्फुट प्रसंगों को एकत्र करने से ही यह देखा जा सकता है कि इन कवियों की तत्संबंधी जानकारी रही होगी जो मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क का परिणाम मालूम होता है। यहाँ पर कुछ प्रमुख उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

कारीगर, ग़च, दरवाज़ा, दहलीज़, कंगूरे

किसी भी कला या शिल्प को फारसी में हुनर तथा हुनरमंद को कारीगर कहते हैं। दादू ने उस खुदा को ही बड़ा हुनरमंद या कारीगर कहा है।[२] सीमा, छोर को अरबी में हद कहते हैं तो भवन निर्माण में भी हद का प्रयोग होता है।[३] मलूकदास ने इसका निरूपण किया है। चूने, सुर्खी आदि के मेल से बना मसाला जिससे ज़मीन पक्की की जाती है तथा चूने की टीप को फारसी में 'गच' कहते हैं। तुलसीदास इससे परिचित थे—

नाना रंग रुचिर 'गच' ढारी।[४]

किसी भी भवन निर्माण के समय उसमें आने जाने के लिए विशाल द्वार रखे जाते थे जिसे फारसी में दर या दरवाजा कहते हैं। हिंदी के अनेक कवि[५] इससे परिचित हैं जो मुस्लिम वास्तुकला के आम हो जाने के संपर्क से इन तक पहुँचा।

काम किवाड़ दुख सुख 'दरवांनी' पाप पुनि 'दरवाजा'[६]
सत संतोष लरनै लागे, तोरे दस 'दरवाजा'।[७]

यह पहले भी कहा जा चुका है कि ये संत कवि सांसारिक उपकरणों को भी

---

१. हिंदी-साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ६०६-६११
२. हिकमति 'हुनर' 'कारीगरी', दादू लखी न जाइ। दादू-वानी, भाग १, पृ० ८७
३. अनुभय उपजा भय गया, 'हद' तज बेहद लागा। मलूक-वानी, पृ० २१
४. रामचरितमानस, ७।२७।२
५. एक मंदिर के सहस्र 'दर'। हर 'दर' में तिरिया का घर। खुसरो की हिंदी-कविता, पृ० २२
६-७. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १५६ तथा देखिये—पृ० ८३

आध्यात्मिक व्याख्या के काम में लाते थे । कबीर ने भी ऐसा ही किया है तथा नानक, दादू, आदि ने भी दर,दरवाजे को इसी प्रकार अभिव्यक्त किया है।[1] चौखट या दरवाजे में पैर रखते ही पहली नीचे वाली लकड़ी जो जमीन से सटी रहती है फारसी में दहलीज़ कही जाती है। हिंदी में इसका प्रयोग देहरी कह कर अधिक हुआ है। सूर ने बाल कृष्ण को देहरि पर चढ़ते और गिरते समय माँ के हाथ पकड़ने की बात कही है तथा परमानंददास ने भी देहरी का उल्लंघन कठिन बताया है[2]—

'देहरि' चढ़त परत गिरि-गिरि, कर-पल्लव गहत जु मैया ।[3]

शाही महलों में गुमटी या छोटा बुरज हुआ करता था जिसे फारसी में कुंगर: कहा जाता था जो हिंदी कंगूरा, कंगूरनि आदि के रूप में मिलता है। तुलसी एवं सूर के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

कंचन कोट 'कंगूरनि' की छवि मानुह बैठे मैन ।[४]
रचे 'कंगूरा' रंग रंग बर ।[५]

मस्जिद

इस्लामी-वास्तुकला का सबसे पहला भवन मदीने में रसूल की बनाई हुई मस्जिद मानी जाती है। उसके बाद मुस्लिम संस्कृति में वास्तुकला का एक आदर्श भवन मस्जिद हो गई और यह आगे चल कर बड़े उन्नत ढंग से मीनार, गुंबद तथा

१. (क) 'दर' घर महला सोहणे पके कोट हजार। नानक-वाणी, पृ० १५८
(ख) 'दर' घर महला महला सेज सुखाली । अहि निसि फुल बिछावै माली ।
नानक-वाणी, पृ० २३०
(ग) देही नगरी नउ 'दरवाजे' सो दसवा गुपत रहाता है। नानकवाणी, ६३४
(घ) साहब के 'दरि' न्याव है, जो कुछ राम रजाई। दादू-वानी, भाग १, पृ० १४२
(ङ) जीवत जांचत कन कन निर्धन 'दर' 'दर' रटत बिहाल । सूरसागर, १-१५६
(च) मूंदि लिये 'दरवाजे' । बाजिले अनहद बाजे। कबीर-ग्रंथावली, पृ० २४६
२. वे तिरपद भूमि मापी न आलस भयो, अब जो कठिन भयो 'देहरी' उलंघना । परमानंददास, ६२
३. सूर-सागर, १०-३१
४. (क) सूर-सागर, २५५६
(ख) कांप्यो सिंधु 'कंगूरा' ढारियो लंका आगम जनायो। परमानंददास, ३६३७
५. (क) रामचरितमानस, ७।२७।२
(ख) कोट कंगूरन्हि सोहहिं कैसे । रामचरितमानस, ६।४१।१

बुर्ज आदि पर आधारित विराट एवं खुली हुई बनी होती थी। मस्त कबीर ने मस्जिद अवश्य देखी होगी तभी मुल्ला से प्रश्न करते हैं—

मुल्ला 'मुनारे' क्या चढहि।[1]
एक मसीति दसी दरवाजा॥[2]

तुलसीदास तो एक ओर अपने समाज से परेशान तथा अपनी उदारता के कारण मस्जिद में विश्राम (सोने) को भी भला समझते मालूम होते हैं—

मांगि कै खैबो 'मसीत' को सोइबो, लैवे को एक न दैवे को दोऊ॥[3]

दादू भी मस्जिद के प्रति आदर प्रकट करते हैं—

'मसीत' संवारी माणसों, तिसकौं करै सलाम।[4]

बुर्ज,[5] मीनार, गुंबद, मेहराब आदि मुस्लिम इमारतों (मस्जिद, मक़बरा आदि) की एक विशेपता है *तथा इन कवियों का वर्णन मुस्लिम संपर्क से मुस्लिम* वास्तुकला की जानकारी का द्योतक है।

महल

मुस्लिम जहां पर भी शहर[6] (फा०) नगर आबाद करते थे वहाँ बड़ी बड़ी इमारतें बनवाते थे तथा राजधानी में महल (अरबी) हरम, मोती महल, शीश महल आदि बनवाया करते थे।[7] हिंदी में इसका निरूपण खूब मिलता है—

भीतरि बीबी 'हरम' 'महल' मैं, साल मियाँ का डेरा।[8]
टहल सहज जन 'महल' 'महल' जागत चारों जुग जामसो।[9]

---

१. कबीर-ग्रंथावली, १६६ २. कबीर-ग्रंथावली, ८३, २४०
३. तुलसी-ग्रंथावली (कवितावली १०६), पृ० १८७
४. दादू बानी, भाग १, पृ० २२४, अन्य उदाहरणों के लिए देखिये—पृ० १६५ (३ उदाहरण)
५. बिच बिच बुर्ज बने चहुं फेरी। बाजहि तबल, ढोल औ भेरी॥
जायसी-ग्रंथावली, पृ० २२४
६. सोई 'सहर' सुबस बसे, जहं हरि के दासा। मलूक-बानी, पृ० ८
७. देखिये—प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का राजनीतिक-जीवन-चित्रण (शाही भवन)
८. (क) कबीर-ग्रंथावली, पृ० १२५
(ख) गाफ़िल होकर 'महल' में सोये, फिर पाछे पछिताने। मलूक-बानी, पृ० १४
(ग) सुन्दर 'महल' की जुगती बतावे, कहि विधि कीजे सेवा। मलूकबानी, पृ० ४
(घ) सुन्दर 'महल' में 'महल' हमारा, निरगुन सेज बिछाई।
चले गुरु दोउ सैन करत हैं, बड़ी 'असाइस' पाई। मलूक-बानी, पृ० २३
९. (क) विनय-पत्रिका, १५७
(ख) ईस किए की सभालु 'खास माहली'।, कवितावली, ७।२३

सूरदास, मीरा, क़ासिमशाह आदि ने भी महल, रंग महल, मोती महल की चर्चा की है--

ऊंचे ऊंचे महल बनाऊं, बिच बिच राखूं बारी[1]
विरहणि बैठी रंग महल में मोतियन की लड़ पोवै।[2]

साधारण पक्के मकान को फारसी में ख़ाना,[3] हवेली आदि कहते है तथा मकान में सफाई के लिए क़लई (अ०) सफेदी[4] (फा०) की जाती है। इन उपकरणों की की हिंदी में चर्चा मुस्लिम-वास्तुकला की जानकारी की द्योतक है। कलई खुलना मुहावरा भी है।

हहर 'हवेली' सुनि सरवु समरकंदी धीर ना धरत धुनि सुनत निसाना की[5]
आई उघरि कनक 'कलइ' सी।[6]

इतिहास-निरूपण—

प्राचीन भारत में धर्म-दर्शन, खगोल विद्या, गणित, संगीत, नृत्य आदि अनेक प्रकार के ज्ञान विज्ञान पर अनेक प्रामाणिक पुस्तकें उपलब्ध है किंतु आश्चर्य है कि प्राचीन भारतवासियों की रुचि इतिहास-निरूपण के विषय में बहुत ही कम रही है। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय इतिहास के विषय में जानकारी के स्रोत के रूप में पुराने शिलालेखों, पत्रों तथा कतिपय कवियों की रचनाओं के अतिरिक्त कुछ पता नहीं चलता। रामायण और महाभारत को कुछ विद्वान इतिहास मानते हैं किंतु इन पुस्तकों के अध्ययन से पता चलता है कि कथा (साहित्य या दास्तानगोई) या काव्यकला की दृष्टि से इन पुस्तकों का महत्व चाहे जितना भी हो किंतु शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से इन्हें प्रामाणिक इतिहास कदापि नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि प्राचीन भारत के इतिहास के विषय में ठीक-ठीक जानकारी के लिए यूनानियों की कतिपय पुस्तकों

---

१. मीरा के पद, पृ० २०, ३०
२. (क) मीरा के पद, पृ० ६६
   (ख) मोती महल पोत अस देखा। हंसजवाहर, पृ० १६३
   (ग) कुविज़ा सुन्यौ जात ब्रज ऊधौ, महलहि लियौ बुलाइ। सूर-सागर, ३४४३
३. आजहूं न चेतहुं नीफंद खाना। रैदास की बानी, पृ० २६
४. कोमल कलित सुपेती नाना, रामचरितमानस, १।३५६।१
५. अकबरी दरबार के हिंदी-कवि (गंग), पृ० ४४०
६. (क) सूर सागर, ३८०४, ३०८०, ३१८६
   (ख) सांति सत्य सुभ रीति गई घटि बढ़ि कुरीति कपट कलइ है।
   गीतावली, १।६५

एवं सफ़रनामों (पर्यटन-वृतांत भ्रमण कथा) से कुछ पता चलता है जिनका योरोपीय इतिहासकारों ने अपनी पुस्तकों में उपयोग किया है। किंतु यूनानी और फ़ारसी इतिहासों के बीच जो कई सौ वर्षों का ज़माना छूट जाता है उस काल के बारे में जितनी जानकारी भारत के विषय में अरब इतिहासकारों की पुस्तकों से प्राप्त होती है उतनी न भारतीय पुस्तकों से पता चलती है और न ही किसी अन्य स्रोत से।

वास्तव में अरब इतिहासकारों तथा भूगोल विद्या आचार्यों और पर्यटकों ने मध्यकालीन हिंदोस्तान को संसार से परिचित कराने में योगदान किया है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारतीय साहित्यकारों की आत्मगोपन की इस प्रवृत्ति के कारण ही हम देखते हैं कि अनेक हिंदी कवियों, संत कवियों (जिनमें सूर और तुलसीदास जैसे महान् कवि भी हैं) के जीवन और कृतित्व के विषय में शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से निर्णयात्मक रूप से कुछ ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता।

हिंदी साहित्य की ठीक ठीक ऐतिहासिक एवं भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से जानकारी के विषय में मुस्लिम शासकों, मुस्लिम पर्यटकों और इतिहासकारों, मुस्लिम फ़ारसी-हिंदी कवियों का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसकी चर्चा करने से पूर्व कतिपय विद्वानों के मत उद्धृत करना उचित मालूम होता है।

डा० ताराचंद का मत है कि हमारे देश में इतिहास की तरफ़ रुचि कम रही है। पुराने काल में इतिहास का अर्थ था पुराणों की कथाएं, जिनमें तथ्य की मात्रा थोड़ी और आख्यान का परिमाण अधिक था।[1] हमारे इतिहास के पुराने ज़माने में इतिहास नहीं था। इतिहास का शब्द तो था पर उसका अर्थ कुछ और था। रामायण और महाभारत की बातों को, पुराणों की कहानियों को इतिहास का नाम दे दिया था। इनमें आज के इतिहास के ढंग से न घटनाओं के काल का निर्णय है न व्यक्तियों और समूहों के जीवन का क्रमबद्ध वर्णन। पुराणों में पांच विषय हैं—सर्ग, प्रतिसर्ग, मंवंतर वंश और वंशानुचरित। इनमें सृष्टि की उत्पत्ति और लय का ब्यौरा है, मनुओं के जन्म का उल्लेख है। इनसे इतिहास का क्या संबंध है ? वंश भले ही इतिहास का विषय हो सकते हैं पर पुराणों की वंशावलियां पहेलियां हैं जिनको बूझना मुश्किल है। पुराणों के बहुत बाद कश्मीर के कल्हण और श्रीवर ने राजतरंगिणी लिखी। इसमें समकालीन घटनाओं को छोड़कर बहुत कुछ मन-गढ़न्त किस्से हैं। डा० ताराचंद का मत है कि संस्कृत में तो इतिहास का अभाव सा ही है।[2] पर मुसलमानों ने अरबी फ़ारसी में इतिहास की दाग़बेल डाली।

इतिहास घटनाओं की माला है जो काल के सूत्र में पिरोई हुई है। काल से अलग इतिहास की कोई हस्ती नहीं। काल की भित्ति पर इतिहास की सारी इमारत

१. अनुसंधान की प्रक्रिया, पृ० १५४
२. अनुसंधान की प्रक्रिया, पृ० १५५

खड़ी है। अरबों ने इस सिद्धांत का अनुभव किया और घटनाओं के काल के निश्चय पर जोर दिया। उन्होंने घटनाओं के साल, महीने और दिन की जाँच की। यही कारण है कि जब मुसलमान विद्वान हिंदोस्तान में पहुँचे तो उन्होंने इतिहास लिखने की तरफ़ तवज्जह की।[१]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य' में 'ऐतिहासिक काव्य क्या है' शीर्षक से विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि 'वस्तुतः इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया। बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक कथानायक जैसा बना देने की प्रवृत्ति रही है। कुछ में दैवी शक्ति का आरोप करके पौराणिक बना दिया गया है।'[२]
आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत है कि इतिहास और भूगोल दोनों में हमारे देश के पुराने लोग कच्चे होते थे। अपने देश के ही भिन्न-भिन्न प्रदेशों और स्थानों की यदि ठीक ठीक जानकारी उस समय किसी को हो तो उसे बहुत समझना चाहिये। अपने देश के बाहर की बात जानना तो कई सौ वर्षों से भारतवासी छोड़े हुए थे।[३]

अब यहाँ पर उन इतिहासों का उल्लेख मात्र किया जाएगा जो मुस्लिम दौर में रचे गये हैं। यदि इन फ़ारसी इतिहासों के मूल ग्रंथों का हिंदी साहित्य एवं भाषा की दृष्टि से सूक्ष्म अध्ययन किया जाए तो हिंदी-साहित्य के इतिहास को एक ऐसी नई दिशा प्राप्त हो सकती है जिसके प्रकाश में हिंदी को न केवल संपूर्ण भारत की लोकप्रिय भाषा बनने का सुअवसर प्राप्त होगा अपितु साहित्यिक उदारता, समन्वयात्मकता, व्यापकता एवं विराटता की दृष्टि से इसे संसार की अन्य भाषाओं के सम्मुख बराबरी के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकेगा।

इब्ने खुरदाज़बः कृत किताबुल मसालिक वल ममालिक भूगोल की एक पुस्तक है जो तीसरी सदी हिजरी की रचना है। इसमें सिंध और हिंद की चर्चा के साथ साथ विभिन्न जातियों की भी चर्चा की गई है। सुलैमानताजिर की पुस्तक सिलसिलातुलतवारीख़ है जो इसी काल की रचना है जिनमें ईराक़ से चीन तक व्यापारार्थ पर्यटन का विवरण है। इसमें सरानदीप, दक्षिण भारत और हिंदोस्तान के अन्य बड़े बड़े भागों के लोगों, वहाँ की उपज और उनकी संस्कृति का विवरण दिया गया है। इसी प्रकार का वृत्तांत अबूज़ैद हसन सीराफ़ी (फ़ारिस की खाड़ी निवासी) जिसने हिंदोस्तान और चीन तक समुद्र द्वारा व्यापारार्थ पर्यटन किया था और अपना सफ़रनामा (भ्रमण वृतांत) लिखा। बुजुर्गबिन शहरयार की आजाइबुलहिंद, मसऊदी की मुरव्विजुज्ज़हब के अतिरिक्त अबूइस्हाक़ अस्तख़री और इब्ने हौक़ल आदि अरब इतिहासकारों और

१. अनुसंधान की प्रक्रिया, पृ० १५५
२. हिंदी-साहित्य (उसका उद्भव और विकास), पृ० ४४-४५
३. जायसी-ग्रंथावली, भूमिका, पृ० १७०

भूगोल शास्त्रियों की रचनाओं के अध्ययन से सूफ़ी असूफ़ी कवियों की रचनाओं को समझने में कुछ सहायता मिल सकती है क्योंकि इन्होंने जन सामान्य में प्रचलित प्राचीन लोक कथाओं से कहानियां लेकर अपने काव्य की रचना की है।

इतिहास-निरूपणकी इस प्रवृत्ति के कारण ही मुसलमान विद्वानों ने हिंदोस्तान में मुहम्मद बिन क़ासिम के आगमन के पश्चात् इतिहास लिखने की ओर ध्यान दिया मुहम्मद बिन क़ासिम के सिंध-आक्रमण एवं विजय के साथ साथ अन्य विवरण मुहम्मद बिन अलीकूफ़ी कृत चचनामें में मिलता है। महमूद ग़ज़नवी का समकालीन अरबी-संस्कृत का विद्वान अलबीरूनी विश्व में विख्यात है। उसने अपनी पुस्तक अलहिंद में हिंदोस्तानियों के रीति रिवाज, धर्म तथा ज्ञान विज्ञान की सराहनीय चर्चा की है। इसकी तारीख़े हिंदी भी विख्यात है।

क्योंकि मुसलमान, इतिहास निरूपण की दृष्टि से संसार की सुसंस्कृत क़ौमों में गिनेजाते हैं इसलिए हिंदोस्तान में भी उन्होंने अपने आगमन के साथ साथ अनेक ऐतिहासिकग्रंथों का प्रणयन किया। सिंध-विजय से लेकर अब तक जो इतिहास लिखे गए हैं उन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वे इतिहास जो दिल्ली सुलतानों के विवरण पर आधारित हैं, दूसरे जो दिल्ली के बादशाहों के काल से संबंधित हैं, तीसरे अन्य इतिहास है जो प्रारंभ से लेकर समय समय पर स्थानीय इतिहासकारों तथा विदेशी मुस्लिम पर्यटकों ने सफ़रनामों के रूप में लिखे हैं। देहली सुलतानों से संबंधित इतिहासों में निज़ामुद्दीन हसन बीजापुरी कृत ताजुलमआसिर है जो क़ुतुबुद्दीन ऐबक और शमसुद्दीन अलतमश के काल तथा नासिरुद्दीन महमूद की नियुक्ति तक का विवरण है। ज़ियाउद्दीन बरनी की तारीखेफ़ीरोज़शाही में सुलतान बलबन के जुलूस से सुलतान फ़ीरोज़शाह तुग़लक के छटे जुलूस तक है। क़ाज़ी मिन्हाजुद्दीन बिन सिराजुद्दीन जोज़जानी की तब्क़ातेनासरी सृष्टि की रचना, नबियों का उल्लेख इस्लामी खलीफ़ाओं के अतिरिक्त अमीर सुबुक्तगीन की संतानों से लेकर चंगेज़ ख़ाँ के आक्रमण और मुग़लों के आक्रमण तक के विस्तृत विवरण पर आधारित है शम्ससिराज अफ़ीफ़ की तारीखे फ़ीरोज़शाही सुलतान फ़ीरोज़-शाह तुग़लक के काल के विवरण पर आधारित है। ज़ियाउद्दीन बरनी नेभी तारीखे-फ़ीरोज़शाही लिखी है। अमीर खुसरो ने ख़ज़ाइनुलफ़तूह में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के प्रारंभिक पंद्रह वर्षों का विवरण दिया हैं। इनके अतिरिक्त इनकी पद्यबद्ध पुस्तकों, क़िरानुस्सअदैन,नुहसिपहर और तुग़लक़नामे में ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध हैं। मुल्ला यहया बिन अहमद सरहिंदी की तारीखे मुबारकशाही में दिल्ली सुलतानों का इतिहास है जिसमें सुलतान मुहम्मद ग़ोरी की विजय से आठ सौ अड़तीस हिजरी सन् तक छत्तीस बादशाहों का सन् एवं विवरण मिलमा है।

अफ़ग़ान सुलतानों के लिए ख्वाजा नेमतउल्लाह हरवी की मख़ज़ने अफ़ग़ानी में सुलतान बहलोल लोदी से इब्राहीम लोदी तक और शेरशाह सूरी से आदिल शाह

सूरी तक पठान बादशाहों के जमानों के हालात दर्ज हैं। क्योंकि यह लेखक जहांगीर काल का है इसलिए इसने इस मुग़ल सम्राट का भी उल्लेख किया है। इसी काल का तारीखे दाऊदी (अब्दुल्ला कृत) में भी लोदी और सूरी सुलतानों का ऐतिहासिक विवरण है। मुग़ल काल का वृतांत तुज़के-बाबरी, ख्वंदमीर के हुमायूँनामे, अबुलफ़ज़ल के अकबरनामे, आइने अकबरी, तुज़्के जहांगीरी, अब्दुलहमीद के बादशाहनामे, मुहम्मद काज़िम के आलमगीर नामे जैसे अनेक ऐतिहासिक ग्रंथ हैं जिनमें इन शासकों की साहित्यिक रुचि के विवरण में हिंदी संबंधी अनेक नई उद्भावनाएँ हो सकती हैं।

हिंदी-कवियों द्वारा इतिहास वर्णन—

मुस्लिम-संस्कृति की इतिहास निरूपण की इस प्रवृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप हिंदी साहित्य में हुई कुछ उद्भावनाओं का उल्लेख यहाँ किया जाता है। फ़ारसी और हिंदी-कवियों ने ऐतिहासिक, साहित्य की रचना की है जिनमें अमीर ख़ुसरो से लेकर चंद्रभान ब्राह्मण (चहार चमन कार) तक अनेक कवि उल्लेखनीय हैं। भगवानदास का शाजहांनामा और मुंशी सुजानराय बटालवी का इतिहास खुलासतु-त्वारीख़ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

फ़ारसी भाषा के बहुत बड़ी संख्या में ऐतिहासिक साहित्य की रचना का प्रभाव हिंदी-कवियों पर भी पड़ा और इन्होंने प्रशस्तियों के रूप में कुछ ग्रंथों की रचना भी की जो साहित्य की अपेक्षा ऐतिहासिकता की ओर अधिक झुके हुए हैं। केशव के वीरसिंह देव-चरित और जहांगीर-जस-चंद्रिका ऐसे ही ग्रंथ हैं।

भारतवर्ष में मुस्लिम संपर्क के कारण प्रणीत ऐतिहासिक-साहित्य एवं हिंदी के मुस्लिम सूफी कवियों के ऐतिहासिक दृष्टिकोण के परिणाम स्वरूप हिंदी-साहित्य में आए हुए निम्न तथ्यों को देखा जा सकता है। सूफी-कवियों ने अपनी कृतियों में अपने से पूर्व की रचनाओं का उल्लेख किया है। इन्होंने सम-सामयिक शासकों की शान में क़सीदे लिखे हैं। हिंदी के वे कवि जो बादशाहों और अमीर उमरा के दरबारों में थे उनका उल्लेख फ़ारसी इतिहासों में भी है और उन कवियों की हिंदी रचनाओं में भी। हिंदी के सूफ़ी कवियों ने अपनी कृति का रचना काल भी दिया है। कुछ कवियों ने सम्राटों के युद्ध-संबंधी पद्य भी कहे हैं तथा अपने पीरोमुर्शिद की प्रशंसा की है। इन सब बातों से हिंदी कवियों के काल निर्णय, तथा ऐतिहासिक घटनाओं की जानकारी में बड़ी सहूलियत हो जाती है। यही कारण है कि सूरदास, तुलसीदास जैसे महान् कवियों के जीवन-वृत्तांत की ठीक ठीक जानकारी की अपेक्षा हिंदी के मुस्लिम कवियों में अमीर ख़ुसरो, कुतबन, मंझन, जायसी आदि कवि तथा दरबारी कवियों में अकबरी दरबार

के हिंदी कवियों के विषय में ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक ठीक ठीक जानकारी होती है जो हिंदी-साहित्य को मुस्लिम संस्कृति के ऐतिहासिक दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण योगदान है।

हिंदी के मुस्लिम कवियों ने अपने जन्मस्थान, गुरु परंपरा तखल्लुस के अतिरिक्त अपनी पुस्तक का रचना काल भी दिया है जिसने हिंदी में इतिहास निरूपण संबंधी दृष्टिकोण को बल प्रदान किया है और हिंदी कवियों के, जीवन, समय तथा काल निर्धारण के अतिरिक्त दृष्टिकोण् का भी ठीक ठीक पता चलता है। मुल्ला अबदुल क़ादीर बदायूनी की मुंतखिबुलतवारिख़ में मुल्ला दाऊद की चंदायन के संबंध में यह भी कहा गया है कि इसकी रचना ७७२ हिजरी के पश्चात् हुई थी। चंदायन के निम्न छंद से उसका ठीक ठीक पता चल जाता है—

बरस सात सै होय एक्यासी। तिहि जाह कवि सरसेउ भासी॥
साहि फिरोज दिल्ली सुलतानू। जौना साहि वजीरु वखानू॥
डलमउ नगर बसै नवरंगा। ऊपर कोट तले वहि गंगा॥१

कुतवन ने मृगावती की रचना ८०९ हिजरी (१५०४ ई०) में की—

सुन सुन चित लाइ कर कहो बात हुं एक।
और बाढ़ो हुसेनशाह कि अह जगत की नेक॥
इनके राज यह रे हम कहे, नौसे जो संवत् अहे॥

मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत की रचना ९२७ हिजरी मैं की थी और आखिरी-कलाम का रचना काल भी दिया—

सन नव सै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा॥२
नौ सै बरस छतीस जो भए। तब एहि कथा क आखर कहै॥३

इनके अतिरिक्त उसमान ने चित्रावली के छंद तैंतीस में, शेखनबी ने ज्ञानदीप-छंद सत्रह में रचना काल दिये हैं। मुस्लिम कवियों की इतिहास निरूपण की इसी प्रवृत्ति का अनेक हिंदी के असूफी कवियों ने भी अनुकरण किया मालूम होता है जिसकी चर्चा डा० श्याम मनोहर पाण्डे ने विस्तार से की है।४ अनेक हिंदी कवियों ने मुस्लिम दौर के अनेक युद्धों का भी उल्लेख किया है जिससे ऐतिहासिक घटनाओं का पता चल जाता है।

---

१. चंदायन छंद १७, पृ० ८४
२. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० ९
३. जायसी-ग्रंथावली आखिरीकलाम, छंद १३, पृ० ३४३
४. मध्ययुगीन-प्रेमाख्यान, पृ० ९०-११७

नौ सै ऊपर था बत्तीसा, पानीपत में भारत दीसा ।
अठई रज्जब सुक्करवारा, बाबर जीता बराहीम हारा ॥१

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि मुस्लिम-संस्कृति की इतिहास निरूपण प्रवृत्ति के संपर्क के कारण हिंदी साहित्य एवं कवियों पर भी इसका प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ा मालूम होता है ।

१. ए हिस्ट्री आफ़ पर्शियन लैंग्युएज ऐंड लिट्रेचर एट दी मुगल कोर्ट मुहम्मद अवदुलगनी, इंडियन प्रेस सन् १९२९ ई०, पृ० ६१

चतुर्थ अध्याय

काव्य रूप

भारतीय काव्य रूप—

काव्य शब्द का प्रयोग साहित्य-शास्त्र में बड़े व्यापक अर्थों में हुआ है परंतु व्यवहार में इस शब्द का प्रयोग पद्यबद्ध कविता के अर्थ में विशेष रूप से प्रचलित है। छंद भावाभिव्यक्ति में सहायक होते हैं, इसलिए छंदोबद्ध रचना को काव्य कहा जाता है। मनुष्य की अनुभूतियाँ छंदोबद्ध रचना में प्रगट होकर नाना प्रकार के काव्य रूपों को जन्म देती हैं।

कवि जब अनुभूति की अभिव्यक्ति में छंद, लय आदि का गुंफन किसी विशेष ढंग से करता है तब रूप या काव्य रूप का प्रदुर्भाव होता है।[1] छंदोबद्ध रूप तो काव्य रूप का एक पक्ष है उसका संपूर्ण रूप नहीं। अन्य शब्दों में, काव्य कृति के रूप से तात्पर्य उसके उस निश्चित आकार अथवा रूप रेखा से है जिसके अंतर्गत एक नियमित विधान अथवा पद्धति के अनुसार शब्दों के माध्यम से कवि की अनुभूति पाठक तक सप्रेषित होती है। रूप निर्माण की ये पद्धतियां विषय और आवश्यकता के अनुसार भिन्न हो सकती हैं।[2]

संस्कृत में काव्य की विस्तृत एवं गंभीर मीमांसा काव्य-शास्त्र या अलंकार शास्त्र के अंतर्गत हुई है। भामह के 'काव्यालंकार', दण्डी के 'काव्यादर्श', उद्भट के 'अलंकार

---

१. इन जनरल दी एक्स्टरनल शेप, ऐपियरेन्स, कानफ़िग्रेशन आफ़ एन ओबजैक्ट इन कान्ट्राडिस्टिंक्शन टु दी मैटर आफ़ विच इज़ ,इट कम्पोज्ड (एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका—वोल १०, पृ० ६६७)

२. दीज़ थौट्स एंड ऐक्सपीरियेन्स विच आर पुट इन डिफ़रैन्ट वेज़ इन डिफ़रैन्ट पोइम्स आफ़ दी पोइट, वी काल दैट परटीकुलर वे देयर 'फौर्म आर पोइटिकल फौर्म।

फौर्म एंड स्टाइल इन पोइट्री—डबल्यू० पी० केर, पृ० ९७

सार संग्रह', वामन का 'काव्यालंकार सूत्र', मम्मट के 'काव्य प्रकाश', रुय्यक के अलंकार सर्वस्व', जगन्नाथ के 'रस गंगाधर', विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' आदि काव्य-शास्त्रीय ग्रंथों में काव्य रूपों का सामान्य विवेचन किया गया है।

काव्य का विभाजन आचार्यों ने अपने अपने ढ़ग से किया है। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने काव्य-विभाजन शैली के आधार पर, अर्थ के आधार पर और बंध की दृष्टि से किया है और बंध का विभाजन प्रबंध और निबंध दो रूपों में किया है। प्रबंध के अंतर्गत महाकाव्य, एकार्थ-काव्य और खण्ड काव्य को तथा निबंध के अंतर्गत मुक्तक गीत एवं प्रगीतको रखा है।[1] इस प्रकार काव्य के दो मुख्य भेद माने जाते हैं—प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य।

प्रबंध काव्य—जिस रचना में कोई कथा क्रमबद्ध रूपसे कही जाए उसे प्रबंध काव्य कहते हैं।' प्रबंध काव्य तीन प्रकार का होता है। एक तो ऐसी रचना जिसमें पूर्ण जीवनवृत विस्तार के साथ वर्णित होता है, ऐसी रचना को महाकाव्य कहते हैं। महाकाव्य के संबंध में साहित्यदर्पणाकार आचार्य विश्वनाथ का मत है कि महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिये, उसका नायक देवता या उच्चकुल में उत्पन्न क्षत्रिय धीरोदत्त एवं गुणवान होना चाहिये.........।'[2] जिस रचना में खंड जीवन महाकाव्य की ही शैली में वर्णित होता है ऐसी रचना को खंड काव्य कहते हैं।

मुक्तक काव्य तारतम्य के बंधन से मुक्त होने के कारण (मुक्तेन मुक्तकम्) मुक्तक कहलाता है और उसका प्रत्येक पद स्वतः पूर्ण होता है। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों में मुक्तक वह स्वच्छन्द रचना है जिसके रस का उद्रेक करने के लिए अनुबंध की आवश्यकता न हो।[3]

मुस्लिम-संस्कृति और हिंदी-काव्यरूप—

काव्यरूप केवल शास्त्र से संपादित तत्वों की पूर्ति मात्र से नहीं बनते। यह तो निरंतर बदलती हुई मानव मनोवृतियों के अनुसार नया रूप धारण करते रहते हैं। सामाजिक एवं राजनीतिक अवस्था के कारण भी काव्यरूपों में रूप भेद आ जाता है। कवि का समाज से घनिष्ट संबंध होने के कारण उसकी भावाभिव्यक्ति भी सामाजिक अवस्था से प्रेरित होती है। संभवतः इसीलिए हम देखते हैं कि वैदिक युग में आध्यात्मिक मनोवृत्तियों के अनुरूप सूक्तियां अधिक लिखी गयीं। इसके बाद जब सामाजिक

१. वाङ्मय—विमर्श, पृ० ३३

२. सर्गबंधो महाकाव्य तत्रैको नायकः सुरः।
संदशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तः गुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा। ३१६॥ साहित्यदर्पण

३. वाङ् मय-विमर्श, पृ० ३२

व्यवस्था अधिक प्रधान हो गई तब वाल्मीकि और व्यास के महाकाव्य रचे गए।

हिंदी के आदि काल से आधुनिक काल तक परिवर्तन की यह प्रक्रिया सामने आती रही है। आदि काल में राजनीतिक उथल पुथल और मुस्लिम आक्रमणों के कारण जिस उत्तेजना की अपेक्षा थी उसे प्रबंध एवं मुक्तकों में अभिव्यक्त किया गया जो वीर गीत कहलाए। इन वीर गीतों में उस काल की स्पष्ट अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

मुस्लिम संस्कृति के संपर्क का परिणाम हिंदी के काव्य रूपों में सामान्यतः दो रूपों में मिलता है। एक तो हिंदी में प्रचलित काव्य रूपों (महाकाव्य, खन्ड काव्य और मुक्तक) के स्वरूप में कुछ परिवर्तन आया है और दूसरे मुस्लिम दरबार, अरबी फारसी काव्य एवं कवियों तथा सूफियों के संपर्क से हिंदी में अनेक नए काव्य रूपों की उद्भावना हुई है। इस संबंध में डा० सावित्री शुक्ल का मत भी विचारणीय है—

वास्तव में इस्लाम का मध्ययुगीन जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। मध्ययुगीन हिंदी कवियों ने फ़ारसी एवं अरबी शब्दों का प्रयोग किया है। कारण कि, जो फ़ारसी एवं अरबी शब्द उस समय अधिकतर बोले जाते हैं उनका साहित्य में प्रयुक्त होना बड़ा स्वाभाविक था। काव्य का वाह्यरूप तो इस्लामी संस्कृति से प्रभावित था ही, आभ्यांतरिक-रूप भी किसी न किसी रूप में मुस्लिम विचारधारा से प्रभावित था।'[1]

हिंदी में प्रचलित काव्य रूपों में महाकाव्य के अंतर्गत मसनवी शैली के अपनाए जाने से भारतीय महाकाव्य के स्वरूप में जो परिवर्तन आया है, वह मुस्लिम संस्कृति के संपर्क का परिणाम है जायसी का पद्मावत उसका नमूना है। मसनवी का विवरण हमने अरबी फारसी काव्य रूपों के अंतर्गत दिया है। कसीदा और मरसिया आदि अरबी फारसी काव्य रूपों के तथा सूफी प्रेम भावना पूर्ण काव्यों के प्रचलन से भारतीय खण्ड काव्य में भी कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ता है।

मध्य युग में जो सूफी प्रेमभावना-पूर्ण काव्य पाए जाते हैं इन्ही की शैली पर अन्य हिंदी कवियों ने भी प्रेम प्रधान खंड काव्य रचे हैं। इनमें पुहकर, दुखहरनदास आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मुस्लिम संस्कृति के संपर्क से हिंदी-साहित्य में जो अनेक नए काव्य रूपों की उद्भावना हुई है उनमें से अधिकांश को मुक्तक काव्य रूप के अंतर्गत लिया जाना चाहिये। संस्कृत काव्य शास्त्र में मुक्तक के रूपविधान, स्वरूप, विषय और विस्तार का बहुत अधिक विवरण तो नहीं मिलता फिर भी मुक्तक के विषय में सर्वप्रथम उल्लेखनीय मत अग्निपुराणकार का है—

मुक्तकं श्लोकएकैकश्चमत्कारक्षमः सताम्[2]

मुक्तक एक-एक श्लोक होता है जो अपने आप में पूर्ण और चमत्कार उत्पन्न

1. संत-साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पृ० १९०
2. अग्निपुराण, अनुवादक, रामलाल वर्मा शास्त्री, पृ० ३१

करने में समर्थ होता है। वस्तुतः 'मुक्तक' शब्द का प्रयोग प्राचीन काव्य शास्त्रीय ग्रंथों में प्रबंध काव्य के उन सभी श्लोकों के अर्थ में होता था जिनका अर्थ अपने आप में ही पूरा हो जाता था, किसी आगे या पीछे के श्लोक से उसका संबंध नहीं हुआ करता था। इसके विरुद्ध जब अन्वय करने के लिए एक से अधिक श्लोकों की जरूरत होती थी तो उन्हें युग्मक (दो श्लोक) कलापक (अधिक श्लोक) आदि कहते थे। ऐसा प्रबंध काव्य में भी होता है और गाथा सप्तशती अमरुकशतक आदि के परस्पर एकदम असबद्ध श्लोकों में तो होता ही था। अब यह केवल दूसरे प्रकार की रचनाओं के लिए रूढ़ हो गया है।

हिंदी साहित्य के आदिकाल के उत्तरार्ध में अमीर ख़ुसरौ का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने भावाभिव्यक्ति का माध्यम मुक्तक काव्य को बनाया। डा० शकुंतला दुबे के शब्दों में 'हिंदी में मुक्तक काव्य का आदि स्वरूप यहीं से पनपता भी है अस्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि खुसरो ने आती हुई मुक्तक की धारा को उत्तरोत्तर विकसित भले ही न किया हो परंतु उसे एक नवीन और सुनिश्चित दिशा की ओर मोड़ अवश्य दिया।'[1]

अमीर ख़ुसरौ क्योंकि मूलतः फ़ारसी के कवि थे इसलिए हिंदी में उन्होंने फ़ारसी हिंदी के काव्य रूपों को मिलाकर एक ओर तो दोहों में सुंदर भावाभिव्यंजना की और दूसरी ओर फ़ारसी-हिंदी मिश्रित ग़ज़ल, ज़ूलिसासेन, लुगज़, दो मुखना, बिनबूझ पहेलियां, कहमुकरियाँ, ढकोसला, निसबत आदि काव्य रूपों का प्रयोग किया है।

गीति काव्य परंपरा के अंतर्गत हिंदी-साहित्य में गीति तत्व अमीर ख़ुसरौ में भी मिलता है। इनके पदों ने परवर्ती गीति काव्य के रचयिताओं को प्रेरित किया 'खुसरो ने रागरागिनियों में पदों की रचना की, क़व्वाली, ग़ज़ल के ढंग पर बहुत से पद निर्मित किये, बरवा राग में लय रखने की प्रणाली इन्होंने ही प्रारम्भ की और सर्वप्रथम इन्होंने ही भावोन्मेष को अपने पदों मे ढाला।'[2]

मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप हिंदी साहित्य में अरबी-फ़ारसी के माध्यम से मसनवी, क़सीदा, गजल, ज़ूलिसानेन, किता, मुस्तज़ाद रुबाई, मुसद्दस, मुसम्मत, रेख़ता, अलिफ़नामः आदि अनेक काव्य रूप आए हैं। इनके अतिरिक्त क़ाफ़िया बंदी और तख़ल्लुस का भी प्रचलन हुआ है जिसका विवरण आगे दिया जाता है।

इल्मेउरूज़[1] (छंद-शास्त्र)—

असनाफ़े सखुन (काव्यरूप) के अतिरिक्त बहरों (छंद) की दृष्टि से हिंदी-साहित्य

१. काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, पृ० ३८४
२. काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, पृ० १६६
१. जिस विद्या में शेरों के वज़न और बहरों से बहस की जाए और जिससे गद्य और पद्य में अंतर मालूम हो वह इल्मेउरूज़ कहलाता है।

में मुस्लिम संस्कृति का संपर्क तीन रूपों में देखा जा सकता है। अरबी फ़ारसी में अस-नाफ़ेसखुन या अक़सामे शायरी (काव्यरूप) में सभी काव्यरूपों में बहरों के प्रयोग के लिए कोई विशेष प्रतिबंध नहीं है केवल मसनवी के लिए सात बहरों का विधान है[1], उसमें भी अपवाद मिलते हैं और रुबाइ के लिए बहरेहजज अधिक समीचीन बताई गई है जिनके चौबीस वज़न मिलते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य काव्यरूपों के लिए किसी बहर (छंद) विशेष का कोई प्रतिबंध नहीं। कवि को स्वतंत्रता है कि वह कोई भी अपनी कविता में प्रयोग कर सकता है।

संस्कृत-साहित्य का पिंगलशास्त्र या छंद विधान इतना परिपुष्ट एवं व्यापक है कि न केवल हिंदी, अपितु अन्य तमाम ही भारतीय भाषाओं का आधार बहुत कुछ उसी पर है। और यहां तक कहा जा सकता है कि फ़ारसी के कुछ नए अरकान (गण) भी संस्कृत-छंद-शास्त्र से प्रेरणा प्राप्त करके रचे गए हैं।[2] आरंभ में अमीर खुसरो जैसे फ़ारसी से आए हुए कवियों ने दोहा शैली के आधार पर अपने हिंदी काव्य में छंदों को अपनाया है। यद्यपि जायसी, नबी, मुबारक, आलम, रहीम, रसखान आदि मुसलमान कवि फ़ारसी वतावरण में पले बढ़े थे फिर भी उन्होंने दोहा, चौपाई, कवित्त सवैया तथा पदों की शैली को अपनाया है।

दूसरा स्वरूप यह है कि यद्यपि भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अरबी भाषा का संबंध सामी संप्रदाय से है और फ़ारसी भाषा आर्य-परिवार की भाषा है पर फिर भी अरबी की उच्चारण-पद्धति और छंदविधान में फारसी से मौलिक साम्य है। अरबी फ़ारसी बहरों तथा संस्कृत-हिंदी के मात्रिक छंदों में कहीं कहीं स्वाभाविक रूप से समानता पाई जाती है। जैसे बहरे रमल, इसे हिंदी में हरिगीतिका छंद कहते हैं। बहरे मुतदारिक एवं त्रिभंगी, बहरे मुतकारिब और भुजंगप्रयात, बहरे सरीअ और चौपाई, बहरे मुतदारिक मकतूअ और चौपाइ तथा अन्य अरबी फ़ारसी की बहरों के भेदोपभेद एवं अनेक मात्रिक छंदों में समानता पाई जाती हैं।[3] तीसरा स्वरूप वह है जहाँ अरबी फ़ारसी की बहरों में हिंदी कवियों ने कविता रची है। जैसे—

कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाज़ुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या।

यह बहरे हजज मुसम्मन सालिम है। इसका वज़न 'मफ़ाईलुन' चार बार है।[4] इसके अतिरिक्त ग़जल, रेख़्तः, लावनी, झूलना, मुस्तजाद (खरारी) सीहर्फ़ी क़व्वाली

---

१. इस प्रबंध का मसनवी शीर्षक देखिये।
२. फ़न्नेशायरी, पृ० १०
३. छंद-प्रभाकर, पृ० २४२
४. बोलचाल, पृ० १७३

आदि में हिंदी कवियों ने अरबी फ़ारसी बहरोंका प्रयोग किया है।

अरबी भाषा का उरुज़ (छंद शास्त्र) मूलतः मात्रिक है इसीलिए अरबी-फ़ारसी बहरों (छंद) के अरकान (गण) ध्वन्यात्मक हैं। यह अरकान (गण) मुतहर्रिक ओर साकिन दो हरफ़ या हरफ़ों के आधार पर बनते हैं। मुतहर्रिक हर्फ़ वह है जो ज़बर (अ) ज़ेर (इ) और पेश (उ) रखते हों।

अरबी-फ़ारसी बहरों और छंदों के सूक्ष्म अध्ययन से ऐसा मालूम होता है कि हिंदीके मात्रिक छंदों में अरबी-फ़ारसी कीबहरों का योगदान कुछ कम नहीं है तथा खड़ी बोली में हिंदी नेफ़ारसी की अनेक बहरों को उदारतापूर्वक अपनाया है।[१] रेखता लावनी आदि अनेक अरबी-फ़ारसी बहरें मिलती हैं।[२] आचार्य जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' की पुस्तक छंदप्रभाकर में पुष्पांकित छंदों तथा दिये हुए अरकान (अरबी-फ़ारसी गण) का यदि अलगसे आधुनिक काल तक की हिंदी कविता में अध्ययन किया जाए तो एक स्वतत्र शोधप्रबंध का विषय बन सकता है।

काव्य के तीन उपांग

१. क़ाफ़िया (Rhyming) तथा रदीफ़—

क़ाफ़िया अरबी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है अनुप्रास, अन्त्यानुप्रास, तुक या तुकांत।[3] अरबी फ़ारसी उर्दू आदि भाषाओं के काव्य में क़ाफ़िया का एक विशेष महत्वपूर्ण प्रयोग रहा है। क़ाफ़िया-बन्द, वह शेर है जिसमें क़ाफ़िये की पाबंदी की गई हो अर्थात पद के आखिर में तुक इस सलीक़े से मिले कि अंतिम अक्षर भी मिले और स्वर भी। प्रत्येक चरण का अंतिम वर्ण-स्वर सहित तो एकसा होना ही चाहिये, पर उससे पूर्व के वर्ण भी जहां तक सम्भव हो सके स्वर सहित एक से हां तो और भी उत्तम है। जैसे लटके, झटके, अखियाँ, सखियाँ, मुरारी, सुरारी, हरन, चरन नंद, फंद आदि। तुकांतके अंतिम वर्णो और स्वरोंमें जितनी अधिक समानता होगी क़ाफ़िया उतना हीश्रेष्ठ और बढ़िया माना जाएगा। कोरी तुकबंदी को अरबी, फ़ारसी, उर्दू में निकृष्ट समझा जाता है। अतः चरणांत में रदीफ़ के पूर्व का वह सानुप्रास शब्द जो सदैव बदलता जाए, और अर्थ भी बदलता जाए क़ाफ़िया कहलाता है। तुकांत कविता बड़ी सरलता एवं रुचि से याद भी हो जाती है। इसलिए भी सामी भाषाओं में इसका एक विशेष महत्व रहा है। जैसे—

कल जो बैठा पास मकजा मैं तेरे हमनाम के।
रह गया बस नाम सुनते ही कलेजा थाम के॥

इसमें 'हमनाम' और 'थाम' क़ाफ़िया है।

---

१. परशियन इंफ़्लूएंस आन हिंदी, पृ० ७६

२. परशियन इंफ़्लूएंस आन हिंदी, पृ० ७७

३. आईना-ए-बलाग़त, पृ० १४४

२. रदीफ़—

यह भी अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है, पीछे चलने वाली स्त्री। पद्य कविता (ग़ज़ल) में क़ाफ़िये के बाद आने वाले शब्द या शब्दसमूह को रदीफ़[1] कहते हैं। जैसे— तक़रीर होती है, तसवीर होती है में 'तक़रीर' और 'तसवीर' तो क़ाफ़िया है और 'होती है' 'होती है' रदीफ़ हैं। जैसे—

मुफ़लिसी सब बहार खोती है।
मर्द का एतबार खोती है॥

इस शेर में 'बहार' और 'एतबार' क़ाफ़िया हैं और 'खोती है' 'खोती है' रदीफ़। प्रत्येक शेर में रदीफ़ का होना आवश्यक नहीं प्रायः क़ाफ़िया ही अधिक चलता है। अरबी, फ़ारसी, तुर्की, उर्दू आदि भाषाओं की शायरी में रदीफ़ और क़ाफ़िये का होना प्रतिबंध के लिए न होकर पाबंदी बराए अदब या काव्यसौष्ठव की दृष्टि से प्रचलित रहा है। इस प्रकार क़ाफ़िया इन कविताओं की जान रहा है। इससे सादगी, रवानी, लयात्मकता एवं तुक के साथ साथ नाद को बढ़ावा मिलता है। अनुप्रास, अलंकार के रूप में संस्कृत और हिंदी में है तो किंतु केवल एक अलंकार के रूप में ही है, काव्यरूप के रूप में नहीं। क़ाफ़िया, रदीफ़ के दृष्टि कोण से संस्कृत-साहित्य की यह एक सामान्य प्रवृत्ति के रूप में नहीं पाया जाता। संस्कृत भाषा के छंद तुकबंदी से जकड़े नहीं होते। कविता प्रायः अतुकांत ही होती है।

डा० हरदेव बाहरी ने भी लिखा है 'संस्कृत' प्राकृत और अपभ्रंश के काव्य में क़ाफ़िया-बंदी के अभाव के बावजूद यह हिंदी में अचानक कहाँ से और क्यों आ गई और जल्दी ही हिंदी की एक सामान्य प्रवृति बन गई।'[2] यों तो अपभ्रंश में तुक या अन्त्यानुप्रास है जो लगभग छठी शताब्दी से पाया जाने लगता है। बौद्ध सिद्धों में भी है और संस्कृत में यह जयदेव के काव्य में ग्यारहवीं शताब्दी में पाया जाता है तथा भरत के नाट्यशास्त्र की ध्रुवागीतियों में भी है। दूसरी ओर क़ाफ़िया बंदी अरबी फ़ारसी आदि भाषाओं के काव्य की एक सामान्य प्रवृत्ति रही और हिंदी-साहित्य का प्रारंभ से ही इन भाषाओं से संपर्क और संबंध रहा है। संभवतः हिंदी में क़ाफ़िया-बंदी का इस रूप में प्रचलन मुस्लिम संपर्क का परिणाम है।

३. तख़ल्लुस

यह अरबी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है शाइर या कवि का वह नाम जो कवि अपनी कविता में लिखता है। हिंदी में इसे उपनाम कह सकते हैं। कभी-कभी यह नाम शाइर के असली नाम का अंश (जुज़) होता है। जैसे हकीम मोमिन खाँ

१. फ़न्ने शायरी, पृ० १८३
२. पर्शियन इंफ्लूएंस आन हिंदी, पृ० ७८

'मोमिन' और कभी कभी कोई दूसरा शब्द होता है जैसे—शेख मुहम्मद इब्राहीम देहलवी अपना तखल्लुस ज़ौक़ रखते थे या मिर्ज़ा असद उल्लाह खां का तखल्लुस ग़ालिब था।[1] अरबी-फ़ारसी के काव्य-शास्त्रियों के मतानुसार अच्छा यह माना जाता है कि तखल्लुस मक़्ते (अंतिम शेर) में लाया जाए और इस प्रकार लाया जाए कि पढ़ने या सुनने वाले को भलि भांति पता चल जाए कि यह शाइर का तखल्लुस है। अर्थ समझने में किसी प्रकार की भ्रांति न हो।

प्राचीन हिंदी साहित्य के अध्ययन से ऐसा पता चलता है कि अपने मुंह से अपना नाम लेना आत्म-श्लाघा माना जाता था। यही कारण है कि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि साहित्य में कवि तख़ल्लुस का प्रयोग नहीं करते थे। इस आत्मगोपन-प्रवृत्ति ने प्राचीन भारतीय साहित्य के बारे में आजतक संशय और विवाद का पर्दा डाल रखा है और यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि किस कवि की कितनी कृति है और उसमें क्षेपक कहां कितना है।[2]

अरबी-फ़ारसी साहित्य में तखल्लुस की एक सामान्य प्रवृत्ति रही है। इसीलिए मुस्लिम संस्कृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप हिंदी साहित्य में जो तखल्लुस का प्रयोग मिलता है, यह एक नूतन प्रयोग है जिसे मुस्लिम-संस्कृति का प्रभाव कहना चाहिये।

अबुल हसन-अमीर ख़ुसरो[3] ने अपना तख़ल्लुस 'ख़ुसरो' किया है और सूफ़ियों ने आमतौर पर अपने तखल्लुस का प्रयोग किया है। जैसे—मलिक मुहम्मद जायसी ने अपना तखल्लुस 'मुहम्मद'[4] किया है। इसी परंपरा को हम हिंदी कवियों ने आमतौर पर पाते हैं। जैसे—कबीर ने तो पद पद में अपना उपनाम लिया है,[5] नानक जी ने नानक राय के स्थान पर 'नानक',[6] दादूदयाल ने 'दादू'[7] और संत तुलसीदास ना

१. आईनाए बलागत, पृ० ४
२. पर्शियन इंफ्लूएंस आन् हिंदी, पृ० १७८
३. गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस॥ खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ५१
४. अति सुख दीन्ह बिधातै, औ सब सेवक ताहि।
आपन मरम 'मुहम्मद', अबहूँ समुझ कि नाहिं॥ आखिरी कलाम, पृ० ३४०
५. हज काबै ह्वै ह्वै गया, केती बार 'कबीर'। कबीर-ग्रंथावली, पृ० ६७
६. आखणु सुनण तेरी बाणी। तू आपे जाणहि सब विडाणी॥
करे करार जाणे आपि। 'नानक' देखै थापि उथापि॥४॥
नानक-वाणी, पृ० ६६१
७. प्रेम पियाला नूर का, आसिक भरि दिया।
'दादू' दर दीदार में, मतवाला किया॥२३८॥ दादू-बानी, भाग १ पृ० ६४

ने अपना तखल्लुस 'तुलसी'[१] रखा। इसीप्रकार सूरदास ने 'सूर'[२], अब्दुलरहीम खाने-खानाँ ने 'रहीम' या 'रहीमन'[३] और यह प्रवृत्ति मुस्लिम संस्कृति के संपर्क के परिणाम-स्वरूप हिंदी साहित्य में प्रचलित हुई कि कवि कभी कभी बीच में भी अपना उपनाम देते हैं।

ग़ज़ल—

यह अरबी भाषा का शब्द है,[४] जिसका अर्थ प्रेमिका से वार्तालाप करना है। यह एक प्रकार का गेय और प्रेमाख्यानक काव्यरूप है, जो क़सीदा (स्तुतिछंद) की भूमिका के रूप में व्यवहृत होता था और मुलतः तग़ज़्जुल कहा जाता था। फ़ारसी काव्यशास्त्र की दृष्टि से ग़ज़ल वह नज़्म (कविता) है जिसका प्रत्येक शेर स्वयं में पूर्ण तथा अन्य शेरों से स्वतंत्र हो। इसके पहले शेर (बैत) के दोनों मिस्रे (चरण) हमक़ाफ़िया (तुकांत) होते हैं और बाकी शेरों के दूसरे मिस्रे (द्वितीय चरण) के क़ाफ़िये पहले शेर के क़ाफ़ियों से मिलते हों।[५] ग़ज़ल के पहले शेर को मतला कहते हैं और अंतिम शेर को, जिसमें कवि का तखल्लुस (उपनाम) हो, मक़ता कहते हैं।

किसी ग़ज़ल में कम से कम पांच शेर और फिर ग्यारह, तेरह, पंद्रह तथा इससे भी अधिक शेर हो सकते हैं। ग़ज़ल किसी भी बहर (छंद) में लिखी जा सकती है। विषय की दृष्टि से ग़ज़ल का प्रत्येक शेर अपने में पूर्ण तथा दूसरे शेरों से अलग (स्वतंत्र) होता है किंतु कभी कभी ग़ज़ल का मज़मून (विषय) मुसलसल (क्रमबद्ध) भी होता है। ऐसी ग़ज़ल को ग़ज़ले मुसलसल कहते हैं।

रस की दृष्टि से ग़ज़ल में शृंगार और करुण रस अधिक सफलता से निष्पन्न होते हैं। प्रेम एवं सौंदर्य के अतिरिक्त तसव्वुफ़, उन्माद, गरिमा, विलास, आशा, निराशा, मान, समर्पण, पतझड़, वसंत, दंपति-संयोग, प्रणय, विरह आदि भी ग़ज़ल के विषय हो सकते हैं। आमतौर पर इश्क़िया ग़ज़लों में गुलो, बुलबुल, चमन, क़फ़स (पिंजरा) आशियाना, प्रतीक के रूप में आते हैं। फ़ारसी भाषा में सअदी, हाफ़िज़ और जामी आदि ग़ज़ल के लिए विख्यात हैं। छंद की दृष्टि से ग़ज़ल का अंत्य क्रम (अ, अ, ब, अ, स, अ) निश्चित है।

---

१. 'तुलसी' अस बालक सों नहि नेह कहा जप जोग समाधि किये। कवितावली, ६

२. 'सूर' कह्यौ क्यौं कहि सकै, जन्म-कर्म अवतार। सा० २-३६

३. क. जे गरीब पर हित करें, ते 'रहीम' बड़ लोग।
कहां सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई जोग॥
ख. 'रहिमन' पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुष चून॥ रहीम

४. उर्दू-हिंदी शब्दकोश, पृ० १७७ ५. आइनाए बलाग़त, पृ० १७

ग़ज़ल फ़ारसी (तथा अरबी) साहित्य का बहुत ही जनप्रिय काव्यरूप रहा है। मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप हिंदी साहित्य में भी बड़ा प्रचलन हुआ है। अमीर ख़ुसरो ने फ़ारसी-हिंदी मिश्रित ग़ज़लों द्वारा सम्भवतः सबसे पहले इसका सूत्रपात किया है। हो सकता है कि इससे पहले भी मसऊद साद सलमान या किसी मुस्लिम कवि ने लिखी हो किंतु अब उपलब्ध नहीं है। अमीर ख़ुसरो की ग़ज़लों के बाद परवर्ती कवियों में कबीर, गुरु नानक, गंग तथा गुरु गोविंदसिंह ने इस काव्यरूप में कविता लिखी है।[1] डा० बाहरी ही के मतानुसार इस काव्यरूप ने पहले दरबारी कवियों को प्रभावित किया फिर सामान्य कवियों को यहां तक प्रभावित किया है कि तुलसीदास के बाद कई पीढ़ियों तक कोई महाकाव्य नहीं रचा गया। कबीर के अतिरिक्त ग़ज़ल रहीम की मदनाष्टक में तथा सूदन और सीथल के यहाँ भी मिलती है। ग़ज़ल के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

अमीर ख़ुसरो बड़े ही प्रतिभाशाली पंडित थे। उन्होंने हिंदी में जहां अन्य मौलिक काव्य रूपों का प्रचलन किया है वहां फ़ारसी-हिंदी मिश्रित उनकी यह ग़ज़ल भी एक अद्भुत रचना है—

ज़ि हाले मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल दुराय नैना बनाए बतियां।
कि तावे हिज्राँ न दारम् ऐ जाँ न लेहु काहे लगाए छतियाँ।।
शबाने हिज्राँ दराज़ चूँ ज़ुल्फ़ व रोज़े वस्लत चूँ उम्र कोताह।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अंधेरी रतियाँ।।
यकायक अज़ दिल दो चश्मे जादू बसद फ़रेबम् बबुर्द तस्कां।
किसे पड़ी है जो जा सुनावे प्यारे पी को हमारी बतियाँ।।
चु शमअ: सोज़ाँ चु ज़र्रः हैराँ ज़े महरे आँ मह वे गुश्तम आख़िर।
न नीन्द नैना न अंग चैना न आप आवें न भेजे पतियाँ।।
बहक्क़ रोज़े विसाले दिल बर कि दाद मा रा फ़रेब 'ख़ुसरू'।
सपीत मन की दुराए राखूँ जो जाने पाऊँ पिया की घतियाँ।।[3]

ग़ज़ल की परिभाषानुकूल इस ग़ज़ल में पहले दोनों मिस्रे (चरण) हम क़ाफ़िया हैं (बतियां, छतियां), और बाद के शेरों में केवल द्वितीय चरणों का अन्त हम क़ाफ़िया (छतियां, रतियां, पतियां आदि) आख़ीर में कवि का तख़ल्लुस 'ख़ुसरू' दिया हुआ है यानी यह शेर मक़ता है। विषय की दृष्टि से प्रेमिका और प्रेमी की आपस में उपेक्षा के प्रति याचना, विरहाग्नि की तप्त दशा तथा मिलन की आकांक्षा है, रस की दृष्टि

१. पर्शियन इन्फ्लूएन्स आन हिंदी, पृ० ७६
२. पर्शियन इन्फ्लूएंस आन हिंदी, पृ० ७७
३. ख़ुसरो की हिंदी-कविता, पृ० ५१

से शृंगार रस है। छन्द की दृष्टि से इस बरह के अरकान (गण) हैं फ़ऊलो-फ़ेलुन् चार बार तथा अन्त में फ़ेलुन है। इस ग़ज़ल के अतिरिक्त ख़ुसरो की अन्य ग़ज़लें भी मिलती हैं।[१]

ख़ुसरो मूलतः फ़ारसी के कवि थे। गीतिकाव्य परंपरा में ख़ुसरो के योगदान के विषय में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि इन्होंने ग़ज़ल को लेकर हिंदी साहित्य में अनेक नये नये प्रयोग किये हैं। खड़ी बोली का मंजा धुला साफ सुथरा प्रयोग इन्हीं के के यहाँ मिलता है जो काव्यरूप और अलंकरण दोनों की दृष्टि से हिंदी साहित्य में मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क का परिणाम है। ख़ुसरो की परम्परा में जहाँ आधुनिक काल में ग़ज़लें लिखी गयी हैं वहाँ कबीर, सूरदास, तुलसीदास आदि कवियों में भी गीतिकाव्य की वैसी ही विशेषता मिलती है। डा० शकुंतला दूबे का मत उद्धरणीय है—'कहना यों चाहिये कि हिंदी में गीतिकाव्य का बीजारोपण ख़ुसरो ने ही किया है।'[२]

ग़ज़ल में ख़ालिस अरबी बहर (छन्द) के प्रयोग की दृष्टि से हम दो उदाहरण और प्रस्तुत करके विषय को यहीं संक्षिप्त करते हैं।

मुंशी प्यारेलाल शौक़ी जो जहाँगीर काल के एक विलक्षण पंडित थे, उनकी एक ग़ज़ल के दो शेर प्रस्तुत हैं। इसमें पहला शेर मतला है और दूसरा मक़्ता।

जिन पेम रस चाखा नहीं अमरत पिया तो क्या हुआ।
जिन इश्क़ में सर न दिया जो जग जिया तो क्या हुआ॥

+ + +

मारग बसी सब छोड़ कर दिले तन के तयीं ख़िलवत पकड़।
'शौक़ी पियारेलाल' बिन सब सें मिला तो क्या हुआ॥[३]

इस ग़ज़ल में ऊपर लिखे ग़ज़ल के लक्षण तो घटते ही हैं, बरह (छन्द) की दृष्टि से यदि इसकी तक़तीअ (प्रस्तार) की जाये तो यह ख़ालिस अरबी बहर है जिसका नाम बहरे रजज़ और जिसका वज़न मुस्तफ़अलुन चार बार है। यदि इसकी तक़तीय (प्रस्तार) गुरु लघु के आधार पर की जाए तो भी ठीक उतरती है किंतु क्योंकि प्रत्येक भाषा की अपनी एक तर्ज़ होती है इसलिए अरबी भाषा की प्रकृति तथा अलफ़ाज़े मलफ़ूज़ी एवं मकतूबी तथा साकिन एवं मुतहर्रिक की अरबी प्रकृति को पूर्णतः ध्यान में रखकर इसे घटाया जाए तो यह ठीक उतारती है। दूसरे कवि हैं राय पंडित चंद्रभानु ब्राह्मण।[४] यह शाहजहां के दौर के कवि हैं। उनकी एक ग़ज़ल के दो शेर

१. पंजाब में उर्दू, पृ० १५६, १५७
२. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, पृ० १७१,
३. बहरुल फ़साहत, पृ०. २८ एवं ख़ुमख़ानाए जावेद देखिये
४. ख़ुमख़ानाए जावेद, जिल्द १, पृ० ५७४, ५७५

इस प्रकार हैं। पहला मतला है और दूसरा मक़ता—

खुदा ने किस शहर अन्दर हमन को लाए डाला है।
न दिलबर है न साक़ी है न शीशा है न प्याला है॥
+ + +
'बिरहमन' वास्ते अशनान के फिरता है बगियासी।
न गंगा है न जमना है न नद्दी है न नाला है॥

इस ग़ज़ल में भी उपर्युक्त ग़ज़ल के लक्षण पूर्णतः घटित होते हैं (यह भाषा हिंदी ही है क्योंकि यह उर्दू के जन्म काल से पहले की ग़ज़ल है) वहर भी ख़ालिस अरबी है जिसका नाम बहरे हज़ज है और इसका वज़न मफ़ाईलुन चार बार है। तक़-तीय (प्रस्तार) की दृष्टि से भी यह पूरी घटती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग़ज़ल काव्यरूप मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क तथा खुसरो के माध्यम से हिंदी में आया और आधुनिक काल तक, प्रतापनारायण मिश्र, अयोध्यासिंह उपाध्याय, लाला भगवानदीन, निराला[1] तक तथा निरंतर हिंदी में लोक-प्रिय है।

मसनवी

मसनवी अरबी भाषा का शब्द है। काव्यरूप की दृष्टि से यह ईरानियों का एक विशिष्ट काव्यरूप है। हिंदी में इसका शब्दार्थ 'युग्मक' है[2] इसे द्विपदी भी कह सकते हैं।

मसनवी वह लम्बी, क्रमिक नज़्म (काव्य) है, जिसमें प्रत्येक शेर के दोनों मिस्रे (चरण) हम क़ाफ़िया (अंत्यानुप्रास युक्त) हों और हर एक शेर पृथक् क़ाफ़िये का हो।[3] वाक्य-रचना की दृष्टि से दोनों अर्द्धालियाँ समान अंत्यानुप्रास रखती हैं।

जहाँ ग़ज़ल और क़सीदे में एक शेर का दूसरे शेर से तारतम्य कुछ निश्चित नहीं होता वहां मसनवी की प्रत्येक वैत (जिस शेर के दोनों चरण तुकांत हों) का दूसरी वैत से ऐसा दृढ़ संवन्ध होता है जैसे ज़ंजीर की प्रत्येक कड़ी में आपस में हो। मस-नवी की लम्वाई की कोई सीमा निर्धारित नहीं है। इसमें प्रायः आदि से अन्त तक एक ही वहर (छन्द) रही है। और वजन का क्रम यह होता है—

······क······क
······ख······ख
······ग······ग
······घ······घ

---

१. पर्शियन इन्फ्लूएंस आन हिंदी, पृ० ७७
२. आधुनिक हिंदी-काव्य में छंद योजना, पृ० ४५
३. आइनाए वलाग़त, पृ० २२

कवि को स्वतन्त्रता है कि वह या तो सात छन्दों की एक मसनवी लिखे या वह इसे सात हज़ार तक बढ़ा दे। मसनवी, प्रबन्ध-काव्य की अखण्ड धारा के लिए उपयुक्त है। इसमें कोई कहानी कही गई हो या एक ही विषय पर विचार प्रकट किये गये हों। यह काव्य-शैली वर्णनात्मक है और इसमें कथा-साहित्य ही प्रमुखतः लिखा गया है जैसे फ़िरदौसी का शाहनामा, मौलाना रूम की मसनवी आदि।

विषय-निर्वाचन करने में मसनवीकार कवि को स्वतन्त्रता होती है। इसका विषय ऐतिहासिक, पौराणिक, दार्शनिक, सदाचार सम्बन्धी, रहस्यवादी या धार्मिक कुछ भी हो सकता है।[1] इश्क़िया दास्तान भी इसका विषय होता है किंतु प्रेमाख्यान मात्र नहीं है। प्रकृति चित्रण, ऋतु वर्णन, पात्रों का विवरण, रीति रिवाज और भावपूर्ण विवरण आदि इसकी सीमा से बाहर की वस्तु नहीं हैं। यों कहिये कि मसनवी ईरानियों का अपना मौलिक प्रकार का प्रबन्ध-काव्य है जिसकी एक दीर्घ परम्परा है। इस महाकाव्य में जीवन के विविध चित्रों का वर्णन होता है।

छन्द (बह्र) की दृष्टि से मसनवी में सात बह्रों या वज़न का विधान है—

(१) बह्रे मुतक़ारिब मुसम्मन महज़ूफ़ उलआख़िर या मक़सूर—इसके अरकान (गण) यह हैं—फ़ऊलुन् फ़ऊलुन् फ़ऊलुन्, फ़अल या फ़ऊल (दो बार)। यह बह्र रज़्मिया (वीर काव्य) मसनवी के लिये उपयुक्त समझी जाती है और इसमें बज़्मिया (समारोह) शायरी भी होती है तथा इनके अपवाद रूप में भी मसनवियों की रचना हुई है। (य = ।SS) चार बार भुजंगप्रयात।

(२) बह्रे हज़ज मुसद्दस महज़ूफ़ या मक़सूर—इसके अरकान हैं—मफ़ाईलुन् मफ़ाइलुन् मफ़ाईलुन् फ़ऊलुन या मफ़ाईल (दो बार)। यह बह्र निशातिया क़िस्सों के लिये उपयुक्त है। हिन्दी में प्रेम काव्य समझिये।

(३) बह्रे हज़ज मुसद्दस अख़रब मक़बूज़ महज़ूफ़ या मक़सूर—इसके अरकान हैं—मफ़ऊल, मफ़ाइलुन्, फ़ऊलुन या मफ़ाईल (दो बार)। यह बह्र दास्ताने हुस्नो-इश्क़ (प्रेमाख्यान-काव्य) के लिये उपयुक्त समझी जाती है। पण्डित दयाशंकर नसीम की मसनवी गुलज़ारे नसीम इसी बह्र में है।

(४) बह्रे ख़फ़ीफ़ मुसद्दस मख़्बून महज़ूफ़ या मक़सूर—इसके अरकान हैं—फ़ाएलातुन, मफ़ाइलुन्, फ़ेलुन या फ़अलान् (दो बार)। यह बह्र मजलिस, बज़्म (समारोह) के लिये उपयुक्त है। हिंदी में इसका रूप—

सगु + जगु + सगु (।।S + S, ।S. + S, ।।S + S,) (दो बार) बन ।S। सकता है।

(५) बह्रे रमल मुसद्दस मख़बून महज़ूफ़ या मक़्सूर—इसके अरकान हैं—फ़अलातुन, फ़अलातुन, फ़अलुन या फ़ऊलान (दो बार) (एक शेर में)। यह बह्र दार्शनिक

---

१. फारसी-साहित्य की रूप रेखा, पृ० १५३ (१९५७ ई०)

काव्य (पंद तथा तसव्वुफ़) के लिए उपयुक्त समझी जाती है। हिंदी में इसका रूप—रगु (SIS+S) आठ बार बन सकता है।

(६) बह्र रमल मुसद्दस महज़ूफ़ या मक़सूर—इसके अरकान हैं—फ़अलातुन, फ़अलातुन, फ़ाअलुन, फ़अलान (दो बार)।

(७) बह्र सरीअ मुसद्दस महज़ूफ़ मक़सूर—इसके अरकान हैं—मुफ़तअलुन, मुफ़तअलुन, फ़ाअलुन या फ़ाअलान् (दोबार)। यह बह्र दार्शनिक (तसुव्वुफ या पंद) के लिए उपयुक्त समझी जाती है। हिंदी में इसका रूप—

भगु+भगु+रल (SIII+S, SIS+S, SIS+I) (दो बार) समझिये।

वैसे जाम्अई (जामी) के मातानुसार मसनवी के 'अवज़ाने पंजगंजा' अर्थात् पांच वज़न मान गये हैं[1] जो ये हैं—हज़ज, रमल, सरीअ, खफ़ीफ़, मुतक़ारिब।[2] मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क के परिणाम स्वरूप हिंदी-साहित्य में मसनवी काव्यरूप की एक ऐसी परंपरा देखने को मिलती है जिसने सूफ़ी-असूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य की परंपरा को जन्म दिया है। प्रेमाख्यान परंपरा के इन कवियों ने भारतीय एवं ईरानी तथा अन्य काव्य परंपराओं का ऐसा सुंदर सामंजस्य किया है जो वास्तव में विश्व-साहित्य में भावनात्मक एकता (नेशनल इंटेगरेशन) का एक सुन्दरतम उदाहरण है। हिंदी-साहित्य के इतिहास को सूफ़ी परंपरा और विशेष रूप से मसनवी शैली के काव्य ग्रंथों पर वड़ा गर्व है। इसीलिए हम मसनवी के रूप, विपयवस्तु तथा कथानक रूढ़ियों एवं काव्यगत परंपराओं पर विस्तार से चर्चा कर रहे हैं।

मसनवी का रूप या उसकी शैली

अरबी-फ़ारसी-काव्य के शास्त्रीय दृष्टिकोण से एक लंबी मसनवी जो एक संपूर्ण पुस्तक के रूप में लिखी जाए उसकी रचना में कुछ नियमों का पालन होता आया है। उनका क्रमिक उल्लेख इस प्रकार है—

हम्द :—

पुस्तक आरंभ करते समय कवि हम्द कहता है। हम्द अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है खुदा की तारीफ करना, स्तुति या प्रशंसा रूप में पुस्तकारंभ में कुछ छंद कहना।[3] इसके अतिरिक्त हम्द एक काव्यरूप के रूप में स्वतंत्र रूप से भी कही जाती है किंतु मसनवी का आरंभ ही इससे होता है। हम्द में अल्लाह की तौहीद (दृढ़ एकेश्वर) का वर्णन, बंदे का उसके भक्त होने में ही कल्याण है, खुदा समस्त सृष्टि का

१. पर्शियन प्रासाडी, पृ० ३१, ३५, ४१, ५६, ६१
२. पर्शियन प्रासाडी, पृ० ८७, ८८
३. आईनाए बलाग़त, पृ० ८

सर्जक है, पालक है तथा समस्त सृष्टि उसका भक्ति, करके ही अपने सांसारिक जीवन को सफल बना सकती है। यों समझिये कि यथासंभव ढंग से खुदा की महिमा के गान का आयोजन हम्द में होता है। जो वह्र मसनवी की होती है वही हम्द की भी होती है। स्वतंत्र रूप से लिखी गई हम्द में कवि स्वतंत्र है। ऐसे शेर जिनमें खुदा से दुआ मांगी जाए, मुनाजात कहलाते है।

फ़ारसी की मसनवियों में भी हम्द आमतौर पर पाई जाती है। जैसे 'निज़ामी' ने अपनी मसनवी 'लैला मजनूं'[1] में हम्द के अन्तर्गत खुदा की तारीफ़ की है और 'खुसरो शीरी'[2] में भी निज़ामी ने हम्द लिखी है। अमीर खुसरो ने अपनी मसनवी 'मजनूं-लैला'[3] में खुदा की तारीफ़ यानी हम्द कही है तथा 'शीरीं-खुसरो'[4] में भी खुसरो ने हम्द लिखी है।

हम्द, नात मंक़वत, शाहे वक़्त की प्रशंसा आदि की यह परम्परा केवल प्रेम काव्यों के लिये ही लाजमी नहीं, फ़िरदौसी के 'शाहनामे' जैसी वीर-काव्य प्रधान मसनवी में भी हम्द, नात आदि का आयोजन है। और जामी की मसनवी 'यूसुफ़-ज़ुलैखा' तथा फ़ैज़ी की मसनवी 'नलदमन' में भी यही परम्परा पाई जाती है।

इसीलिए हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य के प्रेमाख्यानों में जो पहले मुसलमान सूफ़ियों के लिखे हुए हैं और फिर असूफ़ी कवियों की हम्द आदि की परंपरा फ़ारसी मसनवियों के आधार पर रचित मालूम होती हैं जिसकी कड़ी के रूप में अमीर खुसरो जैसे कवि और अलबीरूनी जैसे विद्वान् तथा उनके संरक्षक मुस्लिम शासक एवं साहित्यकार रहे होंगे।

हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों के प्रारंभ में सभी कवि खुदा की तारीफ़ हम्द के रूप में करते हैं। 'मृगावती' की दिल्ली वाली प्रति में प्रारंभिक अंश में से केवल खुदा और कायनात (सृष्टि) के बारे में चौपाइयां प्राप्त होती हैं। इस अंश में रचना की अन्य प्रतियां भी खण्डित बताई जाती हैं।[5]

'पद्मावत' में मलिक मुहम्मद जायसी ने आरंभ (पृष्ठ १ से ४ तक) में १० छंद हम्द के रूप में लिखे हैं।[6] जिसमें खुदाए वाहिद ला शरीक लहू (दृढ़ एकेश्वर)

१. लैला मजनूं, पृ० १-४
२. खुसरो शीरी, पृ० १-२
३. मजनूं लैला, पृ० १-४
४. शीरीं खुसरो, पृ० १-५
५. कुतुबन्स मृगावत—ए यूनीक मैनस्क्रिप्ट इन परशियन स्क्रिप्ट जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी, १९५५
६. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० १-४

की वंदना, सृष्टि की रचना तथा अन्य सिफ़ाते इलाही (गुण) वह बयान की हैं जो क़ुरान शरीफ़ की आयतों का अनुवाद जैसी लगती हैं।[1] पद्मावत का पहला छंद हम्द के रूप में इस प्रकार है—

सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू ॥
कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू ॥
कीन्हेसि अगिनि, पवन, जलखेहा। कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा ॥
कीन्हेसि धरती, सरग, पतारू। कीन्हेसि बरन बरन औतारू ॥
कीन्हेसि दिन, दिनकर, ससि, राती। कीन्हेसि नखत, तराइन, पांती ॥
कीन्हेसि धूप, सीउ औ छांहा। कीन्हेसि मेघ, बीजु तेहि माहां ॥
कीन्हेसि सप्त मही बरम्हंडा। कीन्हेसि भुवन चौदहो खंडा ॥
कीन्हेसि सबै अस जाकर दूसर छाज न काहि।
पहिले ताकर नावं लै कथा करौं औगाहि ॥१॥

जायसी ने अखरावट[2] तथा आख़िरीकलाम[3] (पृ० ३३९.३४१) में फारसी मसनवियों की परंपरा में हम्द का आयोजन रखा है।

ताकै अस्तुति कीन्हि न जाई। कौन जीभ मैं करौं बड़ाई ॥
+ + +
आयसु इबलीस हु जो टारा। नारद होइ नरक महं पारा ॥
सौ दुइ कटक, कहउ लख घोरा। फरऊं रोवि नीच महं बोरा ॥
जो शदाद वैकुंठ संवारा। पैठ पौरि बीच महि मारा ॥
जो ठाकुर अश दारुन, सेवक तइं निरदोख।
माया करैं 'मुहम्मद' तौ पैं होइहि मोख ॥६॥[4]

इस हम्द में ख़ुदा की बड़ाई और बंदे की लाचारी दिखाई है और बताया है कि शैतान भी बिना आज्ञापालन के पथभ्रष्ट हुआ और फ़िरऔन (मिश्र का शासक) तथा शद्दाद (एक प्रतापी बादशाह जिसने खुदाई का दावा किया) जैसे शक्तिशाली घमंड के शिकार हो गए।

मंझन ने मधुमालती में आरंभिक छंदों में हम्द लिखी है तथा उसमान की चित्रावली छन्द १ में इसी का आयोजन है। इसी प्रकार क़ासिम शाह की हंसजवाहर

१. देखिये—इसी प्रबंध की विषयवस्तु (धर्मखण्ड),
२. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३०४
३. जायसी-ग्रन्थावली, पृ० ३३९
४. जायसी-ग्रन्थावली, पृ० ३४१

के आरम्भिक छन्द हम्द के हैं।[1]

सूफ़ी प्रेमाख्यानों में क्योंकि प्रायः एक जैसा काव्यरूप पाया जाता है इसीलिए हम्द भी उसी मसनवी अन्दाज की है। किंतु असूफ़ी प्रेमाख्यानों में कुछ तो सूफ़ी काव्यशैली से प्रभावित हैं और कुछ स्वतन्त्र।

नअत

यह अरबी भाषा का शब्द है। काव्यरूप की दृष्टि से मुसलमानों के रसूल, हज़रत मुहम्मद साहब की छन्दोबद्ध स्तुति को नअत कहते हैं अर्थात् ऐसे शेर जिनमें रसूल की रिसालत तथा जन-कल्याण के लिए किये गये उनके उपकारों की महिमा हो, उनकी पवित्रता का वर्णन हो और ख़ुदा का उन पर प्रसन्न होकर आख़िरी रसूल बनाने का विवरण हो ऐसे शेरों को नअत कहते हैं। नअत में रसूल की वन्दना के साथ साथ उनकी मेराज (ख़ुदा से भेंट) का भी उल्लेख होता है। मसनवी में नअत हम्द के पश्चात् आती है। स्वतन्त्र रूप से भी नअत लिखी जाती है। यह काव्यरूप अपना स्वतन्त्र अस्तित्व भी रखता है।

तुर्की साहित्य की मसनवियों में भी ऐसा प्रचलन है पर फ़ारसी साहित्य की मसनवियों में तो हम्द, नअत आदि की परम्परा पाई जाती है। 'निज़ामी' ने अपनी मसनवी 'लैला मजनूं'[2] में रसूल के गुणगान-स्वरूप नअत लिखी है और फिर उनके मेराज का उल्लेख किया है। निज़ामी ने 'ख़ुसरो शीरी' में भी नातेरसूल लिखी है।[3] कवि अमीर ख़ुसरो ने भी अपनी मसनवी मजनू-लैला[4] में में रसूलेख़ुदा की नात लिखकर मेराज का भी ज़िक्र किया है।

स्पष्ट है कि हिंदी के सूफ़ी एवं असूफ़ी प्रेमाख्यान काव्यों में जो नअत मिलती है वह मुस्लिम-संस्कृति-संपर्क का प्रत्यक्ष प्रमाण है और यह फ़ारसी परंपरा के फल-स्वरूप दिखाई-पड़ती है।

क़ुतवन की मृगावती और जायसी के पद्मावत सब में ही नअत लिखी है। मलिक मुहम्मद जायसी हिंदी-साहित्य में मसनवीकार के रूप में एक प्रमुख कवि हैं इसलिए उनके पद्मावत में से नअत का नमूना रखना आवश्यक है।

> कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाम मुहम्मद पूनौ-करा॥
> प्रथम जोति विधि ताकर साजी। औ तेहि प्रीति सिहिटि उपराजी॥

---

१. हंस-जवाहर, पृ० १-२
२. लैला-मजनूं, पृ० ५-६ तथा ६-७
३. ख़ुसरो-शीरीं, पृ० ५
४. मजनूं-लैला, पृ० ८-१० तथा १०-१२

दीप लेसि जगत् कहं दीन्हा। भा निरमल जग, मारग चीन्हा ॥
जो न होत अस पुरुष उजारा। सूझि न परत पंथ अंधियारा ॥
दूसरे-ठांव दैवे वै लिखे। भए धरमी जे पाढ़त सिखे ॥
जेहि नहिं लीन्ह जनम भरि नाऊं। ता कहं कीन्ह नरक महं ठाऊं ॥
जगत वसीठ दई ओहि कीन्हा। दुइ जग तरा नावं जेहि लीन्हा ॥
गुन अवगुन विधि पूछव, होइहि लेख औ जोख।
सव विनउव आगे होई, करव जगत कर मोख ॥११॥[1]

नअत के जो लक्षण ऊपर वताए जा चुके हैं वे इसमें स्पष्ट दिखाई देते हैं। 'आखिरीकलम' में भी जायसी ने नअत का विधान किया है—

रतन एक विधनै अवतारा। नावं 'मुहम्मद' जग-उजियारा ॥[2]

मंझन ने 'मधुमालती' में छंद ८ के संवंध में अपने दृष्टिकोण से रसूल की प्रशंसा की है और चित्रावली में उसमान ने (छन्द १ से २६ तक) हम्द नअत मंक़वत आदि फ़ारसी मसनवी परंपरा का पालन किया है। यह तो हुए नअत के कुछ वे उदाहरण जो सूफ़ी कवियों के यहां मसनवी में मिलते हैं। अन्य कवियों ने भी रसूल पर कविता लिखी है वह भी नअत ही है।

मंक़वत

मसनवी में हम्द नअत के वाद मंक़वत का आयोजन होता है अर्थात् ऐसा छंद (शेर) जिसे पैग़ंवरे इस्लाम मुहम्मद साहेव के मित्र-चतुष्टय, १. हज़रत अवूवकर जिनका खिताव सिद्दीक़ था २. हज़रत उमर ३. हज़रत उसमान और ४. हज़रत अली में से किसी एक की या चारों की प्रशंसा में शेर कहे गये हों। ऐसे छंद को काव्यरूप की दृष्टि से मंकवत कहते हैं। मसनवी के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से भी मंकवत लिखे जाते हैं।

हम्द और नअत के विषय में हमने जिन फ़ारसी-कवियों की चर्चा की है उन्हीं कवियों ने मंकवत को भी अपनी रचनाओं का अंग वनाया है। यहाँ हम हिंदी-साहित्य में से कुछ प्रमुख उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जायसी ने पद्मावत में यह मंक़वत कही है—

चार मीत जो मुहम्मदठाऊं। जिन्हहिं दीन्ह जग निरमल नाऊं ॥
अवावकर सिद्दीक सयाने। पहले सिदिक दीन वड़ आने ॥
पुनि सो उमर खिताव सुहाए। भा जग अदल दीन जो आए ॥

१. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत छंद ११, पृ० ४
२. जायसी-ग्रंथावली, आखिरीकलाम छंद ७, पृ० ३४१

पुनि उसमान पंडित वड़ गुनी । लिखा पुरान जो आयत सुनी ।।
चौथे अली सिंह वरियारू । सौहैं न कोऊ रहा जुझारू ।।
चारिउ एक मतै, एक वाना । भा परवान दुहूं जग वांचा ।।
जो पुरान विधि पठवा सोई पढ़त गरंथ ।
और जो भूले आवत सो सुनि लागे पंथ ।।१२।।[1]

ये चारों खलीफ़ा केवल मात्र मुहम्मद साहब के व्यक्तिगत मित्र ही नहीं थे। अत: ध्यान-ज्ञान में इतने उच्च थे कि मुहम्मद साहब के पश्चात् एक के वाद एक यह मुस्लिम-धर्म एवं शासन के इमाम या खलीफ़ा भी चुने गये थे। इस मंक़वत में इन चारों की विशेषताओं की ओर इंगित किया गया है। 'आखिरीकलाम' में भी जायसी ने इस प्रकार उल्लेख किया है—

'चार मीत' चहूं दिसि जगमोती । मांझ दिपै मनु मानिक-जोती ।।[2]

और मंझन कवि ने मंक़वत इस प्रकार लिखी है—

अव सुनु चहुं मींत कै वाता । सत नियाउ सारतर के दाता ।।
प्रथमहिं अवा वकर परवानां । सत गुर वचन मंत जिय जाना ।।
दूजें उमर नियाउ के राजा । जेइं सुत पितै हना विधि काजा ।।
तीजें ठाउं राउ उसमाना । जेइं रे भेद वेद का जाना ।।
चौथे अली सिंघ वहु गुनी । दान खरग जेइं सावी दुनी ।।
मत्त आदि सारतर कर अदर रहे संघारि ।
परगट करम पै सावे गुपुत हियें करतार ।।[3]

उसमान कवि ने 'चित्रावली' मसनवी में उक्त परंपरा का पालन किया है और शेख़ नवी ने भी। क़ासिम शाह के हंसजवार की मंक़वत का उल्लेख आवश्यक है—

अहमद संग चारौं यारा । चारि सिद्ध मीत करतारा ।।
अवू ववर सद्दीक़ जो सांचे । पहिले प्रेम पंथ वह रांचे ।।
उमर खिताव दीन कर खाँभा । कीन्हा अदल जगत तेहि थाँभा ।।
उसमां पंडित अस उजियारा । लिख पुराण दीनो संसारा ।।
चौथे अली सूर जग भाना । कफ़र भंज सव लोक वखाना ।।
दीन के दीपक चारिउ यारा । दिन दिन होय जगत उजियारा ।।[4]

---

१. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० ५
२. जायसी-ग्रंथावली, आखिरीकलाम, पृ० ३४१
३. मधुमालती, पृ० १०
४. हंसजवाहर, पृ० ४

उपर्युक्त उदाहरण तो काव्यरूप (मंक़बत) की दृष्टि से हिंदी-साहित्य में मुस्लिम संस्कृति के संपर्क का परिणाम है ही परंतु असूफ़ी-कवियों में सूफ़ी प्रेमाख्यानों की शैली से प्रभावित काव्यों के भी अनेक उदाहरण है जैसे अवधी में लिखित रसरतन। मंक़बत की दृष्टि से पुहुपावती में भी सूफ़ी-प्रेमाख्यानों की शैली का अनुकरण करते हुए कवि ने जहां हम्द के स्थान पर निराकार परमात्मा की प्रशंसा की है और शिव-गणेश काली आदि की वंदना की है वहां इस काव्य में एक अनूठी बात यह है कि जहाँ सूफ़ी कवि मंक़बत में रसूल के चार मित्रों की प्रशंसा करते है वहां पहुपावती में कवि ने अपने चार मित्रों की प्रशंसा कर डाली है जो उसके लिए चार भाइयों के समान है यह मंक़बत से प्रभावित स्वरूप अवश्य है। इतना ही नही मंकबत के उदाहरण हिंदी-साहित्य में अन्य स्थलों पर भी मिले है।

शाहेवक़्त की तारीफ़ या मद्ह

मसनवी में हम्द, नअत, मंकबत के बाद समसामयिक बादशाह या किसी अन्य महान् व्यक्ति की स्तुति भी की जाती है जिसका फारसी की मसनवियों में पालन हुआ है।[1] यह बात अलग है कि भारतीय प्राचीन ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता होगा किंतु मसनवी अंदाज का नहीं। हिंदी-साहित्य में सभी सूफ़ी प्रेमाख्यानों के प्रारंभ में सूफ़ी कवियों ने मंक़बत के पश्चात् शाहेवक़्त की प्रशंसा की है जो एक प्रकार की स्तुति या मदह है। मसनवी में यह शाहेवक्त की प्रशंसा के अंतर्गत आता है और स्वतंत्र रूप से इसे मदहख्वानी कहेंगे।

मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत में (छंद १३-१७) शेरशाह की प्रशंसा की है—

सेरसाह देहली सुलतानू। चारिउ खंड तपै जस भानू ॥१३॥

\+ \+ \+

ऐस दानि जग उपजा सेरसाह सुलतान।
ना अस भयउ न होइहि, ना कोइ देइ अस दान ॥१७॥[2]

इसमें शेरशाह का दिल्ली का शासक होना, यशगान, न्याय का वर्णन तथा दानी होने का बखान किया गया है। आखिरीकलाम मे जायसी ने बाबर की शाहेवक़्त के रूप में प्रशंसा की हैं—

बाबर साह छत्रपति राजा। राज-पाट उन कहं विधि साजा ॥८॥[3]

---

१. देखिये—प्रस्तु प्रबंध का हम्द नअत शीर्षक
२. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० ५ से ७ तक
३. जायसी-ग्रंथावली, आखिरीकलाम, पृ० २४१-४२

कवि मंझन ने मधुमालती में (छंद १०-१३) साह सलेम की प्रशंसा की है—

साहि सलेम जग भा भारी ।जेइ भुंजी बर मेदिनी सारी ॥१०॥[१]

उसमान की चित्रावली में तथा शेख नबी के यहाँ भी ऐसा ही आयोजन है और क़ासिमशाह ने हंसजवाहर में मुहम्मदशाह की प्रशंसा की है।[२]

तज़्किराए मुर्शिद (गुरु का उल्लेख)

फ़ारसी मसनवियों का यह चलन रहा है कि हम्द नअत, मिक़बत, शाहेवक़्त की प्रशंसा के साथ साथ तसव्वुफ़ संबंधी मसनवियों में पीर, मुर्शिद, औलिया या गुरु जिसमें भी कवि का लगाव है उसका प्रशंसात्मक छंदोबद्ध उल्लेख कवि करता है। इससे कवि के दृष्टिकोण का पता चलता है कि वह किस शाखा विशेष से संबद्ध है। हिंदी के सभी प्रेमाख्यानों में कवि ने गुरु का उल्लेख किया है। जायसी ने पद्मावत में सैयद अशरफ़ का गुरु रूप में बड़े आदर से उल्लेख किया है—

सैयद असरफ पीर पियारा। जेहि मोंहि पंथ दीन्ह उजियारा ॥

+ + +

दस्तगीर गाढ़े कै साथी। बह अवगाह, दीन्ह तेहि हाथी ॥

जहाँगीर वै चिस्ती निहकलंक जस चांद।

वे मखदूम जगत के, ओहि घर कै बांद ॥१८॥

छंद १८ से २० में जायसी ने विस्तार से चर्चा की है।[३] आख़िरीकलाम में भी जायसी गुरु के प्रति श्रद्धा इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

मानिक एक पाएउँ उजियारा। सैयद असरफ पीर पियारा ॥

जहाँगीर चिस्ती निरमरा। कुल जग महं दीपक विधि धरा ॥[४]

— + +

मंझन ने मधुमालती (छंद १४-१६) में शेख़ ग़ौस मुहम्मद की प्रशंसा की है[५] और उसमान ने चित्रावली में भी गुरु के प्रति आस्था प्रकट की है और इसी प्रकार शेख़ नबी ने भी।

इन सूफ़ी कवियों की इस गुरुस्तुति परंपरा से इनकवियों के दृष्टिकोण को समझने में पर्याप्त सुविधा मिलती है कि वह किस सूफ़ी संप्रदाय से प्रभावित थे। मसनवी

१. मधुमालती, पृ० १०
२. हंसजवाहर, पृ० ६
३. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० ७,८
४. जायसी-ग्रंथावली, आख़िरीकलाम, पृ० ३४२
५. मधुमालती, पृ० १३-१४

में हम्द, नअत, मंक़बत, शाहेवक़्त की प्रशंसा, गुरुपरंपरा के अतिरिक्त कवि के लिए कुछ और परंपरा का पालन करना होता है जिनका उल्लेखमात्र करना है। इन बातों ने हिंदी-साहित्य में काव्यरूप की दृष्टि से एक परंपरा चलाई है।

फ़ारसी कवि पुस्तक लिखने के कारणों पर भी प्रकाश डालता है।[1] हिंदी में भी इस परंपरा का पालन मिलता है। जायसी ने अपने वासस्थान और ग्रंथ के रचना काल का (छंद २३, २४)[2] में परिचय दिया है। मधुमालती में भी मंझन ने (छंद ४०) कथा का रचना काल दिया है।[3] उसमान और शेख नबी के यहाँ भी यह विशेषता मिलती है।

मसनवी में प्रयुक्त तथा स्वतंत्र काव्यरूपः—

हम्द—

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है ख़ुदा की प्रशंसा करना, काव्यरूप की दृष्टि से ऐसे अशआर (पद्य) जो पुस्तकारंभ में ख़ुदा की शान में प्रशंसा के रूप में कहे जाएं, हम्द कहलाते हैं।[4] बाद में हम्द एक स्वतंत्र काव्य रूप के तौर पर भी लिखी जाने लगी थी। हिंदी साहित्य में कबीर, नानक, दादू तथा अन्य कवियों ने हम्द स्वतंत्र काव्यरूप के तौर पर रची है जो भाव, भाषा एवं शब्दयोजना की दृष्टि से मुस्लिम संपर्क से आई है। दादूदयाल ने शब्द चौबन में ख़ुदा की क़ुदरत के विषय में प्रश्न उठाकर हम्द लिखी है और फिर साखी में उत्तर दिया है।[5] उनकी यह हम्द भी द्रष्टव्य है—

अल्लाह आसिकां ईमान।
भिस्त दोजख दीन दुनिया, चिकारे रहमान ॥
मीर मीरा पीरै पीरा, फिरिस्तां फ़ुरमान।
आब आतिश अरस कुर्सी, दीदनी दीवान ॥
हर दो आलम खलक खाना, मोमिना इस्लाम।
हजां हाजी कजा काजी, खान तू सुलतान ॥

---

१. क. लैला-मजनूं, निज़ामी, पृ० ६ से १२ तक
ख. ख़ुसरो-शीरीं, निज़ामी, पृ० १३
ग. मजनूं-लैला, ख़ुसरो, पृ० २० से २३
२. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० ६
३. मधुमालती, पृ० ३४
४. आईनाए बलाग़त, पृ० ८
५. दादू-बानी, भाग २, पृ० २१

इल्म आलिम मुल्क मालुम, हाजते हैरान ।
अजब यारां खबर दारां मूरते सुबहान ।।
अवल आखिर एक तू ही, जिंद है कुरबान ।
आसिकां दीदार दादू, नूर का नीसान ।।[1]

कवि कहता है कि अल्लाह आशिकों का ईमान है। उस 'दयाल' के मुक़ाबले में जन्नत दोजख़ आदि किस काम के हैं। उस मालिक के दीदार के सामने सब तुच्छ हैं। वही मुलतान है, उसी का नूर सब जगह है। ऐ खुदा तू ही आदि है, तू ही अंत है। दादू समस्त सृष्टि में उस खुदा के प्रकाश की चर्चा करके कहते हैं कि इसीलिए ऐ अल्लाह हम तेरी हम्द करते हैं।

अल्लाह तेरा जिकर फिकर करते हैं।
आसिकां मुस्ताक़ तेरे, तर्स तर्स मरते हैं ।।[2]

दादूवाणी के दोनों भागों में मुस्लिम संस्कृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप हम्द तथा इस्लामी धर्म, दर्शन के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। अल्लाह का गुणगान हम्द के रूप में कितने स्पष्ट शब्दों में किया है, कितनी तड़प है।

अरे मेरा समरथ साहिब रे अल्लाह नूर तुम्हारा ।।टेक।।
सब दिसि देवै सब दिसि लेवै ।
सब दिसी वार न पार रे अल्ला ।।१।।
सब दिसि वक्ता सब दिसि सुरता ।
सब दिसि देखण हार रे अल्ला ।।२।।
सब दिसि करता सब दिसि हरता ।
सब दिसि तारण हार रे अल्ला ।।३।।
तूं है तैसा कहिये ऐसा ।
दादू आनन्द होइ रे अल्ला ।।४।।[3]

तानसेन ने भी अल्लाह की शान में हम्द कही है—

पाक मुहम्मद अल्ला रसूल तेरी ही नूर जहूर ।
धन धन परवर्दिगार गुन्हैगार तुव करन तुही जग रम रह्यो भरपूर ।
बेचुन बेचगुन वै सुमेवै नमुन अव्वल आखिर तूं ही निकट तुही दूर ।
जित देखूं तित तुंही व्याप रहो जल थल धरती आकास तानसेन तुंही हजूर ।।[4]

---

१. दादू-बानी, भाग २, पृ० १६६ (४२१)
२. दादू-बानी, भाग २, पृ० १६७ (४२३)
३. दादू-बानी भाग २, पृ० ४७
४. अकबरी दरबार के हिंदी कवि से तानसेन के ध्रुपद, पृ० ३९४

नअत—

यह अरबी भाषा का शब्द है। काव्यरूप की दृष्टि से मुसलमानों के रसूल हज़रत मुहम्मद साहब की छंदोबद्ध स्तुति को नअत कहते हैं यानि ऐसे शेरों की एक नज़्म जिसमें रसूल की रिसालत, शफ़ाअत तथा जन कल्याण के लिए किए गए उनके उपकारों की महिमा हो, उनकी पवित्रता का वर्णन हो और खुदा का उनपर प्रसन्न होकर आखिरी रसूल बनाने आदि का विवरण हो, ऐसे अश्आर के समुच्चय को नअत कहते है। नअत में रसूल की वंदना के साथ उनके मेराज (खुदा से भेंट) का भी उल्लेख होता है।

हिंदी-साहित्य में मसनवी शैली पर रचित काव्यों में तो नअत का आयोजन है ही, स्वतंत्र रूप से रचित नअत के अनुकरण पर भी हिंदी में नअत जैसा काव्य मिलता है।

तानसेन का यह शेर नातिया शेर कहा जाएगा—

मुहम्मद नबवी हवीव अलह के साह मर्दान।[1]

इनके अतिरिक्त सूफ़ियों में तथा अन्य कवियों में फुटकल रूप में नातिया अश्आर मिल जाते है।

नूर अल्लाह तें, अव्वल नूर मूहम्मद को प्रगटो सुभ आई।[2]

मंक़बत—

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है खुदारसीदा लोगों की गुणगाथा यशोगान, अहलेबैत और असहाब की गुणगाथा। काव्यरूप की दृष्टि से अमीरुलमोमनीन हज़रत अली मुर्तुजा की प्रशंसा मे कहे गये पद्य को मंक़बत कहते है।[3] इनके अतिरिक्त पैग़ंबरे इस्लाम मुहम्मद साहेब के मित्र चतुष्टय १. हज़रत अबूबकर जिनका ख़िताब सिद्दीक़ था २. हज़रत उमर ३. हजरत उसमान और ४. हज़रत अली में से किसी एक की या चारों की प्रशंसा में कहे गए अशआर को मंक़बत कहते हैं।

हिंदी-साहित्य में मसनवी शैली पर रचित काव्यों में जो मंक़बत पाई जाती है उसका उल्लेख तो मसनवी के अंतर्गत कर दिया गया है[4]। मुस्लिम शासक आमतौर पर साहित्य, कला एवं ज्ञान-विज्ञान के संरक्षक रहे है। हुमायूँ को यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था फिर भी उसके साहित्य-प्रेम से

---

१. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, तानसेन, पृ० ३६४
२. उर्दू, हिंदी, हिंदुस्तानी, पृ० १४६
३. आइनाए बलाग़त, पृ० ३१
४. देखिये—इस शोध प्रबंध का मसनवी शीर्षक

रीझ कर हिंदी-कवि भी उसके दरबार में आए। उसके दरबार के एक हिंदी कवि छेम का उल्लेख भी मिलता है। छेम ने अपने एक छंद में हज़रत अली (चौथे खलीफ़ा) की शान में यह मंक़बत कही है—

धरनि थरनि थरथरत डरनि रच तरनि पलट्टेहु।
धूम धाम ध्रुव लोक सोक सुरपति अति पट्टेहु।
गवन रहित सम्मीर नीर नद नदी निघट्टेहु।
वरि वरि निकर डिकरि चिकरि कहरि खैवर पर चट्टेहु।
हिमगिरि सुमेर कैलास डिग, तव हहरि हहरि संकर हस्यौ।
छेम कोपि हजरत अली जब जुल्फकार कम्मर कस्यो ॥[1]

कवि छेम को मुस्लिम संस्कृति का कितना गहरा परिचय था कि एक तो हज़रत अली की तारीफ़ की और फिर हज़रत अली की उस तलवारकी ओर भी इशारा है जो जंगेबदर में रसूल ने उन्हें प्रदान की थी। बात असल यह है कि उस काल में साहित्य का संरक्षण एवं साहित्य-सृजन भेदभाव रहित हुआ करता था। इस प्रसंग में तानसेन कृत हज़रत अली आदि की शान में प्रशंसा का एक छंद और उद्धृत है—

हजहत अली की सुदृिष्ट भली मोपर जो दुख जाय सब तन से भाज।

\+ + +

अली वली मरद कुफर दारिद्र हरन हजरत हसन बुर्जरक इमाम।
संसार को साहब हुसेन सैयदे साहजाते जैनुलाबदीन दीन पर्न।[2]

\+ + +

क़सीदा

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है पद्यात्मक प्रशंसा या अतिशयोक्ति-पूर्ण प्रशंसा। हिंदी में इसे स्तुति छंद कहा जा सकता है। काव्यरूप की दृष्टि से यह एक ऐसी कविता है जिसमें तुकांत अथवा एक ही छंद के कम से कम तीन शेर (पद्य) होते हैं[3] आविषय की कोई सीमा नहीं। यह अरबी भाषा का प्राचीनतम काव्य रूप है।

विषय की दृष्टि से इसमें व्याज-स्तुति और व्याज-निंदा उपदेश या शिकवा शिकायत होती है। यह छंद वीर रस के सभी भेदों के लिए उपयुक्त है। यह कविता किसी धार्मिक या राष्ट्रीय नेता, बादशाह या किसी महान् पुरुष की प्रशंसा में लिखी

१. शिवसिंह सरोज, पृ० १०२
२. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, तानसेन के पद, पृ० ३६४
३. निगार, असनाफ़े सखुन नम्बर, पृ० ४६

जा सकती है। क़सीदे के दो मुख्य भेद हैं—ख़िताबिया और तमहीदिया।

ख़िताबिया

इसमें कवि आरंभ से ही अपना उद्देश्य कहना आरंभ कर देता है अर्थात् स्तुति करनी है तो पहले ही शेर में प्रशंसित को संबोधित करके उसकी प्रशंसा करता है। यदि उपदेश (वाज़ या नसीहत) करना हो तो स्वयं को संबोधित कर, विषयवस्तु पर आता है। ख़िताबिया क़सीदे में कवि किसी लंबी भूमिका के बिना अपना उद्देश्य रखता है।

तमहीदिया

इसमें कवि पहले भूमिका बांधता है और फिर अपने उद्देश्य की ओर आता है। क़सीदे के मुख्य पांच अंग हैं[१]—

१. मतला

पहला शेर जिसके दोनों मिस्रे (चरण) हमक़ाफ़िया (अंत्यानुप्रास-युक्त) हों।

२. तशबीब या तम्हीद

क़सीदे में भूमिका के तौर पर आरम्भ में कुछ शेर होते हैं जिनमें कवि गर्वोक्ति, बहार या इश्क़ (आसक्ति) या संसार की क्षणभंगुरता या अपने दुर्भाग्य का वर्णन अत्यंत रंगीनी के साथ करता है।

३. तख़लीस (मुख़ल्लस या गुरेज़)

क़सीदे में वह स्थान, जहां तम्हीद के पश्चात् प्रशंसित का वर्णन इस प्रकार छेड़ता है कि वह पूर्व विवेचित विषय का अंग मालूम हो यानी उद्देश्य का आरम्भ, वहां प्रशंसित की प्रशंसा की जाती है।

४. हुस्ने-तलब

कवि यहां प्रशंसित से अपना उद्देश्य ऐसे अच्छे ढंग से प्रस्तुत करता है कि उसमें कवि की अपनी हीनदशा की भी चर्चा हो और अपने उद्देश्य की ओर भी उसको आकृष्ट करे। इसे अर्जेहाल (आत्म निवेदन) भी कहते हैं।

५. दुआइया

इस भाग में कवि प्रशंसित (ममदूह) के प्रति ख़ुदा से दुआ करता है और मक़ता (अन्तिम शेर जिसमें तख़ल्लुस भी हो) कह कर क़सीदे को समाप्त करता है।

यह तो हुए सपूर्ण कसीदे के विभिन्न भाग या अंग किन्तु जिस क़सीदे में यह

---

२. आईनाए बलाग़त, पृ० ३,४,६,७, १६

सब अंग न हों वह क़सीदा 'क़सीदाए नातमाम' (अपूर्ण स्तुति छन्द) कहलाते हुए भी क़सीदा होता है।

अरवी भापा के अतिरिक्त फ़ारसी और उर्दू में अनेक क़सीदागो कवि हुए हैं जिनमें बुखारा के कवि रोदकी (मृ० ९४१ ई०) ग़ज़नवियों में क़सीदागो उंसरी बलखी (१००० ई०) और फ़र्रुखी सीसतानी (दसवीं सदी० ई०) हुए हैं। क़सीदा अरव, ईरान, अफ़गानिस्तान और वाद में हिंदुस्तान में प्रचलित रहा है।

मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणामस्वरूप क़सीदाए नातमाम के अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें हिंदी कवियों ने विषय, भाव, भापा की दृष्टि से मुस्लिम शासकों या उनके चरित्रों का वर्णन किया है।

संस्कृत-भापा में स्तोत्रों की एक अविच्छिन्न परंपरा है किंतु यह स्तुत्यात्मक श्लोक अधिकांश रूप में धार्मिक हैं जिसमें अजेय शक्तियों के प्रति विशेप निवेदन है। यों तो अपभ्रंश काल में तथा वीरगाथा काला में अनेक क़सीदेनुमा छंद (कविताएं) उपलब्ध हैं। किंतु मुसलमानों के संपर्क के वाद जिन हिंदी कवियों ने शाहेवक्त के रूप में मुस्लिम शाषकों की प्रशंसा की है वह भाव, भाषा और विषय की दृष्टि से क़सीदे के वहुत निकट है। इस विपय में 'जहांगीर जस चंद्रिका' के अतिरिक्त विनय पत्रिका में कवि का वह अंदाज़ जहां वह हनुमान द्वारा सीता जी की सिफ़ारिश से राम तक रसाई चाहता है, मुग़ल दरवार की अरज़ी की याद दिलाता है और मुग़लदौर में दरवारों में अनेक क़सीदेगो शाइर रहते थे। क़सीदे के पाँचों अंग विनयपत्रिका में हैं।

अरवी और फारसी-साहित्य में यों तो क़सीदा लिखने का स्वतन्त्र रूप से प्रेचलन रहा है किन्तु फ़ारसी साहित्य की मसनवियों में शाहेवक़्त की प्रशंसा मसनवी का एक अंग रहा है। इस प्रकार शाहेवक़्त की प्रशंसा की इस प्रथा में क़सीदाएनातमाम का रूप स्पष्ट मिलता है। निज़ामी की 'लैला मजनू' मसनवी में अवुल मुज़फ्फर की दुआ के शेर हैं।[1] जिसमें क़सीदे के पांचवें अंग दुआइया की विशेपताएं हैं। इसी प्रकार 'खुसरो शीरीं' में भी निज़ामी ने शाहेवक्त तुग़रिल की दुआ[2] का आयोजन किया है। अमीर खुसरो ने भी अपनी मसनवी 'मजनू-लैला' में शाहेवक़्त अलाउद्दीन की प्रशंसा की है।[3]

हिन्दी के प्रेमाख्यान-काव्यों में लगभग सभी में शाहेवक्त की प्रशंसा की गई है जिनमें क़सीदे के लक्षण स्पष्ट रूप से घटते हैं। मसनवी में वर्णित शाहे-वक़्त की

१. लैला मजनूं, पृ० १२-१४
२. खुसरो शीरीं, निज़ामी, पृ० ४-११
३. मजनूं लैला खुसरो, पृ० १४-१८

प्रशंसा क़सीदे का एक संक्षिप्त रूप होता है जबकि स्वतंत्र क़सीदे में कवि को क़सीदे के पांचों अंगों के विस्तृत एवं अत्यंत अतिशयोक्ति-पूर्ण निरूपण का पूर्ण अवसर मिल जाता है। यहां मलिक मुहम्मद जायसी के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं जिनमें उसने शाहेवक्त की प्रशंसा के रूप में शेर कहे हैं। वह क़सीदा ही हैं और ये फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि फ़ारावी के क़सीदे के ढंग पर हैं—

सेरसाहि देहली सुलतानू। चारिउ खंड तपै जस भानू॥

\+ \+ \+

तहं लगि राज खड़ग करि लीन्हा। इसकंदर जुलकरन जो कीन्हा॥

\+ \+ \+

दीन असीस मुहम्मद, करहु जुगहि जुग राज।
बादसाह तुम जगत के जग तुम्हारा मुहताज॥१३॥[1]

बरनौ सूर भूमि पति राजा। भूमि न भार सहै जेहि साजा।
हय गय सेन चले जग पूरी। परवत टूटि उड़हि होई धूरी॥
रेनु रैनि होइ रबिहि गरासा। मानुख पंखि लेहि फिरि बासा।
भुइं उड़ि अंतरिक्ख मृतमंडा। खंड-खंड धरती बरम्हंडा॥
डोलै गगन, इंद्र डरि कांपा। बासुकि जाइ पतारहि चांपा।
मेरु धसमसै, समुद सुखाई। बन खंड टूटि खेह मिलि जाई॥
अगिलहिं कहं पानी लेइ बांटा। पछिलहि कहं नहि कांदौ आटा।
जो गढ़ नएउ काहुहि चलत होइ सो चूर।
जब वह चढ़ै भूमि पति, सेरसाह जग सूर॥[2]

आगे चलकर शेरशाह के न्याय की उपमा नौशेरवां से दी है तथा तीन छंदों मे शेरशाह की प्रशंसा की गई है।

जायसी ने अपनी एक छोटी सी रचना 'आखिरीकलाम' में बाबर की शाहेवक़्त के रूप में प्रशंसा करते हुए क़सीदा कहा है।

बावर साह छत्रपति राजा। राज-पाट उन कहं बिधि साजा॥
मुलुक सुलेमा कर ओहि दीन्हा। अदल दुनी ऊमर जस कीन्हा॥
अली केर जस कीन्हेसि खांड़ा। लीन्हेसि जगत समुद भरि डांड़ा।
बल ह्मजा कर जैसे संभारा। जो बरियार उठा तेहि मारा॥
पहलवान नाए सब आदी। रहा न कतहु बाद करि बादी॥[3]

---

१. जायसी-ग्रंथावली (पद्मावत), पृ० ५
२. जायसी ग्रंथावली (पद्मावत), पृ० ५-६
३. जायसी-ग्रंथावली, आखिरीकलाम, पद ८, पृ० ३४१-४२

मधुमालती में मंझनने शाहेवक़्त के रूप में सलीमशाह की शान में क़सीदा कहा है।[1] और उसमान ने चित्रावली में तथा शेख़ नबी ने ज्ञानदीप में जहांगीर पर क़सीदा लिखा है।[2]

शब्दयोजना, भाव एवं भाषा की दृष्टि से नरहरि का निम्नलिखित छन्द जो बाबर के विषय में मिलता है, क़सीदाए-ना तमाम का एक रूप है जो तख़लीस (मुखल्लस या गुरेज़) के अंतर्गत लिया जा सकता है।

नेक बख़्त दिल पाप सख़ी जवां मर्द शेर नर।
अव्वल अली खुदाय दिया तिसि यार मुल्क जर॥
खालिक बहुनेश हुकुम आलिया जो आलिब।
दौलत बख़्त बुलंद जंग दुश्मन पर ग़ालिब॥
अवसाफ तुरा गोयद सकल कवि नरहरि गुफ्तम चुनी।
बाबर बरोबर बादशाह दिगर न दीदम दर दुनी॥[3]

मुस्लिम-संस्कृति के सम्पर्क के परिणाम स्वरूप भक्तिकाल में अनेक कवियों ने बाबर, हुमायूं, शेरशाह, अकबर, जहांगीर, शाहजहां तथा औरंगज़ेब तक की शान में स्तुति-छन्द कहे हैं। इन मुसलमान शासकों के प्रति इस प्रकार के काव्य को संस्कृति के संपर्क का शुभ परिणाम कहा जाना चाहिए। वह शासक भी मुस्लिम संस्कृति की एक इकाई है कवि भी मुसलमान है और क़सीदे में जो तलमीहात (अन्तर्कथाएँ) हैं वे भी मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप आई हुई हैं।

नरहरि ने हुमायूँ की वीरता, धैर्य और दान की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है जो क़सीदे का विषय है—

पूरब हद्द पच्छिम पहार दोऊ पन किए विधि जानि अगाऊं।
इत सुमेरु उत चढ़त लंक हय मारि तेग़ नरपति सब नाऊं।
हिंद ते पैंदि पठान पग्ग बर दल दलमलि दरियाय बहाइ।
गज्जिहि बहुरि जित्त दिल्ली पति इमि हिंडोल रच्यो साहि हुमाऊं॥[4]

एक छंद में कवि ने अकबर की सेना की वीरता का भी वर्णन किया है।[5]

शाहजहां की स्तुति में गंग ने भी छंद लिखे हैं।[6]

---

१. मधुमालती, पृ० १०
२. ज्ञानदीप, पद १७
३. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ३३३
४. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० २२५
५. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० २२६
६. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० १२७

तानसेन ने अकबर की वीरता, उदारता एवं आतंक का वर्णन एक छंद में करके क़सीदे के गागर में सागर भर दिया।

ए आयो आयो रे वलवंत शाह आयो छत्रपति अकबर
सप्त द्वीप औ अष्ट दिशा नर नरेन्द्र घर-घर थर-थर डर
निश दिन कर एक छिन पावे वरण न पावे लंका नगर
जहां तहां जीतत फिरत सुनियत है जलालदीन मुहम्मद को लशकर
शाह हुमायूं के नन्दन चन्दन एक तेग जोधा तकवर
'तानसेन' को निहाल कीजै दीजौ कोटिन जरजरी नजर कमर।[1]

इस छंद में क़सीदे की अनेक विशेषताएं मिलती हैं दूसरे मिस्रे हमऽ.फ़िया हैं अकबर की प्रशंसा है उसके लश्कर की वीरता का वर्णन है अकवर की तेग़ की तारीफ़ है और खिताबिया के रूप में धन प्राप्ति की याचना भी है तथा दुआइया के रूप में शुभकामना भी है और तखल्लुस की अभिव्यंजना भी है। तुलसीदास की विनयपत्रिका के अनेक स्थान एवं केशवदास की जहांगीर जस चंद्रिका भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

लुग़ज़—

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पहेली। प्रहेलिका, मुअम्मा या जंगली चूहे का बिल जो बहुत टेढा होता है। फ़ारसी भाषा में पहेली को 'चीस्तां' कहते हैं।[2] यह काव्यरूप विश्वव्यापी है और प्रत्येक भाषा में किसी रूप में मिलता है। किसी मशहूर वस्तु का नाम टेढ़े ढंग से कविता में लिया जाए या उसके विषय में प्रश्न उठाया जाये, उसे चीस्तां कहते हैं।[3]

मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप यह काव्य या शब्दालंकार हिंदी-साहित्य में बहुत प्रयुक्त हुआ है। अमीर खुसरो ने जिस ढंग से हिंदी में कई प्रकार की पहेली का प्रयोग किया है वह विषय वस्तु एवं भाषा की दृष्टि से सर्वथा नूतन प्रयोग है जिसमें मुस्लिम-संस्कृति की प्रमुख भाषा अरबी एवं फ़ारसी की प्रवृत्तियां

---

१. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० १०६
२. तारीखे अदबीयाते ईरान (उर्दू) ब्राउन, पृ० ४१८
क. लुग़ज़े वाद—चीस्त आं पैके मुबारके मुक़द्दम फर्रुख जनाब।
रोज़ो शब अंदर तहरूक सालो माह अंदर शिताब॥
ख. लुग़ज़े क़लम—गुलबदन वागे़ नफ़से नातिक़ारा। मनयके अब्रे गौहर अफ़शानम्॥
हमशकर रेजो हम अबीरफ़िशां। लबे दिलदारो जुल्फ़े जानानम्॥
कलम की पहेली—दर दुर अफ़शानी व गुहर रेज़ी। तवअ दस्तूरो दस्ते सुलतानम्॥
३. आईनाए बलाग़त, पृ० ६५

स्पष्ट रूप से झलकती दिखाई पड़ती हैं। खुसरो की बूझ पहेली के नमूने प्रस्तुत हैं—

फ़ारसी बोली आईना। तुर्की ढूंढ़ी पाई ना।
हिंदी बोली आरसी आए। खुसरो कहे कोई न बताए॥[1]
आरसी

एक बुढ़िया शैतान की ख़ाला। सिर सफ़ेद औ मुँह है काला॥
आक की बुढ़िया[2]

हम थाम के खाई है औ मेरे मन को भाई है।
देखी है पर चाखी नाहीं, अल्ला की कसम खाई है॥[3] खाई

एक नार हाथे पर खासी। जनवर बैठा बीच खवासी॥
अता पता मत पूछो हमसे। कुछ तो महरम होगी तुमसे॥[4] अंगिया

नर नारी की जोड़ी दीठी। जब बोरें तब लागै मीठी॥
एक नहाय एक तापन हारा। चल खुसरो कर कूच नक़ारा॥[5] नक़्क़ार:

इन पहेलियों (लुग़ज़ या चीस्ता) में फ़ारसी, तुर्की, हिंदी का उल्लेख, शैतान की ख़ाला, अल्लाह की क़सम खाई है, मुस्लिम-धर्म की ओर स्पष्ट इंगित हैं तथा महरम या नक्कारे की पहेली स्पष्ट रूप से बताती है कि यह काव्य-रूप मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप ही आया है।

डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि पहेलियों के लिए अमीर खुसरो प्रसिद्ध हैं। खुसरो की पहेलियों में जहाँ कौतूहल है वहाँ रसिकता और विनोद की मात्रा भी पूरी है। इन्होंने खुसरो की पहेलियों के छः भेद किये हैं। अन्तरालापिका, बाहिरालापिका और दोसुखने तक तो वह पहेली के भेद के अंतर्गत रखना उचित बताते हैं किन्तु कहमुकरी की अपनी अलग शैली विशेष बनाई है। निस्बत को वह बराबरी या संबंध कहते हैं और ढकोसले को अलग काव्यरूप माना है।[6] यह काव्य रूप हिंदी के लिए भाव, भाषा, विषय, शैली आदि की दृष्टि से मुस्लिम संस्कृति के संपर्क का एक परिणाम हो सकता है।

बहर (छंद) की दृष्टि से खुसरो की पहेलियों में अधिकांश पहेलियां बहरे-मुतक़ारिब में हैं। उसमें भी वह कहीं शब्द गिरा देते हैं। फ़अलुन के स्थान पर फ़अलु एवं फ़ाअ के स्थान पर फ़अ प्रायः ले आए हैं। बहरे मुतक़ारिब मुसम्मन असलम के

१. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २०
२. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० १६
३. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २१
४. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २२
५. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २२
६. हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १८३

उदाहरण स्वरूप खुसरौ की पहेली मोरी[१], पहेली मोढ़ा[२], नाखुन[३], मुहाल नक़्क़ारा[४], आदम[५], आदि में बहरे-मुतक़ारिब मुसम्मन असलम है जिसमें उन्होंने फ़अलुन-फ़अलुन फ़ाअ तथा फ़ालु फ़अलुन फ़अलुन फ़ाअ अरकान का प्रयोग किया मा'लूम होता है।[६]

दो सख़ुना

फ़ारसी में दो एक के दुगने को कहते हैं और सखुन फ़ारसी में कविता, शाइरी, प्रवचन, मक़ूल: या बात को कहते है अर्थात् दो सखुना उसे कहते हैं जिसमें दो या दो से अधिक प्रश्न पाठक के सामने रखे जाएं और उत्तर उनका एक ही हो। यह काव्य-रूप हिंदी में हमें अमीर ख़ुसरौ के यहाँ मिलता है।

अनार क्यों न चक्खा,	दाना न था।[७]
वज़ीर क्यों न रखा?	फ़ारसी में दाना का अर्थ बुद्धिमान है।
गोश्त क्यों न खाया,	
डोम क्यों न गाया,	गला न था।[८]
संबोसा क्यों न खाया,	
जूता क्यों न चढ़ाया?	तला न था।[९]
पोस्ती क्यों रोया,	अमल न था।[१०]
चौकीदार क्यों सोया?	नशा, काम अर्थात् पहरे का समय।
दही क्यों न जमा,	ज़ामिन* न था।[११]
नौकर क्यों न रखा?	*जिसे दूध में डालकर दही जमाते हैं।
	*जमानत देने वाला।

इन दो-सखुनों में दाना, पोस्ती, चौकीदार, अमल, ज़ामिन शब्द भी मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क की ओर स्पष्ट इशारा करते हैं। अन्य दोसखुनों में भी एक नये काव्य का श्रेय ख़ुसरौ को मिलता है।

---

१. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २१, पहेली २१
२. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २१, पहेली २२
३. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २२, पहेली २५
४. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २२, पहेली २६
५. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २३ पहेली ३०
६. अमीर खुसरो ओर उनकी हिंदी रचनाओं का मूल्यांकन, पृ० ११०
७. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ४२।२२४
८. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ४२।२२५
९. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ४२।२२७
१०. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ४२।२३१
११. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ४२।२३३

कह मुकरी

मुकरी भी एक प्रकार की पहेली (चीस्तां) ही है पर उसमें उसका बूझ प्रश्नोत्तर के रूप में दिया रहता है। हो सकता है कि अपह्नुति से इसका कुछ संबंध हो। किंतु अपह्नुति (Concealment) की परिभाषा है—जहाँ प्रकृत (उपमेय) का निषेध करके अप्रकृत (उपमान) का स्थापन (आरोप) किया जाय।[1] खुसरो की कह मुकरियों में जैसा कि मुकरी शब्द बताता है, कहने के बाद मुकरा जाए। और फिर इनके यहां प्रश्नोत्तर के रूप में मिलती है—ए सखी साजन के रूप में प्रश्न उठाया जाता है और सवाल का जवाब मुकरते हुए दिया गया है। यद्यपि आधुनिक काल में भारतेंदु आदि के यहां अपह्नुति के सातों प्रकार के काव्य की रचना मिलती है। खुसरो की मुकरी वार्तालाप के रूप में चलती है। ऐसा मालूम होता है कि प्रेमी के विषय में कहा जा रहा है, पर वह किसी अन्य वस्तु पर पूरा-पूरा घटित हो जाता है। यह काव्यरूप खुसरो के विलक्षण पंडित होने का द्योतन करता है और बहुत रोचक है तथा मौलिक मालूम होता है—

मेरा मूंह पोंछे मोको प्यार करे। गरमी लगे तो बयार करे॥
ऐसा चाहत सुन यह हाल। ऐ सखी साजन ना सखी रुमाल॥[2]
वह आवे तब शादी होय। उस बिन दूजा और न कोय॥
मीठे लागें वाके बोल। ऐ सखी साजन ना सखी ढोल॥[3]

+ + +

मेरो मोसे सिंगार करावत। आगे बैठ के मान बढ़ावत॥
वासे चिक्कन ना कोउ दीसा। ऐ सखी साजन ना सखी सीसा॥[4]

+ + +

हाट चलत मैं पड़ा जो पाया। खोटा खरा मैं ना परखाया॥
ना जानूं वह हैगा कैसा। ऐ सखी साजन ना सखी पैसा॥[5]

+ + +

बरसा बरस वह देस में आवे। मुंह से मुंह लगा रस प्यावे॥
वा खातिर मैं खरचे दाम। ऐ सखी साजन ना सखी आम॥[6]

उपर्युक्त कह मुकरियां काव्यरूप की दृष्टि से अमीर खुसरो, जो कि मुस्लिम

१. काव्य-दर्पण, पृ० ३६७
२. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ३६
३. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ ३६।१८७
४. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ३६।१८६
५. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ३७।१६०
६. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ३६।१४४

संस्कृति के प्रतीक रूप हैं, के द्वार हिंदी में आई हैं। वैसे इनमें क़ाफ़िया 'बंदी भी है और 'रुमाल', 'ढोल' फ़ारसी दुहल, सीसा (फा: शीशः) पैसा आदि वस्तुएँ मुस्लिम-संस्कृति के द्योतक हैं।

ऐसा ख़याल किया जाता है कि अमीर ख़ुसरौ के युग में हुक़्क़ा पीने का प्रचलन नहीं था। यदि यह ठीक है तो ख़ुसरो के नाम पर जो कह मुकरियां प्रचलित हैं, वे किसी अन्य हिंदी कवि ने रची होंगी यानी अमीर ख़ुसरो के इस काव्य-रूप को आगे भी किसी नः किसी ने वढ़ाया है—

न्हाय धोय सेज मेरी आयो। ले चूमा मुंह मुंहहि लगायो।।
इतनि वात पै थुक्कम थुक्का। ऐ सखी साजन ना सखी हुक्का।।

× + +

वड़ो सयानो दम दे जाय। मुंह की मेरे मिट्टी ले जाय।।
हरदम वाजे थुक्कम थुक्का। ऐ सखी साजन ना सखी हुक्का।।[1]

ऐसी और भी सैकड़ों मुकरियाँ हैं।

निसवत

यह अरवी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है संबंध तुलना, समता या वरा-वरी। काव्यरूप की दृष्टि से निस्वत में दो या तीन शब्दों में संबंध के आधार पर पद्य रचना होती है। हिंदी में अमीर ख़ुसरौ के निस्बत के उदाहरण देखिये—

हलवाई और दवकई में क्या निसवत है? उत्तर, कंदा[2]

फ़ारसी में कंदा और कुंदा एक ही प्रकर से लिखा जाता है।

कंदा=खानेवाला और कुंदा, जिससे दवकई तवक़ पीटते हैं।

वादशाह और मुर्ग़ में क्या निसबत है? उत्तर, ताज[3]

इस प्रकार की अनेक निस्वतें ख़ुसरौ के नाम से मिलती हैं जिनमें वन्दूक आदि की निस्वतें वाद की क्षेपक मालूम होती हैं। इसे हिंदी में आज की सी स्वच्छन्द कविता कहा जा सकता है।

विनबूझ-पहेलियाँ

अवुलहसन अमीर ख़ुसरौ वड़े प्रतिभावान पंडित थे। उनकी कविता देखने से पता चलता है कि वे अनुकरण की अपेक्षा मौलिकता प्रिय अधिक रहे हैं। इनकी पहेलियाँ (लुग़ज़ या चीस्तां) दो प्रकार की हैं। कुछ पहेलियाँ ऐसी हैं जिनमें उनका बूझ छिपा कर रख दिया है और वह तुरन्त वहीं पर मालूम हो जाता है जैसे ये बूझ पहे-

१. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ३८।१८१, १८३
२. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ४४।२४३
३. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ४५।२५१

लियां। कुछ ऐसी चीस्तां हैं जिनका बूझ उनमें नहीं दिया हुआ है। उन्हें बिन बूझ पहेली समझिए। इनका उत्तर बाहर से सोच विचार कर बताया जाता है। इनमें पहेली का पूरा अर्थ समझे बिना उत्तर संभव नहीं। कुछ उदाहरण देखिये—

विधना ने एक बरख बनाया। तिरिया दी और नीर लगाया ।।
चूक भई कुछ वासे ऐसी। देस छोड़ भयो परदेसी ।।[1]

हज़रत आदम=आदमी

इस बिन बूझ पहेली या चीस्तां में मुस्लिम धर्म दर्शन या पौराणिकता की ओर संकेत है। हज़रत आदम की रचना, प्रथम मानव होना और शैतान के बहकाने से गेहूं का खाना, जन्नत से निकाला जाना आदि का हिंदी में वर्णन स्पष्ट रूप से मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क का परिणाम है। और भी देखिये—

एक नार दो को ले बैठी। टेढ़ी होके बिल में पैठी ।।
जिसके बैठे उसे सुहाय। खुसरू उसके बल बल जाय ।। पैजामा[2]
एक नार जाके मुंह सात। सो हम देखी बेंडी जात ।।
आधा मानुस निगले रहे। आंखों देखी खुसरू कहे ।। पैजामा[3]

यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त है कि पाजामा मुस्लिम-संस्कृति का एक पहनावा है और पहेली में तखल्लुस (खुसरू) का भी अरबी-फ़ारसी काव्य रूप की दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है।

चिलमन, रुपया और विशेषकर बंदूक,[4] हुक्का आदि पर रचित खुसरो के नाम पर छपी चीस्तानों (पहेलियों) में क्षेपक अंश लगता है क्योंकि बंदूक बाद की ईजाद है। बहरहाल ये पहेलियां भी हैं, तो हिंदी में रचित, किसी की भी हों, मुस्लिम संस्कृति के संपर्क का अच्छा परिणाम है। क्योंकि बारूद और तम्बाकू का ऐसा प्रयोग मुसलमानों 'मुग़लों' के संपर्क के बाद की बात मालूम होती हैं। इसी प्रकार दियासलाई तो और भी बाद की बात है।

पी के नाम से दिपत है, कामिन गोरी गात।
एक बेर दो बेर सती भई, पिया न पूछे बात ।। दियासलाई[5]

ज़ूलिसानीन

इसमें ज़ू अरबी भाषा का उपसर्ग है जिसका अर्थ है वाला, दो या कई तथा लिसान का अर्थ है जिह्वा रसना या भाषा। यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ हुआ, दो भाषाओं वाला यानी ऐसा शेर जो दो भाषाओं में पढ़ा

१. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २३ २. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २४
३. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २४ ४. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २६
५. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ३१।१०४

जाए। इस प्रकार का संस्कृत और प्राकृत का मिला जुला रूप प्राचीन भारतीय साहित्य में भी मिलता है। किन्तु अरबी-फ़ारसी और हिंदी मिश्रित इस प्रकार के काव्यरूप को मुस्लिम संस्कृति के संपर्क का परिणाम कहा जा सकता है। 'वहरूप फ़साहत' में इस विधा को इस प्रकार लिखा गया है कि एक ही शेर का एक मिस्रा (चरण) एक भाषा में हो और दूसरा चरण दूसरी भाषा में हो।[१] अरबी, फ़ारसी और तुर्की भाषाओं में यह काव्यरूप उपलब्ध है।[२] इसमें पहला चरण अरबी-भाषा का है और दूसरा फ़ारसी का। मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप हिंदी साहित्य में फ़ारसी मिश्रित इस काव्यरूप के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अरबी-फ़ारसी और हिंदी के बीच की कड़ी के रूप में अमीर ख़ुसरो का ही व्यक्तित्व ऐसा था जो इस विधा को हिंदी में लाए। अमीर ख़ुसरो अरबी, फ़ारसी के प्रकाण्ड पंडित थे ही, वह तुर्की, हिंदी और संस्कृत में पारंगत माने जाते थे। ख़ुसरो के ज़ूलिसानीन के कुछ उदाहरण ही पर्याप्त होंगे—

तिश्नः रा चे मी बायद,
मिलाप को क्या चाहिए ? चाह[३]

यहाँ पहला चरण फ़ारसी भाषा का है जिसका अर्थ है प्यासे को क्या चाहिये। इसके उत्तर में चाह फ़ारसी के अर्थ में कूप का अर्थ दे रहा है और दूसरे चरण में मिलाप को हिंदी में प्रेम चाहिये। यहां चाह का अर्थ प्रेम है।

कोह चे मी दारद,
मुसाफ़िर को क्या चाहिए ? संग[४]

पर्वत में क्या है संग। फ़ारसी में संग पत्थर को कहते है और हिंदी में यात्री को किसी का संग अर्थात् साथ चाहिये।

शिकारे बेह चे मी बायद कर्द,
क़ूवते मग़ज़ को क्या चाहिए ? बादाम[५]

फ़ारसी वाले पहले चरण का अर्थ है अच्छा शिकार कैसे करना चाहिए और दूसरे चरण में मस्तिष्क की शक्ति के लिए क्या चाहिए। फ़ारसी में बा+दाम का अर्थ है जाल से और वैसे बादाम एक शक्तिप्रद सूखा मेवा है इस प्रकार के अनेक

१. आईनाए बलाग़त, पृ० ५६
२. क. अला या आय्यो हस्साक़ी अदिर कासन् व ना विलहा।
कि इश्क़ आसां नम्द अव्वल वले उफ़ताद मुश्किल हा ।।
ख. बहारे जिन्दगी बरबाद करदी (करदई)। कयामत ऐ दिल नाशाद करदी (करदई) ।।
४. ख़ुसरो की हिंदी कविता, पृ० ४६ ३. ख़ुसरो की हिंदी कविता, पृ० ४७
५. ख़ुसरो की हिंदी कविता, पृ० ४६

उदाहरण हैं। यह काव्यरूप, इसमें प्रयुक्त शब्द तथा भावों पर मुस्लिम संस्कृति का पूरा पूरा प्रभाव है जो हिंदी में खुसरो के माध्यम या संपर्क का परिणाम है। इसे हिंदी में हम दो-भाषी या दो सुखने भी कह सकते हैं। हिंदी-साहित्य में इस काव्य-रूप (जूलिसानीन (द्विभाषी) का अच्छा खासा प्रचलन हुआ है। गंग के दो-एक नमूने प्रस्तुत हैं—

एक समय घर से निकसी सखियन के संग सु सांवल सूरत।
बाम्ज़ नाज नमूद सनम बेताब शुदम अफ़ज़ूद कदूरत।
मुसकाय कै मोतन ताकि दियो तिरछी अखियां चितवन को मरूरत।
होशम रफ्त न मून्द वदस्त शुदे दिल मस्त ज़िंदीदने सूरत ॥[1]

और

कौन घरी करिहैं विधना, जब रूए आं दिलदार बिबीनम्।
आनन्द होइ तबै सजनी, दर वस्ले यारे निगार नशीनम् ॥[2]

विशेषता और अंतर केवल इतना ही है कि खुसरो ने पहला चरण फ़ारसी और दूसरा हिंदी का प्रयोग किया हैं और यहां इसके विपरीत। इसका कारण यह है कि खुसरो मूलतः फ़ारसी के कवि थे और गंग हिंदी के।

अब्दुल रहीम खानेख़ानाँ भी फ़ारसी के साथ-साथ हिन्दी के अच्छे कवि थे और इनकी संस्कृत की कविता भी मिलती है। जूलिसानीन काव्यरूप का इनका भी एक नमूना द्रष्टव्य है—

मी गुज़रत ईं दिलरा वे दिलदार।
इक इक साअत हमयू साल हजार ॥[3]
कै गोयम अहवालम पेशे निगार।
तनहा नजर न आयद दिल लाचार ॥[4]

औरंगजेब की पुत्री शहजादी ज़ेबुन्निसा बेगम की हिंदी-कविता में भी फ़ारसी-हिंदी की पुट मिलती है—

जेबुन्निसा जहान में, दुख्तर आलमगीर।
नैन विलास विलास में, खास करी तहरीर ॥[5]

इसमें पहले शेर का पहला भाग हिंदी और दूसरा भाग फ़ारसी का है।

---

१. अकबरी दरबार के हिंदी-कवि पृ० ४४५,
२. हिंदी पर फ़ारसी प्रभाव, पृ० ५७
३. रहीम रत्नावली, पृ० ७०
४. रहीम रत्नावली, पृ० ७२
५. हिंदी पर फ़ारसी-प्रभाव, पृ० ५७

मुस्तज़ाद या मज़ीद इलैह

ऐसी नज़्म जिसके प्रत्येक मिस्रे (चरण) के पश्चात् उसमें एक भाग उसी वज़न का बढ़ा दिया जाए या एक वाक्य रुबाई के वज़न का बढ़ा दिया जाए। मुस्तज़ाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि असल शेर (बिना बढ़ौतरी के) स्वयं में पूर्ण हो। इसके दो प्रकार भी बताए गये हैं—१. मुस्तज़ादे आरिज़ और २. मुस्तज़ादे लाज़िम।[1] पहले में जो वाक्य बढ़ाया जाए वह शेर के विषय-वस्तु से संबद्ध न हो। दूसरे में जो वाक्य बढ़ाया जाए वह शेर के विषय के लिए आवश्यक हो। मुस्तज़ाद के कई रूप हैं। कभी शेर के आगे एक वाक्य[2] या कभी दो और कभी दो से अधिक भी बढ़ा दिये जाते हैं।[3] मुस्तज़ाद से मिलता-जुलता काव्यरूप हिंदी में भी मिलता है जिसे ३२ मात्रिक खरारी कहते हैं।

भीखा साहब तथा नंददास आदि कवियों में इस प्रकार का काव्यरूप मिलता है। इनके सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि इनकी रचना फ़ारसी के मुस्तज़ाद को ध्यान में रखकर की गई होगी। मुस्तज़ाद का वज़न बहरों में इस प्रकार है—

हर शख़्स को तलवार के बस घाट उतारा—जो सामने आया।
मफ़ऊलु मफ़ाईलु मफ़ाईलु फ़ऊलन—मफ़ऊलु फ़ऊलन
भव जाल कटै जबकि जपे राम खरारी—या कृष्ण मुरारी
मफ़ऊलु मफ़ाईलु मफ़ाईलु फ़ऊलन—मफ़ऊलु फ़ऊलन

विद्यापति का निम्न उदाहरण विचारणीय है—

ए हरि, बंदौं तुम पद नाय।
तुअ पद परिहरि पाप पयोनिधि ॥
पारक कओन उपाय।

---

१. आईनाए बलाग़त, पृ० ३७

२. मैं हूँ आशिक मुझे ग़म खाने से इंकार नहीं—कि है ग़म मेरी ग़िज़ा ॥
तू है माशूक तुझे ग़म से सरोकार नहीं—खाए ग़म तेरी बला ॥

३. नाला जन बाग़ में हो बुलबुल नाशाद नहीं।
बंद रख काम व जबाँ—कर न फ़ारयादो बुका।
अज़ नाखुने तंज़े खातिर बादः परस्त-मखराश आग़ा।
—जारिए तौफ़ीक़ खुद हेच मगो ॥
बेगुज़ार हज़ार ज़हदो तक़्वा अज़दस्त—बखराश आग़ा
—ऐ यारेशफ़ीक़—पंद बेशनो ॥
चश्मे बद् दूर तुरफ़ए चीज़े हस्ती—माशा अल्लाह।
—ऐ नामे खुदा—सुबहानअल्लाह ॥ आइनाए बलाग़त, पृ० २७

जावत जनम नहि तुअ पद सेविनु ॥
जुवती मति मयं मेलि ।
अमृत तजि हलाहल किए पीअल ॥
संपद अपदहि मेलि ।[1]

भीखा साहब के काव्य में भी इस प्रकार का उदाहरण मिलता है—

जुग वरस मास दिन पहर घरी छिन, छीजै करो किरति जम जम ॥१॥
आतम राम प्रगट निज ताको, तन मन अर्पन कीजै, व्यापक सम सम ॥२॥
सत गुरु कह्यो सुभाव जीवनि त्रिधि, दृष्टि रूप जल भीजै, मिलन गम गम ॥३॥
होइ एकाँत सुतंत्र वैठि कै, अनहद धुनि सुनि लीजै, बाजत झम झम ॥४॥
'भीखा' धन्य जो सागि जक्त सुख, हरि को रस मद पीवै, अस जन कम कम ॥५॥[2]

नंददास काव्य में भी मुस्तजाद के ये उदाहरण मिलते हैं—

अब ह्वै रहौं ब्रज-भूमि को मारग मैं की धूरि ।
विचरत पग मो पर धरै सब सुख जीवन मूरि । मुनिनहू दुर्लभ जो ॥
\+ \+ \+
गोपी-प्रेम प्रसाद सों हौं ही सीख्यौ आप ।
ऊधौ तें मधुकर भयो दुविधा जोग पटाय । पाय रस प्रेम वो ।[3]
हौ या पटतर देत हौं हीरा आगे कांच ॥ विपमता वुद्धि की ॥[4]
\+ \+ \+
ये सब प्रेमासक्त होइ रही लाज कुल लोपित ॥ धन्य ये गोपिका ॥[5]
उन मैं मो मैं है सखा छिन भरि अंतर नाहि ।
ज्यों देख्यौ सो मांहि वे हौ हूँ उतनी माहिं ॥
तरंगिनि वारि ज्यों ॥[6]

इसी प्रकार

सुनौ नंद लाड़िले, कौन यह धर्म है, उलहि अंग अंग ते ॥[7]

अलिफ़ नामा

अलिफ अरबी, फ़ारसी, उर्दू की वर्णमाला का प्रथम अक्षर है और नामा का अर्थ है चिट्ठी, पत्र, ग्रंथ, पुस्तक । जैसे—फ़िरदौसी का शाहनामा, या सिकदरनामा

१. विद्यापति पदावली, पद २५४
२. भीखा साहब की बानी, पृ० ७१
३. अष्टछाप के कवि, नंदादास, पृ० १२०
४.-५. अष्टछाप के कवि नंददास, पृ० १२१
६.-७. अष्टछाप के कवि नंददास, पृ० १२५

तथा हकीम सनाई (११८०-८१ ई०) कृत कारनामा, इश्क़नामा, अक़्लनाम और ग़रीनामा। अरबी फ़ारसी के लोक-भाषा-काव्य में अबजद (वर्णमाला-अलिफ़, बे, ····ये, बड़ी ये) के क्रम से कविता रचने का प्रचलन रहा है जो प्रायः मनोविनोद या कला प्रदर्शन का एक मौखिक स्वरूप था। बाद में अलिफ़ नामा का ख़ूब प्रचलन हुआ।

मुसलमानों के भारत आगमन तथा मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणाम-स्वरूप जब सूफ़ियों तथा अन्य विद्वानों से संतों का संपर्क स्थापित हुआ तो संतों में अलिफ़नामे का प्रचलन हो गया। भीखा साहब आदि ने अलिफ़नामा लिखा है।

मनुष्य क्योंकि प्रयोगवादी होता है, इसीलिए अलिफ़नामे से प्रभावित हो कर हिंदी कवियों ने 'ककहरा' या बारहखड़ी नामी नया काव्यरूप चलाया। ककहरा में व्यंजनों के क्रम से पद्य रचना हुई है। प्रत्येक पद्य का पहला वर्ण क्रम से हिंदी की वर्णमाला के आधार पर ही चलता जाता है। कहीं एक दोहे के बाद परिवर्तन होता है तो कहीं एक चौपाई के बाद।

इस विषय में डा० शकुंतला दूबे का मत उद्धरणीय है। 'वस्तुतः संतों में इस प्रकार के काव्यरूप की रचना फ़ारसी प्रभाव का ही द्योतन करती है। फ़ारसी के 'अलिफ़नामा' का बहुत प्रचलन रहा है। संतों को ककहरा या अलिफ़लनामा की रचना में फ़ारसी-कवियों से ही प्रेरणा मिली।'[1]

सूफ़ी-कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी उल्लेखनीय हैं जिन्होंने अलिफ़नामा पद्धति पर अपनी पुस्तक अखरावट की रचना की है।[2] इसमें विषय की दृष्टि से सूफ़ीमत के दर्शन तथा ज्ञान की चर्चा अधिक है। ककहरा पृ० ३०३ से ३२९ तक है और अलिफ़नामा भी पृ० ३३० पर है।

यारी साहब ने भी अलिफ़नामा की रचना की है।[3] विषय की दृष्टि से यह संतों के मुस्लिम सस्कृति के संपर्क का अच्छा परिणाम है। इसमें तसव्वुफ़ और भारतीय दर्शन का मिला जुला काव्यरूप है। संत कबीर ने अलिफ़नामे के प्रकार के जो ककहरा लिखे हैं[4] उनमें हिंदू एवं मुस्लिम दर्शन का मिला जुला रूप सामने आता है। इसी प्रकार गुरु नानक जी ने भी अलिफ़नामे के आधार पर ककहरा काव्यरूप में कविता की है।[5] सूफ़ियों के अतिरिक्त संतों में यह काव्यरूप बड़ा प्रिय रहा है जो

---

१. काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, पृ० ३९८

२. जायसी-ग्रंथावली, अखरावट, पृ० ३३०

३. यारी साहब की रत्नावली, पृ० ७-९

४. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १७०, २३६, २३९

५. नानक वाणी, पृ० ३०९-३११

मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क का परिणाम है। जैसे घरनीदास का यह अलिफ़नामा है—अलिफ़—आप अन्दर बसे, वे बतलावैं दूर।[1] अलिफ़नामे और उससे प्रेरित ककहरे के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

अलिफ़नामा

बिनु हरि कृपा न होय ककहरा ज्ञान का ॥टेक॥
अलिफ़—अलाह अभेद सुरति जद मुर्सिद देवै।
बे—वहकै नहिं दूर निकटहीं दरसन लेवे ॥१॥
ते—ते व्यापक सकल है जल थल वन गृह छाइ।
से—से आप मासूक बनो है कोउ आसिक दरसाइ ॥२॥
जीम—जवून है जहर जक्त को भोग सुभारी।
हे—हक्क न समुझत नान करम सों करत खुवारी ॥३॥
खे—खिन खिन मन रहत है माया के परपंच।
दाल—दम निग्रह नहीं कस पावे सुख संच ॥४॥
जाल—फांस नर फंस्यो आपु तें आपु वभाये।
रे—ररंकार निरधार जन ही सहज छटाय ॥५॥
जे—जहूर वह नर देखि जिस आनद बिलास।
सीन—ससै तम छूटि गयो है ता पद लियो निवास ॥६॥
शीन—सनै सनै वह प्रेम प्रीति परमारथ लागै।
साद—साधना सधै जुक्ति सों अनुभौ जागै ॥७॥
जाद—जाती नाम भयो सब विधि पूरन काम।
तो—तेज पुंज तपवत चहुँ जुग ऐसो प्रभु को नाम ॥८॥
जो—जो मौज़ै करै पाप अरु पुन्न न लेखैं।
अैन—अैन लेय जद हाथ रूप निज साहब देखै ॥९॥
गैन—ग्यान उद्वैत भयो है सतगुरु के परताप।
फे—फहमंदा भजन को दिव्य दृष्टि को आप ॥१०॥
काफ—कहर है लाफ झूठ की तजिये आसा।
काफ—कमाल करार सत्त को जूह निरासा ॥११॥
लाम—लाहुत सुठि सिखर है दूरिहुँ तें वहु दूर।
मीम—मरजीवा ह्वै रहै सोइ पावै दरस हजूर ॥१२॥
नूं—नूतन छवि देई दुरुहुरा सुंदर राजै।
वाव—वाहे वाह सो अहै वचन मुख कहत न छाजै ॥१३॥

---

१. घरनीदास की बानी, पृ० ४५

हे—हद बेहद इक सम भयो मध्य बोलता आहि।
लामअलिफ—सो निकटहि पावो चित है चितवहु ताहि ।।१४।।
हमजा—हम हमरा द्वैत तहं नाहिन मोहै।
ये—येक तत्त है ज्ञान ध्यान तब जन्म न सोहै ।।१५।।
तीनि आंक में वस्तु सकल है रज तम सम ईस।
भीखा नाम सुन्न जब दीन्हो तब भयो अच्छर तीस ।।१६।।[1]

इसमें अरबी फ़ारसी अबजद (वर्णमाला) के क्रम से भीखा साहब ने जिस काव्य की रचना की है वह काव्यरूप की दृष्टि से तो अलिफ़नामा है ही, अलाह, मुर्सिद, आसिक, मासूक, हक्क, करम, जहूर, नूर, हजूर, हद-बेहद आदि शब्दावली स्पष्ट रूप से सूफियों के संपर्क का परिणाम है।

यारी साहब के दो अलिफ़नामे प्रस्तुत हैं। इनमें शीर्षक भी स्पष्टरूप से अलिफ़नामा तथा कोष्टक में 'ककहरा फ़ारसी का' छपा हुआ है।[2] इसमें भी सबूर सिदक़, इनायत, करार तथा साबित, जुहद, अमल, क़नाअत, मुर्शिद आदि शब्दों में सूफ़ी मत का रहस्य छिपा हुआ है।

अलिफ़नामा

अलिफ—एक हरि नाम विचारा।
बे—भजु बिस्व-तारन संसारा ।।१
ते—त्रिभुवन घट में राजा।
से—साबित जे चित्र में साजा ।।२
जीम—जगत-पति हिरदे राखहु।
हे—हलीम ह्वै गुरु हरि भाषहु ।।३।।
खे—ख्यालक छोड़हु सब ही झूठ।
दाल—दयालहिं सुमिरहु हिये अनूठ ।।४।।
ज़ाल—ज़ात में राखहु प्रीती।
रे—राम सुमिरु मन तजि जग चीती ।।५।।
जे—जुहद से भजु हरि नाम।
सीन—सचेत जो आवै काम ।।६।।
शीन—शुकर कर दीनी नाथ।
साद—सबूरी राखहु साथ ।।७।।

---

१. भीखा साहब की बानी, पृ० ७३, ७५
२. यारी साहब की रत्नावली, पृ० ७-६ तथा ६-११

ज़ाद—ज़रूर पाँच परधान ।
तो—तमा झूठ करि जान ॥८॥
जो—ज़ालिम कोर्बाहि समभाव ।
अैन—अमल में रहु सत भाव ॥९॥
ग़ैन—ग़रूर बुरा जो काम ।
फ़े—फ़ाज़ूलि जो सुमिरै नाम ॥१०॥
काफ़—क़नाअत हिरदे मानहु ।
काफ़—काम झूठ करि जानहु ॥११॥
गाफ़—गुरु का सिर पर हाथ ।
लाम—लाज तुम छोड़हु साथ ॥१२॥
मीम—मुरशिद जग को तारै ।
नूं—नाम सब दुक्ख निवारै ॥१३॥
वाव—वाहि भजु स्वांसा जाई ।
हे हरि मनहिं राखु लव लाई ॥१४॥
लामअलिफ—लाज मन धरहू ।
हमज़ा—हरि नित सुमिरन करहू ॥१५॥
ये—यारी हरि हिये में राखहु ।
बड़ी ये—यार से सत्तै भाखहु ॥१६॥[1]

ककहरा

हिंदी में अलिफ़नामे से प्रभावित काव्यरूप ककहरा भी मिलता है जिसमें हिंदी-वर्णमाला के आधार पर प्रत्येक पद का पहला अक्षर क, ख, ग—से प्रारंभ होता है ।

भजि लेहु सुरति लगाय, ककहरा नाम का ॥टेक ॥
क—काया में करत कलोल, रैनि दिनि सोहं बोलै ।
ख—खोजै जो चित लाय, भरम को अंतर खोलै ॥१॥
ग—ग्यान गुरु दाया कियो, दियो महा परसाद ।
घ—घुंमड़ि घहरात गगन में, घटा अनाहद नाद ॥२॥
न—नैन सों देखो उलटि कै, ठाकुर को दरबारी ।
च—चमतकार वह नूर, पूर संतन हितकारी ॥३॥
छ—छिन मां भनि तिन कर्म गयो है, जीव ब्रह्म के पास ।
ज—जैंजै सब्द होत तिहुँ पुर में, सुद्ध सरूप अकास ॥४॥

---

१. यारी साहब की बानी, पृ० ९-११

झ—झकोरि झपाक झपटि, नर समय गंवाई ।
न—नहिं समुझत निज मूल, अंध ह्वै दृष्टि छिपाई ॥५॥
ट—टंड संकट में ग्रसित है, सुत दारा रहसाई ।
ठ—ठठाय मस्काय हंसतु है, मनहुं परल निधि पाई ॥६॥
ड—डांवां डोल का फिरहु, नेकु तुम समुझहु भाई ।
ढ—ढरके जबही बुंद बपू की, खबरि न पाई ॥७॥
न—नमो नमो चरनन नमो, धगो नाम कै ओट ।
त—तंत माल सब राखि लीजिए, कबहुं परत नहिं टोट ॥८॥
थ—थकित भयो थहराय, ज्ञान जब हिरवे आया ।
द—दरकि हिये वहु जीव; ब्रह्म में आनि समाया ॥९॥
ध—धक्का सबको सहै, जपै सो अजपा जाप ।
न—निवहि जाय सो संत कहावै, जाके भक्ति प्रताप ॥१०॥
प—परमेसुर प्रगट, आपु में आपु छिपाय ।
फ—फाजिल जो होय, सोइ यह मतिहिं समाय ॥११॥
ब—बाये बस्ती नगर, तजै एक ही बार ।
भ—भय भव भटका भरम निवारै, केवल सत्त अधार ॥१२॥
म—माया परपंच, पांच में भरमत रहई ।
य—यन्मत अरु मरत, देह को अंत न लहई ॥१३॥
र—रमता घट-घट बसै, तेहिं काहे नहिं जान ।
छ—लै लाय जो ताहि पुरुष सों, पावे पद निर्वान ॥१४॥
व—वावागमन न होय, पुरुष पुरुसोतम जाने ।
श—समुझै कोउ संत, सोई यह भेद समाने ॥१५॥
ष—षंग ज्ञान अमान लियो है, कियो बिचार को धार ।
स—संसय काठ कंठगरा, ता सों काटत लगे न बार ॥१६॥
ह—हक्क हलालहिं सिदिक, समुझि हराम न खावै ।
छ—छिमा सील संतोष, सहज में जो कुछ आवै ॥१७॥
अ— इ ए उ गुरु गुलाल जी, दियो दान समुदाय ।
जाचक भीखानन्द पायौ, आतम लियो दरसाय ॥१८॥[1]

भीखा साहब का ककहरा भी अलिफ़नामे के आधार पर रचित ककहरा है। इसमें भी दरबारी, नूर फाज़िल हक़्क़ हलालहिं सिदिक, हराम एवं वावागमन न होय, पुरुष पुरुसोतम जाने, तथा गगन में घटा अनाहद नाद, जीव ब्रह्म के पास, शब्द-पुर

१. भीखा साहब की बानी, पृ० ७३

में, माया परपंच, रमता घट-घट बसई आदि शब्दावली तसव्वुफ़ एवं भारतीय दर्शन का मिला-जुला रूप है जो तत्कालीन हिंदू-मुस्लिम सामासिक-संस्कृति का कमनीय रूप है।

क़ितआ—

यह अरबी-भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है खंड। काव्य-रूप की दृष्टि से यह नज़्म का एक प्रकार है, जिसमें ग़ज़ल की भांति क़ाफ़िया (तुकांत) की पाबंदी होती है। किंतु शेरों के प्रथम चरण (पहले मिस्त्रे) समान क़ाफ़िये के नहीं होते। कई शेरों के मजमूए को क़िता कहते हैं तथा कम से कम दो शेरों का भी क़ितआ होता है, जिसमें कोई एक बात ही छंद में कही गई हो। हिंदी में इसे वृत्त खंड कह सकते हैं। क़िते में अर्थ की दृष्टि से समस्त शेर एक दूसरे से क्रमबद्ध होते हैं। क़िते और ग़ज़ल और क़सीदे में तो मतला (पहला शेर हमक़ाफ़िया) होता है और क़िते में मतला नहीं होता।[1]

विषय की दृष्टि से नैतिकता, सिद्धांत, आदेश या कोई असाधारण घटना का वर्णन, दैनिक घटनाएं, प्रशंसा, व्यंग्य, याचना या शोक गीत क़ितअ की विषय-वस्तु बन सकता है यह क़सीदे का यही एक भाग था। उदाहरण के लिए एक क़िता प्रस्तुत है—

कल अपने मुरीदों से कहा पीरेमुग़ां ने। क़ीमत में यह मअनी हैं दुरे-नाब से दह चंद
ज़हराब है उस क़ौमके हक़में मए-अफ़रंग। जिस क़ौम के बच्चे नहीं ख़ुद्दारो हुनरमंद।[2]

इस क़िते में मुग़ां ने और दह चंद का तुक न मिल कर दह चंद और हुनरमंद का क़ाफ़िया (तुक) मिलता है। हिंदी में भी क़िते के कुछ उदाहरण मिलते हैं जो फ़ारसी के संपर्क से आये जान पड़ते हैं।

ओढ़न मोर राम नाम के। रामहि के बनि जरा हो॥
राम नाम के करौं बणिजारा। हरि मोरे हरिवाई हो॥
सहस्र नाम का करौं पसारा। दिन होत सवाई हो॥[3]

यहां पर विषय क्रमबद्ध है। प्रथम चरणों के तुक न मिल कर द्वितीय चरणों में हो हो का क़ाफ़िया मिलता है।

करुनामय हरि करुना करिरे। कृपा कटाच्छ ढरन ढरिये॥टेक॥
भक्तन को प्रतिपाल करन को, चरन कंवल हिरदै धरिये॥१॥

---

१. आईनाए बलाग़त, पृ० २१
२. असनाफ़े सख़ुन, पृ० ९
३. मूल बीनक, २

व्यापक पूरन जहां तहां लगु, रीतो न कहूं भरन भरिये ॥२॥
अवकी बार सवाल राखिए, नाम सदा इक फर भरिए ॥३॥
जन 'भीखा' के दाता सतगुरु, नूर जहूर दरस वरिए ॥४॥[1]
प्रीति की यह रीति बखानो ॥ टेक॥
कितनो दुख सुख परै देह पर, चरन कमल कर ध्यानो ॥१॥
हो चेतन्य विचारि तजो भ्रम, खांड़ धूरि जनि सानो ॥२॥
जैसे चात्रिक स्वांति बुंद बिनु, प्रान समर्पन ठानो ॥३॥
भीखा जेहि तन राम भजन नहिं, काल रूप तेहि जानौ ॥४॥[2]

रेख्ता—

यह फ़ारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है गिरा, पड़ा, बिखरा हुआ। यह उर्दू भाषा एवं कविता का प्राचीन नाम भी है।[3] रेख्ता उर्दू भाषा के ऐसे अशआर (पद्यों) को कहते हैं जिनमें स्त्रियों की भाषा और मुहावरे बोले जाएं। फ़ैलन का कथन भी इसकी पुष्टि करता है 'भिन्न कवियों के सुरों और मुहावरों में उनके विशेष प्रकार के भावों और विशेषताओं से युक्त लिखी हुई हिंदोस्तानी कविता रेख्ता है।[4]

रेख्ता शब्द की निरुक्ति (वजह तस्मियः) यह भी बताई जाती है कि विभिन्न भाषाओं के शब्दों से इसे रेख्ता अर्थात् पुष्ट या अलङ्कृत किया गया है। यह शब्द रेख्ता फ़ारसी भाषा के मस्दर (धातु) रेख्तन् से बना है, जो बनाने, ईजाद करने, किसी चीज़ को क़ालिब पहनाने (ढांचा में ढालना), नई वस्तु बनाने और मौजूं करने के अर्थों में प्रयुक्त होता है। वैसे यह वस्तु कला का भी एक प्राविधिक शब्द है जिसका अर्थ वह पक्का भवन है जो ईंट, गारा, चूना आदि विभिन्न वस्तुओं के मेल से बनता है।[5] पर भाषा में भी ऐसे ही संयोग के फलस्वरूप इसका रूप सामने आता है। रेख्ता शब्द संगीत कला में भी प्रयुक्त होता है और क़व्वाली से मिलता-जुलता रूप होता है तथा अमीर ख़ुसरो ने फ़ारसी और हिंदी खयालों को मिला कर ऐसे रूप तैयार किये हैं जो फ़ारसी वालों में रेख्ता कहलाए। ये रचनाएँ फ़ारसी बहरों में हुई हैं।[6]

---

१. भीखा साहब की बानी, शब्द ६, पृ० २६
२. भीखा साहब की बानी, पृ० २७
३. आईनाए-बलाग़त, पृ० १०-११
४. दि हिंदुस्तानी लैंगवेज ऐज़ स्पोकिन बाई मैन, फैलन।
५. आबे-हयात, पृ० २१
६. रेख्ता के विशद् वर्णन के लिए देखिये—आबे-हयात, ऐजाज़-ख़ुसरवी, पंजाब में उर्दू, खजीनतुल उलूम, पृ० ४६ (१८७६ ई०)

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि काव्यरूप की दृष्टि से यह फ़ारसी और हिंदी का मिला-जुला रूप है। काव्यरूप की दृष्टि से रेख़्ता की कुछ ऐसी परंपरा रही है कि फ़ारसी भाषा में जब अरबी आ मिली तो उसे रेख़्ता कहा गया और जब फ़ारसी एवं हिंदी के मेल से कविता की गई तो उसे भी रेख़्ता कह दिया गया। रूप की दृष्टि से रेख़्ते अधिकतर तो ग़ज़ल के अंदाज़ पर लिखे जाते थे, पर ये अन्य रूपों में भी लिखे गये जैसे मुरब्बा (चौपदी) मुख़म्मस (पंचपदी) मुसद्दस (षष्टपदी आदि आदि)।

बहर (छंद) की दृष्टि से रेख़्ता की बहर बहरे-मुज़ारअ मुसम्मन अख़रब अधिक प्रचलित है। इस बहर का वजन मफ़ऊलु, फ़ाइलातुन्, मफ़ऊलु फाइलातुन् है।[1] बहरे मुजारअ का हिंदी रूप तगण + रगण तथा दिग्पाल और मदन या रूपमाला से मिलता जुलता है।

इसके अतिरिक्त इसमें कवि को सुविधानुसार परिवर्तन की भी स्वतंत्रता है। मीर तक़ी मीर ने अपने तज़्किरे में रेख़्ता के चार प्रकार बताए हैं—१. एक मिस्रा (चरण) हिंदी हो और एक फ़ारसी। २. आधा मिस्रा फ़ारसी हो और आधा चरण हिंदी। ३. फ़ारसी का तत्व, अव्यय (हर्फ़) एवं क्रिया (फ़ेल) के रूप में हो। ४. जिसमें फ़ारसी व्याकरण का मिश्रण हो। आरंभिक उर्दू में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं।

मुस्लिम संस्कृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप हिंदी-साहित्य में और विशेष रूप से निर्गुण कवियों में रेख़्ता काव्यरूप का बहुत प्रचलन हुआ है जो हिंदू-मुस्लिम-संस्कृति का गंगा-जमनी रूप है। रेख़्ता एक बहर (छंद) का नाम भी है और कबीर द्वारा रचित अनेक रेख़्ते बताए जाते हैं।[2] इन रेख़्तों में कुछ में तो अरबी फ़ारसी के शब्दों का आधिक्य है और कुछ सामान्य हैं। यहां पर जिनके उदाहरण दिये जा रहे हैं वे सभी इन कवियों की रचनाओं में स्पष्ट रूप से रेख़्ता शीर्षक छपा हुआ भी है। नानक जी का रेख़्ता प्रस्तुत है—

> यक अरज गुफ़तम पेसि तो दर गास कुन करतार।
> हक़ा कबीर करीम तू बे एब परवरदगार ॥१॥
> दुनिआ मुकामे फानी तहकीक दिल दानी।
> मम सर मूइ अजराईल गिरफतह दिल हेचि न दानी ॥१॥[3]

बहर की दृष्टि से यदि इसे बहरे मुजारअ मुसम्मन अख़रब पर घटाना हो तो अरबी-फ़ारसी-छंद-शास्त्र के अनुसार अलफ़ाज़े मलफ़ूज़ी और मकतूबी तथा साकिन

१. पंजाब में उर्दू, पृ० ४८
२. परशियन इन्फ्लूएंस आन हिंदी, पृ० ७६, १३०
३. नानक वाणी, पृ० ३६

मुतहर्रिक के क़ायदों के अनुकूल इसको जब भी लिखा जायगा तो यह पूरा उतर सकता है—

रेखता

खालिक खलक खलक में खालिक ऐसा अजब जहूरा है।
हाजी हज्ज हज्ज में हाजी हाजिर हाल हजूरा है।।
फल में फूल फूल में फल है रोशन नबी का नूरा है।
पलटू दास नजर नजराना पाया मुरशिद पूरा है।।[1]
मैं तो खादिम कदम का जी तू तो साहेब रहिमाना है।
तेरे मादर पिदर बिनहिं नहिं कुछ मैंने तुमको जाना है।।
चून चगून वे ऽ वह नमूना सबही में तुही छिपाना है।
पलटूदास है भूगा आलम साहेब बड़ा सयाना है।।[2]

इसके अतिरिक्त पलटूदास की बानी में रेखता शीर्षक के अन्तर्गत सत्रह रेखते मिलते हैं[3] जो काव्यरूप छन्द, भाषा की दृष्टि से मुस्लिम सम्पर्क से आए हैं। भीखा साहब की बानी में भी रेखता शीर्षक से ही नौ (९) रेखते दिये हुए हैं।[4] बुल्लासाहब के शब्द सागर में भी नौ रेखते दिये हैं।[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि इन निर्गुण-कवियों की प्रवृत्ति क्योंकि बड़ी ही स्वतंत्र तथा समन्वयात्मक थी इसलिए काव्यरूप की दृष्टि से इन्होंने अलिफ़नामा रेखता, लावनी आदि अनेक नए-नए काव्य रूपों का प्रयोग किया है। रहीम का भी एक उदाहरण प्रस्तुत है—

शरद निशि निशीथे चांद की रोशनाई। सघन वन निकुंजे कान्ह बंशी बजाई।।
रति पति सुत निद्रा साइयां छोड़ भागी। मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी।।
जरद बसन वाला गुल चमन देखता था। झुक झुक मतवाला गावता रेख़ता था।।
श्रुति युग चपला से कुन्डल झूमते थे। नयन कर तमाशे मस्त ह्वै घूमते थे।।[6]

लावनी—

मध्यकालीन हिंदी-साहित्य के कवि और विशेषरूप से निर्गुण कवि बड़े ही स्वतंत्रत प्रवृत्ति के थे। तत्कालीन राज भाषा फ़ारसी के संपर्क का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। यही कारण है कि काव्यरूप एवं छंदों की दृष्टि से इस काल में

१. पल्टूदास की बानी, पृ० ११
२. पलटूदास की बानी, पृ० १०
३. पलटूदास की बानी, पृ० ११, १२, १७, १८ १६, २०, २४
४. भीखा साहब की बानी, पृ० ५१-५५
५. बुल्ला साहब का शब्द सागर, पृ० २०-२३
६. रहीम रत्नावली, पृ० ७३

नाना प्रकार के नूतन प्रयोग मिलते हैं।

लावनी में अरबी फ़ारसी की बहरों का प्रयोग बहुत हुआ बताया जाता है।[१] लावनी में प्रयुक्त बहरों का संबंध विशेष रूप से राग-रागिनियों के लिए उपयुक्त बताया जाता है जो खयाल के अंदाज़ पर गाई जाती है। काव्यरूप की दृष्टि से लावनी में मुरब्बा (चौपदे) और मुसद्दस (षटपदी) का रूप अधिक उपयुक्त है। इसमें पहले दो मिस्रे हम काफ़िया और प्राय: [अंत में गुरु होना उत्तम है। उसके पश्चात् चार मिस्रे हम क़ाफ़िय:, इसके बाद दो मिस्रे देकर चौक या बंद खत्म कर दिया जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक चौक के बाद बंद के दो मिस्रे दिये जाते है। बन्द के मिस्रों का क़ाफिया पहले दोनों मिस्रों के क़ाफियों से मिलाया जाता है।

फ़ऊलु फ़िअलुन फ़ऊलु फ़िअलुन [मुतक़ारिब मक़बूज़
फ़ऊलु फ़िअलुन फ़ऊलु फ़िअलुन [असलम १६ रुकनी है

या

मफ़ाइलातुन मफ़ाइलातुन [
[रमल
मफ़ाइलातुन मफ़ाइलातुन। [

लावनी में प्रयुक्त इन दोनों बहरों के नाम मुतक़ारिब मक़बूज़ असलम १६ रुकनी तथा बहरे रमल हैं। इनके प्रत्येक चरण में हिंदी के गुरु लघु के अनुसार ३२ मात्राएं (१+१६) के बराबर समझी जानी चाहिये। कबीर की एक लावनी इस प्रकार है—

हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या
रहें आज़ाद या जग से हमन दुनिया से यारी क्या।
जो बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर बदर फिरते
हमारा यार है हममें हमन को इन्तजारी क्या।[२]

इसके अतिरिक्त पलटूदास की दो लावनियां मिलती हैं जिनमें से एक इस प्रकार है—

लावनी

तुम विनय सुनो महाराज आज दुख भारी।
चरणन पर नार्खे शीश तको दिकदारी।
एतनी विनती यह मोरि लागि संसारी॥
कहो बारम्बार पुकारि नैन जल डारी।
तुम जानत सब घट केरि विपति बनवारी॥

---

१. पर्शियन इन्फ़्लूएंस आन हिंदी, पृ० ७७
२. पर्शियन इन्फ़्लूएंस आन हिंदी, पृ० १३०

करि देत रंक को राव दीन हितकारी ।।
तुम बिनय सुनो० ।।
यह बोझो गरू जहाज़ वार मा डारी।
सतगुरु हो दीन दयाल काहे न उबारी ।।
प्रभू पार करो यह नाव जाऊं बलिहारी ।
सुधि लियो मारि महराज दियो दुख टारा ।।
तुम बिनय सुनो० ।।
जन परो शरणमा दीन तो समय बिचारी ।
तलफत दर्शन बिन नैन मीन जस बारी ।
अब मुरति मा सुरति पलक ना टारी ।
बिसरत नहि आठौं याम लगी है तारी ।।
तुम बिनय सुनो० ।।
जग तरे अनेकन पति सुमिर नर नारी ।
मैं आयो शरण तकाय कुमति यह जारी ।
जहं सतगुरू का देश हंस सब भारी ।
जन छेदा तहं जाय शाश दिहेउ वारा ।।
तुम विनय सुनो० ।।[1]

तुलसी साहब की भी एक लावनी मिलती है—

जुग जुग में जीवन मरन आज नर देही ।
सुख-संपति में पार पुरुष नहि सोई ।।
जग में रहना दिन चार बहुरि मरना ही ।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी ।।१।।[2]

लावनी

पिया दरस बिना दीदार दरद दुख भारी ।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी ।।टेक।।
क्या जनम लिया जग मांहि मूल नहिं जाना ।
पूरन पद को छांड़ि किया जुलमाना ।।[3]

---

१. महात्मा श्री पल्टूदास की बानी, पृ० २५, २६
२. तुलसी साहब की बानी
३. तुलसी साहब की बानी

झूलना

संत कवियों में जहां रेख्ता, लावनी, बारहमासा, लचका, अलिफ़नामा, पहाड़ा आदि अनेक नये काव्यरूपों को अपनाया है वहां झूलना भी एक है। इसमें उपदेश-संबंधी बातों के अतिरिक्त उक्ति का चमत्कार और योग एवं ज्ञान का भी भाव मिलता है। काव्यरूप की दृष्टि से यह संस्कृत और अरबी-फारसी के मेल-जोल का परिणाम मालूम होता है क्योंकि यह फ़ारसी बहरों में लिखे भी मिलते हैं। झूलने कई प्रकार के हैं—३२ मात्रा का, २६ मात्रा का। यह मात्रिक छंद है और ३२ मात्राओं वाले छंद झूलने की लय में गाये जा सकते हैं।

बहर की दृष्टि से मख़्बून तथा मक़तूअ के संयोग से बहरे मुतदारिक मख़्बून मक़्तूअ भी इसके लिए उपयुक्त है। इसके अरकान हैं—

फ़िअलुन फ़िअलुन फ़िअलुन फ़िअलुन
फ़िअलुन फ़िअलुन फ़िअलुन फ़िअलुन

यारी साहब के सत्रह झूलने मिलते हैं। इनमें से अनेक में उपर्युक्त बहर घटती है। इनमें शब्दावली भी मुस्लिम सम्पर्क की ओर ध्यान दिलाती है—

बिन बंदगी इस आलम में, खाना मुझे हराम है रे।
बंदा करै सोइ बंदगी खिदमत में आठों जाम है रे॥
यारी मौला बिसारि के, तू क्या लागा बेकाम है रे।
कुछ जीते बंदगी कर ले, आखिर को गोर मुकाम है रे॥[1]

तुलसी ग्रन्थावली के भाग २ में कवितावली में चार झूलने दिये गये हैं।[2] तथा बुल्लासाहिब के शब्द सागर में भी दो झूलने मिलते हैं।[3] इनके अतिरिक्त गरीबदास के झूलने अपेक्षाकृत बड़े हैं। योग की बातें सन्तों की भांति ही हैं।[4]

अतः उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि आलोच्यकाल में ग़ज़ल मसनवी, क़सीदा, लुग़ज़ दोसख़ुने, ज़ूलिसानैन आदि के अतिरिक्त मुस्तज़ाद, अलिफ़-नामा, क़िता, रेख़्ता, लावनी झूलना जैसे अनेक काव्यरूप और बहरें (छन्द) पाए जाते हैं जो राज सम्मानित हिंदी साहित्य के दीर्घ काल तक राजभाषा फ़ारसी और मुस्लिम संस्कृति के प्रतीक सूफियों तथा दरबारों के साथ संपर्क का परिणाम है। कहा जा सकता है कि मुस्लिम संस्कृति के संपर्क से हिंदी साहित्य में अनेक नवीन काव्यरूपों की उद्भावना हुई।

---

१. यारी साहब की रत्नावली, पृ० १३, १४-१७
२. तुलसी ग्रन्थावली २, पृ० १५३, १५६, १५७, १६३, २०७
३. बुल्लासाहब का शब्दसागर, पृ० २०
४. गरीबदास की बानी, पृ० १२७

पंचम अध्याय

अलंकरण

अलंकरण का स्वरूप

अलं 'अलम्' का समासगत रूप है और करण सजाना, सजावट आभूषण के अर्थ में आता है।[1] किंतु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निर्देशानुसार अलंकरण का अभिप्राय अलंकार के अतिरिक्त वस्तु, भाव, परिस्थिति तथा वातावरण के अलंकरण से भी है। भावों को उत्कर्ष प्रदान करने, किसी वस्तु या व्यक्ति के गुणों को बढ़ा चढ़ा कर कहने, उनके सौंदर्य को महिमावान बनाने के लिए उससे मिलती-जुलती वस्तुओं से समानता का प्रदर्शन करने और अभीप्सित को घुमा फिराकर कहने तथा उसी प्रकार की विभिन्न विधाओं को भी अलंकरण कहा जाता है। अलंकरण के अंतर्गत भाषागत अलंकरण के साथ-साथ भावालंकरण तथा सामान्य जीवन संबंधी अलंकरण का भी विवेचन किया जा रहा है।

(क) भाषागत अलंकरण

भाषागत अलंकरण के अंतर्गत मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क से आए नवीन उपमानों, मुहावरों, उपसर्ग, प्रत्ययों तथा अरबी फ़ारसी बहुल काव्य का विवेचन किया जा रहा है।

नए उपमान

अरबी-फ़ारसी साहित्य में सनाएलफ़्ज़ी (शब्दालंकार) सनाए मानवी (अर्थालंकार) एवं इल्मेबयान के अंतर्गत भाव, भाषा एवं देशकाल-वातावरण (सिचुएशन कंडीशन) के अलंकरण की चर्चा की जाती है। इसे फ़साहतो बलाग़त कहते हैं। हिन्दी-साहित्य अनेक शताब्दियों तक मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क में रहा है। उस संपर्क स्वरूप सम्भवतः हिंदी में नवीन अलंकारों का प्रयोग तो नहीं हुआ किंतु कुछ नए उपमान मिलते हैं।

---

१. बृहत् हिंदी शब्दकोश, पृ० १००-१०१

दो पदार्थों के उपमान-उपमेय भाव में समान धर्म के कथन करने को उपमा अलंकार कहते हैं। अरबी फ़ारसी में उपमा को तशबीह कहते हैं। हिंदी-साहित्य में मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क से कुछ नवीन उपमानों की उद्भावना हुई जिसका प्रारम्भ अमीर खुसरो जैसे, कवियों तथा अन्य उन सूफी कवियों की हिंदी रचनाओं से हुआ है जो अरबी फ़ारसी वातावरण में रहे। इन नवीन उपमानों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—१. मुस्लिम धार्मिक ऐतिहासिक एवं साहित्यक व्यक्तियों का उपमान रूप में प्रयोग २. परंपरा से चले आते उपमानों का अरबी फ़ारसी के शब्दों द्वारा निर्देशन ३. मुस्लिम-संपर्क से नई वस्तुओं का उपमान रूप में प्रयोग ४. प्रभाव अनुभव करने के लिए परंपरा से भिन्न और कभी-कभी विरुद्ध जाने वाली क्रियाओं या पद्धतियों का उपमान रूप में प्रयोग।

१. मुस्लिम धार्मिक ऐतिहासिक एवं साहित्यिक व्यक्तियों का उपमान रूप में प्रयोग—इसकंदर जुलक़रनैन

मलिक मुहम्मद जायसी ने शेरशाह सूरी की प्रशंसा करते हुए उसकी समानता इसकंदर जुलकरनैन से करते हुए उपमान रूप में निरूपण किया है—

तहं लगि राज खड़ग करि लीन्हा। 'इसकंदर जुलकरन' जो कीन्हा॥[1]

सुलैमान

सुलेमान एक पैगबर हुए हैं जो दानशीलता के लिए प्रसिद्ध है।[2] उनका विवेचन भी उपमान रूप में वर्णनीय है—

'हाथ सुलेमा' केरि अंगूठी। जग कहं दान दीन्ह भरि मूठी॥[3]

उमर

हजरत उमर इस्लाम धर्म के दूसरे खलीफ़ा निर्वाचित हुए थे जो अद्ल (न्याय प्रियता) के लिए संसार में विख्यात हैं। उनका वर्णन उपमान रूप में किया गया है—

अदल जो कीन्ह 'उमर' कै नाई। भई अहा सगरी दुनियाई॥[4]

हातिम

प्राचीन कालीन 'यमन' के एक उदार और दानशील सरदार का नाम

१. पद्मावत, स्तुति खंड, १३
२. शारटर एंसाइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, पृ० ५४६
३. पद्मावत, स्तुति खंड, १३
४. पद्मावत-स्तुति खंड, १७

हातिमताई था। जायसी ने हातिम नाम से उनका उपमान रूप में वर्णन किया है—

बलि विक्रम दानी बड़ कहे। 'हातिम' करन तियागी अहै।[१]

अली

हज़रत अली इस्लाम धर्म के चौथे खलीफ़ा हुए हैं। वे अपनी वीरता के लिए विख्यात हैं। तलवार चलाने की कला में निपुण थे, इसीलिए जायसी ने बाबर की तलवार की उपमा हज़रत अली की तलवार से दी है—

अली केर जस कीन्हेसि खाड़ा। लीन्हेसि जगत समुद भरि डांड़ा।।[२]

यूसुफ़

क़ुरान के अनुसार हज़रत यूसुफ़ (जोज़फ़) एक पैग़म्बर हुए हैं। यह बहुत ही रूपवान व्यक्ति थे। सीतल कवि ने भी यूसुफ़ के सौन्दर्य की उपमा दी है—

बरनन करने को क्या बरनूं बरनूंगा जैती बानी है।
ग्रह तीन उच्चके पड़े हुए जानी यह 'यूसुफ़ सानी' है।।[३]

२. परंपरा से चले आते उपमानों का अरबी फ़ारसी के शब्दों द्वारा निर्देशन

हमज़ा

अरबी भाषा में हमज़ा शेर (सिंह)[४] को कहते हैं। अमीर हमज़ा एक ऐतिहासिक पात्र भी हैं। जायसी ने बाबर के पराक्रम के लिए सिंह का उपमान स्वरूप विवेचन न करके हमज़ा का प्रयोग किया है—

बल हमज़ा कर जैसा संभारा। जो बरियार उठा तेहि मारा।।[५]

तीर

तीर फ़ारसी में बाण को कहते हैं[६] मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के फलस्वरूप ये (और इस जैसे अनेक) शब्द हिंदी-साहित्य में इतने प्रचलित हुए हैं कि बाण के उपमान स्वरूप प्रयोग के साथ-साथ तीर का उपयोग भी उपमान के रूप में होने लगा—

'तीर' तें उतीर जस कह्यो चहै, गुन गननि जयो है।[७]

---

१. पद्मावत-स्तुति खंड, १७
२. आखिरी क्लाम, पद ८
३. हिंदी पर फ़ारसी प्रभाव, पृ० १३७
४. उर्दू-हिंदी-शब्दकोश, पृ० ७२६
५. आखिरीक्लाम, पद ८
६. उर्दू-हिंदी-शब्दकोश, पृ० २९८
७. गीतावली, ६।११

तन तरकस से जात है, स्वास सरीखें 'तीर'।[1]
दुर्जन बदन कमान सम, वचन विमुंचत 'तीर'।[2]
तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारें।[3]

कमान

फ़ारसी में कमान धनुष को कहते हैं। हिंदी में धनुष का प्रयोग उपमान रूप में होता है और साथ ही कमान का वर्णन भी अनेक कवियों ने उपमान रूप में भी किया है—

भौंहें 'कमान' सों जोहन को सर वे वन प्राननि नंद को छोनो।[4]
तिरछी बरछी सम मारत है दृग-बान कमान' सुकान लग्यौ।[5]
यह जाको लसै मुख चंद-समान 'कमान' सी भौंह गुमान हरै।[6]
दुर्जन बदन 'कमान' सम, वचन विमुंचत तीर।[7]

इन उपमानों में फ़ारसी अश्आर की तश्बीहात से बहुत समानता पाई जाती है।

जंजीर

फ़ारसी में शृंखला या सांकल जंजीर को कहते हैं। हिंदी में इसका प्रचलन हो गया—

रसिकन को जंजीर से बाला तेरे बार।[8]

बादबान

प्राचीन अरब व्यापारी बादबानी जहाजों का उपयोग करते थे। गंग ने बादबान का प्रयोग करके नूतन उद्भावना की—

नेह्वो कटाछ बादबान को होत कैसे लाज भरी अंखियां जहाजहु भारी है।[9]

---

१. तुलसी-सतसई, १२०
२. तुलसी-सतसई, १११
३. रहीम-रत्नावली, पृ० ७५
४. सुजान-रसखान, ७२
५. सुजान-रसखान, ६५
६. सुजान-रसखान, ५३
७. तुलसी-सतसई, १११
८. हिंदी-साहित्य का इतिहास (मनोहर), पृ० २०५
९. अकबरी दरबार के हिंदी-कवि, पृ० ४८६

नक़ीब

अरबी में नक़ीब चारण या बंदीजन को कहते हैं। मुस्लिम-दरबारों में एक अधिकारी होता था। तुलसी ने इसका कितना सुंदर प्रयोग किया है—

बोलत पिक नक़ीब गरजनि मिस मानहु फिरत दौहाई।[१]

बैरख

अरबी में बैरक झंडे या निशान को कहते हैं। हिंदी में इसका प्रयोग बैरख रूप में मिलता है—

घन-घावन बग पांति पटोसिर बैरख तड़ित सोहाई।[२]

गुलबदन, माहरूप

गुल फ़ारसी में फूल को कहते हैं और माह चंद्रमा को। नायिका की नज़ाकत (कोमलता) तथा हुस्न (सौंदर्य) के लिए गुलबदन और माहरू फ़ारसी साहित्य में बहुत प्रयुक्त हुआ है। क़ासिमशाह ने अपनी नायिका को पुष्प के समान कोमल शरीर वाली बताते हुए गुलबदन शब्द का प्रयोग किया है। नायिका के साथ-साथ हिंदी में माहरूप का भी नवीन प्रयोग हुआ है—

माहरूप का द्रव्य भंडारा। औ गुरवदन पार रखवारा।[३]

कबूतर-गुलेल

फ़ारसी में कबूतर कपोत को कहते हैं तथा गुलेल में पत्थर रखकर पक्षियों का शिकार किया जाता है। अकबरी दरबार के प्रसिद्ध कवि ब्रह्म ने शिकार का चित्रण किया है जो मुस्लिम संपर्क का परिणाम है—

काम कबूतर तामस तीतर ज्ञान गुलेलन मार गिराये[४]

तरकश

तरकश फ़ारसी में बाण रखने वाले उपकरण को कहते है। यह कमर में बंधा होता है। हिंदी के अनेक कवियों ने तरकश का उपमान रूप में प्रयोग किया है—

तन तरकश से जात है, स्वास सार सो तीर।[५]

---

१. कृष्ण-गीतावली, ३२
२. कृष्ण-गीतावली, ३२
३. हंस-जवाहर, पृ० २५८
४. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (परिशिष्ट भाग छंद ९३)
५. तुलसी-सतसई, पृ० ४४

क़साई

अरबी में क़साई या क़स्साब, माँस विक्रेता को कहते हैं। विशेष रूप में प्रयोग होने पर बेरहम और बेदर्द का अर्थ लिया जाता है। दादू ने विरह को कसाई कहा है। अन्य कवियों ने भी इसका वर्णन किया है—

विरह कसाई यूं घरि अला मंझे बरे वाहिरे।[1]
सब जग छेली काल कसाई, कर्द लिये कंद काटै।[2]

३. मुस्लिम-संपर्क से नई वस्तुओं का उपमान रूप में प्रयोग

मख़तूल

मख़तूल काले रेशम को कहते हैं। रसखान ने इसका निरूपण बहुत ही आकर्षक ढंग से किया है—

मख़तूल समान के गुंज छागनि मैं किंसुक की छवि छावत है।[3]

मशक

फ़ारसी में मश्क पानी भरने की चमड़े की खाल को कहते हैं। रहीमन ने मशक का उपमान के रूप में सजीव वर्णन किया है—

सजल नैन वाके निरखि चलत प्रेम सर फूट।
लोक लाज उर धाक ते जात मसक सी फूट।[4]

सुराही

सुराही पानी भरने के पात्र को कहते हैं। फ़ारसी साहित्य में नायिका की गरदन की नजाकत की उपमा इसके गले से आमतौर पर दी जाती है। जायसी ने इसका उपमान रूप में प्रयोग किया है—

गीउ सुराही कै अस भई। अमिय पियाला कारन नई।[5]

हबसी

अफ्रीका में हब्श प्रदेश के रहने वाले को हबशी कहते हैं। हबशी का रंग बिल्कुल काला होता है। अकबरी दरबार के प्रसिद्ध कवि गंग ने दरबारी वातावरण से प्रभावित होकर हबशी के लड़के का उपमान रूप में निरूपण किया है—

१. दादू-बानी, भाग २, पृ० ४७
२. दादू-बानी, भाग १, पृ० २०७
३. सुजान-रसखान, ४६
४. रहीम रत्नावली, पृ० ३२
५. जायसी ग्रंथावली (पद्मावत), पृ० २१४

चंद से आनन में तिल राजत ऐसे बिराजत दांत मसी के।
फूलन की फुलवारिन में मनो खेलत है लरिका हबसी के।[१]

गुले-लाला

गुलेलाला एक ईरानी फूल है। पुहुपावती में इसका सुन्दर निरूपण है—

कै जानहु फूला गुल लाला ताहु तै अधिक सुरंग रसाला।[२]

चौगान

चौगान खेल भारत में मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क स्वरूप आया। अनेक कवियों ने इसका विवेचन किया है गया। यहां चौगाना का उपमान रूप में विवेचन किया गया है—

अलख प्रेम चौगान हियु नख खेल मैदान।[3]

नरगिस

नरगिस ईरानी फूल है। उपमान रूप में इसका प्रयोग मिलता है—

इंदु बदन नरगिन नयन संबुलवारे बार।[४]

अमीन

अमीन अरबी में अमानतदार, सत्यनिष्ठ और ईमानदार को कहते हैं—

नैन अमीन अचंनिन कै, बस, जहं को नहीं छुवौ।[५]

ताजी

अरबी घोड़े को फ़ारसी में ताजी कहते हैं। भक्तिकाल में अनेक कवियों ने इनका निरूपण किया है—

मन ताजी चेतन चढ़े ह्यौ की करे लगाम।[६]
तन ताजी असवार लिये समसेर सार।[७]
घूंघट पट कोट टूटे छूटे दृग ताजी।[८]

४. परंपरा से भिन्न क्रियाओं तथा पद्धतियों का उपमान रूप में प्रयोग

मुस्लिम-संस्कृत के संपर्क स्वरूप हिंदी साहित्य में भारतीय परंपरा से

---

१. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ४१६
२. पुहुपावती, पृ० ६४
३. नलदमन, पृ० ४२
४. मिश्रबंधु विनोद, भाग १, पृ० २३१
५. सूर-सागर, १-६४
६. दादूदयाल की बानी, भाग १, पृ० १३
७. सुंदर-विलास, पृ० ११३
८. सूर-सागर, ६६०

भिन्न और कभी-कभी विरुद्ध जाने वाली क्रियाओं या पद्धतियों का निरूपण भी मिलता है। उदाहरणार्थ रक्त और मांस का निरूपण हिंदी में वीभत्स रस के अन्तर्गत होता है और इस प्रकार के निरूपण को अच्छा नहीं समझा जाता, किंतु फ़ारसी-साहित्य में यह निरूपण प्रेम की अतिशयता और भावातिरेक को व्यंजित करने के कारण बुरा नहीं समझा जाता। फ़ारसी में यह विवेचन बहुत प्रचलित रहा है। प्रेमी सदा रक्त के आँसू बहाते, कपड़े फाड़ते, बन को भागते हुए मिलते हैं। उनका हृदय विरह में जल कर कबाब हो जाता है। नेत्रों से रक्त टपकने लगता है। मुस्लिम-संपर्क के कारण इस प्रकार का निरूपण हिंदी-साहित्य में भी होने लगा। पद्मावत को दृष्टि में रखते हुए इस प्रकार के निरूपण के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा--"पद्मावत में यद्यपि हिंदू-जीवन के परिचायक भावों के भी छींटे कहीं कहीं मिलते हैं। विदेशीय प्रभाव के कारण वियोग-दशा के वर्णन में कहीं कहीं वीभत्स चित्र सामने आ जाते है, जैसे कबाबे-सीख वाला यह भाव—

विरह सरागन्हि भूजे मांसू। गिरि गिरि परै रकत कै आँसू॥
कटि कटि मांसु सराग पिरोवा। रक्त कै आंसु मांसु सब रोवा॥
खिन एक बार मांसु अस भूंजा। खिनहिं चबाइ सिंघ अस गूंजा।[1]

प्रेम मार्गी शाखा के सूफ़ी कवियों में यह निरूपण अधिक मिलता है। उनके नायक और नायिकाएं विरह में खून के आँसू बहाते नजर आते हैं—

देखि रूप चखु चरमे सौंह न सकहिं निहारि।
रकत आंसू बह नैनन्हि पलक न जाइ उघारि।[2]
रकत आंसू ज्यों टूटे, मानो मानिक हार।
ठाउं ठाउं झर परें, उपजे रतन अंगार॥[3]

रक्त और मांस की चर्चा के अतिरिक्त इस निरूपण के अंतर्गत विष और मूर्छा का विवेचन भी मिलता है। नेत्रों में जहर होने का निरूपण भी फ़ारसी परंपरा के प्रभाव के कारण ही हुआ है—

नैन सोहागिनि विस वसै अधरन्ह अंम्रित वासु।
नैन कटाहैं जो मरैं विहसि जियावहि तासु॥[4]

प्रेमिका का नाम सुनकर मूर्छित होने का निरूपण भी भारतीय-परंपरा के अनुरूप नहीं है—

---

१. जायसी ग्रंथावली (भूमिका), पृ० ४२
२. मधुमालती, १०४
३. हंस-जवाहर, पृ० २०५
४. मधुमालती, पद १३२

सुनि तोर नाउं परा मुरु छाई बिसहर डसा तहरि जनु आई।[1]

रक्तरूपी आंसुओं से रोने का विवेचन भी मिलता है—

रगत आंसु तस पैमैं रोवा। जेरू रे सुना तेइं हिया करोवा॥
मन गहभर हिय उठेउ अंदेश। नेन समुंद्र दै रगत हिलोरा॥[2]
टूटे आंस रक्त भा लूंकी। कुहके जानि दई वन फूंकी।
घरा रोवत गा दरक पहारू। सुनत कूक भा जगत मंझारू॥[3]

५. मुहावरे—

मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है। यह 'हौर' धातु से बना है। गयासुल्लुग़ात के अनुसार 'मुहावरा बिल्ज़मे मीम वफ़तहे वाव, बायक दीगर कलाम करदन व पासुख़दादन—.......[4] अर्थात् मुहावरा के 'मीम' पर पेश और वाव पर ज़बर है उसका अर्थ परस्पर बातचीत से है। 'प्रायः शारीरिक चेष्टाओं, अस्पष्ट ध्वनियों, कहानी और कहावतों अथवा भाषा के कतिपय विलक्षण प्रयोगों के अनुकरण या आधार पर निर्मित और अभिधेयार्थ से भिन्न कोई विशेष अर्थ देने वाले किसी भाषा के गढ़े हुए रूढ़ वाक्य, वाक्यांश अथवा शब्द इत्यादि को मुहाव [illegible] कहते हैं।'[5] संस्कृत तथा हिंदी में इस शब्द के यथार्थ का बोधक कोई शब्द नहीं मिलता।[6] हिंदी मुहावरों के प्रयोग में बड़ी संख्या में, क्रिया, संज्ञा और विशेषण विभिन्न भावों का अलंकरण करते हैं। शब्दों का यह प्रतीकात्मक प्रयोग और फ़ारसी शब्दों की बहुलता फ़ारसी का प्रभाव सिद्ध करती है।[7] हिंदी ने फ़ारसी से कहावतें भी लीं और कई मुहावरों और कहावतों का तर्जुमा भी कर लिया।[8]

हिंदी-साहित्य में मुहावरों द्वारा यह अलंकरण तीन रूपों में अभिव्यक्त हुआ है, हिंदी मुहावरों में फ़ारसी-अरबी मुहावरों के सीधे प्रयोग द्वारा, फ़ारसी-अरबी शब्दावली के अनुवाद द्वारा तथा उनसे मिलती जुलती शब्दावली के द्वारा। फ़ारसी के कुछ मुहावरे या शब्द इस प्रकार हिंदी में प्रचलित हो गये हैं, मानो वे हिंदी के ही

१. मधुमालती, पद ३०१
२. मधुमालती, पद २१८
३. हंसजवाहर, पृ० २०४
४. ग़यासुल्लुग़ात, पृ० ४४५
५. मुहावरा-मीमांसा, पृ० ३७६
६. मुहावरा-मीमांसा, पृ० ३७७
७. पर्शियन इन्फ्लूएंस आन हिंदी, पृ० ५६
८. हिंदी पर फ़ारसी प्रभाव, पृ० १३१

अंग हो, जैसे गुल खिलना, इसका साधारण अर्थ फूल खिलना है किंतु जब हम कहते हैं कि फूल खिलता है तो उससे रहस्योद्घाटन का भाव व्यक्त नहीं होता। इसलिए गुल खिलाना मुहावरा हिंदी भाषा का अंग बन गया है।

शारीरिक अंगों के आधार पर निर्मित मुहावरे—

मुहावरे मनुष्य की अनुभूतियों, विचारों और कल्पनाओं के मूर्त्त शब्दाकार रूप हैं। शारीरिक अंगों का आश्रय लेकर भी मुहावरों का निर्माण किया गया है। सरापा बयानी (शिख नख वर्णन) की दीर्घ परंपरा फ़ारसी साहित्य में मिलती है। सरापा के आधार पर सरतापा[1] शब्द का, मुहावरे के रूप में प्रयोग हुआ है। यद्यपि संस्कृत में आपाद मस्तक शब्द है किंतु उसमें क्रम पैर से सिर तक का है। फ़ारसी अन्दाज में सिर से पैर तक के लिए सरापा का प्रयोग है। जायसी ने भी इस मुहावरे का प्रयोग किया है—

केस मेघावरि सिर ता पाईं। चमकहि दसन बीजु कै नाईं।[2]

आंख के मुहावरे—

अधिकांश-हिंदी मुहावरे फ़ारसी मुहावरों का अनुवाद प्रतीत होते है। आँख के लिए फ़ारसी शब्द चश्म का प्रयोग होता है और चश्म रसीदन[3] का अनुवाद हिंदी में नज़र लगना है तथा चश्म नमूदन[4] का आंख दिखाना। हिंदी में दृष्टि लगना और आंख संबंधी अनेक मुहावरों का प्रचलन हुआ है—

कौन निरासी दृष्टि लगाई लै लै आंचल झरैरी।[5]
काहु निसिचर दृष्टि लगाई अंचर झारै।[6]
किधौं कहुं प्यारी की, लागी टटकी नजरि।[7]
माई मोरिहि दिठि न लागे, तातें मसि-बिंदा दियौ भ्रूपर।[8]
तिहिं जल गाजत महावीर सब तरत आंखि नहि मारत।[9]

१. पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी, पृ० ६७१
२. पद्मावत, पृ० १२, पद ८
३. पार्शियन इंगलिश डिक्शनरी, पृ० ३९४
४. पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी, पृ० ३९४
५. परमानंददास, ७८
६. परमानंददास, ६१
७. सूर-सागर, ७५२
८. सूर-सागर, १०—९२
९. क. पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी, ३९४ ख. सूर-सागर, ९-११२

आंखि दिखावत हौ जु कहा तुम करिहौ कहा रिसाय।[१]
और पतित आवत न आंखि-तर देखत अपनौ साज।[२]
नैन नचाइ चितै मुसकाइ सु ओट ह्वै जाइ अंगूठा दिखायौ।[३]
आजु ही बारक लेहु रहीं काहि कै कछु नैनन मैं हिहसी है।[४]

कान के मुहावरे

कान के लिए फ़ारसी शब्द गोश है तथा गोश माशीदन, गोश करदन, गोश बुरीदगी, गोश बर आवाज आदि मुहावरे मिलते है।[५]

कानपरी सुनिये नहीं बहु बाजत ताल मृदंग।[६]
बालक वृंद करत कोलाहल सुनत न कानपरी।[७]
सूरदास के प्रभु सो करियै, होइ न कान कटाई।[८]
जब तोसो समुझाइ कही नृप तब तैं करी न कान।[९]

मुँह के मुहावरे

मुह के मुहावरे फ़ारसी मे 'रू' के अंतर्गत आते हैं जैसे रूए-कशीदन, मुंह चढाना, रू सियाही, मुह काला करना, रूए बाज गुनाह दाशतन, मुह फेरना। हिंदी के कुछ उदाहरण दिये जाते है—

काम की वारी मुख मत मोड़ै, होशियार उमर मत खोवे।[१०]

रू दादन[११] का हिंदी अनुवाद मुह देना है। आलोच्य काल मे मुह देने के अनेक मुहावरे मिलते है—

कबहूं बालक मुंह न दीजियै, मुह न दीजियै नारी।[१२]

---

१. सूर-सागर, वे, २४४७ (७)
२. क. पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी, पृ० २६४
ख. सूर-सागर
३. सुजान रसखान, पद १०१
४. सुजान-रसखान, पद ३८
५. क. ग्यासुस-लुग़ात, ३८०   ख. पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी, पृ० ११०३
६. सूर-सागर, २६०७
७. कुंभनदास, ६६
८. सूर-सागर, १-१८५
६. सूर-सागर, १-१८५   १०. कबीर ग्रंथावली,
११. पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी, पृ० ५८६   १२. सूर-सागर १५१८

गरदन के मुहावरे

फ़ारसी के गरदन ज़दन[1] मुहावरे का हिंदी मुहावरा गरदन मारना बना लिया गया है—

सो जानइ जनु गरदन मारी ।[2]

दिल के मुहावरे

फ़ारसी में दिल के भी अनेक मुहावरे मिलते हैं[3] दिल बर निहादन, दिल मैद शुदन, दिल दादन, दिल नमूदन, दिल पारा पारा शुदन, दिल टुकड़े-टुकड़े होना । हिंदी में दिल का अनुवाद हिय, जिय, उर, मन अनेक रूप से हुआ है—

जबतें कुमत जिय ठयऊ, खंड-खंड होइ हृदय न गयऊ ।[4]
मन छाँड़ि हरि-पद चित लायौ ।[5]

हाथ के मुहावरे

फ़ारसी में हाथ के लिए दस्त शब्द के अनेक मुहावरे हैं जैसे दस्त अफ़शांदन[6] का अर्थ है हाथ झाड़ना, दस्त गज़ीदन[7] हाथ मलना, कर मींजना । हिंदी में हाथ के मुहावरों का प्रयोग भी खूब मिलता है—

चले जुआरी छोड़ हथ झाड़ ।[8]
अधर दांत पीस कर मींजत, को जाने चित कहा ठई है ।[9]
कर मींजि पछिताइ बहुत दुख पावइ ।[10]
नाहर देखा बन्द सब, हाथ मींज पछिताय ।[11]
पुन्य देखि सो मींजे हाथा ! गा अकेल कछु गयो न साथा ।[12]

---

१. पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी, पृ० १०८१
२. रामचरितमानस, २।१८५।३ २ ख. भावे बंदा बखसिये भावे गरदन मारि, कबीर
३. ग्यासुल्लुग़ात, पृ० १७८
४. रामचरितमानस, अयोध्याकांड, १६४
५. सूरसागर, १२-५
६. पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी, पृ० ५१९
७. पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी पृ० ५२१
८. गुरु ग्रंथ साहब
९. विनय-पत्रिका, १३९
१०. अकबरी दरबार के हिंदी-कवि नरहरि, पृ० ३३६
११. हंस-जवाहर, पृ० ४२
१२. हंस-जवाहर, पृ० १४

हिये कांप भीजै करन, कहा नदे विष खाय ॥[१]

मंदिर की परछाया बैठयो कर मीजै पछिताई ।[२]

अब तुम मोको करौ अजांची, जां कहुं कर न पसारौं ।[३]

फ़ारसी का अंगुश्त बदंदां हिंदी में दांतों तले अंगुली के रूप में आया है। अंगुश्त-बदंदां[४] का हिंदी अनुवाद दांतों तले उंगली दवाना का प्रयोग भी मिलता है—

मैं तौ जे हरे हैं, ते तौ सोवत परे हैं
ये करे हैं कौनै आन अंगुरिनि देत दे रह्यौ ।[५]

अन्य मुहावरे

फ़ारसी सरापा बयानी या शारीरिक अंगों (शिख नख) के अतिरिक्त भाववाचक संज्ञा, द्रव्यवाचक संज्ञा तथा अन्य अनेक प्रकार के ऐसे मुहावरे मुस्लिम संपर्क से हिंदी में आए हैं जिनके द्वारा अलंकरण का क्षेत्र बढ़ा है। इन मुहावरों का कहीं-कहीं अरबी-फ़ारसी मुहावरों का अनुवाद, भाषा में ज्यों का त्यों मिलता है तथा कुछ मुहावरे उस शब्दावली से मिलते-जुलते भी हैं और कुछ मुहावरों में अर्थ परिवर्तन भी मिलता है जिसे भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अर्थोत्कर्ष या अर्थापकर्ष ही कहा जा सकता है। अकबरी दरबार के प्रसिद्ध कवि गंग ने 'खसम करना' का प्रयोग ख़समाना के रूप में किया है—

कहे कवि गंग इत समुद्र के चहूं कूल किये न करै कबूल तिय ख़समानाजू[६]

वान-बरसा लगे करन अति कुद्ध ह्वै, पार्थ-अवसान तब सब भुलाए ।[७]

आवा पवन बिछोह कर पात परा बेकरार ।
तखिर तजा जो चूरि के लागै केहि के डार ।[८]

किधौं सूर कोई व्रज पठयौ आजु खबरि कौ पाव ।[९]

क्यों जू खबरि कहौ यह कीन्हौ करत परस्पर ख्याल ।[१०]

---

१. हंस-जवाहर, पृ० १०१
२. सूर-सागर, ९-७५
३. सूर-सागर, १०-३७
४. पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी, पृ ११४
५. सूर-सागर, दशमस्कन्ध, ४८४
६. अकबरी दरबार के हिंदी कवि गंग, पृ० ४४१
७. सूर-सागर, १-२७१
८. जायसी-ग्रंथावली, लक्ष्मी समुद्र खंड, पृ० १७७
९. सूर-सागर, वें २९४६
१०. सूर-सागर, वें २४७२

जान बुझाई सबरि दै आवहु एक पंथ द्वै काज ।[1]
ताहि सरौ लखि लाख जरौ इहि पाख पतिव्रत ताख धरौ जू ।[2]
सूर स्याम मैं तुम न डरै हौं, ज्वाव स्वाल कौ देहौं ।[3]
(माई) नेंक हूं न दरद करति, हिल किनि हरि रोवै ।[4]
अब ही तैं यह हाल करत है, दिन-दिन होत प्रकास ।[5]
कहे कौ न लाज प्रिय। आजहुं न आए बाज ।[6]
तीनों पन भरि ओर निबाह्यौ, तऊ न आयौ बाज ।[7]
सुहृद-समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत ।[8]

जरबुलअमसाल (लोकोक्ति)—

लोकोक्ति विश्वव्यापी विधा है और प्राचीन भारतीय साहित्य में पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। मुस्लिम-संस्कृति के कतिपय संस्कार भी लोकोक्ति बन गये हैं। मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के पारिणामस्वरूप हिंदी-साहित्य में भी ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने भाव, भाषा की दृष्टि से अलंकरण में बड़ा योगदान किया। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं जैसे—हुमायूं का सक्क़े को आधे दिन का राज्य देना, शेखचिल्ली की कथा (डींग मारना) तथा क़ाज़ी संबंधी लोकोक्ति—

सूर मिलै मन जाहि जाहि सौं, ताकौ कहा करै काजी ।[9]
भए दोउ नैन जहाज को पंच्छी, दोउ भये राजी तो काजी कहा कर है।[10]
जैसे शेख चिल्ली मनोरथ को कीयो वर[11]
(ऊधो) सिर पर सौति हमारें कुबिजा, चाम के दाम चलावैं ।[12]
कहौ मधुप, कैसे समाहिंगे, एक म्यान दो खाड़े[13]

---

१. सूर-सागर, वें २९२५
२. सुजान-रसखान, पद १९६
३. सूर-सागर, १४०५
४. सूर-सागर, ३४८
५. सूर-सागर, १०-६०
६. कवितावली, ६।२४
७. सूर-सागर, १-९६
८. विनयपत्रिका, २६४
९. सूर सागर, ३१४७
१०. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (गंग), पृ० २५७
११. सुन्दर-विलास, पृ० ८२
१२. सूर-सागर, ३३९५ १३. सूर-सागर, ३६०४

इश्क़ो मुश्करा नतवां नहुफ़तन[1] ज़रबुलमिस्ल का अनुवाद, प्रेम और कस्तूरी छुपाए नहीं छुपते हैं। जायसी ने इनका कैसा सुंदर प्रयोग पद्मावत में किया है—

परिमल प्रेम न आछै छपा।

दूरां बा-खबर नज़दीक। नज़दीकां बे बसर दूर॥

इस भाव की जायसी ने क्या सुन्दर भावाभिव्यक्ति की है—

नियरेहि दूर, फूल जस कांटा। दूरहिं नियरे सो जस गुड़ चांटा।[2]

मुस्लिम-संस्कृति के अनुसार विवाहोत्सव में क़ाजी के निकाह पढ़ाने की कहावत को पौराणिक चरित्र चित्रण के एक प्रसंग में किस कुशलता से प्रयोग किया है। काव्य में अन्य अनेक इसी प्रकार की भावाभिव्यंजना के आधार पर कहा जा सकता है कि फ़ारसी अरबी मुहावरों, कहावतों और शब्दों तथा मुस्लिम-संस्कृति की अन्तर्कथाओं के हिंदी में प्रचलन से भाव एवं भाषा के अलंकरण तथा भावव्यंजना-शक्ति में पर्याप्त प्रगति एवं प्रौढ़ता आई है।

६ अरबी-फ़ारसी उपसर्ग और प्रत्यय—

मुस्लिम-संपर्क के कारण हिंदी में आदान प्रदान इतना अधिक हुआ है कि हिंदी भाषा में मुहावरों, कहावतों तथा व्याकरण संबंधी अनेक तथ्यों के साथ अरबी फ़ारसी उपसर्गों और प्रत्ययों को भी ग्रहण किया है। हिंदी संश्लेषणात्मक भाषा है और फ़ारसी विश्लेषणात्मक भाषा है। यही कारण है कि हिंदी में विभक्ति प्रत्यय शब्द के बाद में लगते हैं और फ़ारसी में शब्द से पहले। पहले लगने वाले को उपसर्ग (साविक़ा) कहते हैं। हिंदी में जहां हिफ़ाज़त से, नाम से, इजाज़त से, हक़ीक़त में, असल में लिखते हैं वहाँ फ़ारसी वाले बहिफ़ाज़त, बनाम, बजाज़त, दरहक़ीक़त, दर असल लिखते हैं। हिंदी में भी ऐसे प्रयोग मिल जाते हैं।

हिंदी में अनेक अरबी-फ़ारसी उपसर्गों (साविक़ों) और प्रत्ययों (लाहिक़ों) का प्रयोग मिलता है जिनके द्वारा अर्थ परिवर्तन, अर्थ परिवर्धन आदि की दृष्टि से भाषा के अलंकरण का क्षेत्र व्यापक हुआ है।

अरबी फ़ारसी के अनेक उपसर्गों (साविक़ों) का प्रयोग अनेक हिंदी-कवियों ने किया है। जैसे—बे (बिना) उपसर्ग का बेकाम, बेकाज के रूप में प्रयोग किया है—

बेकाम—ठाली ग्वालि ओरहने के मिस बकहिं बेकामहिं॥[3]

बेकाज—हित की बात कुहित की लागति, कत बे काज ररौ।[4]

---

१. फरहंगे अमसाल, पृ० १३४

२. पद्मावत, स्तुति खंड, पद २४

३. तुलसी-ग्रंथावली (श्रीकृष्ण गीतावली ५), पृ० ३६२

४. सूर-सागर, ३६११

इनके अतिरिक्त बे मोहताज,[1] बे हद,[2] बे अदब[3] आदि का भी प्रयोग हिंदी में मिलता है। साथ ही दर[4] (में), कम[5] (थोड़ा, हीन), ना[6] (नहीं), ला[7] (बिना) आदि उपसर्गों का भी हिंदी में प्रयोग खूब हुआ है।

उपसर्ग के अतिरिक्त अरबी फारसी के अनेक प्रत्ययों (लाहिक़ों) का भी हिंदी के अनेक कवियों ने प्रयोग किया है। जैसे—गर,[8] गार[9], दार[10], मंद[11], बाज आदि अनेक प्रत्ययों का हिंदी में प्रचलन हुआ है जिनके द्वारा भाषा के अलंकरण में व्याप-

१. बे मुहताज बे अंत अपारा। सचि पतीजै करणै हारा, नानक-वाणी, पृ० ७१२
२. क. जे लागे बेहद सूं अंतर खोलि। कबीर-ग्रंथावली, पृ० २०
ख. बे अकल, बेरांग के लिए देखिये—कबीर-ग्रंथावली, पृ० १३१, १६०
३. बेअदब बदबख्त बीरा, बे अकल बदकार। रैदास की बानी, पृ० १६
४. क. मीरा मेरा सिहर करि, दे दरसन दरहाल॥ दादू-बानी, भाग १, पृ० ३१
ख. पूरिक पूरा है गोपाल। सब की चीत करै दरहाल॥ दादू-बानी, भाग२, पृ० २०
५. मैं गुनहगार गरीब गाफिल, कमदिला दिलतार॥ रैदास की बानी, पृ० १७
६. क. अंग नापाक यों कीन्ह लाई॥ दादू बानी, भाग १, पृ० ११२
ख. यह दुनिया नाचीज के, जो आसिक होवे। मलूक-बानी, पृ० १६
ग. तू साहिब लीये खड़ा, बन्दा नामवूरा। मलूक-बानी, पृ० २४
घ. नापैद तें पैदा किया पैमाल करत न बार बे। रैदास की बानी, पृ० १४
७. क. सजे सुहाग सुख प्रेम रस, मिलि खेलै लापर्द॥ दादूबानी, भाग १, पृ० ३१
ख. मीरा कीया मेहर सौं, परदे थैं लापर्द। दादू-बानी, भाग १, पृ० ६०
८. क. बाजीगर सौं राचि रहा। बाजी का मरम न जाना। रैदास-बानी, पृ० ७
ख. जैसे कागद गर करत बिचारं। रैदास-बानी, पृ० २१
ग. भाई रे बाजीगर नट खेला, ऐसे आपै रहै अकेला॥ दादू-बानी, भाग २, पृ० १२१
९. क. मैं गुनहगार गरीब गाफिल, कमदिला दिलतार। रैदास-बानी, पृ० २६
ख. नालीदोज हनोज बेबख्त, कमि खिजमतगार तुम्हारा। रैदास-बानी, पृ० २६
ग. घरी घरी देता दीदार, जन अपने का खिजमतगार। मलूक-बानी, पृ० ३
१०. क. है दाना है दाना दिलदार मेरे कान्हा। दादू-बानी, भाग २, पृ० ११५
ख. अजब यारां खबरदारां, सुरतै बहान। दादू-बानी, भाग २, पृ० १६६
ग. तूं है तब लग एक टग, दादू के दिलदार। दादू-बानी, भाग १, पृ० ३०
११. क. मारे काल कलंदर दिल सौं, दरदमंद घर धीरा। मलूक-बानी, पृ० ४
ख. मैं बेदियानत न नजर दे, दरमंद बरखुरदार। रैदास-बानी, पृ० १६

कता आई है।

वही दगावाज वही कुण्टी जु कलंक भरयो।[1]

७. हिंदी-कवियों का अरवी-फ़ारसी बहुल काव्य

दीर्घ काल तक मुस्लिम-संपर्क में रहने के कारण अनेक हिंदी कवि अरबी-फ़ारसी शब्दावली से पूर्णतः परिचित हो चुके थे। इन कवियों ने अपने काव्य को अरवी-फ़ारसी के माध्यम से अलंकृत किया है जिनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

कबीर

मींयाँ तुम्ह सौं बोल्यां वणि नहीं आवै।
हम मसकीन खुदाई बंदे, तुम्हारा जस मनि भावै॥
अलह अवलि दीन का साहिब, जोर नहीं फुरमाया।
मुरसिद पीर तुम्हारै है को, कहौ कहां थै आया॥
रोजा करै निवाज गुजारैं कलमैं भिसत न होई।
सतरि काबे इक दिल भीतरि, जै करि जानैं कोई।
खसम पिछांनि तरस करि जिस मैं, माल मनीं करिफाकी।
आप जांनि सांई कूं जानैं तब ह्वै भिस्त सरीकी॥
कहै कबीर भिस्त छिटकाई, दोजग ही मन मानां॥[2]

कबीर ने मुस्लिम धर्म एवं संस्कृति-संबंधी विचार अभिव्यक्त करते समय आमतौर पर अरबी-फ़ारसी बहुल शब्दावली से अपने काव्य[3] को अलंकृत किया है। दो उदाहरण और प्रस्तुत हैं। इन्होने जन सामान्य को सम्बोधित करते समय भी कभी-कभी अरबी-फ़ारसी वहुल शब्दावली का प्रयोग किया—

वेद कतेब इकतारा भाई दिल का फिकर न जाई।
टुक दम करारी जौ करहु हाजिर हजूर खुदाई॥
बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिरी परेशानी माहि।
इह जु दुनिया सहरू मेला दस्तगीरी नाहिं॥
दरोग पढ़ि पढ़ि खुसी होइ बेखबर वाद बकाहि।
हक सच्च खालक खलक म्याने स्याम मूरति नाहि॥
असमान म्याने लहंग दरिया गुसल करद न बूद

१. क. सुन्दर विलास, पृ० १२०
ख. दगावाज कुतवाल काम रिपु सरवस लूटि लयौ। सूर-सागर, १—६४

२. कबीर-ग्रंथावली पद (२५५), पृ० १३०

३. देखिये—कबीर-ग्रंथावली, पृ० ८१, १४८, १४९

करि फिकरु दाइम लाइ चसमे जहां तहां मौजूद ॥
अल्लाह पाक पाक है सक करो जे दूसर होइ।
कबीर कर्म करीम का उहु करे जाने सोइ ॥[1]

+ + +

खालिक हरि कहीं दर हाल।
पंजर जसि करद दुसमन, मुरद करि पैमाल।
भिस्त हुसकां दोजगां, दुंदर दराज दिवाल।
पहनांम परदा ईत आतस, जहर जंगम जाल ॥
हम रफत रहबरहु समां, मैं खुर्दा सुमां बिसियार।
हम जिमीं असमान खालिक, गुंद मुसिकल कार ॥
असमांन म्यानें लहंग दरिया, तहां गुसल करदा बूद
करि फिकर रह सालक जसम, जहां सतहां मौजूद
हंम चु बूंदानि बूंद खालिक गरक हम तुम पेस।
कबीर पनह खुदाइ की, रह दिगर दावानेस ॥[2]

इनके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर अरबी-फ़ारसी बहुल शब्दावली द्वारा अलंकृत पद्य मिलते हैं।[3]

सूरदास

सूरदास के निम्न पद्य मुस्लिम-संस्कृत के राज प्रबंध संबंधी जानकारी से अलंकृत है—

हरि, हौं ऐसो अमल कमायौ।
साविक जमा हुती जो जोरी मिनजालिक तल ल्यायौ।
वासिल बाकी स्याहा मुजमिल सब अधर्म की बाकी।
चित्रगुप्त सु होत मुस्तोफी, सरन गहूं मैं काकी।
मोहरिल पांच साथ करि दीने तिनकी बड़ी बिपरीति।
जिम्मे उनके मागें मोतें, यह तौ बड़ी अनीति।
पांच पचीस साथ अगवानी, सब मिलि काज बिगारे।
सुनी तगीरी बिसरि गई सुधि मो तजि भए नियारे।
बढ़ौ तुम्हार बरामद हूं को लिखि कीनौं साफ।
सूरदास की यहै बीनती दस्तक कीजै माफ।

१. कबीर-ग्रंथावली, पृ० २४७ २. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १३१
३. कबीर-ग्रंथावली, पृ० १४७, १४८, १५०, १५२, १८१, २०३, २४०, २५४
४. सूर-सागर, ११४३

सांचौ सौ लिखहार कहावै।
काया-ग्राम मसाहत करि कै, जमा बांधि ठहरावै।
मन महतो करि कैद अपने में, ज्ञान जहतिया लावै।
मांड़ि मांड़ि खरिहान क्रोध कौ, पोता भजन भरावै।
बट्टा काटि कसूर भरम कौ, फरद तले लै डारै।
निहचै एक असल पै राखै, टरै न कबहूं टारे।
करि अवारजा प्रेम प्रीत कौ असल तहां खतियावे।
दूजे करज दूरि करि दैयत, नैकु न त.में आवै।
मुजमिल जोरै ध्यान कुल्ल कौ हरि सौं तहं लै राखै।
जमा खरच नीकै करि राखै लेखा समुझि बतावै।
सूर आप गुजरान मुसाहिब, लै जवाब पहुंचावै ॥[1]

\+ \+ \+

जनम साहिबी करत गयौ।
काया नगर बड़ी गुंजाइस, नाहिं कुछ बढ़यौ।
हरि कौ नाम दाम खोटे लौं, झकि झकि डारि दयौ।
विषया गांव अमल कौ टोटौ हंसि कै ऊमयौ।
नैन अमीन अधर्मिनि के बस, जहं कौ तहां छयौ।
दगाबाज कुतवाल काम-रिपु सरवस लूटि लयौ।
पाप उजीर क्यों सोइ मान्यौ, धर्म सुधन लुट्यौ।
चरनोदक कौं छांड़ि सुधा-रस, सुरा-पान अंचयौ।
कुबुधि कमान चढ़ाइ कोप करि बुधि तरकस रितयौ।
सदा सिकार करत मृग मन कौ रहत मगन भुरयौ।
घेरयौ आइ कुटुम लस्कर मैं जम अहदी पढ़यो।
सूर नगर चौरासी भ्रमि-भ्रमि घर-घर कौ जु भयौ।[2]

तुलसीदास

तुलसीदास को भारतीय संस्कृति तथा हिंदू-धर्म का प्रतिनिधि माना जाता है किंतु वे भी तत्कालीन मुस्लिम-संपर्क से प्रभावित हुए हैं। उन्होंने अन्य कवियों की अपेक्षा अपने काव्य को अरबी फ़ारसी शब्दावली से अधिक अलंकृत कर अत्यंत उदार होने का परिचय दिया है।

भई भाल सिथिल जगन्निवास दीन की।

---

१. सूर-सागर, १-१४२

२. सूर-सागर, १-६४

भाई को न मोह, छोह सीय को न तुलसीस,
कहैं मैं बिभीषन की कछु न सबील की।
लाज बौह बोले की, नेवाजे की संभार सार,
साहेब न राम से, बलैया लेऊं सील की।[1]

यहां दील की (दिल) सबील की में अरबी-फ़ारसी काव्य की तुकांत (राइमिंग) प्रवृत्ति के अनुसार मालूम पड़ता है तथा अरबी के सबील जैसे प्राविधिक शब्द का प्रयोग इनकी फ़ारसी जानकारी का द्योतक है। इसके अतिरिक्त राम के लिए साहब[2], सीता के लिए साहिबी तथा गरीबनिवाज, बिभीषन नेवाज, राम का गुलाम, उमर-दराज, मसीत, (मस्जिद) आदि अरबी फ़ारसी शब्दों का प्रयोग इनकी, मुस्लिम-संस्कृति की जानकारी के द्योतक हैं।

नानक

मुस्लिम सूफ़ियों के साथ नानक जी का बचपन से ही साथ रहा है। इसलिए इनका काव्य अरबी-फ़ारसी बहुल शब्दों से अलंकृत है। ख़ुदा से एक अर्ज में कितना मुस्लिम संपर्क है—

यक अरज गुफतम पेसि तो दरगास कुन करतार।
हका कबीर करीम तू बे ऐब परवरदगार॥
दुनीआ मुकामे फ-नी तहकीक दिल दानी।
मम सर मूइ अजराईल गिरफतह दिल हैचि न दानी॥
जन पिसर पदर बिरादरां कस नेस दस्तगीर।
आखिर बिअफतम कस न दारद च सबद तकबीर॥
सब रोज गसतम दर हवा करदेम बदी खिआल।
गाहे न नेकी कार करदम मम ई चिनी अहवाल॥
बद बखत हम चु बसील गाफिल बे नजर बेकार।
नानक बुगोयद जनु तुरा तेरे चाकारां पा खाक॥[3]

\+ \+ \+

चिलमिल बिसीआर दुनीआ फानी।
कालूबि अकल मन गोर न मानी॥
मन कमीन कमतरीन तू दरीआउ खुदाइआ।

1. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, पृ० १६५
2. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, पृ० १७१, १६६, १६७, १६६, १८२, १८७
3. नानक-वाणी, पृ० ४२७

एक चीजु मुझै देहि अवर जहर चीज न भाइआ।
पूराब लाम कूजै हिकमति खुदाईआ ।
मन तुआना तू कुदरती काइआ ।
सग नानक दीवान मसताना नित चड़ै सवाइआ ।।
आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ ।।
धंनु सु कागदु कलम धनु धनु मांडा धनु मसु ।
धनु लेखारी नानका जिनि नामु लिखाइआ सचु ।
आपे परी कलम आपि उपरि लेख भि तुं ।
एको कहीए नानका दूजा काहे कू ।।[1]

प्रस्तुत पद में नानक जी ने मुस्लिम संस्कृति के धार्मिक पक्ष के अंतर्गत सच्चे मुसलमान की विशेषताओं का वर्णन किया है—

मिहर मसीत सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु ।
सरम सुंनति सीलु रोजा होहु मुसलमाणु ।।
करणी काबा सचु पीरु कलमा करम निवाज ।
तसबी सा तिसु भाव सी नानक रखै लाज ।।
हकु पराइआ नानका उसु सूअर उस गाइ ।
गुरु पीर हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ ।
गली भिसति न जाईऐ छुटै सचु कमाइ ।
मारण पाहि हराम महि होइ हलालु न जाइ ।।
नानक गली कूडीई कूड़ो पलै पाई ।।
पजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाउ ।
पहिला सचु हलाल दुइ तीजा खैर खुदाइ ।
चउथी नीअति रासि मनु पंजी सिफति-सनाइ ।
करणी कलमा आखि कै ता मुसलमाणु सदाइ ।
नानक जेते कूड़िआर कूड़ै कूड़ी पाई ।।[2]

दादू दयाल

दादू दयाल के काव्य में अरबी-फ़ारसी शब्दों का ही अधिक प्रयोग नहीं मिलता अपितु यह मुस्लिम धर्म दर्शन का बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे और सूफ़ियों से इनका गहरा संपर्क रहा होगा। इसीलिए इनके काव्य में अनेक स्थानों पर अरबी-

---

१. नानक-वाणी, पृ० ७७३

२. नानक-वाणी, पृ० १७६

फ़ारसी की बहुलता मिलती है।[1] यहाँ दादू ने तसव्वुफ़ संबंधी विचार प्रकट किये हैं। इनमें कितनी अरबी-फ़ारसी तराकीब हैं—

(प्रश्न)

मौजूद खबर माबूत खबर, अरवाह खबर औजूद।
मुक़ाम चि चीज हस्त दादनी सजूद ॥

(उत्तर)

नफ्स ग़ालिब किब्र क़ाबिज गुस्सः मनी ऐश।
दुई दरोग हिर्स हुज्जत नामे नेकी नेस्त ॥
हैवान आलिम गुमराह ग़ाफिल, अव्वल शरीअत यंद।
हलाल हराम नेकी बदी, दर्से दानिशमन्द ॥

॥ अरवाह मकामे हस्त ॥

इश्क इबादत बंदगी, यगानगी इख़लास।
मेहर मुहब्बत खैर खूबी, नाम नेकी पास ॥

॥ माबूद मक़ामे हस्त ॥

यके नूर खूबे खूबाँ दीदनी हैरां।
अजब चीज खुर्दनी प्याले मस्तां ॥
कुल्ल फ़ारिग तर्के दुनिया हर रोज हर दम याद।
अल्लाह आले इश्क़ आशिक दरुने फ़रियाद ॥
आब आतश अर्श कुरसी, सूरते सुबहान।
सिर्र सिफ़त कर्दः बूदन, मारिफ़त मकान ॥
हक्क हासिल नूर दीदम, करारे मक़सद।
दीदारे यार अरवाह आमद मौजूदे मौजूदे ॥
चहार मंजिल बयां गुफतम दस्त करद बूद।
पीरां मुरीदां खबर करदः राहे माबूद ॥[2]

+ + +

अरवाह सिजदा कुनंद ओजूद रा चिकार।
दादू नूर दीदनी, आशिकां दीदार ॥
आशिकाँ रह कैबुज कर्दः दिलो जा रफ्तन्द।
अलह आले नूर दीदम, दिले दादू बंद ॥

---

१. दादू वानी, भाग १, पृ० ३१, ३२, ३३, ६०, ६२, ६३, ६४, १२५, १२७, १२८, १२९, १३०, १३६, १६५, १८२, २२५, २४०. २४१

२. दादू-बानी, भाग १, पृ० ५४-५५

आशिकां मस्ताने आलम खुरदनी दीदार।
चंद दिह चे कार दादू, यारे मा दिलदार।[1]

इसी प्रकार दादू-बानी भाग २ में हिंदी के साथ पंजाबी, सिंधी आदि प्रादेशिक भाषाओं के पद्य भी अरबी-फारसी बहुल शब्दावली से अनेक स्थलों पर अलंकृत है जिससे इनकी इन भाषाओं की जानकारी स्पष्ट है।[2] दो उदाहरण प्रस्तुत: है—

बंदे हाजिराँ हजूर वे, अलह आले नूर वे।
आशिकाँ रह सिदक स्याबत, तालिबां भरपूर वे।।
औजूद मे मौजूद है, पाक परवरदिगार वे।
देखले दीदार कू, ग़ैब ग़ोता मारि वे।।
मौजूद मालिक तख्त खालिक आशिका रह ऐन वे।
गुजर कर दिल ममूज भीतर, अजब है यहु मैन वे।।
अर्श ऊपर आप बैठा, दोस्त दाना यार वे।
खोज कर दिल कब्ज करले, दरुने दीदारु वे।।
हुशियार हाजिर चुस्त करदम मीराँ मिहरबान वे।
देखिले दरहाल दादू, आप है दीवान वे।।[3]

\+ + +

बाबा मरदे मरदां गोइ, ए दिल पाक करद: दोई।।
तर्क दुनिया दूर कर दिल फ़र्ज़ फ़ारिग होई।
पैवसत परवरदिगार सू, आकिलां सिर सोई।।
मनि मुरद: हिर्स फ़ानी नफ़स रा पैमाल।
बदी रा बरतफ़े करद: नांव नेकी ख्याल।।
जिन्दगानी मुरद: बाशद कुंज क़ादिर कार।
तालिबां रा हुक़्क़ हासिल, पासबानी यार।।
मर्दि मर्दां सालिकां, सरि आशिकां सुलतान।
हजूरी हुशियार दादू, इहै गो मैदान।।[4]

रैदास—

रैदास का भी तत्कालीन फ़ारसी का ज्ञान अच्छा खासा मालूम होता है।

---

१. दादू-बानी, भाग १, पृ० ५५
२. दादू-वानी, भाग २, पृ० ३४, ३५, ४७, ६८, ९३, ९५, १११, ११५, १३९, १५७, १६२, १६६, १६७
३. दादू-बानी, भाग २, पृ० ३९ ४. दादू-वानी, भाग २, पृ० ३७-३८

इनके काव्य में मुस्लिम-धर्म-दर्शन एवं साहित्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं।[1] दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

खालिक सिकस्ता मैं तेरा।
दे दीदार उमेदगार बेकरार जिव मेरा
औवल आखिर इलाह आदम फरिस्ता बन्दा।
जिसकी पनाह पीर पैगम्बर मैं गरीब क्या गंदा॥
तू हाजरा हजूर जोंक इक, अवर नहीं है दूजा।
जिसके इसक आसरा नहीं क्या निवाज क्या पूजा॥
नालीदोज हनोज बेवखत कर्मी खिजमतगार तुम्हारा।
दर मांदा दर ज्वाब न पावै, कह रैदास विचारा।[2]

\+ \+ \+

या रामा एक तूं दानां तेरी आदि भेख ना।
तू सुलतान सुलताना बन्दा सकिसता अजाना।
मैं बे दियानत न नजर दे, दरद मन्द बरखुरदार।
बे अदब बदबखत बीरा, बे अकल बदकार॥
मैं गुनहगार गरीब गाफिल कम दिला दिलतार।
तू कादिर दरियाव जिहादन मैं हिरसिया हुसियार॥
यह तन हस्त खस्त खराब खातिर अन्देसा बिसियार।
रैदास दासहि बोलि साहिब देहु अब दीदार॥[3]

मलूकदास—

मलूकदास ने अपने काव्य को अरबी फ़ारसी शब्दावली से अनेक स्थलों पर[4] अलंकृत किया है। यहां मलूकदास का एक पद उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

है हजूर नहिं दूर, हमा-जा भरपूर,
जाहिरा जहान जा का जहूर पुर नूर।
बे सबूह बे नमून, बे चगून ओस्त।
हमा ओस्त हमा अजोस्त जान-जानां दोस्त॥
शबो रोज जिकर फिकरही में मशगूल।

१. रैदास जी की वानी, पृ० १८, १६
२. रैदास जी की वानी, पृ० २६ ३. रैदास जी की वानी, पृ० १६
४. मलूकदास की वानी, पृ० ५, ६, १५, १८, २२, २५, २७, २६, ३०

तेही दरगाह बीच, पड़े हैं क़बूल ।।
साहेब है मेरा पीर क़ुदरत क्या कहिये ।
कहता मलूक बंदा, तक पनाह रहिये ।।[१]

नरहरि—

इनके अतिरिक्त अकबरी दरबार के अनेक कवियों का तत्कालीन राजभाषा फ़ारसी से परिचित होना स्वाभाविक ही है। मनोहर और रहीम तो हिंदी के साथ-साथ फ़ारसी के भी उत्तम कोटि के शाइर थे। नरहरि के दो पद द्रष्टव्य हैं। पहले में अकबर की प्रशंसा है और दूसरे में महान् सूफ़ी शेख़ सलीम एवं मोईनुद्दीन का उल्लेख है—

नेक बक्त दिल पाक सख़ी जवां मर्द शेर नर
अव्वल अली खुदाय दिया तिसि पार मुल्क जर
तुम खालिक बहु वेश सकुन तालिमा अमाजिम
दौलत बज्त बुलन्द जंग दुश्मन पर जालिम।
इन्साफि तुरां गोयद खलक कवि नरहरि गुफतन चुनी
बाबर न बरोबर बादशाह मन दिगर न दीदमदर दुनी।[२]

+ + +

या सेख सकलेम कुतुरख्वानी हाजिर
अबू महम्मद सषी कर मुना अब्दुलकादिर
या कादिर हाजा तिहु कुम हाकिम सदानि
सेष मुइदी पीर वली इलाह गिलानि
हसनी हुसनी हुकुम तुव गोयद मुमादरु दवस
सब दस्तगीर नरहरि निरषि गोसालम फिरियादिरस।[३]

भावालंकरण—

भावालंकरण के अंतर्गत उन मार्मिक अनुभूतियों का विवेचन किया जाएगा जो मुस्लिम संपर्क के कारण हिंदी-साहित्य में नूतन रूप में अभिव्यक्त हुई हैं—

जे हाल मिसकीं मकुन तग़ाफुल दुराय नैना बनाए बतियां।
कि तावे हिज्रां न दारम ए जां न लेहु काहे लगाए छतियां।।
शबाने हिज्रां दराज़ चूं जुल्फ़ व रोजे वसलत चू उम्र कोताह।

१. मलूकदास जी की बानी, पृ० २०
२. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (नरहरि) पृ० ३३३
३. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (नरहरि), पृ० ३२५, ३२०

सखी पिया को जो मैं न देखूं तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां।

\+ + +

सपीत मन को दुराए राखूं जो जाने पाऊं पिया की घतियां।[1]

सामान्य जन जीवन के सरस कवि अमीर खुसरो की इस हिंदी रचना में भाव, भाषा, शैली की दृष्टि से फ़ारसी-साहित्य का सा अलंकरण पाया जाता है। खुसरो तो मूलतः फ़ारसी कवि माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त 'आलम' जो मूलतः ब्राह्मण थे और स्वेच्छा से मुसलमान हो गये, उनका एक उदाहरण भी प्रस्तुत है—

अलक मुबारक तिय वदन लटकि परि यों साफ़।
खुसनसीब मुनसीमदन लिख्यो कांच पर काफ़॥[2]

आलम के इस पद में सौभाग्य को प्राप्त (खुशनसीब) कामदेव रूपी मुंशी से नायिका के रुख़े-रौशन (प्रकाशमान मुख) पर गेसू के ख़म (अलक की वक्रता) से काफ़ (अरबी फ़ारसी-वर्णमाला का एक वर्ण) लिखवाने में कितना सुंदर निरूपण है जो मुस्लिम संपर्क का द्योतक है। अन्य कवियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

विनवै तिय प्रिय पियो पियाला। अस नहिं पीउ होहु मतवाला।
बहुत न पियो जो होय खुमारी। चखो पिया संभार सम्हारी।
कहै कन्त जो वहै मतवाला। कहाँ संभारे पीत पियाला।[3]

यहां प्याला, खुमार और मतवाला का भाव उमरख़य्याम जैसे फ़ारसी कवियों की याद दिलाता है, जो मुस्लिम-सपर्क से आया है। फ़ारसी काव्य में विरह की वेदना का निरूपण बहुत ही हृदय विदारक शब्दों में होने की परंपरा रही है वहां आशिक़ (प्रेमी) विरह वेदना से व्याकुल होकर अपनी महबूबा (प्रेमिका) को दश्त-दश्त, सहरा-सहरा (वन-वन) खोजता और पुकारता फिरता है। हिंदी-साहित्य में विरह भावना की तीव्रता के निरूपण में इस प्रकार के भाव पाये जाते हैं—

हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरा दरद न जाने कोइ।
दरद की मारी वन-वन डोलूं, वेद मिल्यो नहिं कोइ।
मीरा की प्रभु पीर मिटे जद, वेद साँवलिया होइ।[4]

\+ + +

भौहें कमान बान बाके लोचन मारत हियरे कसि के।

\+ + +

रेजा रेजा भयो करेजा अंदर देखो घसि के।[5]

---

१. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ५१-५२

२. रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि, पृ० ११३

३. हंस-जवाहर, पृ० १८४ ४. मीरा, पृ० १०३ ५ मीरा पृ० ८३

फारूंगी चोर, करु गल कंथा, रहूंगी वैरागण होइ री।
चुरिया फोरू मांग बखेरूं कजरा में डारू धोइ री।[1]
तेरे कारण बन बन डोलूं कर जोगण को भेस।[2]
बिन पानी बिन साबुण सांवरा, होय गई धोय सफेद।
जोगण होकर जंगल हेरूं नाम न पायो भेस॥[3]

मीरा की उपर्युक्त भावाभिव्यक्ति में तथा अन्य साहित्य में जुलेखा और राबिया तथा अन्य फ़ारसी कवियों के साहित्य की विरह की तीव्रता की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। फ़ारसी-शायरी में जहां चमन (वाटिका, उद्यान) आनंदोत्सव का सूचक है वहां कोह, दश्त, सहरा एवं बयाबान (पर्वत, बन, जंगल) कष्ट या विपत्ति के प्रसंग में आते है इस बात को आचार्य शुक्ल ने भी स्वीकार किया है। हिंदी के सूफ़ी कवियों का विरह निरूपण अनेक स्थलों पर फ़ारसी साहित्य की मान्यताएं लिए हुए है। मधुमालती का नायक भी नायिका के विरह में व्याकुल होकर मजनूं की भांति मधुमालती-मधुमालती रट रहा है। प्रेम में इस प्रकार निमज्जित हो गया है कि स्वयं को भी नहीं पहिचान रहा। विरह की पीड़ा में ज्ञान तथा चेतना समाप्त हो जाती है। प्रेमी को अपने तन बदन का होश नहीं रहता, वह सिर तथा मुंह को जमीन पर पटकने लगता है। फ़ारसी कवियों में इस प्रकार का विवरण मिलता है। विरह व्याकुलता का यह भाव हिंदी मे दर्शनीय है—

जेहि बन कबहूं न मानुस आवा। तेहि बन विधि ले कुंवर अड़ावा।
पुनि उठि कुंवर चला बन माहीं। जहां पंखि पर भारत नाहीं।
चला जाइ बन माह अकेला। अगम पंथ अति कठिन दुहेला।
+ + +
मधुमालति-मधुमालति ररई। संवरि संवरि सिर मुंह लै धरई।
+ + +
पिरम भुलान न आपुहिं चीन्हा। चेत औ गयान सबहिं हरि लीन्हा।[4]

अलौकिक संकेतों के पाये जाने के कारण नायक नायिका के मूर्छित होने का निरूपण फ़ारसी प्रेमाख्यानों में भी पाया जाता है और हिंदी में भी यह भाव मिलता है—

सुनतहि बचन कुंवर मुरछाना। हरेउ चेत चित गएउ गियाना।[5]

भावातिरेक में कपड़े आदि फाड़ने का भाव भी द्रष्टव्य है। मधुमालती

१. मीरा, पृ० ९३ २. मीरा, पृ० १०७ ३. मीरा के पद, पृ० २६
४. मधुमालती, पद १८०, १८१, १८२
५. मधुमालती, पद १०८

में राजगृह में कोलाहल सुनकर लोग तथा कुटुंबी दौड़ पड़े। कमलावती (कुमार की माता) भी अपने रेशमी कपड़े फाड़ कर व्याकुल दौड़ पड़ी—

लोग कुटुंब सम धाए राज गिरिह सुनि रोर।
धाई सुनि कंवलावत व्याकुल फारि पटोर॥

इसके अतिरिक्त जायसी के यहां प्रेम के वेग की तीव्रता में नायक और नायिक दोनों की तीव्रता में समानता करके अरबी-फ़ारसी तथा हिंदोस्तानी आदर्शों को मिला भले ही दिया हो पर नागमती का वियोग पक्ष हिंदी-साहित्य में विख्यात होते हुए भी फ़ारसी आशिक़ों की सी तीव्रता लिए हुए है। मरुतट या पोतपट के स्थान पर बादबान (फ़ारसी) अर्थात् जहाज में लगाये जाने वाला परदा जिसमें हवा भरकर जहाज़ चलता है, नाविक कर्णधार के स्थान पर अरबी शब्द मल्लाह तथा पोत के स्थान पर अरबी शब्द जहाज़ आदि सुन्दर शब्दों के माध्यम से अकबरी दरबार के कवि गंग ने भाषा एवं भावालंकरण की दृष्टि से कितनी सुंदर अभिव्यंजना की है—

पूतरी मलाह जुग जाने कवि गंग जिय आने नहीं यहै नेम देखे मतवारी हैं।
खेइवो कटाछ बादबानन को होत कैसे लाज भरी अंखियां जहाज हू ते भारी हैं।[1]

परदे का संबंध मुस्लिम-संस्कृति से बताया जाता है। फ़ारसी शब्द परदे का अर्थ आड़, ओट, मुखपट, निक़ाब आदि है। परदादारी का अर्थ है दोष छिपाना। परदा रखने में लाज रखने का भाव भी है। भावालंकरण की दृष्टि से हिंदी-कवियों ने इसका सुंदर प्रयोग किया है—

सेवक को परदा फटै, तू समरथ सीले।[2]

यहां पर परदा सीले शब्दों के माध्यम से भावाभिव्यंजना की दृष्टि से मुस्लिम सस्कृति के परदादारी मुहावरे की भी झलक मिलती है। अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत है—

नारद को परदा न नारद सो पारिखो।[3]

तकिया (अरबी में शुद्ध तक्य:) सिर के नीचे रखने का नर्म और गुदगुदा उपाधान, गेंडवा होता है किंतु तकिया करदन, तकिया करना, सहारा लेना, देना इन अर्थों में भी प्रचलित है। तुलसीदास ने भी आश्रय के इस भाव को तकिये के द्वारा अलंकृत किया है—

मौसे दीन दूबरे को तकिया तिहारिए[4]

---

१. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (गंग), पृ० ४४६
२. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २ (विनयपत्रिका), पृ० ३९३
३. कवितावली १।१६
४. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २ (कवितावली), पृ० २१२

तहं तुलसी के कौन को काको तकिया रे।[1]

अन्य कवियों ने भी इसका प्रयोग किया है—

मेरे तकिये मैं रहूं, कहै सिरजनहार।[2]

सतिगुर सब्दी पाघरु जाणि। गुर कै तकीए साचै ताणि।[3]

फ़र्श अरबी में समतल भूमि या ज़मीन को कहते हैं और अर्श सब आसमानों से ऊंचे आसमान को। अरबी-फ़ारसी-साहित्य में अर्श ता-फ़र्श या फ़र्श खूब प्रयुक्त होता है। अर्श से फ़र्श तक दौड़ना और फ़र्श से अर्श तक ख़याल करना, भावों का कितना सौंदर्यपूर्ण अलंकरण है—

कोउ मारति, कोउ दाऊं निहारति, अरस परस दौरा-दौरा की।[4]

हरषत सब ग्वाल-बाल, अरस परस करत ख्याल।[5]

इनके अतिरिक्त कबीर, नानक, दादू, रैदास, मलूकदास आदि संत कवियों ने मुस्लिम-संस्कृति तथा इस्लाम और तसव्वुफ़ संबंधी भावों को अभिव्यक्त करते समय आमतौर पर अरबी-फ़ारसी बहुल[6] शब्दावली के प्रयोग द्वारा हिंदी भाषा के अलंकरण के कलेवर को व्यापकता प्रदान की है। इन स्थलों पर अलंकरण की दृष्टि से भी हिंदू-मुस्लिम-सांस्कृतिक सामासिकता देखने को मिलती है। सूरदास तथा अष्ट-छाप के अन्य कवियों के काव्य मे भी अरबी-फ़ारसी शब्दावली के माध्यम से व्यक्त भावों में तत्कालीन मुस्लिम राज्य दरबारों के आदाब, खान-पान, रहन सहन, साज सज्जा के चित्र मिलते हैं।

(खंड ख) आलोच्यकालीन कवियों द्वारा निरूपित सामान्य-जीवन संबंधी अलंकरण

१. खानपान—

खानपान की दृष्टि से भारतवर्ष की यह विशेषता रही है कि यहां पर 'सात्विक भोजन उच्च विचार' आदर्श सदा से ही प्रिय रहा है। जन सामान्य के सादा भोजन खिचड़ी, दाल भात, चपाती और दूध से बनी अनेक वस्तुओं का रिवाज आम था तथा उच्च वर्ग पूरी कचौरी, खीर और मिष्ठान प्रिय रहा है। भोजन में

१. विनयपत्रिका, ३३
२. दादूबानी भाग १, पृ० ६१
३. नानक-वाणी, पृ० ७ ७
४. सूर-सागर, २८७२
५. सूर-सागर, २८८६
६. देखिये—प्रस्तुत प्रबंध का साहित्य (फ़ारसी बहुल हिंदी) अंश

सफ़ाई, शुद्धता बनाए रखने की दृष्टि से बाजार के बने खानों की अपेक्षा यहां घर पर बने खानों को ही श्रेष्ट समझा जाता रहा है।[1] इतना ही नहीं उच्च वर्ग के लोग जो रसोइया रख सकते थे वे ब्राह्मण रसोइये को ही खाना पकाने के लिए रखते थे।[2] अन्यथा परिवार का ही कोई सदस्य होना लाज़िमी था।[3]

भारतवर्ष में मुसलमानों के आगमन के पश्चात् पकापकाया तैयार खाना तथा मिठाई भटियारों, होटलों और हलवाइयों की दूकानों पर देहली, लाहौर, आगरा जैसे बड़े बड़े शहरों में आमतौर पर मिलने लगा था तथा मुस्लिम समाज में इन स्थानों से भोजन प्राप्त करना इस्लाम के मुसावात (समानता) के सिद्धांन्त की दृष्टि से अच्छा समझा जाता था।

संस्कृत-साहित्य में जिस प्रकार के खानपान का वर्णन मिलता है, हिंदी—साहित्य में उससे जो भिन्नता दिखाई पड़ती है उसका कारण भारतवर्ष में मुसलमानों का दीर्घकाल का संपर्क ही है। डा० चोपड़ा के शोध प्रबंध में उन ऐतिहासिक कारणों के अनेक साक्ष्यों पर आधारित विशद चर्चा है जिसके फलस्वरूप मुस्लिम शासक वर्ग, अमीर उमरा व्यापारियों के संपर्क से भारतीय समाज के खान पान में कुछ नये फल, तरकारियां, मिठाई एवं भोजन तथा खान पान के प्रकारों का प्रचलन हो पाया है। हिंदी-कवियों ने इनके विवेचन से अपने काव्य को अलंकृत किया है।

खानपान के अलंकरण की स्पष्टता के लिए इसका अध्ययन भोजन के सामान्य पदार्थ, तरकारियों, ताजा फल, मेवे, मिठाई तथा खाने के बाद वस्तुओं के आधार पर किया जा रहा है। भोजन देने वाले खुदा को अरबी में रज़्ज़ाक़ कहा जाता है और अन्न आदि को रिज़्क़ कहते हैं। मलूकदास ने आहार पहुँचाने वाले को किस प्रेम से याद किया है—

नाम बिसंभर बिस्व जियावे, सांझ बिहान 'रिजिक' पहुंचावे ॥[4]

समिता या बारीक छने हुए आटे को फ़ारसी में मैदा कहते हैं। मुसलानों में मैदे की अनेक वस्तुएं बनाने का प्रचलन था जैसे—सेवैंयां, बाक़रखानी, कुलचा आदि। सम्भवतः हिंदी में इसीलिए मैदा शब्द का प्रचलन हुआ है। दादू और कबीर ने मोटे चून की अपेक्षा मैदे के वर्णन में रुचि दिखाई है—

'मैदे' के पकवान सब, खातां होइ सो होई।[5]

१. सोसाइटी एंड कल्चर ड्यूरिंग दी मुग़ल एज, पृ० ४२
२. सोसाइटी एंड कल्चर ड्यूरिंग दी मुग़ल एज, पृ० ४३
३. सोसाइटी एंड कल्चर ड्यूरिंग दी मुग़ल एज, पृ० ३४-३६
४. मलूकदास जी की बानी, पृ० २
५. क. दादू-बानी, भाग १, पृ० १७
ख. इस मन को 'मैदा' करौं, नान्हा करि करि पीसि। कबीर-ग्रंथावली, पृ० ६४
ग. मोट चून 'मैदा' भया, बैठि कबीरा जीम। कबीर-ग्रंथावली, पृ० ४२

जायसी ने पद्मावत में बादशाह भोजखंड के अंतर्गत अनेक ऐसे भोज्य पदार्थोंका वर्णन किया है जो मुस्लिम सम्पर्क का परिणाम है। हिंदुस्तान में सामान्यतः पशु पक्षियों के मांस खाने का रिवाज न रहा था। इधर मुसलमान उन पशु पक्षियों का मांस भोजन के रूप में अनेक प्रकार से तैयार कराकर खाते थे जो उन्हें शरअ के अनुसार हलाल घोषित किये जा चुके हैं। इसीलिए रतनसेन ने अलाउद्दीन की दावत में (बादशाह भोजखंड ४५) बकरे, मेढ़े, रोझ, हिरन, तीतर, कबूतर, मछली आदि को हलाल करा दिया है। जायसी क्योंकि सूफी हैं इसलिए उन्होंने इस वर्णन को अपनी दया का रंग देकर प्रस्तुत किया है। चावलों में दाउदखानी का भी उल्लेख किया है—

राय भोग औ काजर-रानी। झिनवा, रुदवा दाउदखानी ॥[1]

मांस से बनें व्यंजन—

मांस से बने विभिन्न प्रकार के व्यंजनों से जायसी ने दावत को अलंकृत किया हैं—

निरमल मांसु अनूप 'बघारा'। तेहि के अब बरनौं पकारा ॥
कटुवा बटुवा मिला सुबासू। सीझा अनवन भांति गरासू ॥[2]

कबाब—

कबाब अरबी शब्द है तथा कुटे हुए मांस (क़ीमे) की तली हुई सिकी हुई टिकिया को कबाब कहते हैं। इसके अनेक प्रकार जैसे सीख के कबाब, शामी कबाब आदि हैं। ब्रह्म कवि कबाब बनाने की विधि से परिचित अवश्य होंगे तभी तो उन्होंने मानसिक विकारों की निवृत्ति का उपाय रूपक के द्वारा अलंकृत किया है—

काम कबूतर तामस तीतर ज्ञान गुलेल मार गिराये।
पाखंड के पर दूर किये अरु मोह के अस्थि निकास ढराये।
संजम काटि 'मसालो' बिचारि कै साधु समाज ते ताहि हिलाये।
ब्रह्म हुतासन सेकि के बावरे वैष्णव होत 'कबाब' के खाये ॥[3]

नानक जी क्योंकि सात्विक वृत्ति के महान् व्यक्ति थे इसलिए उन्होंने तामसिक वृत्ति वालों को इस पद में चेतावनी दी है—

दग़ेबाजी करके दुनिया लूट खाई। पिये पिआते और खाए 'कबाब' ॥[4]

बेसन फ़ारसी में चने के छिलके रहित पिसे हुए बारीक आटे को कहते हैं।

---

१. जायसी-ग्रंथावली, पृ० २४४
२. जायसी-ग्रंथावली, पृ० २४५
३. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, ब्रह्म के पद, पृ० ३५८
४. नानक-वाणी नसीहत नाम सुंदर गुटका, पृ० ५६६

इसकी रोटी, फुलकी, कढ़ी आदि बनाई जाती थी—

रोटी रुचिर 'बेसन' करि, अजवाइन, सेंधौ मिलाइ धरि[1]

तरकारी—

सब्जी या साग भाजी तो भारतवर्ष में सर्वत्र पाई ही जाती थी किंतु ये शब्द फ़ारसी से आए हैं। तरकारी या तर करदन, सब्जी या भाजी को फ़ारसी में तरकारी कहते हैं या उस पौधे को कहते हैं जिसकी जड़, डंठल, पत्ते, फूल अथवा फल पकाकर खाए जाएं। गोवर्धन-लीला प्रसंग में यशोदा नैवेद्य के लिए विविध प्रकार के व्यंजनों के साथ तरकारियां भी बनानी है—

महरि करति ऊपर 'तरकारी'। जोरति सब विधि न्यारी-न्यारी।[2]

कद्दू फ़ारसी में लौकी या तूंबी को कहते हैं। यह तरकारी तथा अन्य प्रयोग में भी आता है—

'कदुआ' करत मिठाई घृत पक।[3]

इनके अतिरिक्त जन सामान्य में प्रचलित सब्जी, शलग़म, चुकंदर, गजर (गाजर) पोदीना, लहसुन, कुलफा, प्याज आदि तरकारियों के नाम फ़ारसी हैं—

तेहि न बसात जो खात नित, लहसुन हू को बास।[4]

फल—

आलोच्यकाल में फलों का उल्लेख विशेषरूप से श्रीकृष्ण के कलेवा और बियारी शीर्षक पदों में सूरदास आदि कवियों ने विस्तार से किया है। ख़रबूजा फ़ारसी भाषा का शब्द है। मुस्लिम काल में जब तक भारत में इसकी अच्छी नसल नहीं होने लगी तब तक काबुल, बल्ख, बुख़ारा, समरक़ंद तथा ईरान से आयात किये जाते थे। अन्य फलों में तरबूज, सेब, अनार, नारंग, अंगूर, शरीफ़ा, आलू-बुख़ारा है।[5]

---

१. क. सूर-सागर, १२१३, १८३१
 ख. बेसन मिले सरस मैदा सौं, अति कोमल पूरी है भारी। सूर-सागर, ८५९

२. क. सूर-सागर, १५१०
 ख. भांति-भांति सीझीं तरकारी। पद्मावत-जायसी-ग्रंथावली, पृ० २८६

३. सूर-सागर, ८९२

४. क. दोहावली, ३५५
 ख. जैसे काग हंस की संगति 'लहसुन' संग कपूर। सूर-सागर, ३१५२

५. क. सोसाइटी एंड कल्चर ड्यूरिंग दी मुग़ल एज, पृ० ३६
 ख. एकहि कूपते नीरहि सींचत, ईख अफीमहि अम्ब 'अनारा' सुंदरविलास, पृ० ८६
 ग. कोइ अमरूद कोइ नारंग राती। कोइ गुलगुल अमृत की जाती।
 हंस-जवाहर, पृ० ३७

छोलि घरे 'खरबूजा' केरा सीतल बास करत अति घेरा।[1]
सफ़री, सेब छुहारे, पिस्ता, जे 'तरबूजा' नाम।[2]

सूखे फलों को मेवा कहते हैं। यह फ़ारसी भाषा का शब्द है। बादाम, किशमिश अखरोट, पिस्ता, चिलग़ोजह, काजू, खुरमा आदि को मेवा कहते है। ये मेवे अधिकतर असफ़हानी ताजिर बाहर से लाकर लाहौर, आगरा, दिल्ली आदि के बाजारों में बेचा करते थे।[3] हिंदी-साहित्य में भोजन के अवसरों पर इसका भी उल्लेख मिलता है—

पुहुप, पान, नाना फल, 'मेवा' पटरस अर्पन कीन्हौ।[4]
'खुरमा' खाजा गुंजा मठरी 'पिस्ता' दाख 'बदाम'।[5]
खारिक, दाख चिरौंजी 'किसमिस' उज्जल गरी बदाम।[6]

भारत में मिठाई का बड़ा प्रचलन रहा है। उनमें लड्डू पेड़ा, मोहनभोग, इमृती, रसगुल्ले, लवंगलता, चन्द्रकला, घेवर आदि अनेक प्रकार की मिठाइयां भारत मे पाई जाती थीं। मुसलमानों ने इस कला को इतना अपनाया कि अनेक प्रकार के हलवे, बालूशाही, गुलाबजामन, जलेबी (अरबी ज़लाबीह) बरफ़ी, क़लाक़ंद, नमकपारे, शकरपारे आदि अनेक अरबी फ़ारसी के शब्द बताते हैं कि इनके संपर्क से मिठाइयों में भी वृद्धि हुई है।[7] इसके अतिरिक्त मिश्री (संस्कृत मिश्रितः से नहीं मिस्र देश से) शीरा, बालाई या मलाई आदि फ़ारसी शब्द भी ध्यान देने योग्य हैं।

हलवा मलाई ज़ामिन—

हलवा अरबी शब्द है। यह एक मिष्ठान है जो सूजी या आटे को घी में भून

१. सूर-सागर, १०-३९६
२. सूर-सागर, १०-२१२
३. कमर्शल पालीसी आफ़ दी मुगल्ज़, पृ० १५१-१५२
४. क. सूर-सागर, १७९८
ख. मधु 'मेवा' पकवान मिठाई दूध दह्यौ घृत ओद सों। परमानंददास, ११३
ग. व्रज की बाल सबै आई भांति-भांति कर 'मेवा' तोलत। परमानंददास, ४२
घ. अपने संग सखा सब लीने, बांटत 'मेवा' हाथ। नन्ददास पदावली, पृ० २३४
ङ. 'मेवा' बहुत मंगाई भांति के सखा सहित सब छोरी हो। गोविंद स्वामी, १२४
५. अकबरी दरबार के हिंदी कवि, राजा आसकरण के पद, पृ० ४५०
६. क. सूर-सागर, १०-२१२
ख. पिस्ता दाख बदाम छुहारा खुरमा खाझा गूझा मटरी। सूर-सागर—८१०
७. हिन्दुस्तान के मुसलमान हुक्मरानों के तमुद्दनी जलवे, पृ० ३६८

कर दूध या पानी में शक्कर के साथ पकाने से बनता है। मुसलमानों की खास मिठाई है जो बादाम, चिलगोजा, पिसता, अखरोट और किशमिश आदि के नाना प्रकार के बनाए जाते हैं।[१] पद्मावत के बादशाह भोजखंड में खूब घी डालकर हलवा बनाया जाता है—

चंबुक लोहंडा औटा खोवा। भा 'हलवा' घिउ गरत निचोवा[२] क्षीरसार को फ़ारसी में बालाई कहते हैं। बालाई या मलाई दोनों ही शब्द प्रयुक्त होते हैं। बालाई या मलाई का भी हिंदी कवियों में प्रयोग मिलता है—

खात खुनसात सौंधे दूध की मलाई है।[३]

दूध को दही बनाने के लिए जो दही का अंश या दूध जमाने की वस्तु को अरबी में ज़ामिन कहते हैं। कृष्ण की मुरली सुन कर गोपियां इतनी बेसुध हो गई हैं कि ज़ामिन दिया हुआ दही रखा रखा खट्टा हो गया—

जामन दयौ सो धरयौ धरयौई खटाइ गौ[४]

खानपान के इस विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मध्य काल में मुस्लिम शासन में प्रचलित खानपान से हिंदी के कवियों ने बड़ी उदारता से अपने काव्य को अलंकृत किया है।

२. वस्त्र-विन्यास (वेशभूषा)—

यद्यपि प्राचीन भारत में कपड़ा बुना जाता था और जुलाहे गाढ़ा, गजी, खेस, दोतहया बुनते थे किंतु कपड़ा बुनने के अधिक साधनों के अभाव के कारण यहां बारीक कपड़े बुने जाने का अधिक रिवाज न था। इसलिए प्राचीन भारतीय साहित्य में वेशभूषा एवं वस्त्रों के लिए बहुत अधिक नाम नहीं मिल पाते। ह्यूनसां। (सातवीं सदी ईस्वी) के विवरण से हमें पता चलता है कि उस समय तक भारत में सिले हुए कपड़ों का रिवाज अधिक न था।[५] विभिन्न प्रकार के कपड़ों में हमें लिंगोटी, धोती, अंगिया, चोली, सारी, अंगरखा, जांगिया आदि वस्त्रों के नाम मिलते हैं जो विशेष अंगों को ढकने के लिए सामान्य नाम हैं। इनसे विशेष प्रकार के कटे-छंटे तराशे और सिले हुए कपड़ों की आकृति मानस पटल पर नहीं बन पाती।

---

१. हिन्दुस्तान के मुसलमान हुक्मरानों के तमद्दुनी जलवे, पृ० ३६६
२. जायसी-ग्रंथावली (पद्मावत), पृ० २४७
३. क. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, पृ० १८१ (७।७४)
   ख. माखन 'मिस्री' दही मलाई मांट-मांट थार भरि संग चलावै।
   चतुर्भुजदास, १४०
४. सुजान-रसखान, पद ६३, पृ० ५४ ५. पर्शियन इन्फ्लूएंस आन हिंदी, पृ० ३६

अलबीरूनी, बाबर तथा अन्य इतिहासकारों के विवरण से पता चलता है कि भारत की जलवायु तथा यहां की आवश्यकताओं के अनुसार इससे अधिक बारीकी की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये थी।

मुसलमान जब भारत में आए तो अरब, तातार, ईरान, इराक़, रूम, शाम आदि देशों की परम्पराएं भी अपने साथ लाए थे। इसीलिए हम देखते हैं कि मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप भारतवर्ष में नाना प्रकार के वस्त्र तथा वेश-भूषाएं आईं जिनका हिंदी साहित्य में हमें बहुत उल्लेख मिलता है। मुसलमान शासकों को जिस प्रकार के कपड़े पहनने की आदत थी वे यहां पर उपलब्ध न थे। फिर उन्हें अपने फौजियों, दरबारियों तथा जन सामान्य की रुचि के अनुसार कपड़ों की आवश्यकता पड़ी। मुस्लिम-व्यापारियों और शासकों ने जहां अन्य उद्योगों को आगे बढ़ाया उनमें से बहुत ही बारीक कपड़ों की तैयारी सिलाई आदि भी एक था। रेशमी-कपड़ों की चर्चा संस्कृत साहित्य में क्षौम, कौषेय, चीनांशुक आदि नामों से मिलती तो है किंतु 'चीनांशुक' साफ़ बताता है कि ये चीन में बने या चीन से आए हुए कपड़े का नाम है।[1] हिंदी-साहित्य में कवियों ने रेशम का प्रयोग जिस ढंग से किया है वह बारीकी, चमक और रंगीनी लिये है—

पंचरंग 'रेसम' लगाउ, हीरा मोतिनि मठाउ।[2]

मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणामस्वरूप भक्तिकाल के कवियों ने नाना प्रकार के वस्त्रों के निरूपण से अपने काव्य को अलंकृत किया है। जहां एक ओर मुस्लिम शासक तथा अन्य पदाधिकारी एवं शिष्ट समाज उनका उपयोग करने लगा था तो भला हिंदी कविगण अपने आराध्यों की चर्चा में इनसे पीछे रहने वाले कहां थे। उमदा बारीक बुने हुए कपड़ों के अनेक प्रकार हैं। उन सबकी विस्तारपूर्वक चर्चा यहां नहीं हो सकती उनके नामों का उल्लेख करना ही पर्याप्त रहेगा। परमानंद-दास ने बाल कृष्ण को किस रुचि से खासा पहना कर अलंकृत किया है—

पाट-पटंबर 'खासा' झीनो जैसो जाहि मन भायो।[3]

+ + +

पिछौरा 'खासा' को कटि बांध्यो[4]

---

१. वृहद्-हिंदी-कोश, पृ० ४४१

२. क. सूर-सागर, १०४१

ख. 'रेसम' बनाइ नवरतन पालनौ, लटकन बहुत पिरोजा लाल। सूर-सागर, १०८

ग. बहु रंग 'रेसम' बरूहा, होत राग झकोर। सूर-सागर, ३४८६

३. परमानंद-सागर, ३३७

४. परमानंद सागर, ६३४, ५६२

सुंदरदास[1] और क़ासिमशाह[2] के यहां भी खासा का निरूपण मिलता है। अन्य प्रसिद्ध वस्त्रों में तनसुख[3], ताफ़ता, तनज़ेब आदि की चर्चा हमें यत्र तत्र मिल जाती है जो मुस्लिम काल में भारत में आमतौर पर बनते और पहने जाते थे। इन्हीं के साथ साथ सुनहरी तारों के और अन्य कीमती वस्त्रों के लिए हमें ज़री के कपड़ों का अनेक नामों से उल्लेख मिलता है।

कुलह सुरंग सिर 'ताफता' की लाल झगुली पीत सुदेस।[4]

ज़र फ़ारसी में सोने को कहते हैं और ज़रकसी[5], ज़रतारी[6] के नाना प्रकार वस्त्रों का प्रचलन मुस्लिम काल में आम हो गया था[7] जिसका हिंदी साहित्यकारों द्वारा प्रयोग मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क का परिणाम है।

सुंदर बसन, सिर पगिया 'जरकसी'।[8]

नाना विधि सिंगार पाग बनी 'जरकसी' बागो पहिरन छंद।[9]

हिंदी-साहित्य में उल्लिखित वेशभूषा का अध्ययन करने के लिए उनको मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के वस्त्र।

पुरुषों के वस्त्र

सर के वस्त्र

मध्यकाल में नंगे सर रहना कोई आदर की बात नहीं समझी जाती थी।

---

१. जाके 'खासा' औ मलमल साफन के ढेर परे। सुंदर विलास, पृ० ५५

२. फटा साज शीश पर 'खासा'। पाव खंड़ाऊं लिये कर असा। हंस-जवाहर, पृ० १०

३. क. 'तन सुख' की सारी पहिरे लाल कंचुकी गात। गोविंदस्वामी, ११५
   ख. मोहन की पट पीत रंगि के रंगी है सारी 'तनसुख' की बोरी हो। सूर-सागर, २८६८
   ग. 'तनसुख' सारी पहिरि झीनी अति मधुर सुर बीन बजावै। गोविंद स्वामी, २०२
   घ. 'तनसुख' को बागो अति राजत कुंडल झलक रसाल। चतुर्भुजदास, ३०

४. क. पीत 'ताफता' को झगुला बन्यो है। गोविंदस्वामी, ५३६
   ख. गोविंदस्वामी, १८
   ग. गादी सुरंग 'ताफता' सुन्दर लरे बांह छवि न्यारी। परमानंददास, ७४२

५. सूथन लाल अरु सेत चोलना कुलहे 'जरकसी' अति मन भावत। गोविंदस्वामी, ५१

६. अंग ही अंग जराब लसै अरु सीस लसै पगिया 'जरतारी'।सुजान-रसखान, पद १६६

७. हिन्दोस्तान के मुसलमान हुकमरानो के अहद के तमद्दुनी जलवे, पृ० २३६

८. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, पृ० २४५   ९. परमानंद-सागर, २०८

पुरुष विशेष रूप से साफ़ा, पगड़ी या अमामा, दस्तार, टोपी पहनते थे। मुसलमानों में बड़ों के सामने नंगे सर आना अशिष्ठता मानी जाती थी[1] और दस्तार या पगड़ी का हर समय सर पर रखना विशेषकर गर्मियों में कठिन था, इसलिए कुलह् पहनी जाती थी। आईने अकबरी में सर के पहनावे में 'कुलह्' का भी उल्लेख मिलता है।[2] जिसको प्राय: उच्च-वर्ग के मुसलमान पहना करते थे और बच्चों को भी अनेक प्रकार की (जैसे कुलह तुर्की, कुलह तातारी, कुलहए बारीक) रंग विरंगी कई तरह के काट छांट की कुलह् या कुलही पहनाई जाती थी। सगुण भक्ति शाखा काव्य में कृष्ण के बाल-लीला वर्णन के अंतर्गत कृष्ण को 'कुलह्' से अलंकृत किया गया है। यहां तक कि ज़री की मुसलमान बच्चों जैसी टोपी भी पहना दी है—

महा की कफ़नी और 'कुला' भी महर का।[3]
'कुलहि' लसत सिर स्याम सुभग अति बहु विधि सुरंग बनाई।[4]
सूथन लाल अरु सेत चोलना 'कुल्है' 'जरकसी' अति मन भावत।[5]

इस कुलह के साथ-साथ चौतनि (कुलह तातारी को कहते है) का भी वर्णन देखिये जिसमें काट छांट और रंग हैं।[6]

चोतनि सिरनि, कनक-कली काननि, कटि पट पीत सोहाए।[7]

---

१. हिन्दोस्तान के मुसलमान हुकमरानों के अहृद के तमद्दुनी जलवे, पृ० २३६
२. आइने अकबरी, भाग १ (अंग्रेजी), पृ० ८८-८६
३. मलूकदास की बानी, पृ० ३०
४. सूर-सागर, १०-४८
५. क. गोविदस्वामी, ५१
ख. 'कुलह' सुरग सिर ताफता की लाल झगुली पीत सुदेस। गोविदस्वामी, १८
ग. 'कुलही' चित्र विचित्र झंगूली। गीतावली, १, २८
घ. 'कुलही' लसत सिर स्याम सुन्दर के, बहु विधि सुरंग बनाइ। सूर-सागर १०-१०८
ङ. करो सिंगार लाल तन बागो 'कुल्हे' जरकसी सीस धराये। परमानंददास, २२५
च. कुलह सूल फूलन भरी सुभर। चतुर्भुजदास, १८६
छ. सेत 'कुलही' सीस राजति सोभित घुंघरे वाल। गोविंदस्वामी, १५
६. चौगोशिय, चौतनिया के विस्तृत वर्णन के लिए देखिये-हि० मु० ह० जलवे, पृ० २४०
७. क. गीतावली, पृ० २५१
ख. कुल कुंडल चौतनी' चारु अति, चलत मत्त-गज-गोंहें। गीतावली, २५१
ग. स्याम बरन पट पीत झंगुलिया, सीस कुलहिया 'चौतनिया' सूरसागर, १-१ ३२

(शेष अगले पन्ने पर)

टोपी या पगड़ी में लगाए जाने वाले फुंदने या तुर्रे को फ़ारसी में कलग़ी कहते हैं।[१] कृष्ण जी की जरी की पगड़ी को किस चाव से कलग़ी से अलंकृत किया है—

बांकी धर 'कलगी' सिर ऊपर बांसुरी-तान कहै रस बीर के।[२]

स्वेत जरी सिर पाग, लटकि रही 'कलंगी' तामे लाल।[३]

गुलूबंद फ़ारसी शब्द है और गरदन, सर और कानों पर लपेटने वाले सूती, ऊनी मफ़लर को कहते हैं। कासिमशाह ने इसका प्रयोग किया है—

औ 'गुलूबंद' मीर सिह लीना। बालक लीन सकल तजदीना।[४]

रूमाल फ़ारसी भाषा का शब्द है।[५] हाथ मुंह पोंछने का चौकोर सिला हुआ कपड़ा होता है। अमीर खुसरो ने हिंदी में रूमाल पर एक कहमुकरी कही है—

ऐसा चाहत सुन यह हाल। ऐ सखी साजन ना सखी रूमाल॥[६]

कटे, तर्शे सिले हुए लिबास में मुसलमानों के पहनावे में पाजामा भी एक विशेष वस्त्र है। अमीर खुसरो की पहेली दर्शनीय है।

एक नार दो को ले बैठी। टेढ़ी होके बिल में पैठी॥
जिसके बैठे उसे सुहाय। सुख उसके बल बल जाय॥ पैजामा[७]

एक नार जाके मुंह सात। सो हम देखी बेंडी॥
आधा मानुस निगले रहे। आंखे देखी खुसरू कहे॥ पैंजामा।[८]

गुरु नानक ने प्रतीक रूप में प्रयोग करते हुए कहा है :—

कमर बंदु संतोख का धनु जोबनु तेरा नामु।[९]

स्त्रियों की वेश भूषा

सारी, कंचुकी, ओढ़नी और लहंगा, मुख्य रूप से प्राचीन भारतीय स्त्रियों के

घ. तन झंगुली सिर लाल चौतनी। सूर सागर, १०-८९

ङ. भाल तिलक मसि बिन्दु विराजत, सोहति सीस लाल 'चौतनिया'
तुलसी ग्रंथावली, भाग २, पृ० २४१

१. बृहत्-हिंदी-कोश, पृ० २६०
२. सुजान-रसखान, पद ९७
३. चतुर्भुज, ३०
४. हंस जवाहर, पृ० १८
५. वृहत् हिंदी कोश, पृ० ११४०
६. अमीर खुसरो की हिंदी कविता, पृ० ३९
७. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २४
८. खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २४
९. नानक-वाणी, पृ० १०६

वस्त्र पाए जाते हैं। मुस्लिम संस्कृति के संपर्क से इसकी आभा शोभा तथा आकार में कुछ परिवर्तन हुआ दिखाई पड़ता है। भारतीय कंचुकी का कसीदा से अलंकृत मिलना, जड़ाऊ अंगिया, कशीदाकारी की कंचुकी दृष्टव्य है—

कसत कंचुकी 'वन्द'[१]

पहिरि कसूंभी 'कटाव की चोली' चन्द्र बधु सी ठाढी सोहे।[२]

कंचुकी सोभित 'कसीदा' सुंदर[३]

सूथन या उपरैना आदि में कमर कसने के लिए जो बन्द डाला जाता है उसको फ़ारसी में इज़ार बन्द कहते हैं।[४] इसी प्रकार काले रेशम को मखतूल[५] कहते हैं तथा तनसुख[६] भी एक वारीक उमदा कपड़ा है जो मुस्लिम सम्पर्क के द्योतक हैं। मुस्लिम औरतों में बुरक़ा ओढ़ने का भी कुछ रिवाज था। खुसरो के यहाँ इसका वर्णन मिलता है।[७]

अन्य वस्त्र

मुस्लिम काल से पूर्व के हिंदी-साहित्य में ओढ़ने बिछाने के वस्त्रों या उपकरणों के नाम यदि हमें अधिक नही मिलते तो हमें यह न समझ लेना चाहिए कि बिस्तर यहां न बिछाया जाता होगा। हाँ मुस्लिम संस्कृति के संपर्क के बाद से उन वस्त्रों का प्रचलन हो गया है जो तुर्की, ईरानी या अरबी हैं। जैसे—क़ालीन, तोषक, लिहाफ़, रज़ाई, बिसतरा, इसी प्रकार के कुछ उपकरणों का उल्लेख यहाँ रोचक रहेगा। चादर शब्द फ़ारसी का है।[८] यह वस्त्र ओढ़ने के काम भी आता है और बिस्तर पर बिछाने

१. सूरसागर, २४५० २. क. परमानंदसागर, ३६६
   ख. सुभग 'हमेल' 'कटाव की अंगिया' नगनि जटित की चौकी। सूरसागर, १५४०
   ग. बहु नग जरै जराउ अंगिया। सूर-सागर, १४७५
३. गोविंदस्वामी, ४२
४. क. कंठ माल पीरो उपरैना बनी 'इजार' पंचरंग। चतुर्भुजदास, १०८
   ख. सूथन जंघन बांधि नारा बंद तिरनी पर छवि भारी। सूरसागर, १०५४
५. कंठ सिरी 'मखतूल' मोती अरु उर गज मोतिन 'हार' जू। चतुर्भुजदास, ६२
६. तनतनसुख की सारी पहिरे लाल कंचुकी गात। गोविंदस्वामी, ११५
७. आगे-आगे बहिना आई पीछे-पीछे भइआ।
   दांत निकाले बाबा आए बुरका ओढ़े भैया। खुसरो की हिंदी कविता, पृ० २६
८. क. उर्दू हिंदी शब्द कोश, पृ० २१४
   ख. फूल चुनी रस सेज तुराई। 'चादर' सेत सो तार बनाई। हंस जवाहर, पृ० १७८
   ग. चला हंस मन्दिर पग दीना। चेरिन ओट जो "चादर" कीना। हंस जवाहर, पृ० १७४

के भी। तकिया[1] फ़ारसी शब्द है, रुई से भरी थैली जैसी वस्तु है जो लेटते समय सरहाने, सहारे के लिए रखा जाता है। ग़लीचा[2] तुर्की भाषा का शब्द है। सूत या ऊन के धागे से बुने हुए छोटे क़ालीन को कहते हैं। इसी प्रकार हिंदी-साहित्य में गिलम ग़लीचे,[3] जाजिम[4] (तुर्की) जैसे बिछाने के उपकरणों के दर्शन होते हैं जो मुस्लिम-संपर्क से आए मालूम होते हैं।

अंतिम वस्त्र—

मुस्लिम संस्कृति, औरत-मर्द के विधिवत् निकाह और बच्चे की पैदाइश के बाद उसके कान में अज़ान देने से प्रारंभ होकर मनुष्य के अंतिम वस्त्र कफ़न[5] तक तो चलती ही है। कफ़नी दो अर्थों में प्रयुक्त होता है, एक तो साधू फ़क़ीरों का बिना बाँह का पहनावा और दूसरे मुर्दे (मृतक) के कफ़न में लपेटना अर्थ रखता है। वेश-भूषा या वस्त्रों की दृष्टि से यह मुस्लिम-संस्कृति में मानव-जीवन का अंतिम वस्त्र कफ़न होता है। कवि करनेश इससे भी परिचित मालूम होता है।[6]

३. आभूषण

आभूषण-प्रियता मानव समाज की प्राचीन प्रवृत्ति रही है, जिसकी पृष्ठभूमि

---

१. क. बृहत् हिन्दी कोश, पृ० ५४३
 ख. कुसुम के गाद्दा कुसुम के "तकिया" कुसुम सों सेज बनायी। गोविन्दस्वामी, १४९
 ग. फूल की सेज गेंदुवा "तकिया" फूलनि की माला मनुहारी। चतुर्भुजदास, ९९
 घ. मोसे दीन दूबरे को "तकिया" तिहारियै। तुलसी ग्रंथावली, भाग २, पृ० ३१२
 ङ. तहं तुलसी के कौन वो काको तकिया रे? विनयपात्रिका, ३३
 च. मेरे "तकिये" मैं रहूँ कहै सिरजन हार। दादूबानी, १-६१
२. उर्दू हिन्दी कोश, पृ० १८९
३. एक दिन ऐसी जामें 'गिलम' 'गलीचा' लागै—गंग, छंद १६२
४. जिसका आसमान है एक तंबू, धरती 'जाजम' पवना खंबू। हिन्दी सन्तों को मराठी की देन, पृ० ३८९
५. क. चहूँ ओर जटा अंटके-लटकेफनि सों 'कफनी' फहरावत है। सुजान-रसखान, पद २११
 ख. महर की 'कफनी' और कुला भी महर का। मलूक-वाणी, पृ० २३
६. कविन के मामले में करे जोन खामी तौन निमक हरामी मरे 'कफन' न पावेंगे। मिश्रबंधु विनोद विनोद, भाग १, पृ० ३२४

में सामाजिक, आर्थिक और संस्कृतिक रुचियाँ क्रियाशील रही होंगी। भारतवर्ष में आभूषणों का प्रयोग धार्मिक महत्व भी रखता है। यह एक सामान्य विश्वास रहा कि शुद्धता और प्रेतात्माओं से बचने के लिए कोई न कोई आभूषण धारण करना शुभ रहता है। प्राचीन भारत में स्त्रियाँ तो आभूषणों से लदा रहना अधिक पसंद करती ही थीं किंतु संस्कृत साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि पुरुष भी इस विषय में स्त्रियों से पीछे न थे।

मुस्लिम-समाज में भी आभूषण एक सांस्कृतिक महत्व रखते हैं किंतु उनमें हीरे जवाहरात तथा रत्नों को भाग्य एवं भविष्य के विषय में भी बड़ा महत्व दिया जाता था।[1] फ़ीरोज़ा फ़ारसी भाषा का शब्द है। हिंदी में यह पिरोजा कह कर प्रयुक्त हुआ है, फ़ीरोज़ा एक कीमती पत्थर होता है जिसका रंग कुछ हरापन लिए हुए नीला होता है यानी फ़ीरोज़ी रंग[2] का नग, सफल मनोरथ तथा कल्याणकारी माना जाता है।[3] हिंदी-साहित्य में आभूषणों में इस रत्न के अनेक प्रयोग मिलते है।[4] नीलम शब्द फ़ारसी का है जो मुस्लिम-संस्कृति के साथ आया जान पड़ता है। यह नीले रंग का एक प्रसिद्ध रत्न है।[5] दुर या दुरिया का प्रयोग बालक-बालिकाओं, स्त्री, पुरुषों सब ही में होता था जो मनुष्य की कामुक प्रवृत्ति को कम करता है।[6]

कंचन के द्वै 'दुर' मंगाइ लिए, कहों कहा छेदनि आतुर की।[7]

यद्यपि आभूषण के विषय में यह कहा जा चुका है कि प्राचीन भारत में नाना प्रकार के अनेक आभूषण प्रचलित थे किंतु यह बात भी अपनी जगह सत्य है

---

१. हरक्लोट कृत इस्लाम इन इंडिया, पृ० ३१३
२. वृहत् हिंदी-कोश, पृ० ९१२
३. उर्दू हिंदी-शब्द कोश, पृ० ४०४
४. क. हीरा 'पिरोजा' कनक मनिमय जोति अति जगमग रहे।
 कृष्णदास कीर्तन-संग्रह, भाग २, पृ० ३०६
 ख. पन्ना 'पिरोज' लगे विच बिच। सूर सागर, ४१८६
 ग. हीरा 'पिरोजा' पांति मुक्त और अति आरंभ। परमानंददास, ७८९
 घ. 'रेसम' बनाइ नव रतन पालनौ, लटकट बहु 'पिरोजा' लाल।
 सूरसागर, १०।८४
५. मोतिनि झालरि झुमका राजत, बिच 'नीलम' बहु भावनो। सूरसागर, २८३२
६. वृहत् हिंदी कोश, पृ० ६२५
 ख. 'दुर' दमकत सुभग स्रवननि जलज जुग डहडहत।
 सूर-सागर १०-१८४
७, सूर-सागर, १०-१८

कि मुस्लिम संस्कृति के संपर्क से कुछ आभूषणों के नाम हिंदी साहित्य में नये आ गये हैं, कुछ का रूप परिष्कृत हो गया और कुछ आभूषण बिलकुल नये ही आए हैं।

'हार' का अर्थ संस्कृत में हरण करने वाला होता है और कहीं कहीं माला भी। किंतु माला के लिए फ़ारसी शब्द कोश में 'हार' अधिक प्रचलित है।[1] इसका अर्थ फूलों, मोतियों की रेशमी डोरी वाली माला है जो गले का आभूषण कहा जा सकता है।

टीका टीक टिकावली, हीरा 'हार' हमेल'।[2]

नाक के आभूषण का प्राचीन भारतीय आभूषणों में सर्वथा अभाव था।[3] यह मुस्लिम संस्कृति के संपर्क से आया है इनके अनेक नाम भी हिंदी-साहित्य में मिलते हैं। नथ नाक[4] में पहनने का बाली की शक्ल का एक गहना होता है। वेसर[5] चौड़े या चपटे सोने के टुकड़े का गहना है जिसमें मोती हीरा लगा होता है। बुलाक़ भी दोनों नथनों के बीच में लटकता हुआ छोटा सा सोने का ज़ेवर होता है जिसमें मोती भी लगा रहता है—

कटि किंकिनि पग नूपुर बाजै नाक, 'बुलाक़' हलैरी।[6]

गले के आभूषणों में तौक़ या तौक़ी है। यह अरबी भाषा का शब्द है। गले में पहनने की सोने-चांदी की हंसली को कहते हैं।[7] हिंदी कवियों ने इसे भी अपनाया है—

---

१. उर्दू-हिंदी-कोश, पृ० ७३९
२. क. छीतस्वामी, ५७
   ख. कोइ पहिरै गर 'हार' 'हमेल'। पुनि कोइ हार फूल करि खेला।
   हंसजवाहर, पृ० ३७
३. जे० पी० ए० एस० बी० (एन० एस०) २३, १९२७, पृ० २९५-९६ स० आ० सोसाइटी एंड कलचर १
४. क. नासा 'नथ' अति ही छवि राजति, अधरन बीरा रंग। सूरसागर, २०२७
   ख. नासा 'नथ' मुकता के भारहिं रह्यो अधर तट जाइ। सूरसागर, १४९८
   ग. करम 'नथ' नव जोति संगम, जोर भूप अनंग। सूरसागर, २१३१
५. क. नासा सुभग निपट सुठारी 'बेसर' सिली आकारी। परमानंददास, ९१९
   ख. लटकनि 'बेसरि' जननि की इकटक चख लावै। सूरसागर, १०-७२
   ग. भाल तिलक, काजर चख, नासा 'नकवेसर' नथ फूली। सूरसागर, ३८१५
६. सूर सागर परिशिष्ट, १—११
७. उर्दू-हिंदी शब्द कोश, पृ० ३०४

तेरे गलहि 'तौक' पग बेरी। तू घर घर रमिए फेरी।[१]

बहुटा कर कंकन, बाजूबंद' ऐते पर है 'तौकी'।[२]

इसी प्रकार हमेल का हिंदी में बड़ा प्रयोग हुआ है। यह शब्द अरबी भाषा का है और इसका अर्थ परतला है। गले में डालने वाला छोटा क़ुरान शरीफ़[3] व तावीज, जो बाद में एक आभूषण के तौर पर प्रयोग में आने लगा। मुस्लिम संस्कृति के परिणाम स्वरूप हिंदी में इसका खूब प्रचलन हुआ—

टीका, टीक टिकावली, हीरा, हार 'हमेल'।[४]

लाही को लहंगा पचरंग चुनरि कंठ छरा औ 'ताबीच' मनिया।[५]

स्त्रियों के बाहों के आभूषणों में बाजूबंद भी उल्लेखनीय है। बंद फ़ारसी में अंग के जोड़ को कहते हैं और बाजू भुजा को, यानी बाँह पर पहनने का एक जेवर है जो लगभग दो इंच चौड़ा होता था जिसमें हीरे जवाहरात जड़े रहते थे।[६]

'बाजूबद' जटित कर पहुंची।[७]

जंजीर फ़ारसी में सांकल, शृंखला, लड़ी या सोने चांदी की एक बारीक जंजीर वाले हार को कहते हैं जो जेवर के तौर पर प्रयुक्त होता है यह गले, कमर या पैर में पहनी जाती है। देखिये—

पग जेहरि जंजीरनि करयौ।[८]

---

१. कबीर-ग्रंथावली, पृ० २१६

२. सूर-सागर, १५४०   ३. वृहत् हिंदी कोश, पृ० १५८६

४. क. छीतस्वामी, ५७

ख. फूल की दुलरी 'हमेल' हार। नंददास, पृ० ३७८, पद ४६

ग. हंसुली हेम 'हमेल' अरु दुलरी वनमाला उर पहरैया। परमानंददास, ३०

घ. हारि 'हमेल' सों नीकी लागत और गोरे हाथन चुरी हरी। तानसेन के पद ८४, अकबरी दरबार, पृ० ४०२

ङ. डालि 'हमेलनि' हार निहारन वारत ज्यौं चुचकारत छौनहिं। सुजान-रसखान, पद २०

५. तानसेन, छंद ६०

६. सोसाइटी एंड कलचर ड्यूरिंग दी मुगल एज, पृ० २८

७. क. चतुर्भुजदास, २०६

ख. वांहनि 'बाजू वंद' कड़ा जटित कर, अंगुरिनि मुंदरी राजै। कुंभनदास, १०

ग. 'वाजूवंद' तनु ढिग सोहत नग बहु मोती लागे। परमानंददास, ६१६

घ. 'वाजूवंद' कर कंगन कलाई नौगिरही वहु रतन जड़ाई। हंसजवाहर पृ० ६०

८. सूर-सागर, १४३६

४. प्रसाधन—

यद्यपि प्राचीन भारतवर्ष में शृंगार के नाना प्रकार के प्रसाधन पाए जाते थे फिर भी मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क से उनमें कुछ वृद्धि हुई मालूम पड़ती है जिसका विस्तृत विवरण आईने-अकबरी में मिलता है। अकबर ने 'खुशबूखाना' नाम से एक अलग विभाग शेख़ मंसूर की देख रेख में स्थापित कर रखा था।[१] दर्पण या मुकर को फ़ारसी में आईना कहते हैं। मुस्लिम काल में हलब के शीशे या आइने का प्रचलन हुआ जो मुंह देखने का एक उपकरण है।[२] खुसरो ने फ़ारसी, तुर्की, हिंदी में आरसी के रूप में इसकी चर्चा की है—

फारसी बोली 'आईना' तुर्की ढूंढी पाईना
हिंदी बोली आरसी आए। खुसरो कहे कोई न बताए।

साबुन अरबी भाषा का शब्द है। सोडा तेल और सुगंध तथा रंग आदि को कीमियाई ढंग से मिलाकर बनाया जाता है। यह हाथ मुंह धोने तथा नहाने या कपड़े आदि धोने के काम में आता है। मुस्लिम-काल में इसका भारत में प्रचलन आम था इसीलिए हिंदी-कवियों ने पलीती (नापाकी) को साबुन द्वारा दूर करने के लिए कहा है—

मत पलीती कपड़ होइ। दे 'साबुन' लईए ओहु धोइ।
बिन पानी बिन 'साबुण' सांवरा, होय गई धोय सफेद।[३]

नहाने धोने और कपड़े बदलने के बाद या विशेष रूप से ईद आदि त्यौहारों पर मुग़ल दरबार मे इतर लगाया जाता था। इतर अरबी भाषा का शब्द है। सुगंधित पुष्पों का कशीद किया हुआ होता है। बिहारीलाल इतर फ़रोश (गंधी) को कहते हैं कि अनधिकारी को तू क्यों इतर दिखाता है—

रे गंधी, मति अंध तू 'अतर' दिखावत काहि।[४]

---

१. सोसाइटी एंड कल्चर ड्यूरिंग दि मुग़ल एज, पृ० १७
२. हिन्दुस्तान के मुसलमान हुक्मरानों के तमद्दुनी जलवे, ३२०
खुसरो की हिंदी-कविता, पृ० २०
३. क. नानक-वाणी, पृ० ८८
ख. निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी 'साबुन' बिना, निर्मल करै सुभाय॥
काव्य-संकलन (कबीर), पृ० २०
४. क. बिहारी-बोधिनी, ६७६
ख, गंधी 'गंध गुलाब' को, गंवई गाहक कौन। बिहारी-बोधिनी, ६६३

गुलाब एक ईरानी फूल है और अश्क़े-गुलाब या गुलाब जल सांस्कृतिक उत्सवों पर गुलाबपाश में भर कर छिड़का जाता है जो ठंडक प्रदान करता है किंतु रसखान की बाला की विरहाग्नि उससे भी शांत नहीं हो पाती—

बाल 'गुलाब के नीर' उसीर सो पीर न जाइ हियें जिन ढारैं।[1]

अबीर अरबी भाषा का शब्द है। यह एक प्रकार की सुगंधित गुलाबी बुकनी है, जो कपड़ों पर छिड़की जाती है[2] और संदल, बनफ़श, छड़, मुश्क, लावन और नारंगी के फूलों को मिलाकर कूटने और छानने से तैयार होती है। अश्के गुलाब में पकाते भी हैं जो सूख कर सुगंधित हो जाती है और गुलाल भी अबीर जैसी वस्तु है। शृंगार एवं होली आदि के उत्सवों पर हिंदी-साहित्य में इसका इतना अधिक प्रयोग हुआ है कि हिंदीकरण ही हो गया है। यह हिंदू-मुस्लिम संक्रति के संपर्क द्वारा अलंकृत है—

घुमड्यौ है 'अबीर' 'गुलाल' गगन में, मानो फूली सांझ।[3]

इस प्रकार हिंदी-साहित्य में और भारतीय समाज में मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क से शृंगार के प्रसाधनों में अबीर, गुलाल, साबुन, इतर, अश्क़े-गुलाब, रोग़न, खिज़ाव,

---

१. सुजान रसखान, पद ८०

२. हिन्दोस्तान के मुसलमान हुकमरानों के तमद्दुनी जलवे, पृ० ३२८

३. क. नंदादास पदावली, पृ० ३३६

ख. 'अबीर, 'गुलाल' लिए भर झोरी रंग की कमोरी सिर ठिरकी-ठिरकी।
तानसेन के पद नं० ८६, अकबरी दरबार, पृ० ४०२

ग. उड़त 'गुलाल' 'अबीर' अरगजा। कुंभनदास, ७२

घ. उमड़यौ है 'अबीर' गुलाल' कुमकुमा छबि छाई जनु सांझ। सूरसागर, २९०७

ङ. उमड़यौ है 'अबीर' गुलाल' मानौ उनयौ अनुराग री।
नंददास-पदावली, पृ० ३३६

च. लाल 'गुलाल' समुह उड़ावत' फेंट कसे 'अबीर' झारी की। सूर-सागर, २८७२

छ. चोवा चंदन अगर कुमकुमा उड़त गुलाल 'अबीर'। गोविंदस्वामी, १०९

ज. छिरकत कुमकुमा अरु अरगजा उड़त 'अबीर' गुलाल। गोविंदस्वामी, १४४

झ. मैया मोहन ख्याल परयौ।
सुरंग 'गुलाल' अबीर' कुमकुमा, लैकरि मानों मेरौ बदन भरयो।
परमानंददास, ८७

ञ. वीथिन्ह कुंकुम कीच अरगजा अगर अबीर उड़ाई। गीतावली, १०१

ट. एकनि कर 'बूका' लिये 'गुलाल' 'अबीर'। गोविंदस्वामी, १२१

ठ. चोवा चंदन बूका' बंदन 'अबीर' गुलाल' उड़ाए। चतुर्भुजदास, ७४

शीशी, सुरमा, सुर्खा, मुश्क़े हिना आदि अनेक वस्तुओं और नामों का प्रचलन हुआ है।[1]

५. पर्वोत्सव (त्यौहार)

पर्वोत्सवों के मनाए जाने मे किसी समाज में सामाजिक सहकारिता तथा सांस्कृतिक चेतना की भावना में वृद्धि होती है। प्राचीन भारतवर्ष में पर्वोत्सव एवं त्यौहार सदा से ही शास्त्रों तथा पुराणों के आधार पर, अनेक रूपों में मनाए जाते रहे हैं। पर्वों में ऋतोत्सव, वर्ष की छहों ऋतुओं में तथा जयंतियाँ एवं अष्टमियाँ आदि पर्वोत्सव मनाए जाते थे। त्यौहारों में वर्ष भर में अनेक त्यौहार प्रधानतः यह थे—ब्राह्मणों का रक्षा बन्धन, क्षत्रियों का दशहरा, वैश्यों की दीपावली और शूद्रों की होली।

मुस्लिम शासन के बाद भी ऊपर लिखे पर्व-त्यौहारों का मनाया जाना जनसामान्य में मूलरूप से तो शास्त्र-सम्मत बना रहा पर भारत में जो मुसलमान आए थे वे अपने साथ संसार के अनेक देशों की सांस्कृतिक परंपराओं को लेकर आए थे, इसलिए हिंदी-साहित्य में वर्णित पर्वोत्सवों के संदर्भ में आराध्य देवों की जिन लीलाओं का विवरण मिलता है उनमें कुछ उन सांस्कृतिक उपकरणों से अलंकृत हैं, जो तत्कालीन मुस्लिम-शासकों, पर्यटकों, सूफ़ियों तथा दरबारों के संपर्क से जन सामान्य में प्रचलित हो गये थे। जैसे वाद्ययंत्रों में चंग, नौबत, रबाब, दफ़, शहनाई आदि। वस्त्रों में ताफ़ता, अतलस, कुलह आदि या होली के अवसर पर अरबी अबीर तथा फ़ारसी गुलाल का बड़े चाव से उड़ाया जाना। कहना यह है कि समसामयिक शासन, दरबार, तथा सांस्कृतिक संपर्क का इस काल के हिंदी कवियों द्वारा वर्णित-पर्व-त्यौहार के मनाए जाने के ढंग पर कुछ प्रभाव पड़ा है। जैसे कुंभनदास ने अक्षय तृतीया के अवसर पर गिरधरलाल के दर्शन ठीक दोपहरी में खस-खाने के बीच किये हैं जहाँ वे खास का पिछौरा पहने चंदन-भीजी कुलह से अलंकृत बैठे हैं।[2] इसी अवसर पर चतुर्भुजदास ने इस वर्णन में मुग़लदरबार के अरक़े-गुलाब एवं खस के पर्दों की याद दिलादी है।[3] विजय-दशमी या दशहरे के अवसर पर चतुर्भुजदास ने अपने आराध्य

१. पर्शियन इन्फ्लूएंस आन हिंदी, पृ० ३४

२. ठीक दुपहरी में खस-खाने रचे ता मधि बैठे लाल बिहारी।
खासा कै करि बन्यौ पिछौरा चंदन-भीजी 'कुलह' संवारी। कुंभनदास, ८७

३. सीतल उसीर गृह छिरको 'गुलाब नीर', तहाँ बैठे पिय प्यारी केलि करत हैं।
+ + +
सीतल सिज्या बिछाइ 'खस के परदा' लगाइ, गोविंद प्रभु तहां छवि निरखत हैं।
गोविंदस्वामी, १६४

कृष्ण को सफ़ेद ज़री के पाग से अलंकृत किया है और उसमें लाल कलग़ी भी लगी दिखाई है तथा तनसुख का बागा पहना कर रूप वर्णन किया है—

'स्वेत जरी' सिर पाग लटकि रही 'कलगी' तामें लाल।
'तनसुख कौ वागौ अति राजत कुंडल झलक तामें लाल ॥[1]

गोविंदस्वामी ने गिरधर का शृंगार दशहरे के अवसर पर लाल सूथन, सफ़ेद चोला के साथ मुग़ल दौर की तातारी ज़री की कुलह आदि से कराया है।[2] होली के अवसर पर तो अबीर और गुलाल के अनेक उदाहरण सामने आते है।

एकनि कर 'बूंका' लिए एक 'गुलाब' अबीर'।[3]

होली पर जहाँ झांझ झिल्ली, भेरि मृदंग बीन आदि वाद्य यंत्रों की झंकार सुनाई देती है वहाँ अरबी-फ़ारसी साज़ निशान, दफ़, शहनाई, रबाब आदि साज़ भी कवियों ने बजवाए हैं।[4]

मुहम्मद साहब के ज़माने में इस्लाम में आमतौर पर ईदुलफ़ितर और ईदुज़्ज़ुहा दो ही त्यौहार मनाए जाते थे। मुसलमान जब हिंदोस्तान आए तो अपने साथ ईरान या मध्यएशिया का क़ौमी त्यौहार जश्ने नौरोज़ भी लाए। और इस धूम-धाम से मनाने लगे कि अरब की सादगी वाले धार्मिक त्यौहारों में भी धूम-धड़क्का आ गया।

ईद

ईदुलफ़ितर—या मीठी ईद, यह रमज़ान के तीस रोज़ों के पश्चात् चांद देखकर मनाई जाती है। इसे ईदुल-सग़ीर या छोटी ईद भी कहते हैं। अरबी महीने शव्वाल के पहले दिन मनाई जाती है। सवेरे लगभग नौ दस बजे सामूहिक नमाज़ ईदगाह और बड़ी-बड़ी मस्जिदों में पढ़ी जाती है। बच्चे और बड़े साफ सुथरे या नये

१. चतुर्भुजदास, ३०
२. विजयदसमी अरु विजै महूरत श्री विट्ठल गिरिधर पहिरावत।
 + + +
 सूथन लाल अरु सेतु चोलना कुल्है जरकसी अति मन भावत ॥
 गोविंदस्वामी, ५१
३. क. गोविंदस्वामी, १२१
 ख. लाल गुलाल समूह उड़ावत फेंट कसे अबीर झोरी। सूर-सागर, २८७२
 ग. चोवा चंदन बूका बंदन अबीर गुलाल उड़ाए। चतुर्भुजदास ७४
४. क. झांक झिल्ली निर्झर 'निसान' डफ भेरि भंवर गुंजार। सूर-सागर, २८५३
 ख. वाजे मृदंग 'रबाब' घोर। सूर-सागर, २८५६
 ग. ताल मृदंद उपंग झांझ 'डफ' 'सहनाई'।
 गोविंदस्वामी, १०६

कपड़े पहन कर तैयार हो जाते हैं। इस नमाज़ में धोबी, भंगी, दरज़ी, सक्क़ा, अमीर ग़रीब प्रत्येक वर्ग के मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर पंक्तिबद्ध एक इमाम के पीछे अल्लाह के वास्ते नमाज़ पढ़ते हैं। संसार भर के सारे ही मुसलमान इस त्यौहार को मनाते हैं। नमाज़ के बाद एक-दूसरे से गले मिलते हैं और फिर मुबारकबाद दी जाती है। मुसलमान शासकों के दरबारों में मुबारकबाद का एक विशेष जश्न भी मनाया जाता था।[1] सांस्कृतिक दृष्टि से इस्लाम के मुसावात (समानता) के सिद्धांत का इस त्यौहार में प्रतिपादन मिलता है। हिंदी-साहित्य में भी ईद से संबंधित पद्य मिलते हैं। तानसेन का एक पद प्रस्तुत है—

> 'ईद मुबारक' होवै जुग-जुग नित-नित तुमको महरबान
> सकल विद्या गुन निधान अति ही आनंद करो देत गुनीन को आदर मान
> युग-युग जीवो कोटि बरष लों देवो करो नित दान
> तानसेन कहै सुनो साह अकबर चहूं चक रात करो मरदन महा
> मरदान ॥ १४२ ॥[2]

नौरोज़—

ईरान तथा मध्यएशिया का एक क़ौमी (राष्ट्रीय) त्यौहार था। यह ईरानियों के वर्ष के प्रथम मास फ़र्वरदीन के पहले दिन मनाया जाता है। इन्हीं दिनों में बहार का मौसम भी शुरू होता है। मुसलमान शासक (सुलतानों से मुग़लों तक) नौरोज़ शाही ढंग से मनाया करते थे।[3] हिंदी-साहित्य में भी इसका उल्लेख मिलता है। राणा प्रताप की दुखद मृत्यु पर अकबर ने जो खेद प्रकट किया था, कवि दुरसा वहाँ मौजूद था। अकबर की इस दशा का वर्णन करते हुए 'प्रताप' के विषय में कवि कहता है कि 'राणा प्रताप न कभी 'नौरोज़' में गए और न शाही डेरों में गए और न शाही झरोखों के नीचे खड़े हुए।[4]

संस्कार (तक़रीबात)—

संस्कार से अभिप्राय शास्त्रविहित उन मांगलिक कृत्यों से है जो मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए किये जाएं। ये काम जन्म के पूर्व से ही आरंभ हो जाते हैं और मृत्यु के कुछ बाद भी चलते रहते हैं। भारतीय-संस्कृति में अनेक संस्कार हैं।

१. हिंदोस्तान के हुक्मरानों के अहद के तमद्दुनी जलवे पृ० ४४३-४५६
२. अकबरी दरबार के हिंदी कवि तानसेन के पद १४२, पृ० ४११
३. हिंदोस्तानी हुकमरानों के अहद के तमद्दुनी जलवे, पृ० ४६१
४. 'नवरोज़' नह गयो न गो आतसां नवल्ली न गो
झरोखों जेठ दुनियाण दहल्ली। डिंगल में वीर रस, पृ० ५७
अकबरी दरबार ले हिंदी-कवि, पृ० ३२ से उद्धृत :

मनु के अनुसार ये बारह हैं तथा अन्य विद्वानों ने इन्हें सोलह भी माना है।[१] इस्लाम में यद्यपि बड़ी सादगी थी किंतु मुस्लिम-संस्कृति में जश्ने विलादत (जन्मोत्सव), खतना, मकतब नशीनी[२] (पाठशाला गमन), मंगनी,[३] वलीमा की दावतों आदि का बड़ी धूम से प्रचलन हो गया।

मंगनी—

कहा जाता है कि मंगनी (निस्बत तै होना) की रस्म भारतीय नहीं है। यह ईरानी संस्कार है जिसका फ़ारसी नाम ख्वास्तगारी है।[४] शादी से पूर्व लड़के और लड़की के अभिभावकों के बीच रिश्ते की बातचीत के विषय में वचन बद्ध होकर रिश्ता पक्का कर दिया जाता था और किसी छोटी सी रस्म के साथ कोई निशानी पहना दी जाती थी। हंसजवाहर में क़ासिमशाह ने इसका वर्णन किया है—

भयो हुलास सबै घर बारा। बेगि कियो मंगनी कर चारा।
बहु पहिराव चढ़ाव निशानी। बैठे मीर महा सो ज्ञानी।[५]

निकाह—

निकाह (पाणि-ग्रहण) इस्लाम की एक सुन्नत है।[६] ख़ालिस इस्लामी ढंग के निकाह में या शादी में यह होता है कि कम से कम दो गवाहों के सामने दूलह और दुलहन को एक दूसरे को स्वीकार करा दिया जाता है।[७] यह काम क़ाज़ी कराता है तथा क़ुरान शरीफ़ की आयतें (क़ुरान के वाक्य) पढ़कर विधिवत् यह निकाह पढ़ाया जाता है।

हिंदी-साहित्य में सामान्यतः भारतीय रीति रिवाजों के साथ पाणि-ग्रहण का संस्कार देखा जाता है। सूफी कवियों ने भी पद्मावती, चित्रावली, पुहुपावती आदि में विवाह हिंदू रीति से कराया है। किंतु एक तो रत्नसेन का पदमावती के (या उसके पिता के) घर पर ही सुहागरात मनाया जाना तथा वहां पर ही एक वर्ष रहना भारतीय परंपरा के सर्वथा अनुकूल नहीं मालूम होता दूसरे हंस जवाहर में तो शादी बिल्कुल मुस्लिम संस्कृति के अनुरूप ही अलंकृत दिखाई गई है—

'काजी' महा जो पंडित ज्ञानी। बैठा निकट दूलह के आनी।

१. बृहत हिंदी-कोश, पृ० १३८४
२. अकबरनामा, जिल्द अव्वल, पृ० २७१
३. हिंदोस्तान के मुसलमान हुकमरानों के तमद्दुनी जलवे, पृ० ४९०
४. पर्शियन इन्फ्लूएंस आन हिंदी, पृ० २२
५. हंस जवाहर, पृ० ४०
६. अलनिकाहो मिन सुन्नती, क़ुरान
७. हिंदोस्तान के मुलमान हुकमरानों के तमद्दुनी जलवे, पृ० ५१५

वक वसीठि 'दुई साखी' लाये। शशि के वचन सरह में लाये।
कीन्ह जोहार जो नेरे आई। प्रेम की बात सो बठ सुनाई।
'गुप्त भेद' सब कहा जो काना। करि परनाम रात भा भाना[1]

निकाह में क़ाज़ी का आना, दो गवाहों का होना तथा गुप्त भेद बताना यानी आयतों का पढ़ना या ईजाब क़बूल कराना आदि मुस्लिम-रीति के अनुकूल ही अलंकृत है। इसके अतिरिक्त और देखिये—

तब सुलतान जो कीन विचारा। आय निकस पुनि बैठा बारा।
'काजी' और वसीठ बुलाई। बर देखे का फेर पढ़ाइ।
देखो बर दूजा को आहै। नगर क लोग कहावों काहे।
तब 'काजी' दूलह पहं आवा। बैठ जो पास दुलह निरतावा।
वह की किरत न एको पावा। तोलौ उतर दीन चलि आवा।
ऐ सुलतान सत्य वह नाही। कहं दिन धूप कहां निशि छाही।[2]

शादी के बाद जब नरीना औलाद (पुत्र-संतान) होती है तब उसकी ख़तना की जाती है। मुसलमान लड़के के लिंग के अगले भाग की लटकती हुई त्वचा काट देने की रस्म या संस्कार को ख़तना या सुन्नत कहते हैं। कबीर इस संस्कार से परिचित तो थे क्योंकि व्यंग्य द्वारा उपदेश देना उनकी आदत थी इसलिए यहां भी व्यंग्य से बाज़ न आए।[3]

७. मनोविनोद खेल तमाशे—

गुरुवर आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी ने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद में प्राचीन भारत में पाए जाने वाले मनोविनोद और खेल-तमाशों की बड़े ही रोचक एवं विद्वत्तापूर्ण ढंग से चर्चा की है। मानव जीवन में मनोविनोद का सांस्कृतिक दृष्टि से भी बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। बचपन से बुढ़ापे तक मनुष्य इसके लिए लालायित रहता है। सांस्कृतिक उपयोगिता की दृष्टि से इन खेल तमाशों से शारीरिक शक्तियों का विकास होता है, कुछ का जीविकोपार्जन का गुजारा होता है और शिथिलता दूर करके यह खेल मनोविनोद के साथ प्रत्युत्पन्न मतित्व को बढ़ावा देते हैं।

---

१. हंस जवाहर, पृ० ८७
२. हंस जवाहर, पृ० १०६
३. क. जौं तू तुरक तुरकनी जाया। तौ भीतर 'खतना' क्यों न कराया॥
   कबीर ग्रंथावली, पृ० ७६
   ख. 'सुन्नति' किये तुरक जे होगा औरत का क्या करिये।
   कबीर ग्रंथावली, पृ० २५४

यद्यपि प्राचीन भारत में दौड़ धूप, आंख मिचौली, वृक्षारोहण, बैल बैल जैसे बचपन के खेलों से लेकर मल्लयुद्ध, द्यूतक्रीड़ा, जल विहार, कुंज विहार, मृगया आदि अनेक प्रकार के मनोविनोद एवं खेलकूद पाये जाते थे परंतु फिर भी मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप चौगान, शतरंज जैसे खेल तथा अन्य प्रकार के खेलों का वर्णन हिंदी-साहित्य में देखने को मिलता है। उनमें से कुछ की चर्चा यहाँ की जाती है। तमाशा अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ सैर, तफ़रीह, विहार, दर्शन, क्रीड़ा आदि है। निर्गुण कवियों के नजदीक तो यह सारा संसार ही खेल तमाशा है। इसका अलंकरण अनेक कवियों ने किया है—

आजि एक ऐसो अचरज को 'तमासो' देख्यौ
पन्नग के माथे उयौ पूरन पून्यो की ससि।[1]
यह अजब तमाशा लाल हो।[2]

जल विहार में ग़ोताज़नी भी एक मनोविनोद है। ग़ोता अरबी में डुबकी या मज्जन को कहते हैं। हिंदी में यह मुहावरे के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है—

नफ़स शयतान कूं कैद कर आपने, क्या दुनी में फिरे खाय 'गोता'।[3]

मसखरी अरबी में हंसी ठट्ठे की बात को कहते है। वैसे यह मनोविनोद की एक कला भी है।[4] जादू फ़ारसी में इंद्रजाल तथा तिलस्म को कहते हैं।[5] खेल तमाशे में बाज़ी भी लगाई जाती है। बाज़ी फ़ारसी भाषा का शब्द है और कौतूहल, तमाशा, शर्त के अर्थों में आता है। नानक जी मानव जीवन को हारी हुई बाजी मानते हैं—

बिरथा जनमु गवाइआ 'बाजी' हारी।[6]

---

१. अकबरी दरबार के हिंदी-कवि (ब्रह्म), पृ० ३४८
२. क. मलूकदास की बानी, पृ० ७
   ख. सोई नैन नासिका सोई, सहजें कीन्ह 'तमासा'। दादूबानी २ पृ० २७
   ग. पिउ धन पहं धन पिउ के बासा हिये हिये मिल करै 'तमासा'।
      हंस-जवाहर, पृ० २३६
   घ. नयन कर 'तमाशे' मस्त हुवै घूमते थे॥ रहीम रत्नावली, पृ० ७३
३. क. सुंदर-विलास, पृ० १२
   ख. ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत 'गोतो'।
      विनय पत्रिका, १६१
४. जो कह झूंठ 'मसखरी' जाना। रामचरितमानस ७।९८।३
५. मेरो नाम गाइ हाइ 'जादू' कियौ मन में। सुजान रसखान, पद ३२
६. नानक वाणी, २७६

दादू 'बाजी' बहुत है, नाना रंग अपार।[1]

पतंगबाज़ी भी मुस्लिम काल में मनोविनोद का एक साधन रहा है और कागज़ के अभाव में प्राचीन काल के भारत में पतंग उड़ाई जाती होगी, इसमें संदेह है। हिंदी-साहित्य में चंग, पतंग आदि नामों से इसका वर्णन मिलता है। दादूदयाल मन को कागज़ की गुडी के समान मानते हैं—

यहु मन 'कागद की गुडी', उड़ि चढ़ी आकास।[2]

श्रीकृष्ण तथा उनके सखाओं के चंग या पतंग उड़ाने की चर्चा भी मिलती है। इन कवियों के कान्हा अटारी पर चढ़कर रंग विरंगी पतंग उड़ाते दिखाए गये हैं। पतंग बाज़ी और पेच लड़ाना आदि मुग़ल काल के सामान्य मनोविनोद के साधन थे। उस काल के हिंदी कवियों ने इस प्रकार से चौगान जैसे अनेक खेलों को कृष्ण के साथ जोड़ दिया है जो मुस्लिम दौर का प्रभाव है।[3]

शिकार खेलना

मुग़ल दौर में शिकार खेलना एक बहुत ही अच्छी तफ़रीह मानी जाती थी।[4] आईनेअकबरी के अट्ठाईसवें आईन में इसकी विस्तार से चर्चा की गई है।[5] मुग़ल पेन्टिंग्स में भी इसके चित्र मिलते हैं।[6] यह खेल बड़ा ही कीमती और ख़तरनाक भी है, किंतु बहादुरी का भी।

शिकार, जाल, तीर, तरकश, कमान और शिकारी के लिए सैय्याद तथा गुलेल जैसे अरबी-फ़ारसी उपकरण स्पष्ट रूप से यह संकेत करते हैं कि ये कवि मुस्लिम काल में प्रचलित नाना प्रकार के शिकारों, उनके हथियार तथा उन विधियों से अवश्य परिचित रहे हैं, तभी उनके काव्य में यह अलंकरण मिलता है—

केते केते मीर मारे केते केते कूप ठाड़े

---

१. क. दादूबानी, भाग १, पृ० ११७
   ख. महाराज 'बाजी' रची प्रथम न हति। विनय पत्रिका, २४६
   ग. सूर एक पौ नाम बिना नर फिरिफिरि 'बाजी' हारी। सूरसागर, १-६०
२. दादूदयाल की बानी, भाग १, पृ० ९७
३. क. कान्ह अटा पर चंग उड़ावत। परमानंददास, ६२८
   ख. 'सुदर पतंग' बांधि मनमोहन नाचत है मोरन के ताल।
   कोउ परकत कोउ ऊंचत कोऊ देखत नैन बिशाल। पमानंददास, ६४
   ग. कोउ 'गुड़ी ते उरभावत आपुन' ऍंचत डोर रसाल। परमानंददास, ६४
४. हिंदोस्तान के मुसलमान हुकमरानों के तमद्दुनी जलवे, पृ० २२९, २३०
५. आईने अकबरी (उर्दू), पृ० ४३४-४५२
६. इन्फ़्लूएंस आफ़ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर, प्लेट २३, पृ० २२९-२३०

खेलत 'शिकार' जैसे म्रिग में बाघरो ।[१]

रंना होईआ बोधीआ पुरस होए हईआद ।[२]

ब्रह्म ने शिकार का अरबी उपकरण रूपक के तौर पर प्रयोग किया है। वह ज्ञान की ग़ुलेल से काम रूपी कबूतर और लालच रूपी तीतर का शिकार करना चाहता है। ग़ुलेल अरबी भाषा का शब्द है यह दो तांतों की कमान है जिस पर मिट्टी या पत्थर का गोला या गोली चलाई जाती है और शिकार किया जाता है—

काम कबूतर तामस तीतर ज्ञान 'ग़ुलेलन' मार गिराये ।[३]

कुबुधि 'कमान' चढ़ाइ कोप करि, बुधि 'तरकस' रितयौ ।

सदा सिकार करत मृग-मन कौं, रहत मगन मुरयौ ।[४]

शतरंज

प्राचीन भारत में चतुरंग के नाम से इस खेल की चर्चा अलबीरूनी ने की है, किन्तु शतरंज अरबी फ़ारसी का शब्द है। अरब तथा ईरानियों ने अवश्य ही भारत से इस खेल की प्रेरणा प्राप्त की होगी। किंतु इस खेल के मोहरों के जितने नाम हैं तथा चाल के ढंग और मुग़ल दरबार में जिस शाही ढंग से खेला जाता था उन सबके विवरण से इसमें मुस्लिम-संस्कृति का बड़ा योगदान मालूम होता है। मुग़ल काल में बादशाह वज़ीर ही नहीं अमीर उमरा तथा सामान्य समाज में भी शतरंज का खेल आमतौर पर खेला जाने लगा था।[५] तुलसी के अतिरिक्त नानक जी भी जीवन रूपी शतरंज की सी बाज़ी से सचेत रहने को कहते हैं।

हिंदी-साहित्य में शतरंज खेल की बहुत चर्चा मिलती है। मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत के चित्तौड़गढ़-वर्णन खंड में राजा रत्नसेन के साथ अलाउद्दीन को शतरंज खेलते दिखाया है—

माया-मोह-विबस भा राजा। साह खेल 'सतरंज' कर साजा ॥

राजा ! है जो लगि सिर घामू। हम तुम घरिक करहिं बिसरामू ॥

---

१. गंग के छंद, नं० १८७

२. क. नानक-वाणी, पृ० ७३७

ख. एक अहेरी वन में आयो, खेलन खेलन लाग्यो भली शिकार।
सुंदरविलास, पृ० ७७

३. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (ब्रह्म, न० ९३), पृ० २५९

४. सूर-सागर, १-६४

५. क. 'सतरंज' को सो राज, काठ को सबै समाज। विनयपत्रिका, २४६

ख. 'सतरंज' बाजी पकै नाही कची आवै सारी ॥
नानक-वाणी, पृ० २७४

दरपन साह भीति तहं लावा। देखौ जबहि झरोखे आवा।।
खेलहिं दुऔ साह औ राजा। साह क 'रुख' दरपन रह साजा।।
प्रेम क लुबुध पियादे' पाऊं। ताकै सौंह चले कर ठाऊं।।
घोड़ा देइ 'फरजीबंद' लावा। जेहि 'मोहरा' 'रुख' चहै सो पावा।।
राजा 'पील' देह 'शाह' मांगा। 'शह' देइ चाह मरै रथ-खांगा।।
पीलहि पील देखावा भए दुऔ चौ दांत।
राजा चहै 'बुर्द' भा, 'साह' चहै 'शहमात' ।।१६।।[1]

प्रस्तुत पद्य में बादशाह शीशे की ओर दृष्टि किये है और 'पैदल' गोट को चल तरह रहा है। फ़रज़ी शतरंज का वह मोहरा है जो अधिकतर खेल में सीधा और टेढ़ा दोनों चलता है और फ़रज़ीबंद वह घात है जिसमें फ़रज़ी प्यादे के जोर पर ऐसी शह देता है जिससे विपक्षी की हार हो जाती है तथा शह बादशाह को रोकने वाली घात को कहते हैं। बुर्द, खेल में वह अवस्था है जिसमें किसी पक्ष के सब मोहरे जाते हैं केवल शाह या बादशाह बच रहता है जो आधी हार मानी जाती है और शह-मात पूरी हार को कहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि शतरंज, रुख, पियादे, फ़रज़ीबंद, मोहरा रुख, पील शह, बुर्द, शह-मात आदि मोहरे तथा खेल का ढंग यह मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क का प्रभाव है। क़ासिमशाह ने हंस जवाहर में शतरंज के खेल का अलंकरण बड़े विस्तार से तीन पृष्ठों में किया है। बिसात अरबी शब्द है शतरंज के तख्ते या बोर्ड तथा को कहते हैं।

बैठ सेज संग 'सतरंज' खेलों। करो जो मात हाथ तब मेलों।

+ + +

ऊपर सेज 'बिसात' बिछाई। खेले लाग लिये चतुराई।[2]

क़ासिमशाह ने शतरंज के खेल में शतरंज, पियादह, फ़रज़ी, पील, रुख, मुहरा, बुर्द आदि अरबी-फ़ारसी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है तथा शाही ढंग से खेल दिखाया है, जिससे स्पष्ट है कि हिंदी में इसका वर्णन मुसलमानों के सम्पर्क से आया है।

चौगान

फ़ारसी भाषा का शब्द है। आईने-अकबरी के उनत्तीसवें आईन में 'निशातबाज़ी' के शीर्षक से चौगान की तीन पृष्ठों में विस्तार के साथ चर्चा की गई है।[3] मनोविनोद के अतिरिक्त चुस्ती, चालाकी तथा शारीरिक एवं मानसिक प्रवृत्तियों

१. जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० २२५-५७
२. हंस-जवाहर, पृ० १८१-१८३
३. आईने-अकबरी-उर्दू। आईन नं० २९, भाग १, पृ० ४५२-४५६

के विकास की दृष्टि से भी इस खेल की उपयोगिता बताई गई है। अबुलफ़ज्ल ने लिखा है कि बादशाह सलामत स्वयं इस खेल में इतनी रुचि रखते थे कि उन्होंने खेलने के अतिरिक्त इसमें कई आविष्कार किये थे। उदाहरणार्थ अंधेरी रात में चौगान खेलने के लिए एक जलती हुई रोशन गेंद भी ईजाद की थी। यह खेल हृष्ट पुष्ट घोड़ों पर चढ़ कर खेला जाता था जो आजकल के पोलो से मिलता जुलता था। इसमें दो दल बांट कर धरती पर पड़ी हुई गेंद को चौगान के बल्ले से (जो आजकल की हाकी की भांति लंबे डंडेवाला होता था) मार कर चौगान के मैदान में हाल (गोल की भांति अर्थात् दो गुंमदनुमा खंभे जिनके बीच से गेंद निकालनी होती थी) करना खेल में विजय का एक चिह्न होता था। मुग़ल-काल में यह खेल बादशाह तथा उसके-अमीर वजीरों में बड़ा प्रिय रहा है। डा० चौपड़ा ने एस० के० बनरजी के हवाले से लिखा है कि शाही खानदान की औरतें भी इस खेल में रुचि लिया करती थीं।[1] उधर एक ओर तो प्राचीन भारतीय-साहित्य में चौगान के इस प्रकार खेले जाने का विवरण नही मिलता। इधर हिंदी-साहित्य में न केवल सूफ़ी कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी ने इस खेल की चर्चा गोरा बादल युद्ध खंड में प्रतीकों के रूप में की है अपितु कृष्ण-भक्ति-शाखा के अनेक कवियों ने श्रीकृष्ण जी को चौगान खलाया और तुलसी ने रामचंद्र जी को भी। यह निश्चित रूप से मुस्लिम संपर्क का प्रभाव है।

पद्मावत में गोरा बादल से कहता है, अब तो यही गेंद है और यही मैदान है—

चहुं दिसि आवै लोपत भानू। अब इ. 'गोइ' इहै मैदानू॥

\+ \+ \+

वह 'चौगान तुरुक' कस खेला। होइ खेलार रन जुरौं अकेला॥
तौ पावौं बादल अस नाऊं। जौ 'मैदान' गोइ लेइ जाऊं॥
आजु खड्ग 'चौगान' गहि करौं सीस-रिपु 'गोई'।
खेलौं-सौंह साह सौं, हाल जगत महं होई॥६॥[2]

इतना ही नही जायसी ने चौगान का खेल खेलने वाले पुरुषों के साथ इस खेल में स्त्रियों को भी प्रतीक रूप में दिखाया है—

होइ 'मैदान' परी अब 'गोई'। खेल हार दहुं का करि होई॥
जोवन-तुरी चढ़ी जो रानी। चली जीति यह खेल सयानी॥
कटि 'चौगान' 'गोइ' कुच साजी। हिय मैदान चली लेइ बाजी॥

---

१. सम आस्पैक्ट्स आफ सोसाइटी एंड कल्चर ड्यूरिंग दी मुग़ल एज, पृ० ६५
२. जायसी ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० २८८

'हाल' सो करै 'गोइ' लेइ बाढ़ा। कूरी दुवौ पेज के काढ़ा ॥
भइ पहार वै दूनौ कूरी। दिस्टि नियर, पहुंचत सुठि दूरी ॥
ठाइ बान अस जानहु दोऊ। सालै हिये न काढ़ै कोऊ ॥
सालहिं हिय, न जाहिं सहि ठाढ़े। सालहिं मरैं चहै अन काढ़े ॥
मुहम्मद खेल प्रेम कर गहिर कठिन 'चौगान' चौगान।
सीस न दीजै गोइ जिमि, हाल न होइ मैदान ॥८॥[1]

कृष्ण भक्ति शाखा के कवियों में चौगान का खेल दो रूपों में मिलता है। एक तो बाल कृष्ण को सखाओं के साथ खेलते दिखाया है और दूसरे युवकों के प्रसंग में! माता यशोदा बाल कृष्ण का चौगान बटा संभाल कर रखती हैं—

बार बार हरि मातहिं बूझत, कहि 'चौगान' कहां है।
दधि-मथनी के पाछे देखौ, लै मैं धरयो तहां है।
लै 'चौगान बटा' अपनै कर, प्रभु आए बाहर।
सूर स्याम पूछत सब ग्वालनि, खेलोगे किहिं ठाहर ॥[2]

आईने-अकबरी में वर्णित तरीक़े पर दो दलों में बांट कर श्रीकृष्ण और बलराम सुबल आदि ग्वाल-बाल धरती पर बटा डाल कर खेल जमाते भी दिखाए गए हैं।[3] परमानंददास ने वृंदावन के मैदान में घोड़े पर चढ़ कर चौगान खेलने का भी वर्णन किया है।[4] श्रीमद्भागवत मे कहीं पर भी ऐसा वर्णन नहीं मिलता कि श्रीकृष्ण ने वृंदावन में घुड़सवारी भी की थी। इधर तत्कालीन मुस्लिम-शासन में

---

१. जायसी ग्रंथावली, पद्मावत, पृ० २८९

२. सूर-सागर, १०-२४३

३. कान्ह हलधर बीर दोऊ, भुजा बल अति गोर।
सुबल, श्रीदामा, वे भए इक ओर।
और सखा बंटाइ लीन्हे, गोप-बालक-वृंद।
चले ब्रज की खोरि खेलत, अति उमंगि नंद-नंद।
'बटा' धरनी डारि दीनौ, ले चले ठरकाइ।
आपु अपनी घात निरखत, खेल जम्यो बनाई ॥

सूर-सागर, १०-२४४

३. गोपाल माई खेलत हैं 'चौगान'।
ब्रज कुमार बालक संग लीने वृंदावन मैदान।
चंचल बाजि नचावत आवत होड़ लगावत यान।
सब ही हस्त लें गेंद चलावत करत बाबा की आन।

परमानंददास, ९५

इसकी चर्चा राजा प्रजा सब में चल रही थी। इसीलिये सम्भवतः सूरदास ने द्वारका-वासी श्रीकृष्ण को सखा सहित घोड़े पर चढ़ कर चौगान खेलते हुए दिखाया है। इन घोड़ों की जड़ाऊ ज़ीन समसामयिक है, शाही है और वर्णन भी आईने-अकबरी के आईन २९ के अनुरूप है—

मन मोहन खेलत चौगान।
द्वारावती कोट कंचन मैं, रच्यौ रुचिर 'मैदान'॥
जादव वीर बटाइ, हरि बल इक इक ओर।
निकसे सबै कुंवर असवारी, उचैस्रवा के पोर॥
नीले सुरंग कुमैत स्याम तेहि, परदे सब मन रंग।
बरन अनेक भांति के, चमकत चपला ढंग॥
'जीन जराइ' जु जग मगइ रहि, देखत दृष्टि भ्रमाइ।
सुर, नर, मुनि कौतुक सब लागे, इक टक रहे लुभाइ॥
जबही हरि लै 'गोइ' कुदावत, कंदुक कर सौं लाइ।
तबही औचकहीं करि धावत, हलधर हरिके पाइ।
कुंवर सबै घोड़े फेरे पै, छाड़त नहि गोपाल।
बलै अछत छल-बल करि जीते, सूरदास प्रभु हाल।[1]

विस्तार-भय के कारण केवल तुलसीदास और सुंदरदास के ही दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

अनुज सखा सिसु संग लै खेलन जै हैं चौगान।[2]

आलोच्यकालीन कवियों ने मनोविनोद-चित्रण में हिंदी काव्य को अति सुंदर ढंग से अलंकृत किया है।

उपरोक्त अनुशीलन के आधार पर कहा जा सकता है कि मुस्लिम सकृति के सम्पर्क से उपमान, मुहावरों उपसर्ग, प्रत्यों के अतिरिक्त राजनीतिक जीवन और दैनिक जीवन का अलंकरण भी हुआ है।

---

१. सूर-सागर, ४१३६

२. क. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, गीतावली, पृ० २३४

ख. कर-कमलनि विचित्र 'चौगानें', खेलन लगे खेल रिझाये॥
तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, गीतावली, पृ० २४५

ग. थिरता न लहै जैसे कंदुक 'चौगान' मांहि। सुंदरदास, पृ० ५७

उपसंहार

पूर्ववर्ती अध्यायों में संस्कृति के संपर्क के प्रकाश में विशेषतया विषयवस्तु, काव्य-रूप और अलंकरण की दृष्टि से भक्तिकालीन हिंदी-साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया गया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मुस्लिम संस्कृति की प्रवृत्ति प्रारंभ से विभिन्न संस्कृतियों के गुणों को इस्लाम के प्रकाश में सँवार कर अपने में समोने की रही है। हिंदी-साहित्य में समन्वय और हिंदू-मुसलमानों के एक होने की भावना को इस संपर्क से बल मिला है, जिसका श्रीगणेश सूफ़ियों की व्यापक प्रेम भावना एवं उदार समन्वयात्मक दृष्टिकोण के हिंदी-साहित्य के माध्यम से प्रसार के द्वारा हुआ और कबीर[1] नानक[2] आदि संतों[3] ने इसे आगे बढ़ाया। दादूदयाल का कथन भी द्रष्टव्य है—

सब हम देख्या सोधि करि, दूजा नाहीं आन।
सब घर एकै आतमा, क्या हिंदू मुसलमान॥

---

१. हिंदू तुरक का कर्त्ता एकै। ताकी गति लखखी न जाई।

२. बन्दे एक खुदाय है, हिन्दू मुसलमान।
दावा राम रसूल कर, लड़दे बेईमान॥

३. क. अचरज मोहि हिन्दू तुरक बादि करत संग्राम।
इक दीपति सी दीपियत काबा काशी धाम॥
हिंदी-साहित्य का इतिहास, शुक्ल (मनोहर) पृ० २०५

ख. दुई दूर करो कोई सोर नहीं, हिन्दू तुरक कोई होर नहीं।
सब साधु लखो कोइ चोर नहीं, घट घट में आप समाया है। बुल्लेशाह

ग. मुसलमान है रब्बी मेरा हिन्दू भया खरीफ॥
हिन्दू भया खरीफ दोऊ हैं फसिल हमारी॥
दोनों को समझाया ज्ञान के दफतर खोल।
मुसलमान हैं रब्बी मेरी हिन्दू भया खरीफ़।
पलटूदास की बानी, पृ० ६

घ. सर्व व्यापी एक कोहारा, जाकी महिमा और न पारा।
हिन्दू तुरुक का एकै करता, एकै ब्रह्म सबन को भरता॥ मलूकदास

(दादू) दोनों भाई हाथ पग, दोनौं भाई कान।
दोनौं भाई नैन हैं, हिंदू मुसलमान ॥[1]

हिंदी-साहित्य की इस समन्वयवादी भावना का एक कारण यह भी है कि मुस्लिम-शासकों ने प्रारंभ से ही हिंदी-साहित्य के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया। मुहम्मद बिन क़ासिम से लेकर औरंगज़ेब तक अनेक मुसलमान शासक किसी न किसी रूप में हिंदी की सेवा करते रहे। इन्होंने हिंदी-कवियों के संरक्षण के अतिरिक्त स्वयं भी हिंदी में कविता की। हिंदी-भाषा एवं साहित्य को अपना कर प्रसारित करने में इन शासकों, दरबारों और सूफ़ियों का बड़ा हाथ रहा है। यही कारण है कि हिंदी फ़ारसी के माध्यम से मुस्लिम-संस्कृति से सहज रूप से प्रभावित हुई है।

आलोच्यकालीन हिंदी-साहित्य की विषय वस्तु को मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क से अमूल्य निधि की प्राप्ति हुई है। हिंदी-साहित्य के सूफ़ी असूफ़ी सभी प्रकार के कवियों द्वारा इस्लाम धर्म का विवेचन भी आपसी संपर्क का परिणाम है। इन कवियों ने इस्लाम, मुसलमान, मोमिन आदि की चर्चा के साथ साथ क़ुरान और हदीस (मुहम्मद साहिब के सत्यवचन) की जानकारी का भी पूर्ण परिचय दिया है। सूफ़ियों का क़ुरान और हदीस से परिचित होना तो स्वाभाविक ही था किन्तु अन्य कवियों ने भी इस संपर्क से पूर्ण लाभ उठाया है। जैसे दादू और मलूक कहते हैं—

जो प्यासे को देवै पानी। बड़ी बंदगी मोहमद मानी ॥
जो भूखे को अन्न खवावै। सो सिताब साहेब को पावै ॥[2]
तन मन सौज संवारि सब, राखै बिसवा बीस।
सो साहिब सुमिरै नहीं, दादू मानि हदीस ॥[3]

अल्लाह और उसकी सिफ़ात (गुण) के विवेचन के साथ-साथ फ़िरिश्ते, जिन्न, नबी, पैग़ंबर और चारों ख़लीफ़ाओं का प्रशंसात्मक वर्णन भी इन हिंदी कवियों ने किया है। इतना ही नहीं इस्लाम के सैद्धांतिक पक्ष के अंतर्गत तौहीद, क़ियामत, जज़ा-सज़ा, हरामोहलाल के अतिरिक्त ईमान और मसावात आदि सिद्धांतों की विस्तार से चर्चा मिलती है। व्यवहार-पक्ष के अंतर्गत कलमा, नमाज़, उसके अरकान वज़ू मुसल्ला, मस्जिद का वर्णन भी किया गया है। इस्लाम में मस्जिद से जो एक व्यापक भावना सम्बद्ध है कि यह अल्लाह का घर है और इस पर सबका बराबर अधिकार है; उसका रामभक्तिशाखा के प्रसिद्ध कवि संत तुलसीदास जी ने भी अनुभव किया और मुस्लिम समाज से आगत इस भाव को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

१. दादू बानी, भाग १, पृ० २२२
२. मलूकदास जी की बानी, पृ० २२
३. दादूदयाल की बानी, पृ० १७६

तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
मांगि कै खैबो मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ ॥[1]

परस्पर संपर्क के कारण भक्तिकालीन कवियों ने हज, मक्का, मदीना और आबे जमज़म[2] आदि तक की चर्चा सुरुचिपूर्ण ढंग से की है। इन कवियों ने मुस्लिम-संपर्क के फलस्वरूप इस्लाम धर्म के अनेक सिद्धांतों का निरूपण करते हुए अनेक इस्लामी अंतर्कथाओं और धारणाओं को काव्याभिव्यक्ति का साधन बनाया है।

प्रेममार्गी शाखा का अधिकांश साहित्य मुस्लिम-संस्कृति के प्रतीक सूफ़ियों के संपर्क का ही परिणाम है। अधिकांश प्रेममार्गी कवि मुसलमान थे, हिंदी-साहित्य में सूफ़ी मत की इतनी व्यापक अभिव्यक्ति मुस्लिम-संपर्क का ही फल है। आलोच्य-कालीन हिंदी कवियों ने तसव्वुफ के अंतर्गत प्रेम की विशद व्याख्या की है। साथ ही गुरु के महत्व का निरूपण भी किया है। सूफ़ी कवियों के अतिरिक्त असूफ़ी कवियों ने भी सूफ़ी साधना की चारों अवस्थाओं शरीअत, तरीक़त, मारिफ़त और हक़ीक़त का विवेचन किया है। दादू ने विस्तार से चर्चा करते हुए अंत में कहा है—

चहार मंजिल बयां गुफ़तम, दस्त करद: बूद ।[3]

हिंदी-शायरी में तसव्वुफ़ के संपर्क के कारण इतना ज़बरदस्त ज़ह्नी इन्क़िलाब आया है कि यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो आलोच्यकालीन हिंदी-साहित्य का अधिकांश भाग तसव्वुफ़ से प्रभावित दिखाई पड़ता है। इन कवियों ने स्पष्टतः तौबा, तर्क, नफ़्स, ज़िक्र इज्ज़, तवक्कुल आदि का विवेचन किया है और अनेक प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना भी तसव्वुफ़ के सिद्धांतों पर आधारित है जिससे हिंदी-साहित्य की श्रीवृद्धि हुई है। ज्ञानमार्गी शाखा तथा सगुण भक्त कवियों के काव्य पर भी तसव्वुफ़ की गहरी छाप मिलती है।

धर्म-दर्शन के अतिरिक्त भक्तिकालीन कवियों ने मुस्लिम-संस्कृति के राजनीतिक दृष्टिकोण, सामाजिक रहन-सहन, अर्थ व्यवस्था तथा सामान्य जीवन को सहज-एवं स्वाभाविक रूप में चित्रित किया है। आरम्भ से लेकर खिलाफ़त तक मुस्लिम संस्कृति का राजनीतिक दृष्टिकोण जनतंत्रात्मक रहा तथा संसार के अन्य अनेक देश से ख़िलाफ़त का संबंध उत्तरोत्तर बढ़ता गया। भारत को मुस्लिम शासनकाल में और विशेषरूप से मुगल काल में जो राजनीतिक दृष्टिकोण मिला वास्तव में वह व्यापक था। बाह्य देशों से भारत का बराबर संपर्क रहा। जलयानों द्वारा व्यापार

१. तुलसी-ग्रंथावली (कवितावली) १०६), पृ० १८७

२. मका विच मुसाफरीला, मदीना मुलतान वे।
इथां आब जमज़मा, इथाई सुबहान वे। दादू-बानी, भाग २, पृ० १३६

३. दादू बानी, भाग १, पृ० ५५

भी बढ़ा। मुस्लिम शासन-व्यवस्था से भारत में केंद्रीयता आयी और अनेक भक्ति धाराओं को बल मिला। शासन-व्यवस्था की इसी व्यापकता के कारण हिंदी कवियों ने शासक के लिए बादशाह, सुलतान और ग़रीबनिवाज जैसे तत्कालीन मुस्लिम-संपर्क से आए शब्दों का खूब प्रयोग किया है। इसी संपर्क के कारण तुलसीदास पतितपावन राम के दीर्घायु होने की कामना न करके ग़रीबनवाज़ राम की उमरदराज़ी चाहते हैं—

रंक के निवाज रघुराज राजा राजनिके,
उमरिदराज, महाराज तेरी चाहिए ।।[1]

महल आदि का वर्णन भी मुस्लिम-संस्कृति के अनुरूप है। हिंदू धर्म के प्रसिद्ध अवतार श्रीकृष्ण का वर्णन भी ये कवि शाही वातावरण के अनुरूप करते हैं। गोविंद-स्वामी का यह वर्णन दर्शनीय है—

सीतल उसीरगृहछिरको 'गुलाब' नीर। तहां बैठे पिय प्यारी केलि करत हैं।।
सीतल झारी बनाइ सीतल सामिग्री धराइ। सीतल पान मुख बीरा रचत हैं।।
सीतल सिज्या बिछाई खसके परदा लगाइ। गोविंद प्रभु तहां छवि निरखत हैं।।[2]

ठीक दुपहिरी में खस-खाने रचे ता मधि बैठे लाल बिहारी।
खासा को कटि बन्यो पिछौरा चंदन-भीनी कुलह संवारी ।।[3]

मुग़ल दौर के शहंशाहों की भांति बरफ़खानों और खसखानों तक ही इन कवियों ने अपने पौराणिक चरित्र को सीमित नहीं रखा अपितु मुस्लिम संस्कृति से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कृष्ण के सिर पर मुस्लिम दौर की तातारी और चौतनया कुलह भी रख दिखाई।

इन हिंदी-कवियों द्वारा किया गया दरबार का अन्य चित्रण भी मुस्लिम-संपर्क का फल है। इन्होंने खवास, नक़ीब, वज़ीर, क़ाज़ी, दीवान, अमीन, मुस्तौफ़ी और जासूस आदि का वर्णन भी इसी संपर्क से लिया है। युद्ध वर्णन के अंतर्गत फ़ौज, बैरक, अरबी घोड़े, ताज़ी जहाज़, ज़िरिह बक्तर, सिपर, तीर, कमान, तरकश, तेग़, शमशेर और बारूद संबंधी हथियार तोप फ़लीता की भी बड़ी चर्चा की है। यह बात ध्यान आकृष्ट किये बिना नहीं रहती कि भक्तिकालीन कवि यद्यपि दरबारी कवि नहीं थे और न ही तत्कालीन राजनीतिक जीवन चित्रण में रुचि रखते थे फिर भी श्रीकृष्ण और राम का निरूपण करते समय उन्होंने स्वाभाविक रूप से तत्कालीन मुस्लिम-शासन व्यवस्था की छाया का अनुकरण किया है। इसका कारण मुस्लिम-संस्कृति की समन्वयात्मकता व्यापकता तथा हिंदी-कवियों की उदारता और सहज आदान-प्रदान

१. तुलसी-ग्रंथावली, भाग २, पृ० १८२
२. गोविंदस्वामी, १६४
३. कुम्भनदास, ८७

की भावना ही है।

हिंदी-कवियों ने आर्थिक जीवन के अन्तर्गत विभिन्न व्यवसायों एवं व्यवसायियों की चर्चा की; बाज़ार और दुकान आदि का वर्णन किया ; माल, नफा, बरामद, तलब, बेबाक़ी, बाक़ी आदि की चर्चा के साथ-साथ अनेक पेशेवरों जैसे जुलाहे दरजी, जौहरी, रंगरेज़, बाज़ीगर, क़साई आदि को भी काव्य का विषय बनाया। मुस्लिम-संस्कृति के साथ-साथ कुछ नए सिक्के भी भारत आए और सोना चांदी साफ़ करने के ढंगों में भी सुधार हुआ जिसका उल्लेख हिंदी-कवियों के काव्य में मिलता है। जायसी बारहवानी सोने और दीनार का उल्लेख करते हुए कहते हैं—

दिलीनगर आदि तुरकानू । जहां अलाउद्दीन सुलतानू ।।
सोने ढरे जेहि के टकसारा । बारह बानी चले दिनारा ।।[1]

इतना ही नहीं हिंदी-कवियों ने चमड़े के दाम चलाने की चर्चा भी की है। इस घटना का संबंध मुगल शहंशाह हुमायूं से है। उन्होंने अपने बचाने वाले निज़ाम सक्के को पुरस्कार स्वरूप आधे दिन का राज्य दिया, तब उसने चमड़े का सिक्का चलवाया था। सूरदास भी इस घटना से परिचित थे। उनकी गोपियों ने कुब्जा पर चाम के दाम चलाने की अनीति का अभियोग लगाया है—

सिर पर सौति हमारे कुबिजा 'चाम के दाम' चलावे।[2]

मुस्लिम-काल की पाठशालाओं में ज्ञान विज्ञान की व्यापक चर्चा के कारण भक्तिकालीन कवियों ने मुस्लिम संस्कृति के माध्यम से प्रचलित अनेक साहित्यक उपकरणों का वर्णन किया है। उन्होंने अपने काव्य में कागज़, किताब क़लम, क़लमदान रोशनाई आदि का भी प्रयोग किया है। अनेक कवियों को अरबी फ़ारसी की अच्छी जानकारी थी जिसका परिचय उन्होंने अपने काव्य में दिया है। इन कवियों ने न केवल अरबी-फ़ारसी शब्दावली को ही अपनाया है अपितु अरबी-फ़ारसी के कवि इनकी काव्य-प्रेरणा के स्रोत भी रहे हैं। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि हिंदी के मुसलमान सूफ़ी कवियों ने इतने अधिक अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग नहीं किया है जितना कबीर, तुलसीदास और नानक, दादू आदि कवियों ने किया है। हिंदी कवियों ने फ़ारसी कवियों के काव्य से भाव भी ग्रहण किये हैं। कारण यह है कि तत्कालीन शासकों ने पठन-पाठन की अच्छी व्यवस्था की थी और पाठशालाओं में मौलवियों और पंडितों की नियुक्ति होती थी। जहाँ काव्य-कथा-साहित्य, इतिहास, व्याकरण आदि विषयों एवं फ़िरदौसी खुसरो, निज़ामी, हाफ़िज, शेखसादी आदि फ़ारसी के विख्यात कवियों एवं विद्वानों की रचनाएं पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाती थीं जिनके शेर या एक-एक

१. जायसी ग्रंथावली, पृ० २०३
२. सूर सागर, ३६३९

चरण जनसामान्य में भी प्रचलित हो गये थे । तुलसीदास अपने से बहुत पूर्व के फ़ारसी कवि शैखसादी से निम्न पद्य में कितने प्रभावित हुए हैं—

अब्र अगर आबे जिन्दगी बारद । हरगिज अज़ शाखे बेद बर न खुरी ॥[१]

फूले फरे न बेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद ।[२]

कबीर आदि कवियों ने भी मुस्लिम-संपर्क से ऐसा ही ल'भ उठाया है—

हर कसे पंज रोज़: नौबते अस्त ।[३] (हाफ़िज़ शीराज़ी)

कबीर नौबत आपणी, दिन दस लेहु बजाइ ।[४] (कबीर)

चारि दिन अपनी नौबति चले बजाइ ।[५] (कबीर)

इन फ़ारसी कवियों से अन्य हिंदी-कवियों के अतिरिक्त कबीर, जायसी और तुलसी भी बहुत प्रभावित हुए हैं ।

संगीत कला के अंतर्गत अनेक राग-रागिनियों का प्रचलन भी मुस्लिम संपर्क के कारण हुआ जिसका निरूपण भक्त कवियों ने किया है । नए वाद्य-यंत्रों का भी प्रचलन हुआ जिनमें से डफ़, चंग, रबाब, निशान, दमामा और शाहनाई का वर्णन भी मिलता है । भक्तिकालीन कवियों ने अपने धार्मिक कृत्यों और उत्सवों पर प्राचीन भारतीय परंपरा के वाद्य-यंत्रों के साथ मुस्लिम-संपर्क से आए हुए वाद्य-यंत्रों और रागों का ऐसा सुरुचिपूर्ण निरूपण किया जो देखते ही बनता है । यह हिंदू-मुस्लिम-संस्कृति की सामासिकता का द्योतक है । आलोच्यकालीन हिंदी कवियों ने मुस्लिम संपर्क के फल-स्वरूप इतिहास निरूपण भी किया है जिसका उनके पूर्ववर्ती कवियों में अभाव रहा है । लगभग समस्त प्रेमाश्रयी मुसलमान कवियों ने अपने जन्म समय, स्थान और समकालीन बादशाहों के संबंध में विवरण देकर इतिहास निरूपण की प्रवृत्ति को बल प्रदान किया है ।

आलोच्यकालीन हिंदी-काव्यरूप पर भी मुस्लिम संस्कृति के साहित्यक पक्ष का अरबी-फ़ारसी के माध्यम से गहरा प्रभाव पड़ा है । इन कवियों ने मुस्लिम-संपर्क से आए अनेक नवीन काव्यरूपों में रचना की, जिनमें ग़ज़ल, मसनवी तथा इसके अंतर्गत हम्द, नात, मनक़बत आदि के अतिरिक्त क़सीदा, क़िता रेखता, अलिफ़नामा आदि यहाँ विशेष उल्लेखनीय हैं । हिंदी-साहित्य में क़ाफ़िया, रदीफ़ और तखल्लुस का प्रचलन भी मुस्लिम-संपर्क के प्रभाव का परिचायक है । भक्तिकालीन सभी शाखा

१. कुल्लियाते शेखसादी, पृ० ८४
२. तुलसी ग्रंथावली, भाग २ (दोहावली ४८४), पृ० १२०
३. फ़रहंगे अमसाल, पृ० १८८
४. कबीर-ग्रन्थावली, पृ० २१७
५. काव्य संग्रह (कबीर), पृ० २९

के कवियों ने अपने काव्य में इनका उपयोग किया है। अरब-फ़ारसी बहरों (छंदों) का हिंदी-साहित्य के संदर्भ में सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि हिंदी के अनेक मात्रिक छंदों में अरबी-फ़ारसी बहरों का योगदान कुछ कम नहीं है। रेख्ता, लावनी, झूलना आदि में प्रयुक्त अनेक अरबी-फ़ारसी बहरें मिलती हैं।

अलंकरण में भाषागत अलंकार के अंतर्गत मुस्लिम-संपर्क से हिंदी में अनेक नवीन उपमान आए हैं। हिंदी-कवियों ने मुस्लिम धार्मिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यिक व्यक्तियों का वर्णन उपमान-रूप में किया। साथ ही मुस्लिम संपर्क से आई नवीन वस्तुओं, गुलेलाला, नरगिस, मजनूं, मशक आदि का प्रयोग भी उपमान रूप में हुआ है। हिंदी कवियों ने परंपरा से आए हुए उपमानों के लिए अरबी-फ़ारसी शब्दावली का भी उपयोग खूब किया है। मुस्लिम संस्कृति के संपर्क के फलस्वरूप हिंदी में अनेक मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रचलन भी हुआ है जैसे—

सूर मिले मन जाहि-जाहि सों, ताको कहा करै काजी।[1]

भए दोउ नैन जहाज को पंच्छी, दोउ भये राजी तो काजी कहा कर है।[2]

मुस्लिम-संस्कृति के अनुसार विवाहोत्सव में क़ाज़ी के निकाह पढ़ाने की चर्चा तो हंस जवाहर में भी है, किंतु इस कहावत का पौराणिक चरित्र-चित्रण के प्रसंग में बड़ी कुशलता से हिंदी कवियों ने प्रयोग किया है, जो मुस्लिम संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव है। हिंदी में अनेक अरबी-फ़ारसी उपसर्गों (साबिक़ों) और प्रत्ययों (लाहिक़ों) का प्रयोग भी मिलता है जिसके द्वारा अर्थ-परिवर्तन एवं अर्थ परिवर्धन आदि की दृष्टि से भाषा के अलंकरण का क्षेत्र व्यापक हुआ है। आलोच्यकालीन हिंदी कवियों ने मुस्लिम संस्कृति के धार्मिक पक्ष एवं शासन व्यवस्था आदि से सम्बद्ध भावाभिव्यक्ति के समय विशेष रूप से भावानुकूल भाषा होने के नाते अरबी-फ़ारसी बहुल शब्दावली का खुल कर प्रयोग किया है जो दीर्घकालीन मुस्लिम संपर्क का परिणाम है और इससे भी इन कवियों के काव्य के अलंकरण में व्यापकता आई है। भाषागत अलंकरण के अतिरिक्त हिंदी कवियों ने मुस्लिम-संस्कृति के अनुरूप भावालंकरण भी किया है जिसमें फ़ारसी-काव्य की सी विरह वेदना की तीव्रता एवं ऊहात्मकता आदि के दर्शन होते हैं।

भक्तिकालीन कवियों ने सामान्य जीवन-संबंधी अलंकरण का निरूपण भी किया है। यह अलंकरण खान पान में मांस से बने नाना प्रकार के व्यंजनों जैसे कबाब, दाऊदखानी आदि का दावतों (यथा अलाउद्दीन भोज खंड) और तरकारियों तथा मुस्लिम-संपर्क से आए फलों और मेवे मिठाइयों, हलवों का कृष्ण के कलेवे आदि अवसरों पर पूर्ण रूप से उपयोग करते हुए दस्तरखान को अलंकृत किया है। इसी

१. सूर सागर, ३१४७

२. अकबरी दरबार के हिंदी कवि (गंग), पृ० २५७

प्रकार मुस्लिम-संपर्क से आए अनेक वस्त्रों का प्रचलन भी हुआ है जिनके द्वारा हिंदी-कवियों ने अपने आराध्य देवों एवं अन्य पात्रों को सुसज्जित किया है। इन वस्त्रों में कुलह, चौतनिया कुलह, कफ़नी और पाजामा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बिना सिले वस्त्रों में ज़रतारी, ताफ़ता आदि मुख्य हैं। वस्त्रों के अतिरिक्त आभूषणों का भी प्रयोग मिलता है। इन आभूषणों में हमेल, नाक का आभूषण बुलाक़, तौक़ी, बाजूबंद आदि मुख्य हैं। प्रसाधन सामग्री में आइना, साबुन, इतर, अबीर और गुलाल की चर्चा खूब मिलती है। मुसलमानों के साथ भारत में अनेक नये त्यौहार भी आए जो शाही शानो-शौकत से मनाए जाते थे। भक्तिकालीन कवियों ने ईद और नौरोज़ का निरूपण किया है। संस्कारों के वर्णन में मंगनी, निकाह और ख़तना का वर्णन भी मिलता है। मनोविनोद के साधन, खेल-तमाशों से भी इन कवियों ने अपने काव्य को अलंकृत किया है। इन खेल तमाशों में शिकार, मुस्लिमशाही अंदाज़ की शतरंज और चौगान मुख्य है। मुस्लिम संस्कृति के साहित्य पक्ष से प्रभावित हिंदी साहित्य में नये उपमान, मुहावरे, उपसर्ग, प्रत्ययों के अतिरिक्त अन्य सामान्य जीवन का भी अलंकृत रूप प्रस्तुत हुआ है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मुस्लिम-संस्कृति के संपर्क के परिणाम स्वरूप भक्ति-कालीन हिंदी-साहित्य, विषय-वस्तु, काव्यरूप और अलंकरण की दृष्टि से प्रभूत मात्रा में प्रभावित हुआ है। इस संपर्क, आदान-प्रदान और प्रभाव से हिंदी के समन्वयवादी कवियों ने साहित्य की महत्वपूर्ण श्रीवृद्धि की है।

सहायक ग्रंथ सूची

हिंदी

१. अकबरी दरबार के हिंदी-कवि, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, प्रकाशक लखनऊ विश्वविद्यालय, संवत् २००७ वि०
२. अनुराग बांसुरी (नूर मुहम्मद कृत) संपादक—आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रबली पांडे
३. अनुसंधान की प्रक्रिया, संपादक डा० सावित्री सिन्हा डा० विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६०
४. अमीर खुसरो और उनकी हिंदी रचनाओं का मूल्यांकन, अप्रकाशित, डा० माजिदा असद
५. अखर्नी-चरित्र, लालजी, १९२६
६. अष्टछाप के कवि नन्ददास, प्रो० कृष्णदेव, राज पब्लिशर्ज (रजिस्टर्ड) जालंधर, प्रथम संस्करण, १९५८
७. आधुनिक हिंदी-काव्य में छंद-योजना, डा० पुत्तूलाल, प्रकाशक—लखनऊ विश्व-विद्यालय, विक्रमाब्द २०१४
८. आधुनिक हिंदी-काव्य में रूप विधाएँ, डा० निर्मला जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सितम्बर १९६३
९. अग्निपुराण, अनुवादक रामलाल वर्मा शास्त्री
१०. इन्द्रावती, लेखक नूर मुहम्मद, १९०६ ई०
११. इस्लाम के सूफ़ी साधक (निकलसन), अनुवादक नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद
१२. उर्दू-हिंदी शब्द कोश, मुस्तुफ़ा खां मद्दा, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, पहला संस्करण १९५९ ई०
१३. कबीर-ग्रंथावली, संपादक डा० श्यामसुन्दर, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, आठवां संस्करण
१४ कबीर-वचनावली, पं० आयोध्यासिंह उपाध्याय, काशी सं० १९७८
१५. काव्य दर्पण पं० रामदहिन मिश्र, प्रकाशक ग्रंथ माला कार्यालय, पटना-४,

चतुर्थ संस्करण, १९६०

१६. काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, डा० शकुन्तला दूबे, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पहला संस्करण १९५८ ई०

१७. काव्य-संग्रह, संपादक उदयभानु सिंह और दशरथ ओझा, प्रकाशक आत्माराम एंड संज़, दिल्ली १९६३ ई०

१८. कुंभनदास, गो० व्रजभूषण

१९. क़ुरान मजीद, मकतबा अल-हसनात—रामपुर, १९६६

२०. ख़ुसरो की हिंदी कविता, संपादक व्रजरत्नदास, प्रकाशक काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० २०१० वि०

२१. गरीबदास की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९१०

२२. गोविंदस्वामी, गोस्वामी व्रजभूषण

२३. चंदायन, मौलाना दाऊद कृत, संपादक परमेश्वरीलाल गुप्त, हिंदी ग्रंथ-रत्नाकर बम्बई ४, १९६४

२४. चतुर्भुजदास, गोस्वामी व्रजभूषण

२५. चित्रावली, उसमान कृत, श्री जगमोहन शर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

२६. छंद-विज्ञान की व्यापकता, हरिशंकर शर्मा, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा, जयपुर

२७. छंद प्रभाकर, जगन्नाथ प्रसाद भानु, प्रकाशिका पूर्णिमा देवी, जगन्नाथ प्रिंटिंग प्रेस, बिलासपुर सं० २०१७

२८. छीतस्वामी, गोस्वामी व्रजभूषण

२९. जायसी की भाषा, डा० प्रभाकर शुक्ल, प्रकाशक लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, सं० २०२२ वि०

३०. जायसी-ग्रंथावली, रामचन्द्र शुक्ल (पद्मावत, अखरावट, आखिरीकलाम), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१७ वि०

३१. तुलसी-ग्रंथावली भाग १, २ संपादक रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन व्रजरत्नदास, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१५ वि०

३२. तुलसीदास की भाषा, डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव (हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय) प्रकाशक लखनऊ विश्वविद्यालय, संवत् २०१४ वि०

३३. तुलसी सतसई, हिंदी-साहित्य रत्न पं० रामचन्द्र द्विवेदी, प्रकाशक सरस्वती भण्डार, पटना, १९२१, प्रथम संस्करण

३४. तुलसी-शब्द सागर, संपादक भोलानाथ तिवारी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, जनवरी १९५४

३५. तुलसी साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९१४

३६. तुलसी और उनका काव्य, रामनरेश त्रिपाठी, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, १९६३ ई०
३७. दादूदयाल की वानी, भाग १, २, प्रकाशक वेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स इलाहाबाद, १९६३ ई०
३८. दयाबाई की बानी—प्रकाशक वेलविडियर प्रेस, प्रयाग
३९. धरनीदास की बानी, वेल्वेडियर प्रेस, सं० १९११
४०. नखशिख, सूरदास लखनऊ वाले, सं० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हिंदी विद्या पीठ ग्रंथवीथिका, आगरा
४१. नंदलाल (दो भाग), सं० श्री उमाशंकर शुक्ल
४२. नानक-वाणी, डा० जयराम मिश्र, मित्र प्रकाशन इलाहाबाद सं० २०१९ वि०
४३. निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डा० मोतीसिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सं० २०१९ वि०
४४. पद्य-परीक्षा, नारायण प्रसाद बेताब, बेताब प्रिंटिंग प्रैस, चाहरहट, दिल्ली, १९२२
४५ श्री पलटूदास की बानी, संग्रहकर्ता व प्रकाशक ला० रामदयाल देवीप्रसाद, बुकसेलर, गणेशगंज लखनऊ, १९३७ ई०
४६. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
४७. प्रेम वाटिका, रसखानि (ग्रंथावली) (प्रेम वाटिका) संपादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी-वितान प्रकाशन, ब्रह्म नाल, वाराणसी, सं २०१९
४८. परमानंदसागर, परमानंददास (पद्य-संग्रह) सं० गोवर्धन नाथ शुक्ल
४९. पिंगल-प्रवेशिका, प्यारेलाल वृष्णिः, सीताराम एण्ड संस, अलीगढ़, सन् १९५०
५०. श्री पिंगल-पीयूष, प्रो० परमानंद शास्त्री एम० ए० ओरिएण्टल बुक डिपो, नई सड़क, १९५३
५१. पिंगल-सार, रामकवि और बेताब, बेताब प्रिंटिंग वर्क्स, चाह-रहट, दिल्ली, १९२३ ई०
५२. पुहुपावती, दुखहरनदास
५३. फ़ारसी साहित्य की रूप रेखा (हिजएक्सलेन्सी अली असग़र हिकमत) अनुवादक हीरालाल चोपड़ा, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी वाराणसी, १९५७ ई०
५४. बोल-चाल, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस, द्वितीय संस्करण, २०१३ वि०
५५. ब्रज-साहित्य पर मुग़ल प्रभाव, आचार्य चतुरसेन, शारदा प्रकाशन भागलपुर (बिहार), पहला संस्करण, १९५५ ई०
५६. बुल्ला साहिब का शब्द सागर, प्रकाशक बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद

१६६० ई०
५७. भाषा प्रेम रस, शेख रहीम
५८. भारतीय संस्कृति का विकास, डा० मंगलदेव शास्त्री, समाज विज्ञान परिषद, काशी विद्यापीठ बनारस, सन् १६५६ ई०
५६. भक्तमाल, नाभादास कृत
६०. भीखा साहेब की बानी, प्रकाशक वेलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, १६६४ई०
६१. मंझन कृत मधुमालती, संपादक डा० माताप्रसाद गुप्त, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लि०, इलाहाबाद, १६६१ ई०
६२. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, लेखक डा० श्याम मनोहर पाण्डेय एम० ए० डी फिल०, संपादक श्री कृष्ण दास, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लि० इलाहाबाद
६३. मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति एक झलक, डा० यूसुफ़ हुसैन, प्रकाशक भारत प्रकाशन मदिर, अलीगढ़
६४. मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य में नारी भावना, डा० उषा पांडेय, प्रकाशक हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, प्रथम संस्करण १६५६
६५. मलूकदास जी की बानी, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, तृतीय सं० १६४६ ई०
६६. मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, २, मिश्रबन्धु, संवत् १६१४
६७. मीरां : जीवनी और काव्य प्रकाशक शक्ति कार्यालय इलाहाबाद-३, भाद्रपद २०१०
६८. मीरा के पद, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन (१६५६), नई दिल्ली
६६. मुसलमान ? श्री चन्द्रबली पांडे, पुस्तक विक्रेता सरस्वती मंदिर काशी, २००४ वि०
७०. मुग़ल बादशाहों की हिन्दी, पंडित चन्द्रबली पांडेय, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पहला संस्करण १६६७
७१. मुहावरा मीमांसा, डा० ओमप्रकाश गुप्त, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, शकाब्द १८८१, विक्रमाब्द २०१७, ख्रीष्टाब्द १६६०
७२. मूल बीजक, रामविलास गोस्वामी, सन् १६३८
७३. यारी साहेब की रत्नावली, प्रकाशक वेलवेडियर प्रेस प्रयाग
७४. रहीम रत्नावली, माया शंकर याज्ञिक, लखनऊ
७५. रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, ले० डा० शिवलाल जोशी, साहित्य सदन देहरादून, पहला संस्करण जुलाई १६६२
७६. रैदास जी की बानी— प्रकाशक, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, छठा संस्करण, १६४८ई०
७७. वाङ्मय विमर्श, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
७८. वृहत् हिन्दी कोश, संपादक कालिका प्रसाद, प्रकाशक ज्ञानमण्डल लिमिटेड,

बनारस, द्वितीय संस्करण २०१३
७९. विद्यापति पदावली, सम्पादक रामवृक्ष बेनीपुरी, चतुर्थ संस्करण, संवत् १९९६
८०. विनय पत्रिका, तुलसीदास
८१. बुल्ला साहेब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
८२. शिवसिंह सरोज, संग्रहकर्ता ठा० शिवसिंह सेंगर, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ १९२३
८३. शिवाबावनी, भूषण कृत
८४. संत साहित्य, डा० सुदर्शनसिंह मजीठिया, रूपकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण १९६२
८५. संत-साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डा० सावित्री शुक्ल, विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ विश्वविद्यालय, १९६३
८६. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा० देवराज, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण १९५७
८७. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल एण्ड संस दिल्ली, १९५६ ई०
८८. संतवानी संग्रह (दूसरा भाग), परशुराम चतुर्वेदी
८९. संगीत राग कल्पद्रुम, सं० कृष्णानन्द राग सागर, वं०, सा० प०, कलकत्ता
९०. साहित्य-दर्पण, पं० शिवनाथ
९१. साहित्य लहरी, सूरदास, श्री रामलोचन शरण, लहरयासराए
९ . (श्री) सुन्दर विलास, रघुनाथदास पुरुषोत्तमदास अग्रवाल, छत्ता बाजार, मथुरा, सन् १९५० ई०
९३. सुजान रसखान, संपादक पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशन वाणी वितान भवन, काशी
९४. सूर सागर, संपादक डा० नन्ददुलारे वाजपेयी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, चतुर्थ संस्करण, सं० २०२१ वि०
९५. सूर सागर शब्दावली (एक सांस्कृतिक अध्ययन) डा० निर्मला सक्सेना, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, पहला संस्करण, १९५२
९६. सूर सारावली, श्री प्रभुदयाल मीतल
९७. सूर की भाषा, डा० प्रेमनारायण टंडन (हिन्दी विभाग लखनऊ वि०—नवम्बर १९५७ ई०, प्रकाशक हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ
९८. सूफ़ीमत और हिंदी साहित्य, डा० विमल कुमार जैन, १९५५, हिन्दी अनुसंधान परिषद, आत्माराम एंड संस, काश्मीरीगेट, दिल्ली-६
९९. हंस जवाहिर भाषा, कासिमशाह, प्रकाशक तेजकुमार प्रेस बुकडिपो, लखनऊ,

पांचवां संस्करण, १९५२ ई०
१००. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, डा० गोविन्द त्रिगुणायत, प्रकाशक साहित्य निकेतन, कानपुर, पहला संस्करण १९६१
१०१. हिन्दी नवरत्न, लेखक मिश्रबन्धु, प्रकाशक श्री दुलारेलाल, अध्यक्ष गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, सप्तम संस्करण, सं० १९५५ ई०
१०२. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा दसवां संस्करण, २०१२ वि०
१०३. हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा
१०४. हिन्दी पर फ़ारसी प्रभाव, पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, तृतीय सस्करण
१०५. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग, सं० चन्द्रबली पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१४ वि०
१०६. हिन्दी-साहित्य, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, अत्तरचन्द कपूर एण्ड संज, देहली १९६४ ई०
१०७. हिन्दी को मराठी संतों की देन, आचार्य विनयमोहन शर्मा, बिहार-राष्ट्र-भाषा परिषद, पटना, प्रथम संस्करण सं० २०१४, मार्च १९५७ ई०
१०८. ज्ञानदीप. संपादक श्री उदयशंकर शास्त्री, मित्र प्रकाशन इलाहाबाद, १९६१ई०

अंग्रेजी

१०९. ए ग्रामर आफ़ दी ब्रज भाखा, बाई मिर्जा खां, विश्वभारती बुकशाप, २१०, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता
११०. ए हिस्ट्री आफ़ पर्शियन लैंग्वेज एंड लिट्रेचर एट दी मुगल कोर्ट, मुहम्मद अब्दुल ग़नी, इलाहाबाद, इंडियन प्रेस०, १९२९ ई०
१११. ए ग्रामर आफ़ दी हिन्दी लैंग्वेज़, रेव० एस० एच० के लाग—
११२. ए लिट्रेरी हिस्ट्री आफ़ अरब्स, आर० ए० निकलसन, कैम्ब्रेज यूनिवर्सिटी प्रेस, १९३०
११३. ए स्टडी आफ दी फ़िलासफ़ीकल व्यूज आफ़ मलूकदास, सुन्दरदास एंड चरन-दास, डा० टी० एन० दीक्षित
११४. ए० एल० क्रेवर एंथ्रापोलोजी, जार्ज जी० हैरेप एंड कं० लि० लन्दन, १९४८
११५. ए सरवे आफ़ इंडियन हिस्ट्री, के० ए० पानीकर, प्रकाशक, एशिया पब्लिशिंग हाउस, न्यूयार्क १९६३ ई०
११६. एन एडवांस हिस्ट्री आफ़ इंडिया आर० सी० मजूमदार, लंदन मेकमिलन एंड कम्पनी, लिमिटेड न्यूयार्क, १९६० ई०

११७. एन आउट लाइन आफ़ दी कल्चरल हिस्ट्री आफ़ इंडिया, लेखक अब्दुल लतीफ़ प्रकाशक दी इस्टीट्यूट आफ़ इंडो मिडिल ईस्ट कल्चरल स्टडीज़, हैदराबाद १९५८ ई०
११८. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिया वालयूम १०
११९. अलबेरुनी इंडिया, अनुवादक सचाऊ, सन् १९१०
१२०. अलग़ज़ाली दी मिस्टिक, मार्गरेट स्मिथ
१२१. कलचरल साइड आफ़ इस्लाम एम० पिकथाल
१२२. इस्लाम ए स्टडी, अब्दुल करीम, थ्योसोफिकल पब्लिशिंग हाउस अडयार मद्रास, १९३१
१२३. एन्साइक्लोपीडिया आफ़ दी सोशल सायन्सेज
१२४. ग्न्थ्रापालाजी, दे ए० एल० क्रोबर (जार्ज जी० हैरेम ऐण्ड कं० लि० लंदन, १९४८ नया संस्करण
१२५. डिसकवरी आफ़ इंडिया, पं० नेहरू, लंदन एडीशन
१२६. फ़ार्म एंड स्टाइल इन पोएटरी, डब्ल्यू० पी० कर लंदन, १९२८ ई०
१२७. ग्लिम्पसेज़ आफ़ हदीस, कम्पाइड बाई अरहरहुसेन, पंजाब वक़्फ बोर्ड, १९६४
१२८. हिस्ट्री आफ़ बंगाली लैंगवेज एंड लिटरेचर, डी० सी० सेन
१२९. हिस्ट्री आफ़ खलीफ़ाज़, जलालुद्दीनएसयूती, अनुवादक एच० एस० जारेट
१३०. हिस्ट्री आफ़ मुस्लिम रूल इन इंडिया
१३१. हिस्ट्री आफ़ सरासेन्स, सैयद अमीर अली
१३२. इन्फ्लूएंस आफ़ इस्लाम आन इंडियन कल्चर, डा० ताराचन्द, दी इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, १९६३
१३३. ईरान एंड इंडिया थ्रू दी एजेज, फ़ीरोज सी० दावर, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, दिल्ली, १९६२
१३४. लाइफ़ एंड कंडीशन आफ़ दा पीपल आफ हिन्दुस्तान १२००-१५०० ई०, कुंवर मुहम्मद अशरफ़
१३५. लिट्रेरी हिस्ट्री आफ़ परशिया, ई० जी० ब्राउन, १९५१
१३६. मुगल इंपायर इन इंडिया, एम० आर० शर्मा
१३७. मुस्लिम पैट्रोनेज टू संस्कृत लर्निंग, डा० जे० बी० चौधरी कलकत्ता
१३८. मैन एण्ड हिज़ वर्क्स, एम० जे० हर्सकोविट्स (अल्फ्रेड ए० नाप १९४९)
१३९. परशियन इन्फ्लूएंस आन हिन्दी, डा० हरदेव बाहरी, भारती प्रेस पब्लिकेशन्स' इलाहाबाद—२, १९६०
१४०. परशियन प्रासाडी, बलाच मैन, रायल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता
१४१. प्रिमिटिव कलचर, भाग १, दे० ई० टाइलर, चतुर्थ संस्करण, १९०३, (जानमरे

लन्दन

१४२. प्रोमोशन आफ् लर्निग इन इंडिया ड्यूरिंग मुहम्मडेन रूल, श्री एन० एम० ला० सन् १६१६

१४३. परशियन इंगलिश प्रावर्वस, लेखक एस० हेम, बी० एण्ड डी० बिराकहिम बुक सेलर, ए० बी० फ़िरदोसी, तेहरान १६५६

१४४. परशियन इंगलिश डिक्शनरी, लेखक एफ़ स्टेनगास, पी० एच० डी०, फोर्थ इम्प्रेशन, १६५७ लन्दन, रौटेल डी० जी० ई० एंडकेगन पाल लिमिटेड, ब्राडवे हाउस, ६८-७४, सेंटर लेन, ई० सी० ४

१४५. सम एसपेक्ट आफ़ सोसाइटी एंड कल्चर ड्यूरिंग दा मुगल एज, लेखक पी० एन० चोपड़ा, एजूकेशनल पब्लिशर्स, शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी लिमिटेड, आगरा

१४६. स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन दी इंडियन इन्वायरमेण्ट्स, अज़ीज़ अहमद, टोरोन्टो यूनिवर्सिटी, क्लेरेंडोन प्रेस आक्सफोर्ड, १६६४

१४७. स्प्रिट आफ़ इस्लाम, सैयद अमीर अली, लंदन १६२३

१४८. शारटर एन्साइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम, एडिटेड आन बिहाफ़ आफ़ रायल नीदरलैंड्स एकादमी एच० ए० आर० गिब्बी एंड जे० एच० क्रामरस, लीडिन ई० जेब्रिल १६५३ ई०

१४६. दी कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इंडिया, १६३८

१५०. (दी) क़ुरानिक सूफ़ीइज्म, डा० मीर वलीउद्दीन दी एकेडेमी आफ़ इस्लामिक स्टडीज हैदराबाद

१५१. दी हिन्दुस्तानी लैंग्वेज ऐज स्पोकिन बाई मैन, फ़ैलन

१५२. दी स्प्रिट आफ़ इस्लामिक कल्चर, के० अब्दुल वहीद, इकबाल एकेडेमी, लाहौर, १६४४

१५३. दी होली क़ुरान, मौलवी मुहम्मद अली, अहमदिया अंजुमनए इशाअतए इस्लाम, लाहौर, १६२०

१५४. टीचिंग्स आफ़ इस्लाम, लेखक आरनाल्ड, १६३५ ई०

उर्दू

१५५. आबेहयात, मौलाना मुहम्मद हुसैन आज़ाद

१५६. अत तकश्शुफ़ अन्मोहिम्मातुत् तसव्वुफ़, मौलाना अशरफ़ अली थानवी

१५७. आईने अकबरी (उर्दू), जिल्द १, भाग १, अबुलफ़ज्ल, प्रकाशक, दारुल तबा जामिआ उसमानिया, हैदराबाद, १६३८ ई०

१५८. आइना-ए-बलाग़त, मिर्जा मुहम्मद असकरी, सिद्दीक़ बुक डिपो, लखनऊ, १६३७

१५९. आईनाए मारफ़त, लेखक सैयद एजाज़ हुसैन एजाज, प्रकाशक लाला रामनारायण इलाहाबाद, १९३२ ई०

१६०. इस्तलाहाते सूफ़िया, लेखक फ़रीद अहमद समदी, रुचा पंडित, दिल्ली प्रकाशक दिल्ली प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली, पहला संस्करण, १९२९ ई०

१६१. अहसनुल क़वायद, मौलवी मुहम्मद अब्दुल अहद, प्रकाशक मतबा मुजतुबा, देहली १८६८ ई०

१६१. असनाफ़े सखुन, लेखक मुमताजुर्रशीद, प्रकाशक कुतबख़ान, अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू, जामा मस्जिद, दिल्ली ६, १९६२ ई०

१६२. एजाज़े ख़ुसरवी, अमीर ख़ुसरो

१६३. उर्दू की इब्तदाई नश्वोनुमा में सूफ़ियाएकिराम का हिस्सा, डा० अब्दुल हक़, अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू, उर्दू रोड कराची, १९५३

१६४. इलमी उजाले, अमीर हसन नूरानी, राजा राजकुमार बुक डिपो, १९५९ ई०

१६५. वहरुलफ़साहत, मौलवी नजमुलगनी

१६६. पृथ्वीराज रासा, संपादक महमूद खां शीरानी, प्रकाशक अंजुमन तरक़्क़ी ए उर्दू (हिंद), पहला संस्करण, १९४३ ई०

१६७. पंजाब में उर्दू, महमूद शीरानी, मकतबाए कलियां, बशीरतगंज, लखनऊ, १९६०

१६८. तारीख़े अदबियाते ईरान, प्रो० एडवर्ड ब्राउन, प्रकाशक अजुमन तरक़्क़ी ए उर्दू (हिंद) देहली, १९३९

१६९. तरीख़े अदबियाते ईरान, डा० रज़ा ज़ादा शफ़क़, मुतरज्जिम सैयद मुबारजुद्दीन रिफ़अत, नदवतुलमुसन्नफीन, दिल्ली, अक्तूबर १९५५

१७०. तरजमाउल-क़ुरान मजीद, अनुवादक फ़तह मुहम्मद खां जालिंदरी, प्रकाशक, शेख ज़फ़र मुहम्मद एंड संस, ताजिरान कुतुब, कशमीरी गेट, लाहौर

१७१. तलाशे हिन्द, पं० जवाहरलाल नेहरू, मकतबाए जामया, दयाल प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली, १९४६

१७२. सखुन दाने फ़ारिस, मुहम्मद हुसैन आज़ाद, प्रकाशक मुफ़ीद आम लाहौर, सन् १९०७

१७३. सक़ाफ़ते पाकिस्तान, शेख़ मुहम्मद इकराम, प्रकाशक इदाराए मतबूआते पाकिस्तान, करांची, पहला संस्करण

१७४. शेरुलअजम, शिबली नोमानी, मआरिफ़ प्रेस आज़मगढ़, १३३९ हिजरी

१७५. शेरुलहिंद, भाग दो, मौलान अब्दुस्सलाम नदवी, प्रकाशक मतबा मआरिफ़, आज़मगढ़, १९५४

१७६. अरब व हिन्द के ताल्लुक़ात, सैयद सुलेमान नदवी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी,

इलाहाबाद, यू० पी० १९३० ई०
१७७. फ़रहंगे अम्साल, लेखक सैयद मसऊद हसन रिज़वी, किताब नगर, दीनदयाल रोड, लखनऊ, १९५८
१७८. फ़न्ने शायरी, अल्लामा अखलाक़ देहलवी, प्रकाशक निज़ामुद्दीन कोआपरेटिव स्टोर, निज़ामुद्दीन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, १९६२
१७९. क़वायदे उर्दू, मौलवी अब्दुलहक़, प्रकाशक अलनाज़िर प्रेस, ख्यालीगंज, लखनऊ, १९१४ ई०
१८०. क़ुरान और तसव्वुफ़, डा० मीरवलीउद्दीन, नदवतुलमुसन्नेफ़ीन, देहली, १३७५ हिजरी
१८१. क़ुरान मजीद और तख्लीक़े इंसान, मुहम्मद एहतिशाम अली, दानिश महल, अमीनउद्दौला पार्क, लखनऊ, १९६०
१८२. क़ौमी तहज़ीब का मसला, डा० सैयद आबिद हुसैन, अंजुमन तरक्क़ीए उर्दू (हिंद), अलीगढ़, १९५५
१८३. गुलज़ारे सखुन, जगन्नाथ प्रसाद भानु, मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
१८४. गुलदस्ताए दानिश, लेखक मुशताक़ अहमद खां, सर सैयद बुक डिपो, अलीगढ़
१८५. मरहटी ज़ुबान पर फ़ारसी का असर, मौलवी अब्दुलहक़ साहेब बी० ए०, प्रकाशक मतबा अंजुमन तरक्क़ी उर्दू औरंगाबाद दक्किन, १९३३ ई०
१८६. मक़ालाते शिबली, मआरिफ़ प्रेस, आज़मगढ़, १९३१ ई०
१८७. महमूद ग़ज़नवी, अली बहादुर खां, मकतबा दौरे जदीद दिल्ली, १९६०
१८८. मीरासे इस्लाम, अब्दुल मजीद सालिक, प्रकाशक मजलिस तरक्क़ीए अदब, क्लब रोड लाहौर, पहला संस्करण, १९६० ई०
१८९. मुक़द्दमाए आबे हयात, मौलवी मुहम्मद हुसैन आज़ाद, आज़ाद बुक डिपो, कूचा चेलान, दिल्ली
१९० मुस्लिम सक़ाफ़त हिंदोस्तान में, अब्दुल मजीद सालिक, इदाराए सक़ाफ़ात इस्लामिया, लाहौर, १९५७
१९१. मुसलमानों की तहज़ीब (मुस्लिम कल्चर), वी० वी० बारथोल्ड (रूसी), मुतरज्जिम अबुल नसर मुहम्मद खालदी, इदाराए दानिश व हिकमत, हैदराबाद
१९२. नक़्दे इक़बाल, मैकश अकबर आबादी, मकतबए जामअ, नई देहली, १९६४
१९३. हिन्दी के मुसलमान शोरा, सैयद अमीर हसन नूरानी, प्रकाशक अनवारुल मुताबे लखनऊ, १९५५ ई०
१९४. हिंदुस्तानी मुसलमान सैयद अबुल हसन अली नदवी, नाशिर मजलिसे तहक़ी-

फ़ात व नशरयाते इस्लाम, पहला संस्करण, १६६१ ई०
१९५. हिन्दुस्तानी मुसलमान हुकमरानों के तमद्दुनी जलवे, सैयद सबाहुद्दीन अब्दुर रहमान, मारिफ़ प्रेस आज़मगढ़, सन् १६६३

फ़ारसी

१९६. तज़करा व तब्सरा बर रुबाइयाते हकीम उमरख़य्याम, संपादक मौलवी हाफ़िज़ जलालुद्दीन अहमद जाफ़री जैनवी मतबूआ, मतबाए अनवार अहमदी, इलाहाबाद
१९७. तारीख़े फ़ीरोजशाही, शम्ससिराज अफ़ीफ़
१९८. तारीख़े फ़िरिश्ता
१९९. तबक़ाते नासरी
२००. दीवान ज़हीर फ़ारयाबी, बकोशिश तक़ी बनीश, किताब फ़रोशी बासतान चापख़ाना तूस मशहद, १३३७ हि०
२०१ ग्यासुललुग़ात (फ़ारसी) नवलकिशोर प्रेस
२०२. फ़तूहाते फ़ीरोजशाही, ईलियट, भाग ३
२०३. शीरीं ख़ुसरो, अमीर ख़ुसरो, अलीगढ़, सन् १९२७
२०४. कशफ़ुल महजूब, हिज्वरी
२०५. कुल्लयाते शेख़ सादी, किताबफ़रोशी इलमी, तहरान, १३३६ हि०
२०६. ख़ुसरो शीरीं, निज़ामी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १३२० हिजरी, सन् १९०२
२०७. लैला मजनू, निज़ामी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १८८० ई०
२०८. लुबाबुल अलबाब, मुहम्मद औफ़ी, जिल्द २
२०९. मजनू लैला, अमीर ख़ुसरो, हबीबुलरहमान खां, अलीगढ़, १९१८
२१०. मआसिरे रहीमी, हिस्सा २, अब्दुल-बाक़ी, भाग १-३, १९२४

पत्र-पत्रिकाएं—

२११. कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक
२१२. ओरियंटल कालेज मैगज़ीन हिस्सा अव्वल, प्रकाशक ओरियंटल कालेज, लाहौर, मई, अगस्त, १९३१ ई०
२१३. क़ुतबंस मृगावत—ए यूनीक मैनुस्क्रिप्ट इन परशियन स्क्रिप्ट जर्नल आफ़ बिहार रिसर्च सोसाइटी, १९५५
२१४. मुस्लिम इयर बुक, १९४८, १९५०

२१५. नेशनल इंटेगरेशन (अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका) दिल्ली, अक्टूबर १९६२
२१६. जज़्बाते भाषा, नियाज़ फ़तेहपुरी, निगार लखनऊ, १९१५
२१७. दौरे जदीद (उर्दू पत्रिका), जामा मस्जिद, देहली, जून १९६३
२१८. ज़माना, कानपुर, १९२९, १९३६
२१९. निगार, असनाफ़े सखुन नम्बर, सालनाम जनवरी फ़रवरी १९५७, लखनऊ
२२०. हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद, अप्रेल १९३६, अक्तूबर १९३७

इस्लाम और तसव्वुफ़ संबंधी विशेष अनुक्रमणिका

य

र

व

श

स

नामानुक्रमणिका

ई

उ

औ

क

ख